सती सीता



प्रकाशक—पण्डित काशीनाथ जैन

सती सीता

सम्पादक

वृहद् (बड़) गच्छिय श्रीपूज्य जैनाचार्य

श्रीचन्द्रसिंहसूरि शिष्य यतिवर्य

कृष्णविजयजी

प्रकाशक

पण्डित काशीनाथ जैन

२०१ हरिसन रोड

कलकत्ता

प्रथमा वृत्ति १०००] सन् १९२५ [मूल्य ॥)

प्रकाशक
वृहद्-वड़ गच्छीय श्रीपूज्य
जैनाचार्य श्रीचन्द्रसिंह सूरि शिष्य
पण्डित काशीनाथ जैन
२०१ हरिसन रोड,
कलकत्ता।



कलकत्ता
२०१, हरिसन रोडके नरसिंह प्रेसमें
पण्डित काशीनाथ जैन
द्वारा मुद्रित

श्री हंसराज बच्छराज नाहटा
सरदारशहर निवासी
द्वारा
जैन विश्व भारती, लाडनूं
को सप्रेम भेंट –



ती सीताकी पुनित जीवनियाँ अजैन सम्प्रदायके अनुसार तो हिन्दीमें अनेकानेक प्रकाशित हो चुकि हैं, किन्तु जैन प्रणालिकाके अनुसार हिन्दी भाषामें कहीं नहीं प्रकाशित हुई है। अतएव हमने इसे प्रकाशित करनेका साहस किया है। यद्यपि सतीके नामके अनुसार यह पुस्तक बहुत ही छोटी और संक्षिप्त रूपमें लिखी गयी है। किन्तु इसके पाठसे सतीके सारे चरित्रका पूर्ण परिचय प्राप्त हो जाता है। अतः आशा है, कि पाठकोंको अवश्य ही प्रिय प्रतीत होगी।

इस पुस्तकमें प्रसंगानुसार जो घटनायें और उपदेश दिया गया है, उससे हम लोग बहुत कुछ सीख सकते हैं। नारदमुनि जैसे सम्मानके भूखे मनुष्यको सम्मान देना, न देनेपर विपत्ति आनेकी संभावना, पति पत्नीके ऐक्यसे गृहराज्य की उन्नति, पुत्रिके पिता होनेपर आनेवाली अगणित कठिनाइयाँ,

सौतेली माताका दूर्व्यवहार, स्त्री और पुरुषका आदर्श प्रेम, कामी पुरुषोंकी विलक्षण स्थिति, पुण्योदयकी प्रबलताका प्रभाव, परोपकारियोंका प्रशंसनीय व्यवहार, किसीको अपमानित करनेसे हानि, पराक्रमी पुत्रको देखकर पिताको होनेवाला आनन्द, भले या बुरे कामोंका, भला या बुरा नतीजा, यति-साधु निन्दाके महापापका फल, आदि बातोंकी शिक्षाका समावेश खूबही अच्छा दिया गया है, आशा है, हमारे चतुर पाठक और पाठिकायें इसे पढ़कर हमारे परिश्रमको सफल करेंगे।

प्रिय पाठक! हमारी यह सतरहवीं भेंट आपके समक्ष जा रही है आशा है, पूर्व पुस्तकोंके अनुसार इसे भी सप्रेम अपनाकर हमारे उत्साहको बढ़ायेंगे। अस्तु!

यहाँ पर हम उन सज्जनोंको हार्दिक धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने हमारी पुस्तकोंके प्रचारके काममें सहायता पहुँचायी है।

ता० १५-१२-१९२५
२०१ हरिसन रोड, कलकत्ता।

आपका
काशीनाथ जैन

सती सीता

पहला परिच्छेद ।

प्राचीनकालमें यहाँ मिथिला नामक एक नगरी थी। उस नगरीमें हरिवंशी जनक राजा राज्य करते थे। उनका दूसरा नाम विदेह था। उनके पिताका नाम वासुकी, माताका नाम विउला और स्त्रीका नाम विदेहा था। विवाह होनेके बाद कुछ दिनोंमें विदेहा गर्भवती हुई और गर्भकाल पूर्ण होनेपर उसने एक पुत्र और एक कन्या—दो जोड़ बच्चोंको जन्म दिया।

उन दिनों सौधर्म देवलोकमें पिंगल नामक एक देव रहता था। विदेहाने जिस पुत्रको जन्म दिया था, उसका वह पूर्व जन्मका शत्रु था। उसके जीमें इस समय उससे बदला लेनेका विचार आया, इसलिये वह गुप्तरूपसे विदेहाके प्रसुतिगृहमें गया और उस नवजात शिशुको उठाकर चुपचाप चलता बना। पहले तो उसने उसे मारही डालनेका विचार किया था; परन्तु बादको उसका अद्भुत रूप देखकर उसे दया आ गयी। उसने

सोचा, कि इसे मैंने माताकी गोदसे अलग कर दिया है, यही बहुत है। फलतः वह उसे वस्त्राभूषण पहनांकर वैताढ्य पर्वतके जंगलमें छोड़कर चला गया।

इस तरह वह बालक निराधार हो गया। वहाँ कोई भी उसकी रक्षा या देख भाल करनेवाला न था, परन्तु वास्तवमें बालक निराधार न हुआ था। उसका प्रारब्ध उसके साथ था। उसका आयुष्य अभी पूरा न हुआ था, इसलिये दैवयोगसे उसकी रक्षा हुई। बात यह हुई कि रथनुपुर नगरका चन्द्र-गति नामक राजा विचरण करता हुआ वहाँ जा पहुँचा। एकान्तमें उस सुन्दर बालकको अकेला पड़ा हुआ देख, वह तुरन्तही उसे अपने घर उठा ले गया। घरमें उसकी पत्नी पुष्पवतीको भी देखकर बड़ा आनन्द हुआ; क्योंकि उसे अब तक एक भी सन्तान न हुई थी।

चन्द्रगतिने उस बालकको पत्नीकी गोदमें देते हुए उसकी प्राप्तिका सारा हाल कह सुनाया। यह बात उनके सिवा अभी किसी औरको मालूम न थी, इसलिये उन दोनोंने विचार किया कि यदि हम इसे अपनाही पुत्र बना लें और नगरमें यह बात फैला दें, कि हमारे यहाँ राजकुमारका जन्म हुआ है, तो हमलोग पुत्रवान हो सकते हैं और इस रत्न समान शिशुको अपने घरमें रख कर अपनी साध पूरी कर सकते हैं। पति और पत्नी दोनोंको यह बात पसन्द आगयी और उन्होंने ऐसाही करनेका निश्चय किया।

प्रिय पाठक! चतुर पुरुषको चाहिये, कि अपनी अर्द्धाङ्गना

किंवा स्त्रीकी सलाह बिना कोई काम न करे। जो काम इस तरह दोनों जनकी सलाहसे किये जाते हैं, वे निर्विघ्न रूपसे पार उतर आते हैं। बहुत लोग अपने हृदयकी संकीर्णता और मूर्खताके कारण अपनी स्त्रियोंको क्रीतदासी—ख़रीद की हुई नौकरनी समझते हैं और बिना उसकी सलाहके जो जीमें आता है वह करते हैं, परन्तु बादको जब फजीहत होने लगती है, तब उन्हें मन-ही-मन बड़ी चिन्ता और पश्चाताप करना पड़ता है। यदि कोई काम स्त्रीसे छिपाकर किया जाता है, और वह बिगड़ जाता है, तो फिर स्त्रीसे उसका हाल कहनेमें बड़ाही सङ्कोच मालूम होता है। यदि संयोगवश वह बात कहनेके लिये विवश होना पड़ता है, तो उस समय साँप छछूंदरकी सी गति हो पड़ती है। इसलिये चतुर पुरुषको अपनी स्त्रीसे कोई अन्तर न रखना चाहिये। विवाहके समय स्त्री पुरुष दोनों यह प्रतिज्ञा करते हैं, कि हम आपसमें किसी प्रकारका भेदभाव न रक्खेंगे। ऐसी अवस्थामें स्त्रीसे कोई बात छिपाना—उसके साथ विश्वासघात करना है। यदि स्त्री मूर्ख किंवा कुपात्र हो, तो उसे समुचित शिक्षा दे समझदार और सुपात्र बनानेका यत्न करना चाहिये, परन्तु उससे जुदाई रखना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। इस तरह स्त्रियोंके साथ हिलमिलकर रहनेसे स्त्री और पुरुष दोनोंका हृदय अभिन्न हो जाता है और उनके गृहराज्यमें सर्वदा आनन्दही आनन्द बना रहता है।

इस सम्बन्धमें स्त्रियोंको भी चाहिये, कि वे अपने पतिको सदैव ऐसी सलाह दें, जिससे बड़ी से बड़ी उलझन आसानीसे सुलझ जाय। यदि उनकी सलाहसे पतिको किसी कार्यमें सफलता मिलेगी या कुछ लाभ होगा, तो वह भविष्यमें भी स्त्रीकी सलाह लिये बिना कोई कार्य न करेगा। परन्तु यदि वे अपनी कुटिलताके कारण पतिको ऐसी सलाह देंगी, जिससे उसका अकल्याण हो या काम बिगड़ जाय तो वह भूलकर भी उनकी सलाह न लेगा। इसलिये स्त्रियोंको अपने दायित्व और प्रतिष्ठाका ध्यान रखकर ही पतिको सलाह देनी चाहिये। ऐसा करनेसे न केवल पति पत्नीमें स्नेहकी वृद्धि होती है और वे दोनों एक दूसरेकी सलाहसे काम करना सीखते हैं, वहिक उन्हें अपने जीवन संग्राममें भी सफलता मिलती है। स्त्रियोंको यह बात सदैव स्मरण रखनी चाहिये, कि भक्ति और प्रेमसेही पतिवश किया जा सकता है, किसी अन्य उपायसे नहीं।

चन्द्रगति और पुष्पवतीमें पूर्ण प्रेम था अतः उन्होंने विचार किया, कि जिस तरह हो, इस लड़केको अपना पुत्र बना लेना चाहिये। जब तक इस लड़केका हाल किसीको मालूम नहीं होता, तभीतक गनीमत है। यदि किसी तीसरे मनुष्यको यह रहस्य मालूम हो जायगा, तो फिर कुछ करते-धरते न बनेगा। यह सोचकर उन दोनोंने अपने नगर एवं जाति-बन्धुओंमें यह कहना आरम्भ किया, कि रानी गर्भवती थी, परन्तु कितनेही कारणोंसे यह बात छिपा रखी गयी थी, आज सौभाग्यवश

उसने राजपुत्रको जन्म दिया है, इस लिये यह शुभ समाचार सहर्ष प्रकाशित किया जाता है।

बात-की-बातमें पुत्र जन्मका यह समाचार समूचे नगरमें फैल गया और चन्द्रगतिके आदेशानुसार राजकुमारका जन्मोत्सव मनाया जाने लगा। पुरजन और परिजनोंने राजा रानीको इस अवसर पर बधाई दी और राजकुमारको दीर्घायुषी करनेके लिये ईश्वरसे प्रार्थना की। राजकुमारके शरीर पर भामण्डलका चिन्ह था, अतः उसका नाम भामण्डल रक्खा गया। जब भामण्डलने क्रमशः बाल्यावस्था और किशोरावस्था अतिक्रमण कर युवावस्थामें पदार्पण किया, तब चन्द्रगति उसके विवाहकी चिन्ता करने लगे।

भामण्डलको प्राप्तकर एक ओर इस तरह आनन्द मनाया जा रहा था और दूसरी ओर राजा जनकके महलमें उसके गायब होजानेके कारण हाहाकार मचा हुआ था। राजा जनकको यह खेदजनक समाचार सुन बड़ाही दुःख हुआ, यहाँ तक कि वे मूर्छित हो गये, परन्तु वे अध्यात्मज्ञानी थे, अतः "गतं न शोचामि"—यह सोचकर वे शान्त हुए और पुत्रीको ही पुत्र मानकर उसीको पुत्रके समान पालन करने लगे। उन्होंने अपनी इस पुत्रीका नाम सीता रक्खा।

सीता जब कुछ बड़ी हुई, तब उसे अक्षरज्ञान कराया गया और जब किशोरावस्थाको प्राप्त हुई तब चौसठ कला आदि स्त्रियोपयोगी विषयोंकी शिक्षा दिलायी गयी। कुछ दिनोंके

बाद सीताने जब तरुणावस्थामें पदार्पण किया, तब राजा जनक उसके उपयुक्त रूप, गुण और शील सम्पन्न वर खोजनेकी चिन्ता करने लगे। शास्त्रकारोंका कथन है, कि कन्याका पिता होना बड़ीही दुर्भाग्यकी बात है; क्योंकि जबसे उसका जन्म होता है, तभीसे उसके माता पिता चिन्तामें पड़ जाते हैं। बचपनमें गृहकार्य सिखाकर योग्य गृहिणी होनेकी शिक्षा देनी पड़ती है और युवावस्थामें पतिकी खोज करनी पड़ती है। यदि सौभाग्यवश पति अच्छा मिल गया, तो अधिक चिन्ता नहीं करनी पड़ती; परन्तु विवाहके समय दहेज आदिके लिये तो अवश्यही चिन्ता करनी पड़ती है। विवाहके बाद भी यह देखना होता है कि उसे ससुरालमें किसी प्रकारका कष्ट तो नहीं है? उसकी घर गृहस्थी मजेमें चली जाती है या नहीं? उसे बाल बच्चे हुए या नहीं? उसे सास श्वसुर किसी प्रकारका कष्ट तो नहीं देते? आदि अनेक बातोंका विचार करना पड़ता है। इसी लिये लोग एक भी कन्याका उत्पन्न होना पसन्द नहीं करते और इसीसे यह कहावत पड़ गयी है कि "दुहिता भली न एक!"

राजा जनक प्रथानुसार सीताके लिये वर की खोज करने लगे। यद्यपि संसारमें समस्त कार्य अपने समयपर अनायास ही हो जाया करते हैं, फिर भी मनुष्यका मन नहीं मानता और वह लौकिक प्रथानुसार उसके लिये चेष्टा करनेसे बाज नहीं आता। सच पूछिये तो सुख या किसी दूसरे कार्यके लिये व्यग्र होनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। जब मनुष्यके

दुष्कर्म क्षय हो जाते हैं और शुभ कर्मोंका उदय होता है, तब सुख सम्पत्ति और ऐश्वर्य आदि चीजें मनुष्यको उसी तरह खोजती हुई चली आती हैं, जिस तरह एक मुसाफिर किसीको खोजता हुआ उसके घर पहुँच जाता है।

एक ओर राजा जनक सीताके लिये वरकी चिन्ता कर रहे थे और दूसरी ओर सीताके पूर्वसंचित कर्म विवाहका संयोग मिला रहे थे। अन्तमें कर्मकी विजय और यत्नकी पराजय हुई। बात यह हुई कि राजा जनकके राज्यपर म्लेच्छ लोगोंने आक्रमण किया। जनकने इस अवसर पर अपनी सहायताके लिये राजा दशरथको बुला भेजा। जनककी ओरसे यह रण-निमन्त्रण मिलते ही अवधेश दशरथने अपने युवराज रामचन्द्रको तुरन्त मिथिलापुरीकी ओर रवाना किया और रामचन्द्रने आनेके साथ ही म्लेच्छोंको पराजित कर अपनी अलौकिक वीरता और रण-कुशलताका परिचय दिया।

रामचन्द्रका यह अतुल पराक्रम देखकर राजा जनकको बड़ा आनन्द हुआ और उन्होंने बड़े आदरके साथ रामचन्द्रको अपने महलमें बुलाकर उनकी अभ्यर्थना की। वे न केवल रामचन्द्रकी वीरताके कारण उनपर प्रसन्नही थे, बलिक रामचन्द्रने उनके शत्रुओंको परास्त किया था, इस लिये वे उनके उपकारमें भी दबे हुए थे। इन सब कारणोंसे उन्होंने मन-ही-मन रामचन्द्रके साथ सीताका विवाह कर देना निश्चित कर लिया।

इसी समय दैवयोगसे वहाँ विघ्न-संतोषी और कलह प्रिय

नारदमुनि जा पहुँचे। वे उस समय न जाने किस धुनमें मस्त थे अतः सीधे राजा जनकके अन्तःपुरमें चले गये। उनकी बड़ी चोटी, विचित्र वेष और हाथमें वीणा आदि देखकर सीता भयभीत हो, एक ओर भाग चलीं। दासियोंने भी उन्हें उन्मत्त समझकर बड़ा हो हल्ला मचाया, फलतः राजसेवकोंने तुरन्त वहाँ आकर नारदमुनिको अपमानितकर वहाँसे निकाल बाहर किया। इससे नारदमुनि बहुतही क्रुद्ध हुए। उन्होंने अपने इस अपमानका बदला चुकानेके लिये सीताका एक सुन्दर चित्र तैयार किया और उसे भामण्डलको जा दिखाया। भामण्डल सीताका चित्र देखतेही उनपर मोहित हो गया और जिस तरह हो उस तरह उनके साथ विवाह करनेकी बात सोचने लगा। आन्तरिक विह्वलताके कारण उसकी शारीरिक अवस्था भी खराब हो चली और वह सीताके वियोगमें बेमौत मरने लगा।

भामण्डलकी यह अवस्था देखकर एक दिन उसके पिता चन्द्रगतिने पूछा—प्रिय वत्स! तेरी ऐसी अवस्था क्यों हो रही है? तू दिन-दिन दुर्बल क्यों होता जा रहा है? न तनमें तेज है न मनमें शान्ति। ऐसा क्यों?

पिताकी यह बात सुन भामण्डलने उनसे सब बातें साफ-साफ कह दीं। पाठक! आश्चर्य न करें। कामी मनुष्य इसी तरह लोक लाज और बड़ोंकी मर्यादाको जलाञ्जलि दे दिया करते हैं। उन्हें फिर अपने पराये, भले बुरे या ऊँच नीचका विचार नहीं रहता। इसी लिये तो कामी मनुष्यको शास्त्रकारोंने अन्ध कहा है।

खैर, पुत्रकी बात सुन पिताने उसे सान्त्वना दी और तुरन्त ही चपलगति नामक एक दूतको राजा जनकके पास सीताकी मँगनी करने भेजा। मिथिलेशके पास पहुँचकर उस दूतने अपने आगनमका कारण कह सुनाया और बड़ेही प्रभावशाली शब्दोंमें चन्द्रगतिके ऐश्वर्य एवं भामण्डलकी गुणावलीका वर्णनकर जनकसे कन्यादानका अनुरोध किया।

जनकने उसकी सब बातें सुन लेनेके बाद कहा—भाई! तुम्हारे राजाका कहना यथार्थ है, परन्तु मुझे इस बातका खेद है कि मैं काकुत्स्थ कुलदीपक दशरथनन्दन रामचन्द्रके साथ अपनी कन्याका विवाह कर देना निश्चित कर चुका हूँ। इस लिये अब अकारणही मैं अपने निश्चयको बदलना नहीं चाहता। परन्तु अब भी एक उपाय मेरे हाथमें है। मैं स्वयंवरका आयोजनकर सब देशोंके नृपतियोंको निमन्त्रित करूँगा और मेरे पास देवाधिष्ठित तथा वज्रावर्त नामक जो दो धनुष हैं उन्हें सभा मण्डलमें रक्खूँगा। जो राजकुमार उन धनुषोंकी प्रत्यञ्चा चढ़ा देगा, उसीके साथ मैं अपनी राजकन्याका विवाह कर दूँगा। इससे सबको अपनी-अपनी योग्यता दिखलानेका अवसर मिलेगा और जो सबसे अधिक योग्य होगा, वही सीताका अधिकारी होगा। आशा है कि तुम्हारे राजाको यह योजना पसन्द आयेगी और वे राजकुमारको स्वयंवरमें भाग लेनेके लिये अवश्य भेजेंगे।

यह कहकर राजा जनकने चन्द्रगतिके दूतको विदा कर दिया। दूतने चन्द्रगतिके पास पहुँचकर उनसे सारा हाल कहा

और चन्द्रगतिने वह राजकुमारको कह सुनाया। राजकुमारको इससे बड़ा आनन्द हुआ और वे उत्सुकता पूर्वक जनकके निमन्त्रणकी प्रतीक्षा करने लगे।

इधर राजा जनकने भी शीघ्रही निपुण कारीगरोंको बुलाकर स्वयंवरके लिये एक सुन्दर मण्डपकी रचना करवायी। मण्डप बन जानेपर उन्होंने देश देशान्तरके नृपतियोंको स्वयंवरमें योग देनेके लिये निमन्त्रित किता। निमन्त्रण मिलतेही चारों ओरसे राजकुमार तथा राजे महाराजे आ आकर मिथिला नगरीमें एकत्र होने लगे। जब स्वयंवरका दिन आ पहुँचा और निमन्त्रित राजवंशियोंने सभा-मण्डपमें आसन ग्रहण किया तब वे दोनों धनुष मण्डपके मध्य भागमें लाकर रख दिये गये। राजा जनकने उस समय खड़े होकर उच्च स्वरमें अपनी प्रतिज्ञा कह सुनायी और उपस्थित राजवंशियोंसे उसे पूर्ण करनेका अनुरोध किया। इस महोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये राजा चन्द्रगति अपने भामण्डल कुमारको और राजा दशरथ रामचन्द्रको अपने साथ लेकर मिथिला पधारे थे।

यथा समय सीता भी वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित हो हाथमें वरमाल ले मण्डपके मध्यमागमें आकर खड़ी हो गयी। उस समय सीताका रूप देखकर उर्वशी; रम्भा, सावित्री, रति और पार्वती भी लज्जित हो रही थीं। उन्हें देखते ही अनेक नृपतियों के चित्त चंचल हो उठे। वे मन-ही-मन नाना प्रकारके तर्क वितर्क करने और सीताको हस्तगत करनेके लिये उपाय सोचने



इतनेहीमें रामचन्द्र कटिबद्ध हो खड़े हुए और देखते-ही-देखते धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ा दी। (पृष्ठ नं० ११)

लगे। कोई अपने इष्टदेवका स्मरण करने लगा और कोई मिन्नतें मनाने लगा। जो अपनेको बलवान समझते थे, वह गर्वपूर्वक अपनी भुजाओंकी ओर देखने लगे और जो निराभिमानी थे, वह निर्विकार चित्तसे सीताके रूप लावण्यकी प्रशंसा करनेलगे।

जब राजा जनकने धनुष चढ़ानेकी सूचना दी, तब अनेक गर्वोन्मत्त राजकुमार धनुषके निकट आ आकर अपना जोर अजमाने लगे। परन्तु जिस तरह कामी जनोंके वचन सुनकर सती स्त्रियोंका चित्त विचलित नहीं होता, उसी तरह राजकुमारोंके बल लगानेपर वह धनुष अणुमात्र भी चलित न हुआ। धनुष उठाना और उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ाना तो दूर रहा; कोई उसे जरा हिला भी न सका। बड़े-बड़े राजकुमार बड़े अरमानके साथ धनुष चढ़ानेके लिये अकड़ते हुए आते, परन्तु निष्फल होने पर उन्हें शिर झुकाकर तुरन्त वापस जाना पड़ता। राजकुमारोंकी यह अवस्था देखकर राजा जनक बहुत ही निराश हो चले परन्तु सुमित्रानन्दन रामपर अभी उनकी कुछ आशा लगी हुई थी। इतनेहीमें रामचन्द्र कटिबद्ध हो खड़े हुए और देखते-ही-देखते धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ा दी। राजा जनककी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गयी। सीताने तुरन्त रामके गलेमें जयमाल डाल दी। चारों ओर जय-जयकार होने लगा।

राजा जनकने रामचन्द्रके साथ सहर्ष सीताका विवाह कर दिया। राजा दशरथने सीता और रामचन्द्रको साथ ले अयोध्यापुरीके लिये प्रस्थान किया। अन्यान्य राजकुमार और

राजे महाराजे भी अपने-अपने देशके लिये चल पड़े; परन्तु भामण्डलके हृदयमें आशाभङ्ग होनेके कारण बड़ाही दुःख हो रहा था। सौभाग्यवश उसे उसी समय आकाशवाणी सुनायी दी।

"हे भामण्डल! तू शोक न कर। जो हुआ वह अच्छाही हुआ। सीता तेरी सगी वहिन और जनक तेरे सगे जनक हैं, जन्म होतेही पूर्व जन्मकी शत्रुताके कारण एक देवताने तुझे उठाकर वैताढ्य वनमें फेंक दिया था। वहींसे तू चन्द्रगतिके हाथ लगा था और उन्होंने पुत्रवत् तेरा लालन पालन किया, अतः खेद न कर और सीताको तूने विकारपूर्ण दृष्टिसे देखा इस लिये उसके निकट क्षमा प्रार्थना कर।"

यह आकाशवाणी सुनकर भामण्डलको जितना विस्मय हुआ, उतनाही आनन्द भी हुआ। उसने तुरन्त अपने प्रकृत पिता राजा जनक और वहिन सीताको गले लगाकर उनसे अपने अपराधके लिये क्षमा प्रार्थना की। राजा जनक और सीताको भी आकाशवाणी और भामण्डलका वृत्तान्त सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने तुरन्त भामण्डलका अपराध क्षमा कर दिया। इसके बाद राजा जनक और सीता आदिकी आज्ञा प्राप्तकर भामण्डलने अपने पिता चन्द्रगतिके साथ वैताढ्यके लिये प्रस्थान किया।

प्रिय पाठक! किसीने अज्ञान और अन्ध मनुष्यको समान कहा है सो बहुत ही ठीक है। यदि भामण्डलको यह मालूम होता, कि सीता मेरी सगी वहिन है, तो वह उसे अपनी अर्द्धा-

हुना बनानेके लिये व्यर्थही क्यों उत्सुक होता ? परन्तु इस तरह अज्ञानताके कारण जो अपराध हो जाय, वह सर्वथा क्षम्य गिना जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान रखना चाहिये कि जो लोग आदर सम्मान और प्रतिष्ठाके भूखे होते हैं वे मान न मिलने पर नारदकी भाँति प्रपञ्च रचना कर अनर्थ करा देते हैं, इसलिये ऐसे मनुष्योंसे सदा सावधान रहना चाहिये और जहाँतक हो सके उन्हें अकारणही अपना शत्रु न बनाना चाहिये।

राजा जनकने सीताकी छोटी बहिनका विवाह रामके छोटे भाई लक्ष्मणके साथ कर दिया और उनके छोटे भाइने अपनी दो कन्याओंका विवाह भरत तथा शत्रुघ्नके साथ कर दिया। इस प्रकार चारों भाइयोंका विवाह कार्य एकही दिन एकही सभामण्डपमें सम्पन्न हुआ और वे अपनी-अपनी नव विवाहिता वधूके साथ अयोध्यापुरीमें पहुँचकर दाम्पत्य जीवनका आनन्द अनुभव करने लगे।



दूसरा परिच्छेद



एकबार राजा दशरथने अपनी कैकेयी नामक रानीको उसके किसी कार्यसे प्रसन्न होकर दो वरदान दिये थे। कैकेयीने वह वरदान उसी समय न माँगकर कहा था कि जब मुझे आवश्यकता होगी, तब मैं माँग लूँगी। रामचन्द्रका विवाह होनेके बाद राजा दशरथने जब उन्हें युवराज बनानेका निश्चय किया, तब कैकेयीको कुमति सूझी और उसने यह वरदान माँगा कि भरतको अयोध्याकी गद्दी दी जाय और रामचन्द्रको तापस वेशमें चौदह वर्षके लिये वनवासकी आज्ञा दी जाय।

राजा दशरथको कैकेयीकी यह बात बड़ी अप्रिय मालूम हुई और उन्होंने बारम्बार दूसरा वरदान माँगनेके लिये समझाया, परन्तु कैकेयी एकसे दो न हुई। रामचन्द्रकी वियोगकी कल्पनासे दशरथका हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा था और वे जानते थे कि बिना रामचन्द्रके मेरा जीना असम्भव है, फिरभी वे कैकेयीको वचन दे चुके थे, अतः भरतको अयोध्याका राज्य और रामको वनवास देना स्वीकार कर लिया। पिताकी आज्ञा शिरोधार्यकर रामचन्द्रने तपस्वीकी भाँति जटा वल्कल धारणकर लक्ष्मण और सीता सहित वनके लिये प्रस्थान किया।

प्रिय पाठक! कैकेयी रामचन्द्रकी सौतेली माता थी। सौतेली मातायें बहुधा अपने सौतेले लड़कोंके प्रति ऐसाही दुर्व्यवहार करती हैं। वे सदैव इस बातके लिये चेष्टा किया करती हैं कि जहाँतक हो सके, अपने सगे लड़कोंकाही स्वार्थ सिद्ध किया जाय। सौतेले लड़कोंको वे कण्टकके समान समझती हैं और उन्हें अपने मार्गसे दूर करनेकी युक्ति सोचा करती हैं। इसलिये समझदार लोगोंको चाहिये, कि दूसरा विवाह करनेके पहले, पहली स्त्रीके लड़कोंके लिये कोई ऐसा प्रबन्ध कर दें, जिससे उन्हें किसी प्रकारका कष्ट न हो। साथही लड़कोंको चाहिये, कि वे माताके दुर्व्यवहारकी उपेक्षाकर पिताकी आज्ञाको रामकी तरह सदैव शिरोधार्य करनेके लिये तैयार रहें और महिलाओंका भी यह कर्त्तव्य होना चाहिये, कि सीताकी तरह सुखमें वे जिस पतिके साथ रहें, दुःखमें भी उस पतिका साथ न छोड़ें। यही पतिव्रता और सती साध्वी स्त्रियोंका शास्त्र सम्मत प्रधान कर्त्तव्य है।

सीता और लक्ष्मण सहित वनमें विचरण करते हुए राम दण्डकारण्यमें जा पहुँचे। वहाँ सूर्पनखाके पतिका लक्ष्मण द्वारा वध होनेके कारण उसने अपने भाई रावणको भड़काया। और उसने कहा—हे दशानन! तेरे जीतेजी दण्डकारण्यमें रहनेवाले तपस्वियोंने मुझे विधवा बना दिया—यह तेरे लिये बड़ी लज्जाकी बात है।" साथही उसने सीताके रूप लावण्यका वर्णन कर रावणको समझाया कि मेरी दुर्गति करनेवालोंके पास जो

स्त्री है, वह तेरे महलमें रहने योग्य है।

वासुदेवके हाथसेही प्रतिवासुदेवका मरण निश्चित होनेके कारण सूर्पनखाकी बात सुन रावणको क्रोध आ गया और उसने प्रपञ्च रचना कर सीताका हरण कर लिया। रामचन्द्र-को इस बातका पता लगनेपर उन्होंने वानरोंका सैन्य एकत्रकर लङ्कापर आक्रमण किया और रावणको पराजितकर सीताको पुनः हस्तगत किया। रावणका नाशकर रामचन्द्रने लङ्काके राजसिंहासन पर विभीषणको बैठाया और वनवासकी अवधि पूर्ण होनेपर अयोध्या लौट आये। अयोध्यामें उनका अभिषेक हुआ और उन्होंने राज्यकी बागडोर अपने हाथमें ले, दीर्घकाल पर्यन्त राज चलाया। रामचन्द्रने अपने राज्यमें प्रजाको इस प्रकार सुख दिया कि "राम-राज्य" आदर्श माना जाने लगा। उन्होंने अपने भाइयोंको भी भिन्न-भिन्न देशोंका राज्य और भिन्न-भिन्न अधिकार प्रदानकर सन्तुष्ट करनेमें किसी प्रकारकी कसर न रक्खी। भला ऐसी अवस्थामें वे आदर्श नृपति क्यों न माने जाते!

कुछ दिनोंके बाद सीताने गर्भ धारण किया। गर्भावस्थामें स्त्रियोको अनेक प्रकारकी जो इच्छायें उत्पन्न होती हैं, उसे दोहद कहते हैं, पुण्यशाली गर्भके प्रभावसे जो जो अच्छे दोहद सीतामें उत्पन्न हुए, उन्हें राम तुरन्तही पूर्ण करते रहे; क्योंकि स्त्रियोंको गर्भावस्थामें जिस बातकी इच्छा उत्पन्न हो, उसे पूर्ण करनाही चाहिये, अन्यथा गर्भिणी दुर्बल हो जाती है और इसमें गर्भका अपकार होता है।

आजकल स्त्रियोंको मिट्टी, कोयला, राख और ठीकरे आदि खानेकी इच्छा होती है और इसीलिये उनकी सन्तान भी वैसीही निकम्मी आती है। गर्भावस्थामें स्त्रियोंका दोहद देखकर गर्भस्थ सन्तानके गुण अवगुण आदिकी कल्पना की जा सकती है

एक दिन गर्भावस्थामें सीताकी दाहिनी आँख फड़क उठी। सीता यह अशुभ लक्षण देखकर कुछ उदास हो गयीं और उन्होंने रामचन्द्रसे यह हाल कहकर पूछा कि यह अनिष्ट दूर करनेके लिये क्या करना चाहिये ?

रामने कहा—"प्रिये ! यह दोष दूर करनेके लिये श्री जिनेश्वरदेवके मन्दिरमें दीपमाल और आंगीकी रचना कराओ, दीन और दुखीजनोंको उदारता पूर्वक दान दो और ऐसेही शुभ कार्यों में जी लगाओ। ईश्वर चाहेगा तो अनिष्ट अवश्य दूर हो जायगा।

पतिदेवकी यह बात सुन सीताने उपरोक्त सभी सत्कार्य किये और रामचन्द्रके आदेशानुसार शुभकार्यों में जी लगाया; परन्तु न जाने क्यों, इससे उनके चित्तको शान्ति न मिली।

इसी समय एक दिन नगरके कई प्रतिष्ठित सज्जनोंने रामचन्द्रके पास आकर कहा—"राजन् ! निःसन्देह आप बड़े न्यायी और धर्मनिष्ठ हैं, परन्तु आपके हाथसे एक कार्य ऐसा हीन हो गया है, कि जिसके लिये चारों ओर आपकी निन्दा हो रही है। लोग कहते हैं कि रामने सीताका स्वीकार कर उसे पटरानी बनाया है सो बड़ाही अनुचित किया है। उनका कथन है कि रावण जैसे कामी पुरुषके यहाँ छः महीने रहकर भी

सीता सतीही बनी रहीं—यह कैसे कहा जा सकता है। घृत और अग्नि एकत्र होनेपर आग लग जाना असम्भव नहीं है। इसी लिये लोग सीताकी निष्कलङ्कता पर सन्देह करते हैं और जिस प्रकार जलराशिपर तेलका बूँद फैल जाता है उसी तरह यह बात समूचे नगरमें फैल गयी है, अतः आपको प्रजाका यह सन्देह अवश्य निवारण करना चाहिये।

राज्यमें अपनी निन्दा लेना ठीक नहीं—यह सोचकर रामचन्द्रने कहा—आप लोगोंका कहना यथार्थ है, पराये घरमें रहने वाली किसी भी स्त्रीपर ऐसा सन्देह होना स्वाभाविक है। तुम्हारे स्थानमें मैं होता, तो मुझे भी ऐसाही सन्देह होता। यद्यपि मेरा विश्वास है कि सीता निष्कलङ्क और परम पवित्र है; परन्तु इसका कोई ऐसा प्रमाण नहीं दिया जा सकता कि जिससे प्रजाको सन्तोष हो जाय। मैं नहीं चाहता कि मेरी प्रजा असन्तुष्ट रहे और मेरी निन्दा करे, इस लिये मैं शीघ्रही कोई उपायकर प्रजाका सन्देह दूर करनेकी चेष्टा करूंगा और अपनी न्यायप्रियताका परिचय दूँगा।

इस तरह पुरजनोंको समझाकर विदा करनेके बाद रामचन्द्र लोगोंका सन्देह निवारण करनेकी तरकीब सोचने लगे। एक ओर सीताका प्रेम था और दूसरी ओर लोकनिन्दाका भय। राम किंकर्त्तव्य विमूढ़ होगये। इतनेहीमें एकदिन वे रात्रिके समय वेशबदलकर नगर चर्चा देखनेके लिये निकले। इधर-उधर घूमते हुए जब वे एक धोबीके दरवाजेपर पहुँचे,

तब उन्होंने देखा कि वह अपनी स्त्रीको देरसे घर आनेके कारण बेतरह धमका रहा है। वह अपनी स्त्रीसे पूँछ रहा था कि दुष्टा! सच बोल, इतनी देर तक तू कहाँ गयी थी? दुष्टपतिकी यह बात सुन धोबिनने कहा—तुम तो राजा रामचन्द्रसे भी अधिक चतुर मालूम होते हो। उन्होंने तो रावणके यहाँ छः मास तक रहने पर भी सीताको अपने घरमें सानन्द रख लिया। और मुझे जरा पड़ोसीके यहाँ देर हो गयी तो तुम उतनेहीमें ऊधम मचाने लगे? धोबीने चिढ़कर कहा—रामचन्द्र तो स्त्रीके गुलाम हैं, परन्तु मैं तेरा गुलाम नहीं हूँ। तेरी यह चाल मुझे जरा भी अच्छी नहीं लगती। मैं तुझे अब घरमें पैर न रखने दूँगा। तुझे जहाँ जाना हो वहाँ तू ख़ुशीसे जा सकती है।

धोबी और धोबिनका यह वादविवाद सुनकर रामचन्द्र स्तम्भित हो गये। वे अपने मनमें कहने लगे, कि इस तरहकी निन्दा सुननेकी अपेक्षा तो मर जाना कहीं अधिक अच्छा है। मैं अब अधिक समय यह निन्दा नहीं सुन सकता, आजही मैं इसका कोई उपाय करूँगा।

यह निश्चय कर रामचन्द्रने महलमें आतेही लक्ष्मणको बुला भेजा। लक्ष्मण तुरन्तही उनकी सेवामें आ उपस्थित हुए। रामचन्द्रने उनसे पहले पुरजनोंकी शिकायतका हाल कह सुनाया। फिर वे कहने लगे—देखो लक्ष्मण! सीताको घरमें रखनेके कारण जनतामें घोर असन्तोष फैला हुआ है और चारों ओर मेरी निन्दा हो रही है। लोगोंका यह भ्रम दूर

करना परमावश्यक है इसलिये मैंने सीताका त्याग करना निश्चित किया है।

लक्ष्मणने हाथ जोड़कर नम्रता पूर्वक कहा—भगवन्! मैं आपके सम्मुख कुछ कहने योग्य नहीं हूँ, फिरभी मैं आपसे क्षमा प्रार्थनाकर कहूँगा, कि लोगोंकी बातपर विश्वासकर लोक-निन्दाके भयसे साध्वी सीताका त्याग करना उचित नहीं है। लोगोंको तो सदैव दूसरोंका घर बिगाड़नेमें आनन्द आता है। यह मानव स्वभावकी विचित्रताही है, कि उसे अपना बड़ेसे बड़ा दोष नहीं दिखाई देता और दूसरेका छोटेसे छोटा दोषभी झट उसकी नज़रमें चढ़ जाता है। बहुत लोग तो ऐसे होते हैं, जिन्हें परनिन्दा और परहानि किये बिना कलही नहीं पड़ती। इसलिये ऐसे विघ्न-सन्तोषी परनिन्दक और छिद्रान्वेषी लोगोंकी बातपर आप जैसे बुद्धिमान नृपतियोंको ध्यान न देना चाहिये। बल्कि ऐसे आदमियोंको तो अपमानितकर राज्यसे निकाल देना चाहिये, ताकि वे अकारण किसीकी निन्दा न करें।

राजा रामचन्द्रने कहा—प्रिय बन्धो! तुम्हारा कहना यथार्थ है, परन्तु नीतिकारोंका कथन है कि "यद्यपि शुद्धं लोक विरुद्धं नाकरणीयं नाचरणीयं" अर्थात बात बिल्कुल ठीक होनेपर भी लोकाचारके विरुद्ध हो तो उसे कदापि न करना चाहिये। इस लिये मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि इस समय सीताको अवश्य त्याग देना चाहिये।

इस प्रकार लक्ष्मणको अपना निश्चय कह सुनानेके बाद रामचन्द्रने सेनापतिको बुलाकर आज्ञा दी, कि मैंने सीताका त्याग किया है, इसलिये इसे इसी समय रथमें बैठाकर गंगाके उसपार लेजाकर छोड़ आओ; परन्तु मेरे त्यागकी यह बात सीतासे बनमें पहुँचनेके पहले न कहना, नहीं तो वे यहीं अपना प्राण त्याग देंगी। उन्हें संमेत शिखरकी यात्रा करनेकी इच्छा हुई थी और उन्होंने मुझसे यह बात कही भी थी, इसलिये इसी बहाने उन्हें यहाँसे लेजाना उचित होगा।

रामचन्द्रकी यह आज्ञा सुन, सेनापति उन्हें शिर झुकाकर चला गया और शीघ्रही एक रथ लेकर सीताके पास जाकर कहने लगा—माता! मैं रघुकुल भूषण श्री रामचन्द्रकी आज्ञासे तुम्हें संमेत शिखरकी यात्रा करानेके लिये आया हूँ। बाहर रथ खड़ा है। आप शीघ्र मेरे साथ चलिये।"

सेनापतिकी यह बात सुन तीर्थाटनका दोहद पूर्ण होनेकी कल्पनाकर सीताको बड़ा आनन्द हुआ और वे तुरन्त रथमें बैठ गयीं। सेनापति रथ चलाने लगा। जब वह गंगाके उस पार एक घोर अरण्यमें जा पहुँचा, तब उसने रथ रोककर कहा, माता! रघुकुलमणि रामचन्द्रने आपको इसी बनमें छोड़ जानेकी मुझे आज्ञा दी है। उन्होंने लोकापवादके भयसे आपका त्याग किया है। क्या करूँ? मैं एक सेवक हूँ। पेटके लिये मुझे यह अनुचित आज्ञा भी शिरोधार्य करनी पड़ी। धिक्कार है, इस पराधीनताको और धिक्कार है, इस सेवा वृत्ति-

को ! इसी कारणसे मुझे आज यह बुराकार्य करना पड़ता है और आपके सम्मुख यह वज्रसे भी कठोर, घातक और अप्रिय शब्द कहने पड़ रहे हैं। मेरा कोई वश नहीं है, इसलिये लाचार हूँ, स्वामीकी आज्ञा चाहे उचित हो या अनुचित, उसे शिरोधार्य करनाही सेवकका कर्त्तव्य है। इसलिये मैंने यह सेवकका कार्य किया है। अब आप मुझे आज्ञा दीजिये। मैं वापस जाकर रामचन्द्रको अपने इस कर्त्तव्य-पालनकी सूचना दूँ

सेनापतिकी यह बात सुन सीता मुर्च्छित हो कटे हुए कदली वृक्षकी तरह भूमिपर गिर पड़ीं। यह देख सेनापतिको बड़ा दुःख हुआ और वह बड़े असमंजसमें आ पड़ा। उसने सोचा कि ऐसे अवसरपर सीताको सहायता देनी चाहिये, परन्तु स्वामि-भक्ति और सेवकधर्मने उसे ऐसा करनेसे रोका। उसे विचार आया कि ऐसा करनेसे शायद रामचन्द्र अप्रसन्न होंगे, इसलिये उससे कुछ करते-धरते न बना। वह ज्योंका त्यों पत्थरके पुतलेकी तरह चुपचाप खड़ा रहा।

कुछ देरके बाद शीतल वायुके झकोरोंसे सीताकी मूर्छा दूर हुई और वे इस आकस्मिक वज्रपातका स्मरणकर करुणक्रन्दन करने लगीं। वे रामचन्द्रको लक्ष्यकर कहने लगीं—हे प्राण-नाथ! यदि आप लोकनिन्दासे डरते थे, तो आपने सबके सम्मुख मेरे सतीत्वकी परीक्षा क्यों न ली? मैं आपको अवश्य अपनी पवित्रताका प्रमाण देती, यदि आप ऐसा करते, तो आ-पका यह कार्य कुलोचित कहलाता, परन्तु आपने मेरा त्यागकर

उचित कार्य नहीं किया। रघुवंशियोंमें अबतक किसीने भी एकबार किसीका हाथ पकड़ने बाद फिर उसकी बाँह नहीं छोड़ी, उन्होंने प्राण त्याग दिये हैं, परन्तु प्रतिज्ञा नहीं छोड़ी। ऐसी अवस्थामें आपने न जाने क्यों ऐसा करना उचित मान लिया। थोड़ी देरके लिये मान लीजये कि मैं अपराधिनी थी; परन्तु इस गर्भस्थ बच्चेने क्या अपराध किया था, जो इसे भी अकारण हिंसक प्राणियोंका शिकार होनेके लिये आपने यहाँ भेज दिया। खैर, यदि आपको मेरे सतीत्वके लिये सन्देह हुआ है, और आपने मेरा त्याग किया है, तो अब मेरा चाहे जो होगा, मैं सब सहन कर लूँगी। इसके लिये मैं आपको दोष नहीं देती। यह तो मेरे कर्मका दोष है। मुझे चाहे जैसा कष्ट हो, परन्तु आपके लिये तो मैं सदा यही कामना करूँगी कि आपकी जय हो, आप सुखी रहें और आपके सुयशमें दिन प्रतिदिन वृद्धि होती रहे।

इसके बाद सीताने सेनापतिकी ओर देखकर सिसकते हुए कहा—मेरा यह प्रत्येक शब्द प्राणनाथसे कह देना। यदि तुम्हें मेरी बातोंसे मेरी पतिपरायणताका कुछ ख़याल आया हो तो रामचन्द्रसे उसे निवेदन कर देना। अब मेरे भाग्यमें जो बदा होगा, वह होगा, परन्तु तुम शोककर व्याकुल न बनो। जाओ, रामचन्द्र तुम्हारी प्रतीक्षा करते होंगे।

यह शब्द कहतेही कहते अत्यन्त दुःखके कारण सीताको पुनः मूर्च्छा आ गयी और वे संज्ञा रहित होकर जमीन पर गिर

पड़ीं। सेनापति उन्हें इसी अवस्थामें छोड़ आँसू बहाता हुआ अयोध्याकी ओर लौट पड़ा और एक वृक्षकी ओटसे सीताका हाल देखने लगा। कुछ देरके बाद जब सीताकी मूर्च्छा दूर हुई और उन्हें होश आया, तब वे बैठकर बड़ेही करुणस्वरमें विलाप करने लगीं।

प्रिय पाठक! उस समय सीताकी जो अवस्था हुई, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनका विलाप सुनकर समाधिमें रहे हुए महात्माओंकी समाधि भी छूट गयी, वैरागियोंके मनमें भी दया आगयी, पत्थर भी द्रवित हो उठे और जलकी गति रुक जानेके कारण वह भी जड़वत् स्थिर हो गया। हिंसक पशु स्तम्भित हो गये, वनचरोंने खाना-पीना छोड़ दिया, दिग्गज डोल उठे और संसारके समस्त चराचर जीव अपना-अपना काम छोड़ बैठे। सीता कभी विलाप करती थीं, कभी पछाड़ें खाती थीं और कभी मूर्च्छित हो जाती थीं। मालूम होता था कि इसी समय वे प्राण त्याग देंगी, परन्तु अभी उन्हें दुःख भोगना बदा था, इस लिये उनका प्राण न निकला।

रामचन्द्रका सेनापति अब भी उस वृक्षकी आड़में खड़ा-खड़ा सीताकी यह अवस्था देख रहा था। उसे सीतापर बड़ी दया आ रही थी; परन्तु विवश होनेके कारण वह कुछ कर न सका। वह मन-ही-मन सेवावृत्तिको धिक्कारता और अश्रुपात करता हुआ अन्तमें अयोध्याकी ओर चल पड़ा।

सीता बहुत देर तक इस तरह विलाप करनेके बाद अपने



कुछ देर बाद जब सीताकी मूर्च्छा दूर हुई और उन्हें होश आया, तब वे बैठकर बड़ेही करुणस्वरमें विलाप करने लगीं। (पृष्ठ नं० २४)

भाग्यको कोसती हुई, उन्मत्तकी भाँति वनमें चारों ओर विच-रण करने लगीं। इतनेमें पूर्वजन्मके पुण्य-योगसे वहाँ पुण्ड-रीकपुरका वज्रजंघ नामक राजा जा पहुँचा और उसने सीता-को इस तरह भ्रमितकी भाँति भटकते देख उनकी इस दुराव-स्थाका कारण पूछा। दुःखिनी सीताने गद्गदित स्वरमें सारा हाल कह सुनाया। उसे सुनकर वज्रजंघको बड़ी दया आयी। एक निराधार अबला और उसके निरपराध गर्भकी रक्षा करना उसने अपना कर्तव्य समझा। उसने सीताको अनेक प्रकारसे सान्त्वना देकर कहा—मैं तुम्हें अपनी धर्मभगिनी समझूँगा और तुम्हें बड़े यत्नके साथ रखूँगा। यदि तुम मेरे घर चलना चाहो, तो मैं सहर्ष तुम्हें आश्रय देनेके लिये तैयार हूँ।

सीताने वज्रजंघकी बातचीत और उसकी मुखाकृति देखकर इस बातको प्रतीति करली, कि यह पवित्र हृदयका मनुष्य है। इससे उन्होंने उसके साथ जाना स्वीकार कर लिया। वज्रजंघ सीताकी अनुमति मिलतेही उन्हें बड़े आदरके साथ अपने घर लिवा ले गया और उनके लिये दास दासी खानपान और रह-नेके लिये स्थान आदिका समुचित प्रबन्ध कर दिया। सीता वज्रजंघका इस प्रकार आश्रय प्राप्तकर सानन्द दिन बिताने लगीं।

सीताको वनमें छोड़कर जब सेनापति अयोध्या पहुँचा तब उसने रामचन्द्रसे आँसू बहाते हुए सीताकी दुरावस्था और उनके विशद प्रेमका हाल कह सुनाया। सेनापतिकी बातें सुन कर रामचन्द्रको सीताका प्रेम याद आ गया और शोक

निन्दाके डरसे उन्होंने उसके साथ जो अन्याय किया था, उसके लिये उन्हें सन्ताप होने लगा। वे पत्नी वियोग से व्याकुल हो हो उठे। यहाँ तक कि वे सीताको वापस ले आनेके लिये तैयार हुए, परन्तु सेनापतिके साथ जब वे उस अरण्यमें पहुँचे, तब वहाँ सीताका कोई पता न चला। अन्तमें रामचन्द्र निराश हो गये। उन्होंने समझा कि उन्हें किसी हिंसक प्राणीने मार डाला होगा। यदि ऐसा न होता तो उनका पता क्यों न लगता?

रामचन्द्र सीताका त्याग करनेके लिये बड़ा पश्चाताप करने लगे। वे कहने लगे—"हाय! मैंने अकारण ही उस सती और गर्भस्थ बच्चेका नाश कराया, परन्तु अब शोक करने से क्या लाभ? मुझे यह सब बातें पहले ही से सोच लेनी चाहिये थीं। अब पश्चाताप करना संसार में अपनी हँसी करना है। खैर, जो हुआ सो हुआ।"

यह सोचते हुए हताश हो राम अयोध्याको लौट आये और सीताके वियोग में खिन्नता पूर्वक दिन बिताने लगे।



तीसरा परिच्छेद

उधर वज्रजंघके यहाँ गर्भकाल पूर्ण होने पर सीताने दो जोड़ बच्चोंको जन्म दिया। वज्रजंघने यथाविधि उनका जन्मोत्सव मनाया और एकका नाम लव तथा दूसरेका नाम कुश रक्खा। जब यह दोनों राजकुमार बड़े हुए तब वज्रजंघने उनकी शिक्षा-दीक्षाका प्रबन्ध किया। शस्त्र और शास्त्र विद्यामें निपुणता प्राप्त कर जब लव और कुशने युवावस्थामें पदार्पण किया तब वज्रजंघने अपनी शशिकला नामक कन्या और बत्तीस अन्यान्य राजकन्याओंके साथ लवका विवाह कर दिया और कुशके लिये पृथुराजकी कन्याकी याचना की।

पृथुराजने उत्तर दिया कि लव और कुशके वंशादिकका कोई पता नहीं है, इसलिये मैं कुशके साथ अपनी कन्याका विवाह नहीं कर सकता। पृथुराजके इस उत्तरसे असन्तुष्ट हो वज्रजंघने लव और कुशको अपने साथ ले, पृथुराज पर आक्रमण किया। पृथुराज भी शूरवीर और पराक्रमी नृपति था, इसलिये यों ही अधीनता न स्वीकार कर वह भी सम्मुख मैदानमें आकर वज्रजंघसे युद्ध करने लगा। परन्तु दैवदुर्विपाकसे उसे सफलता न मिल सकी; क्योंकि लव और कुश की बाणवृष्टि

इतनी प्रबल थी, कि उसके सामने पृथुराजकी सेनाका ठहरना मुश्किल था। जब पृथुराजके सैनिक अपना प्राण बचानेके लिये इधर उधर भागने लगे, तब पृथुराजको भी अपने प्राणकी चिन्ता होने लगी। वह अपना प्राण बचानेके लिये जिस समय सोच विचार कर रहा था, उसी समय लव और कुशने आकर उसे घेर लिया।

राजा पृथुराज एक प्रकार से बन्दी हो गया। लव और कुशने कहा—राजन्! हम जैसे अज्ञात वंशवालोंके सम्मुख रणक्षेत्रमें आप जैसे कुलीन नृपतिका पीठ दिखाना उचित नहीं कहा जा सकता। आइये, अब हमारे साथ सम्मुख, हो युद्ध कीजिये। हमारा पराक्रम देखकर आपको हमारे कुल और वंशका कुछ परिचय प्राप्त होगा।

लव और कुशके इस मर्म प्रहारसे पृथुराजका बचा खुचा अभिमान भी चूर चूर हो गया। उसने तुरन्त अपने हथियार रख दिये और वज्रजंघके साथ सुलह कर ली। कुशके साथ अपनी राजकन्याके विवाहकी स्वकृति देते हुए कहा—इन दोनों वीरशिरोमणियोंके कार्य ही इनके कुल और वंशका परिचय देनेके लिये पर्याप्त हैं, इसलिये अब कुशके साथ अपनी राजकन्याका विवाह कर देनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

इस प्रकारकी बातचीत हो ही रही थी, कि इतनेमें कहीं से विचरण करते हुए आकाश मार्गसे वहाँ नारद मुनि आ पहुँचे। उन्हें देखते ही वज्रजंघने श्रद्धा पूर्वक प्रणाम कर उन्हें

एक उच्च आसान पर बैठाया। इधर उधर की कुछ बातचीत होनेके बाद वज्रजंघने कहा—भगवन्! पृथुराज को राजकन्याके साथ कुशका विवाह करना है, इसलिये आप पृथुराजको इन राजकुमारोंके वंशका परिचय देंगे तो बड़ी कृपा होगी।

नारदजीने कहा—यह दोनों राजकुमार उस महापुरुषके आत्मज हैं जिसने अपनी न्याय प्रियताका परिचय देने और लोक निन्दासे बचनेके लिये अपनी प्रिय पत्नीको भी त्यागनेमें संकोच नहीं किया। यह दोनों उन्हीं रघुकुल तिलक रामचन्द्रके राजकुमार हैं।

नारदजी द्वारा इस प्रकार अपने वंश और पिताका परिचय प्राप्त कर कुशने पूछा—हे ऋषिराज! श्रीरामने बिना जाँच किये ही मेरी माताका इस प्रकार त्याग किया,—क्या यह उचित कहा जा सकता है? दूसरी ओर लवने उत्कण्ठित हो पूछा—मुनिवर! अयोध्यापुरी यहाँ से कितनी दूर है? हम एकबार उसे देखना चाहते हैं।

नारदजीने कहा—अयोध्या यहाँसे छः सौ योजन दूर है। इसके बाद और भी कितनेही प्रश्नोंका उत्तर दे नारदमुनिने वहाँसे प्रस्थान किया। पृथुराजने उनके द्वारा लव-कुशका पूरा परिचय प्राप्तकर कुशके साथ सहर्ष अपनी कनकमाला नामक कन्याका विवाह कर दिया। इस प्रकार वज्रजंघका मनोरथ पूर्ण होनेपर वह दलबल सहित अपने नगरको लौट आये।

कुछ दिनोंके बाद वज्रजंघ और माता जानकीकी आज्ञा

प्राप्तकर, चुने हुए योद्धाओंको साथ ले, लव और कुश अयोध्या जानेको तैयार हुए। निर्दिष्ट समयपर शुभ मुहूर्त्तमें वे अयोध्याकी ओर चले और कुछ दिनोंके बाद अयोध्याके निकट पहुँचने पर उन्होंने एक दूत द्वारा रामचन्द्रके पास युद्धका संदेश भेजा। रण-निमन्त्रण मिलतेही राम और लक्ष्मण क्रुद्ध हो, अपने सैन्य सहित मैदानमें आ डटे।

दोनों दलोंमें मुठभेड़ होते ही भयंकर युद्ध होने लगा। युद्धको देखकर यह कहना कठिन हो पड़ा कि किसकी पराजय होगी और विजय लक्ष्मी किसके गलेमें जयमाल डालेगी। परन्तु कुछ देरके बाद लव और कुशने ऐसी वीरता दिखायी, कि रामका सैन्य छिन्न-भिन्न हो गया। रामके अधिकांश सैनिक भाग खड़े हुए और जो बचे उन्होंने दीनता दिखाकर प्राण-रक्षा की।

राम लक्ष्मणने अपने सैन्यकी यह अवस्था देख विस्मित हो कहा—अब तक किसी युद्धमें हमारे सैन्यकी ऐसी दुर्दशा न हुई थी, परन्तु न जाने आज ऐसा क्यों हो रहा है? इससे तो हमारी कीर्तिमें बट्टा लगेगा और हमने जो यश प्राप्त किया है वह मिट्टीमें मिल जायगा। इसलिये चाहे जो हो, प्राणका मोह छोड़कर अन्त तक युद्ध करना होगा।

यह सोचकर राम लक्ष्मणने क्रुद्ध हो, लव कुशपर चक्र चलाया, परन्तु वह भी उनकी प्रदक्षिणाकर वापस लौट आया। यह देखकर राम लक्ष्मण सोचने लगे—क्या यह दूसरे बलदेव और वासुदेव उत्पन्न हुए हैं जो चक्र भी इनका कुछ बिगाड़ नहीं



सकता! अब क्या किया जाय? क्या अन्तमें हमें पराजय स्वीकार कर इनके सम्मुख शिर झुकाना पड़ेगा? नहीं नहीं; ऐसा अपमान सहन करनेकी अपेक्षा तो समरभूमिमें प्राण त्याग कर अक्षयकीर्ति प्राप्त करनाही अधिक अच्छा है।

राम और लक्ष्मण जिस समय इस प्रकार तर्क-वितर्क कर रहे थे, उसी समय वहाँ नारदमुनि आ पहुँचे। उन्होंने राम और लक्ष्मणको उदास देख, हँसकर कहा,—राम! प्रसन्न होनेके समय आप इस तरह उदास क्यों हो रहे हैं? पुत्र और शिष्य द्वारा पराजित होना तो बड़े सौभाग्यकी बात समझी जाती है। आप इन वीर राजकुमारोंसे परिचित नहीं हैं, इसी लिये शायद आपको खेद हो रहा है। आपसे युद्ध छेड़नेवाले यह दोनों किशोर बालक आपहीके कुलदीपक राजकुमार हैं। यह युद्धके बहाने आपको अपनी वीरता दिखाकर अपना परिचय देना चाहते हैं। चक्रने भी यह बात सिद्धकर दी है कि यह आपके सगोत्री हैं। क्योंकि सगोत्री पर चक्र नहीं चलता—यह आपको विदित ही है। इसलिये हे राम! शोक और चिन्ताको दूरकर आगे आओ और अपने वीर पुत्रोंको गले लगाकर हर्ष मनाओ।

नारदमुनिकी यह बात सुनकर रामचन्द्र हर्षोन्मत्त हो अपने पुत्रोंको भेटनेके लिये व्याकुल हो उठे। उधरसे लव और कुश भी अपने पिता और काकाको भेटनेके लिये आते हुए दिखायी दिये। राम और लक्ष्मणने उन्हें दौड़कर हृदयसे लगा लिया

ओर हर्षाश्रुओंकी वर्षाकर अपने तनमनके तापको शान्त किया। इस घटनासे दोनों दलोंमें आनन्द छा गया। चारों ओरसे गगनभेदी जयध्वनि सुनायी देने लगी और सर्वत्र आनन्द मनाया जाने लगा।

इसके बाद राम, लव और कुशको अपने साथ महलमें ले गये और सुग्रीव, बिभीषण तथा लक्ष्मणको राजा वज्रजंघके पास भेजा। उन्होंने वज्रजंघसे जाकर कहा—हमें रामचन्द्रने सीताको लिवा लानेके लिये आपकी सेवामें भेजा है। उनकी इच्छा है, कि आप उनको अपने साथ ले अयोध्या आयें।

लक्ष्मण साक्षात सीताके पास गये और उन्हें प्रणाम कर अयोध्या चलनेके लिये कहा। सीताने कहा—मैं अपनेको निष्कलिङ्किनी सिद्ध किये बिना अयोध्या कैसे चल सकती हूँ। मैंने अग्नि ज्वालामें प्रवेश करना, अग्नि भक्षण करना, खौलते हुए तेलमेंसे अँगूठी निकालना, तौल करना और जिह्वासे फल ग्रहण करना—इन पाँच दिव्यों द्वारा शुद्धि करना स्थिर किया है। इस लिये ऐसा करनेके बादही मैं अयोध्यामें पैर रख सकती हूँ।

सीताकी यह बात सुन लक्ष्मण रामके पास लौट आये और उन्हें सीताकी दृढ़ प्रतिज्ञाका सारा हाल कह सुनाया। इससे राम खुद सीताके पास गये और नजर नीची रख कहने लगे—देवि! तुम्हारी पवित्रताके सम्बन्धमें मुझे अणुमात्र भी सन्देह नहीं है, इसलिये अब किसी बातकी चिन्ता न करो और मेरे साथ सहर्ष अयोध्यापुरी चलो। तुम्हारे बिना मेरा गृह-

राज्य अरण्यके रूपमें परिणित हो गया है।"

रामचन्द्रकी यह बात सुन सीताने उन्हें मर्यादापूर्वक प्रणाम कर कहा—विशुद्धात्मन् प्रभो! मुझ कलङ्किनीको अब पञ्चदिव्यों द्वारा शुद्ध करानेके बाद ही नगरमें लेजाना उचित है, जिससे फिर लोकनिन्दाका भय न रहे।

सीताकी पञ्चदिव्यों द्वारा शुद्ध होनेकी उत्कट इच्छा देखकर, रामचन्द्रने एक योजन लम्बी एक नाली खुदायी और उसमें दहकते हुए अंगारे भरवा दिये। सीता उस नालीके पास आकर खड़ी हुई और सब लोगोंके समक्ष अग्निदेवसे कहने लगीं—हे अग्निदेव! मैंने यदि स्वप्नमें भी अपना सतीत्व नष्ट किया हो या पर पुरुषका चिन्तन किया हो तो तुम मुझे जलाकर भस्म कर देना। किन्तु यदि मैंने तनमन वचनसे अपनी पवित्रता और अपने सतीत्वकी रक्षा की हो, तो तुम शीतल जल होकर आज मेरी लाज रखना।

यह कहकर नवकार मन्त्रका स्मरण करती हुई, पुरजन और परिजनोंके सम्मुख सीता निर्भीकता पूर्वक दहकते हुए अंगारों पर चलने लगीं, परन्तु वे उनके सतीत्वके प्रतापसे शीतल जलके रूपमें परिणत होगये। लोग यह देखकर जय-जयकार करने लगे और देवताओंने दुंदुभी बजाकर आकाशको सरस शब्दोंसे पूरित कर दिया। इस शब्दसे समाधिस्थोंकी समाधि छूट गई और भक्तोंका ध्यान छूट गया, परन्तु जब उन्हें इस हर्षध्वनिका कारण मालूम हुआ तब वे भी पुलकित हो सती सीताके सती-

त्व और उसकी महिमाकी भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे।

इस प्रकार सीताकी पवित्रताका प्रत्यक्ष प्रमाण मिलनेपर रामचन्द्रको बड़ा पश्चाताप होने लगा। वे कहने लगे—मैंने व्यर्थही इस सती साध्वी अबलाको कष्ट दिया। निःसन्देह मैंने लोकनिन्दाके भयसे बड़ा अनुचित कार्य कर डाला था। सत्यासत्यका निर्णय किये बिना किसी पर इस प्रकार अत्याचार करना बड़ाही अनुचित है। मुझे लोकनिन्दा सुनकर एकबार इस सम्बन्धमें भली भाँति जाँचकर निराकरण करना चाहिये था। जो लोग मेरी तरह बिना विचारे कार्य करेंगे उन्हें अवश्य मेरीही तरह पश्चाताप करना होगा। आज मुझे अपने अविचारके लिये बड़ाही सन्ताप हो रहा है। मेरा अन्तरात्मा इस अपराधके लिये मेरी भर्त्सना कर रहा है। हाय! न जाने मैं कब इस पापसे मुक्त हूँगा।

रामचन्द्रको इस तरह पश्चाताप करते देखकर सीताने कहा—प्राणनाथ! आपने मुझे किञ्चित भी कष्ट नहीं दिया। आपके स्मरणसे मैं वियोगमें भी संयोगका सुख अनुभव करती थी। मेरे मनःमन्दिरमें बसी हुई आपकीही मूर्तिने मुझे इस अग्नि परीक्षामें उत्तीर्ण हो, खरा सोना सिद्ध होनेका अवसर दिया है। जिस तरह तपाने, काटने और पीटने आदिसे सोनेकी परीक्षा होती है, उसी तरह इन संकटोंसे मेरी परीक्षा हुई है। यदि आपने मेरा त्याग न किया होता, तो मुझे अपनी पवित्रता सिद्ध करनेका अवसर न मिलता। मेरी इस अग्नि-

परीक्षा और मेरे इन संकटोंसे इस भारतवर्षकी सन्नारियोंको महत्त्वपूर्ण शिक्षा मिलेगी और वह मेरीही तरह दुःखमें धीरजसे काम लेना सीखेंगी। अतः जो हुआ वह अच्छाही हुआ और इसका सभी श्रेय आपहीको मिलना चाहिये। आप पिछली बातोंके लिये ज़रा भी सोच न करें। यह तो मेरे और आपके लिये सबसे बढ़कर आनन्दका समय है।

राम और सीताकी यह बातें सुन लोग उनकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करने लगे। सीताके सम्बन्धमें वे कहने लगे कि मिथ्यादोषारोपण होनेके कारण सीताने दहकती हुई अग्निमें अपने प्राणोंकी आहुति दे दी थी, परन्तु अग्निने सतीत्वकी महिमा बढ़ानेके लिये जल होकर इनकी लाज रख ली। यह सतीत्वका प्रत्यक्ष प्रमाण है। अन्तमें निःसन्देह सत्यहीकी विजय होती है।

इस तरह जिस समय सतीत्वकी प्रशंसा हो रही थी उसी समय वहाँ श्री शीलचन्द्रसूरिजी जा पहुँचे। गुरुदेवको देखते ही राम और सीता सहित सब लोगोंने उन्हें वन्दन कर गुरुवन्दनकी मर्यादाका पालन किया और धर्मोपदेश श्रवण करनेकी उत्कण्ठा प्रदर्शित की। गुरुदेवने उनकी प्रार्थनापर ध्यान दे, समुचित धर्मोपदेश दिया और उसे सुनकर अनेक जन प्रतिबोधको भी प्राप्त हुए।

इसके बाद सीताने स्वामी गुरुसे पूछा—हे गुरुदेव! किस पूर्वकर्मके कारण लोगोंको मेरे सतीत्व पर सन्देह हुआ और उनके जीमें यह विचार कैसे उत्पन्न हुआ, कि रावणके यहाँ रहनेके

कारण मेरा चरित्र दूषित हो गया होगा—यह यदि आप बतलानेकी कृपा करेंगे तो बड़ा उपकार होगा। मैं यह रहस्य जाननेके लिये बहुत उत्कण्ठित हो रही हूँ।

गुरुदेवने सीता और श्रोताओंको ज्ञानोंपदेश देते हुए कहा—हे महानुभाव! आत्म कल्याणकी इच्छा रखने वाले प्रत्येक मनुष्यको झूठ, मिथ्यादोषारोपण, चुगली, और गुप्त बातोंको प्रकट कर ताने मारना—इन चारोंका सर्वथा त्यागही करना चाहिये। दूसरेके दोष चाहे जितने स्पष्ट हों, परन्तु उन्हें प्रकट करना सज्जनोंके लिये उचित नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार दोष होने पर भी जब उसे प्रकट करना अनुचित है, तब जो बिलकुल निर्दोष हो उसपर दोषारोपण करना कितना बड़ा अपराध है, यह आसानीसे समझा जा सकता है। जो ईर्षा किंवा द्वेषवश दूसरोंपर मिथ्या दोषारोपण करते हैं, उनकी न केवल संसारमें निन्दाही होती है, बल्कि जन्मजन्मान्तर तक उस पापका फल भोग करना पड़ता है। जो मनुष्य पाँच समिति और तीन गुप्तिको धारण करनेवाले ब्रह्मचारी साधुको कलङ्क लगाता है, वह पूर्व जन्ममें मुनिपर मिथ्या दोषारोपण करनेके अपराधके कारण सीताकी भाँति कलंकित गिना जाता है।

इस प्रकार उपदेश दे, सीताके पूर्व जन्मका वृत्तान्त सुनाते हुए गुरुदेवने कहा—इस भरतक्षेत्रमें मिणालिनी नामक एक नगरी है। वहाँ श्रीभूतिनामक एक पुरोहित रहता था। उस पुरोहितकी स्त्री सरस्वतीके उदरसे वेगवती नामक एक कन्या

उत्पन्न हुई थी। एकबार उस नगरीके निकट जंगलमें एक तपस्वी मुनि आकर काउसग्ग—ध्यान कर रहे थे। उन्हें वन्दन करनेके लिये उस नगरीसे प्रतिदिन लोगोंके झुण्डके झुण्ड आया करते थे। इस देशमें यह बात पहलेसे चली आ रही है कि ब्राह्मण और जैन यतियोंमें अनबन रहती है। इसलिये वह ब्राह्मणकन्या अकारणही उस मुनिसे ईर्षा करने लगी। उसने लोगोंसे कहना आरम्भ किया कि आपलोग जब इस कपटी और पाखण्डी मुनिकी सेवा करते हैं तब पवित्र और कर्मकाण्डी ब्राह्मणोंकी सेवा क्यों नहीं करते? इस पाखण्डीको तो मैंने अपनी आँखों एक स्त्रीके साथ क्रीड़ा करते देखा है। अब देखो यह कैसा बगुला भगत बनकर ध्यान धरने बैठा है? पापी मनुष्य भोले भाले लोगोंको ठगनेके लिये न जाने क्या क्या करते हैं!"

यद्यपि वेगवतीकी इन बातोंका धर्मनिष्ठ और श्रद्धावान जनों पर कोई प्रभाव न पड़ा और वे पूर्ववत् उस मुनिकी सेवा करते रहे, परन्तु इस दोषारोपणसे मुनिको बड़ा दुःख हुआ। वे अपने मनमें कहने लगे कि मैंने कुमार्गमें पैर भी नहीं रक्खा किन्तु फिर भी इस ब्राह्मण कन्याने मिथ्या दोषारोपणकर मुझे कलंक लगा दिया। इससे व्यक्तिगत रूपसे न मेरी कोई हानि हुई है, न होनेकी संभावनाही है, परन्तु द्वेषीजनोंको इससे जैन शासनकी निन्दा करनेका अवसर मिल सकता है। इसीलिये मेरा जी दुःखी हो रहा है। अतः अब जब तक मेरा यह कलङ्क

दूर न होगा तब तक मैं अन्न जल न ग्रहण करूँगा ।"

विशुद्धात्मन् तपस्वी यह कठिन प्रतिज्ञा कर काउसग्ग ध्यानमें लीन हो गये । उधर शासन देवीने वेगवतीकी यह आदत छुड़ाने और तपस्वीकी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके लिये उसके शरीरमें ऐसी तीव्र वेदना उत्पन्न की, कि वह उसके मारे मृतप्राय हो गयी । उसे इस प्रकार शिथिल कर, शासन देवीने आकाशवाणीकर कहा—इस वेगवतीने दुष्कर तपश्चर्या करनेवाले साधुपर मिथ्या दोषारोपण कर उन्हें कलंक लगाया है । परन्तु वास्तवमें वे मुनि बिलकुल निष्कलंक हैं, इसलिये इस वेगवती का प्राण लिये बिना मैं न रहूँगी !"

यह आकाशवाणी सुनतेही वेगवती सब लोगोंके सम्मुख अपना अपराध स्वीकार कर कहने लगी—हे दयालु मुनिवर ! मैं आपको वन्दन करती हूँ । हे गुरुदेव ! मैंने निःसन्देह बड़ा भारी अपराध किया है । मैंने व्यर्थही आपपर दोषारोपणकर आपको बदनाम किया है । मैंने अपनी अज्ञताके कारणही यह हीन आचरण किया है, अतः मुझे क्षमा कीजिये ।"

इस तरह बहुत विनय अनुनय करने और बारंबार शासन देवीके पैर पड़नेपर शासनदेवीने उसकी वेदना दूर कर दी । फिर वेगवती उस तपस्वीके पास जाकर उनसे क्षमा प्रार्थना करने लगी । उसने कहा—प्रभो ! मुझे इस महापापसे मुक्त करनेके लिये जैन दीक्षा दीजिये, जिससे मेरा कल्याण हो और इस जन्ममरणके बन्धनसे मुझे मुक्ति मिले ।"

वेगवतीकी यह नम्रतायुक्त प्रार्थना श्रवणकर क्षमासिन्धु मुनिराजने उसे दीक्षा दे प्रवचनके वचनोंका बोध दिया। वेगवतीने उस बोधके अनुसार दृढ़प्रतिज्ञ हो दुष्कर तपश्चर्या द्वारा अपने कर्मोंकी निन्दाकर आयुष्य पूर्ण होनेपर स्वर्गमें निवास किया।

इस प्रकार वेगवतीकी कथा समाप्त करते हुए गुरुदेवने सीताको सम्बोधित कर कहा—स्वर्गमें संयम तपके प्रभावसे दैवी सुखोंको उपभोग कर वही वेगवती च्यवित हो जनक राजाके यहाँ सीताके रूपमें उत्पन्न हुई है। हे सीतासती! यही तेरे पूर्वजन्मकी कथा है। तू अपने पापोंको सम्यक् प्रकारसे क्षय किये बिना ही मृत्युको प्राप्त हुई, इसी लिये उस पापके कारण इस जन्ममें तुझे मिथ्या कलंक लगा और लोगोंको तेरे सतीत्व पर सन्देह हुआ।"

ज्ञानी गुरुकी यह बातें सुन सब लोग अपनी-अपनी शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार व्रत पच्चक्खाणोंका ग्रहण कर अपने अपने घर गये। रामचन्द्र और सीताके हृदय पर इस धर्मोपदेशका विशेष प्रभाव पड़नेके कारण वे विशेष रूपसे धर्मकार्योंमें लीन रहने लगे।

कुछ दिनोंके बाद पूर्ण वैराग्य आने पर सती सीताने संसारके क्षणिक और नाशवन्त सुखोंका त्याग कर अचल सुख देनेवाले संयमको स्वीकार किया और शुद्धता पूर्वक परमात्माकी आज्ञानुसार उसका पालन कर आयुष्य पूर्ण होने पर अच्युत नामक बारहवें देवलोकमें इन्द्रका पद प्राप्त किया।

देखो ! तप संयम और शुद्ध भावनाके संयोगसे स्त्री वेदका अन्त कर पुरुष वेद भी प्राप्त किया जा सकता है। जिन वचन प्रतीति देरहे हैं, कि सीताका जीव इन्द्रलोकसे च्यवित हो फिर जन्म लेगा और क्रमशः मोक्ष प्राप्त करेगा।

प्रिय पाठक ! सती सीताकी इस कथासे हम लोगोंको अनेक शिक्षायें ग्रहण करनी चाहिये। जिस तरह सती सीताने अपने सतीत्वके प्रताप से दहकती हुई अग्निको शीतल जलके रूपमें परिणत कर अपनी पवित्रता प्रमाणित की और देव, दानव तथा मानवगणोंकी हर्ष ध्वनिके साथ महा सतीका पद प्राप्त किया, उसी तरह हमलोगोंको भी अपने जीवनमें हर वक्त सत्य पर डटे रहना चाहिये और यदि कोई मिथ्या दोषारोपण करे, तो उससे मुक्त होनेके लिये कठिन से कठिन परीक्षा देनेके लिये तैयार रहना चाहिये। जो ऐसा करते हैं, वही संसारमें सुयश की प्राप्ति कर अन्तमें मोक्षके अधिकारी होते हैं।



रत्नसार कुमार

आपने आजतक अनेक महापुरुषोंके चरित्र पढ़े-सुनें होंगे किन्तु कुमार रत्नसारके चरित्रके समान आदर्श और शिक्षाप्रद चरित्र कहीं नहीं पढ़ा सुना होगा। यह चरित्र अनोखे ढंगपर और अपूर्व घटनाओंसे घटितकर लिखा गया है, जिसकी आदर्श एवं आनन्ददायिनी घटनाओंको पढ़कर आपको अपूर्व आनन्द अनुभव होगा। हम दावेके साथ कहते हैं, कि इस पुस्तकको पढ़कर आपको अत्यन्त प्रसन्नता होगी।

ख़ासकर यह चरित्र व्रत पालन करनेके विषयपर लिखा गया है, नियम लेकर उसे किस प्रकार पालन करना चाहिये। इस बातकी शिक्षा इस चरित्रके पढ़नेसे ख़ूबही अच्छी तरह मालूम हो जाती है। कुमार रत्नसारने "परिग्रह प्रमाण व्रत" लेकर उसे किस प्रकार पूरा किया है। यह बात ख़ूबही पढ़ने और मनन करने योग्य है। एक प्रति मँगवाकर अवश्य पढ़िये। मूल्य केवल ||)

पता—पण्डित काशीनाथ जैन।

२०१ हरिसन रोड कलकत्ता।

बाल-भारत



प्रथम भाग

१--आदि-पर्व

इस पर्व में कौरव-पाण्डवों के वंश का आरम्भ से हाल दिया गया है; इस कारण इसको आदि-पर्व कहते हैं।

कौरव और पाण्डव

महाराजा भरत के वंश में शान्तनु नामक एक राजा हुए। उनके देवव्रत, चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य नामक तीन पुत्र थे। उनमें से देवव्रत ने अपने पिता से यह प्रण किया कि वे जन्मपर्यन्त न तो विवाह करेंगे और न राज की इच्छा करेंगे। ऐसी भीष्म अर्थात् विकट प्रतिज्ञा करने के कारण लोग उनको भीष्म कहने लगे। भीष्म जैसे सत्यवादी वैसे ही वीर, पराक्रमी,

सद्‌गुणी, न्यायी और ईश्वर-भक्त थे। हर एक को भीष्म के समान निष्कलङ्क और सच्चा होने का प्रयत्न करना चाहिए। चित्राङ्गद एक लड़ाई में मारे गये। तब राजा शान्तनु का सबसे छोटा लड़का विचित्रवीर्य, जो बाक़ी बचा था, गद्दी पर बैठा।

विचित्रवीर्य के तीन पुत्र हुए—धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर। भीष्म ने अपने भाई के इन तीनों लड़कों को, अस्त्र-शस्त्र-विद्या और राजनीति ख़ूब उत्तम रीति से सिखाकर, तैयार किया। जब तक ये बातें ठीक-ठीक ध्यान में न आ जावें कि "धर्मानुसार कैसा बर्ताव करना चाहिए; मिलते समय आपस में या छोटे-बड़ों से कैसा व्यवहार होना चाहिए, और विद्या पढ़कर उससे किस प्रकार काम लेना चाहिए" तब तक कोई काम बालकों के अधीन न करना चाहिए।

विचित्रवीर्य के तीनों पुत्र सब काम सीखकर होशियार हो गये। परन्तु बड़े पुत्र धृतराष्ट्र अन्धे होने के कारण राज्य करने के अयोग्य ठहरे; इसलिए मँझले लड़के पाण्डु गद्दी पर बैठाये गये। धृतराष्ट्र की रानी का नाम गान्धारी था। पाण्डु राजा के दो रानियाँ थीं, जिनका नाम कुन्ती और माद्री था।

कुन्ती के तीन पुत्र हुए—युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन; और माद्री के दो—नकुल और सहदेव। यही पाँचों भाई पाण्डव नाम से प्रसिद्ध हुए। महाराजा पाण्डु बहुत ही जल्द मर गये। माद्री उनके साथ सती हो गई। पाण्डु के पीछे धृतराष्ट्र गद्दी पर बैठे।

धृतराष्ट्र की रानी गान्धारी के सौ पुत्र हुए। उनमें दुर्योधन सबसे बड़ा था। वह शूर, वीर, पराक्रमी, परन्तु स्वार्थी

था। उसे सदैव यह इच्छा रहा करती थी कि मैं अपने आप महाराज होऊँ और सब लोग मेरे कहने पर चलें। वह कहा करता था कि मेरे पिता यद्यपि तीनों भाइयों में सबसे बड़े हैं फिर भी उनके मँझले भाई पाण्डु को गद्दी मिली, और अब उनके बाद मेरे चचेरे भाई पाण्डवों को गद्दी मिलेगी, यह अच्छा नहीं है। ऐसे बुरे-बुरे विचार उसके मन में बालकपन से ही आने लगे थे।

कौरव-पाण्डवों का बालकपन

धृतराष्ट्र के दुर्योधन, दुःशासन इत्यादि सौ पुत्र और पाण्डु के युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव ये पाँच पुत्र बाल अवस्था से ही साथ-साथ एक ही स्थान में विद्या सीखे और खेले-कूदे। इन सबों ने पहले-पहल कृपाचार्य नामक गुरु से अस्त्र-शस्त्र-विद्या सीखी। पीछे द्रोणाचार्य से। इन कौरव-पाण्डवों में युधिष्ठिर उमर में सबसे बड़े थे और भीम बल में। भीम से सब डरते थे। दुर्योधन और उसके भाई, भीम को देख नहीं सकते थे। अर्जुन बुद्धि और अस्त्र-शस्त्र-विद्या में सबसे निपुण थे। उनके ऊपर गुरु महाराज की बड़ी कृपा रहा करती थी और वे भी उनके आज्ञानुसार चलते थे। यह भी दुर्योधन को अच्छा नहीं लगता था। नकुल-सहदेव दोनों ही युद्ध-विद्या में कुशल और बड़े भाई के आज्ञाकारी थे। इन सब कारणों से दुर्योधन आदि कौरव मन में इनसे सदैव ईर्ष्या रखते थे, परन्तु ये सब मिलकर पाण्डवों से विद्या, बुद्धि और बल आदि किसी में भी अधिक न थे।

पाण्डवों के एक और भाई था, उसका नाम कर्ण था। पैदा होते ही उसकी माता ने उसे नदी में बहा दिया था;



भीम का पेड़ हिलाकर कौरवों को गिराना

परन्तु आगे वह अधिरथ नामक एक सारथि के हाथ पड़ा। उसने उसका पालन-पोषण किया। दैवयोग से कर्ण ने भी

द्रोणाचार्य के पास अस्त्र-शस्त्र-विद्या सीखी थी। यद्यपि ये पाण्डवों के भाई थे; तथापि वे उनको शत्रु समझकर दुर्योधन के साथ जा मिले थे; और दुर्योधन ने भी उनको अङ्ग देश का राज्य देकर अपना सहायक बना लिया था।

ऊपर कहा गया है कि भीम सबसे अधिक बलवान् था। यदि किसी ने पीछे से भी उसके विरुद्ध काम किया तो उसे तुरन्त उसने दण्ड दिया। दस-दस आदमियों को एक साथ पकड़-कर वह गिरा देता था। यदि लोग पेड़ पर चढ़ जाते तो वह नीचे से वृक्ष को पकड़कर हिला देता जिसमें सब पेड़ से नीचे गिर पड़ते। यह लीला बहुधा कौरवों के साथ होती थी, क्योंकि भीम से वे शत्रुता रखते थे।

एक बार दुर्योधन ने उसको मारने के लिए भोजन में विष मिलाकर धोखे से खिला दिया। भीम विष के कारण बे-सुध हो गये। तब दुर्योधन ने उठवाकर उन्हें नदी में फेंकवा दिया। जब वे नदी में बहे जा रहे थे, तब राह में एक साँप ने उनको आकर काट खाया। उसके काटने से इनका सारा विष उतर गया। जब इनको सुध हुई तब आठ दिन के बाद ये घर लौट आये और सारा हाल अपने भाइयों से इन्होंने बयान किया। युधिष्ठिर और विदुर के कहने पर भीम ने दुर्योधन को इस बार क्षमा कर दिया।

लाख के घर का जलाया जाना

युधिष्ठिर सब भाइयों में बड़े थे, इस कारण धृतराष्ट्र ने इनको युवराज बनाया; अर्थात् ऐसा निश्चय किया कि आगे इन्हीं को राज-पाट मिले।

सद्गुणों होने के कारण युधिष्ठिर सारी प्रजा को प्रिय थे। यह देखकर दुर्योधन को बहुत ही बुरा मालूम हुआ। इसलिए उसने गान्धार देश के राजा अपने मामा शकुनि और कर्ण से मिलकर यह सलाह की कि पाण्डवों को दो-चार दिन के लिए कहीं बाहर भेजने को धृतराष्ट्र से कहना, और वहाँ छल-द्वारा उनका नाश करना चाहिए।

उसी समय वारणावत नामक नगर में एक बहुत बड़ा मेला होनेवाला था। उसे देखने के लिए पाण्डवों की भी इच्छा हुई। विचारानुसार वहाँ पाण्डवों का जाना निश्चय हुआ। उन्हें धोखा देने का यह अच्छा समय कौरवों के हाथ आया। लाख, गन्धक इत्यादि जलनेवाले पदार्थों से पाण्डवों के रहने के लिए एक घर बनाने की आज्ञा देकर पुरोचन नामक एक उत्तम शिल्पकार को आगे से दुर्योधन ने उस मेले में भेजा। ऐसा करने में उसका यह अभिप्राय था कि पाण्डवों के रहने के एक दिन बाद ही उस घर में आग लगा दी जावे। घर बहुत ही जल्द बनकर मेले से पहले तैयार हो गया। इधर विदुर ने इस दुष्टता की कुछ खबर पाकर युधिष्ठिर को युक्ति के साथ कौरवों के कपट की सूचना दी। इस सूचना को ध्यान में रखकर नित्य अपने भाइयों को साथ लेकर युधिष्ठिर ने आखेट को जाने का नियम किया। जङ्गल में रोज़ आने-जाने से उनको वहाँ का बहुत सा हाल अनायास ही मिल गया। उन्होंने लाख के मकान से वन तक सुरङ्ग खोदकर एक रास्ता भी तैयार कर लिया। एक रात को जब पाण्डव सोये हुए थे तब उस घर में आग लगी। इस घटना को देख युधिष्ठिर अपने चारों भाई और माता कुन्ती को साथ लेकर सुरङ्ग की राह से वन में निकल गये। उस घर में रात को एक स्त्री अपने पाँच पुत्रों-सहित आकर ठहरी थी। वह औरत और उसके लड़के सब



लाख के घर का जलाना

उस घर में जलकर भस्म हो गये। उन्हीं को देखकर कौरवों ने समझा कि कुन्ती-समेत पाँचों पाण्डव आग में जलकर राख हो गये। इसलिए कौरव मन में बड़े प्रसन्न हुए, परन्तु ऊपर दिखाने के लिए उन्होंने बड़ा शोक प्रकट किया। विदुर को सच्चा हाल मालूम था, इस कारण उनको कुछ भी चिन्ता न हुई।

हिडिम्ब राक्षस का वध

पाण्डव अग्नि से अपना बचाव करके वन में बहुत दूर निकल गये। इस कारण थककर एक जगह वे सो गये। केवल भीम सबकी रक्षा के लिए अकेले जागते रहे। इसी समय हिडिम्ब नामक राक्षस वहाँ आया। उससे युद्ध करके भीम ने उसको मार डाला, और अपने भाई और माता की अनुमति से उसकी बहिन हिडिम्बा से उन्होंने विवाह कर लिया, जिससे घटोत्कच नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह घटोत्कच बाप के समान बड़ा शूरवीर निकला।

बकासुर का वध

पाण्डवों को मत्स्य, त्रिगर्त और पाञ्चाल देशों के वनों में घूमते-घामते श्रीवेदव्यासजी के दर्शन हुए। व्यासजी के कथनानुसार वे चक्रपुर नामक नगर में एक ब्राह्मण के घर जा ठहरे,

और भिक्षा माँगकर अपना निर्वाह करने लगे। इसी नगर में बकासुर नामक एक राक्षस रहता था। वह नित्यप्रति एक मनुष्य का भोजन करता था। कुछ दिन बाद जिस ब्राह्मण के घर ये ठहरे थे, उसी के यहाँ एक मनुष्य की पारी आई। तब ब्राह्मण के घर इस बात का बखेड़ा होने लगा कि कौन मरने को जावे? यह बात सुनकर भीम ने कहा कि आज मैं जाऊँगा; तुम आपस में एक दूसरे से झगड़ा मत करो। ऐसा कहकर भीम ने राक्षस के पास जाकर उसे मार गिराया। यह जान लोगों को बड़ा आनन्द हुआ।

द्रौपदी-स्वयंवर

पाञ्चाल देश के राजा की कन्या द्रौपदी के स्वयंवर का समाचार श्रीवेदव्यासजी ने पाण्डवों से कहा था; और वहाँ जाने की आज्ञा दी थी। पाण्डव, उनकी आज्ञा मान और कुन्ती को अपने साथ ले, वहाँ जाने के लिए घर से बाहर निकले। राह में अङ्गारपर्ण नामक गन्धर्व से अर्जुन का युद्ध हुआ। अर्जुन ने उसको हरा दिया; परन्तु मारा नहीं। इसलिए गन्धर्व ने जीवदान पाकर अर्जुन को प्रसन्नतापूर्वक दिव्य अस्त्र दे धौम्य ऋषि के आश्रम का रास्ता बता दिया। पाण्डव धौम्य ऋषि को अपना गुरु मान, उनकी सहायता से पाञ्चाल नगर में स्वयंवर देखने के लिए चले। उस स्वयंवर में दुर्योधन और दूसरे कौरव तथा शकुनि, जयद्रथ, शिशुपाल और जरासन्ध इत्यादि महापराक्रमी राजा लोग भी आये थे।



द्रौपदी का स्वयंवर

इसी प्रकार द्वारिका से बलराम और श्रीकृष्ण भी यादवों के साथ आये थे। धौम्य ऋषि भी पाण्डवों को ब्राह्मण के से वस्त्र पहनाकर स्वयंवर में अपने साथ ले गये। द्रौपदी के पिता का यह प्रण था कि स्वयंवर की रङ्गशाला में ऊपर टँगी हुई मछली को बाण से जो पहले ही निशाने में मारकर गिरा देगा उसी के गले में द्रौपदी माला डालेगी। शिशुपाल, दुर्योधन, शल्य इत्यादि बहुत से राजाओं ने निशाना लगाने का प्रयत्न किया; परन्तु सब निष्फल। कर्ण ने भी अपने भाग्य की वृथा ही परीक्षा की। जब सारे राजा लोग प्रयत्न करके हार गये तब अर्जुन ने आगे बढ़कर एक क्षण में उस लक्ष्य को, जो नियत किया गया था, बींध दिया। यह देख, सब राजाओं में खलबली मच गई, परन्तु उनसे कुछ करते न बन पड़ा और द्रौपदी का स्वयंवर निर्विघ्न समाप्त हुआ।

पाण्डवों का हस्तिनापुर लौट आना

पाण्डव अग्नि में जलकर मरे नहीं, जीवित हैं, यह समाचार जब दुर्योधन, कर्ण और शकुनि को मालूम हुआ तब वे बड़े लज्जित और चिन्तित हुए; परन्तु धृतराष्ट्र ने इस सम्बन्ध में भीष्म, द्रोण और विदुर, इन तीनों से सलाह करके पाण्डवों को आधा राज्य देकर, झगड़ा मिटाने का निश्चय किया; और विदुर को रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सेना देकर पाण्डवों को पाञ्चाल देश से लाने के लिए भेजा।

कुन्ती और द्रौपदी-समेत पाण्डवों को विदुरजी सत्कार-पूर्वक वहाँ से ले आये। उन्हें देखकर लोगों को बड़ा आनन्द हुआ। निश्चय के अनुसार धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को आधा राज्य बाँट दिया। राज्य पाकर खाण्डवप्रस्थ में उन्होंने अपनी राजधानी स्थापित की।

प्रतिज्ञा पालने के लिए अर्जुन का तीर्थयात्रा को जाना

अर्जुन ने स्वयंवर में द्रौपदी को जीत तो लिया परन्तु अब यह विचार उपस्थित हुआ कि वह पाँचों भाइयों में से किसकी स्त्री हो। दैव-योग से वहाँ नारद मुनि भी आये थे। उनके सामने यह ठीक हुआ कि द्रौपदी पाँचों भाइयों की स्त्री समझी जावे। जब वह एक के पास हो तब दूसरा भाई उसके पास न जावे। अगर कोई भूल से जाय तो उसे बारह मास पर्यन्त देशदेशान्तरों में तीर्थ-यात्रा के हेतु जाने का दण्ड दिया जावे। एक दिन द्रौपदी और युधिष्ठिर अपने सोने के कमरे में थे कि उसी समय एक ब्राह्मण की गाय को बधिक लिये हुए भागा जाता था। अर्जुन यह देख उसे बचाने के लिए शस्त्र लेने को उसी घर में गये जहाँ द्रौपदी और युधिष्ठिर बैठे थे। अर्जुन ने वहाँ से अस्त्र लाकर ब्राह्मण की गाय छुड़ाई; परन्तु नियम तोड़ने के कारण प्रण के अनुसार बारह मास तीर्थयात्रा करने को उन्हें घर से निकल जाना पड़ा। निकलकर

अनेक देशों और तीर्थों में घूमते-घामते वे गङ्गाद्वार के पास पहुँचे और वहाँ नागराज की कन्या उलूपी से और फिर मणिपुर में राज-कन्या चित्राङ्गदा से उन्होंने विवाह किया। उनके चित्राङ्गदा रानी से बभ्रुवाहन नामक पुत्र हुआ। आगे प्रभास तीर्थ में उनके परमप्रिय मित्र श्रीकृष्ण से उनकी भेंट हुई। भेंट होने पर वे दोनों द्वारका को गये। श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम की इच्छा थी कि उनकी बहन सुभद्रा का विवाह दुर्योधन से हो परन्तु सुभद्रा के मन में अर्जुन से विवाह करने की उत्कण्ठा थी। श्रीकृष्ण ने बड़ी युक्ति के साथ सुभद्रा का विवाह अर्जुन के साथ करा दिया।

बारह मास पूरे होने पर, पुष्कर इत्यादि अनेक तीर्थों में विचरते हुए नियत तिथि पर सुभद्रा-सहित अर्जुन खाण्डवप्रस्थ को लौट आये। सुभद्रा के पेट से अभिमन्यु नामक वीर बालक का जन्म हुआ और द्रौपदी के भी पाँचों पाण्डवों से एक एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

खाण्डव-दाह

एक दिन श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों बैठे हुए बातचीत कर रहे थे कि अग्निदेव ब्राह्मण का स्वरूप धर के इनके पास आये और खाण्डव वन को खाने के लिए माँगा। इन्होंने उनके इच्छानुसार इन्हें खाण्डव वन दिया। अग्नि ने प्रसन्न होकर

गाण्डीव धनुष और कपिध्वज नामक रथ अर्जुन को और सुदर्शन नामक चक्र श्रीकृष्ण को अर्पण किया। अग्नि ने खांडव वन जलाकर भस्म कर दिया। वन के भस्म हो जाने पर वहाँ नगर बसाने योग्य स्थान निकल आया।



२—सभा-पर्व

इस पर्व में, जो उस समय बड़ी-बड़ी सभायें हुईं उनका हाल है; इस कारण इसको सभा-पर्व कहते हैं।

अर्जुन ने खाण्डव-दाह के समय 'मय' नामक राक्षस की जान बचाई थी; उस उपकार का बदला चुकाने के लिए मय ने अर्जुन से कहा कि जो आप कहें, मैं करने को तैयार हूँ। तब अर्जुन ने श्रीकृष्ण की ओर हाथ उठाया, क्योंकि श्रीकृष्ण को मालूम था कि यह बहुत ही होशियार शिल्पकार है। उन्होंने मय को युधिष्ठिर के सामने एक उत्तम राजमहल और सभाभवन बनाने की आज्ञा दी। मय ने आज्ञा का स्वीकार करके कैलास पर्वत के उत्तर में जाकर वहाँ से नाना प्रकार के रत्न और शत्रु-नाश करने को एक गदा और देवदत्त नामक एक शंख लाकर अर्जुन को दिया। रत्नों से तो राजमहल और सभाभवन सजाया गया; गदा भीम के काम आई और शंख को अर्जुन अपने काम में लाये।

राजसूय यज्ञ

राज-सभा का मन्दिर बन जाने पर एक दिन नारद मुनि पाण्डवों का समाचार लेने को आये, और युधिष्ठिर को राज-नीति-सम्बन्धी उन्होंने अनेक उपदेश किये। अन्त में नारद ने राजसूय यज्ञ करने की सम्मति दी। युधिष्ठिर ने इस विषय में अपने भाइयों और श्रीकृष्ण से सलाह ली। सबने यज्ञ करने की सलाह दी।

यज्ञ करने से पहले क्या-क्या काम करने चाहिएँ, यह श्रीकृष्ण से पूछा गया। श्रीकृष्ण ने कहा कि प्रथम मगध-देश के राजा जरासन्ध को, जिसने बहुत से राजाओं को क़ैद कर रक्खा है, युद्ध में परास्त करके उन सब राजाओं का छुटकारा करना चाहिए। इस काम के लिए स्वयं श्रीकृष्णजी, भीम और अर्जुन को साथ लेकर जरासन्ध की राजधानी में वेष बदलकर पहुँचे और जरासन्ध को मल्ल-युद्ध करने के लिए उन्होंने बुलाया।

मल्ल-युद्ध में भीम के हाथ जरासन्ध मारा गया; तब श्रीकृष्ण ने बन्दी राजाओं को कारागृह से मुक्त किया; और जरासन्ध की गद्दी पर उसके लड़के सहदेव को बिठाकर भीम, अर्जुन-सहित अपनी राजधानी खाण्डवप्रस्थ को लौट आये। लौट आने पर राजसूय यज्ञ के लिए सामग्री लाने और अन्य-अन्य देशान्तरों के राजाओं को विजय करने के लिए पाण्डव निकले।

उत्तर को अर्जुन, पश्चिम को भीम, दक्षिण को सहदेव और पूर्व को नकुल—इस प्रकार चारों दिशाओं के दिग्पालों को जीतने और सामग्री इकट्ठी करने को चारों भाई चले। युधिष्ठिर राजधानी में राज्य करने को रह गये। कुछ दिन

बाद चारों पाण्डव चारों ओर के राजाओं को जीतकर बहुत कुछ सामग्री साथ ले वापस आये।

अब राजसूय यज्ञ करने का विचार पक्का हुआ। पृथ्वी के समस्त राजाओं को निमन्त्रण भेजा गया। नकुल ने स्वयं जाकर भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, कृपाचार्य, विदुर और दुर्योधन वग़ैरह कौरवों को निमन्त्रण दिया। शकुनि, कर्ण, शल्य, जयद्रथ, यज्ञसेन, धृष्ट-द्युम्न, विराट, सिंहलेश्वर, चेदिराज, शिशुपाल और द्रुपद इत्यादि राजाओं को सत्कारपूर्वक युधिष्ठिर ने बुलवाया। दुर्योधन को ख़ज़ानची, दुःशासन को भोजन-व्यवस्थापक और अश्वत्थामा को ब्राह्मण-सत्कार करने का काम मिला। इसी प्रकार किसी को कुछ किसी को कुछ काम करने का अधिकार सौंप दिया गया, और सबके ऊपर भीष्म और द्रोण संरक्षक नियत हुए।

यज्ञ का काम निर्विघ्न समाप्त हो गया, और पीछे सम्मानार्थ टीका करने की बारी आई। इसमें लोगों का मत-भेद हो गया। भीष्म का यह विचार हुआ कि प्रथम द्वारकाधीश श्रीकृष्णजी के टीका किया जावे। इसमें और सब राजा लोग तो सहमत हो गये, परन्तु चेदिराज शिशुपाल ने ऐसा होना स्वीकार नहीं किया। शिशुपाल ने यह समझा कि सभा में मेरा अपमान होता है; और ऐसा विचारकर भीष्म, युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण को वह गालियाँ देने लगा। बहुतों ने इसे समझाने का प्रयत्न किया; परन्तु सब निष्फल हुआ। शिशुपाल श्रीकृष्ण का नाते में भाई लगता था। इससे पहले भी उसने श्रीकृष्णजी से सौ बार हठ किया था। परन्तु श्रीकृष्ण ने उसे सौ बार क्षमा दी थी, क्योंकि उसकी माता को इन्होंने वचन दिया था कि हम तुम्हारे पुत्र के सौ अपराध क्षमा करेंगे। सौ अपराधों तक श्रीकृष्ण क्षमा करते रहे, परन्तु तो भी उसे ज्ञान न हुआ। यह विचार और अपने प्रण से अपने को मुक्त

जान श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र से क्षण-मात्र में शिशुपाल का शिर धड़ से अलग कर दिया। और फिर श्रीकृष्ण ने शिशुपाल के लड़के को गद्दी पर बिठाया। यज्ञ समाप्त हुआ और निमन्त्रित राजा लोग प्रसन्न-चित्त अपने-अपने घर को लौट गये। युधिष्ठिर सार्वभौम राजा होकर धर्मानुसार अपना राज्य करने लगे।

जुआ खेलना

राजसूय यज्ञ में दुर्योधन खाण्डवप्रस्थ को आये थे। वहाँ मय राक्षस का बनाया सभा-भवन देखकर उनको पाण्डवों के ऊपर ईर्ष्या उत्पन्न हुई, और वे जहाँ स्फटिक-शिला का विचार करके बैठने लगे वहीं पर स्वच्छ जल से भरे कुण्ड में गिर पड़े और उनके सारे कपड़े भीग गये, और जहाँ पानी दिखाई पड़ा वहाँ स्फटिक-शिला पर कपड़े ऊँचे उठाकर नाँघने लगे तब सब पाण्डव खूब हँसे। इस प्रकार दृष्टि-भ्रम होकर दुर्योधन को कई स्थानों पर लज्जित होना पड़ा। यह देख भीम ने कहा कि अन्धे के अन्धा ही हुआ। यह बात दुर्योधन को बहुत बुरी लगी। उसने अपने मन में यह निश्चय किया कि इसका बदला मैं अवश्य लूँगा। परन्तु सरल रीति से पाण्डवों को विजय करना सहल नहीं है, कपट से ही इनको विजय करना होगा। इस काम में उसे अपने मामा शकुनि से बड़ी सहायता मिली। शकुनि जुआ खेलने में बड़ा निपुण था। उसने सलाह दी कि युधिष्ठिर सत्यवादी और सरल-स्वभाव क्षत्रिय होने के कारण,

यदि उसे जुआ खेलने को बुलावेंगे तो, अवश्य आवेगा। तब उसे जुआ में हराकर इस अपमान का बदला लेंगे। यह बात दुर्योधन के मन भा गई। दुर्योधन ने महाराज धृतराष्ट्र से पाण्डवों के साथ जुआ खेलने को आज्ञा माँगी। धृतराष्ट्र ने पहले तो बहुत समझाया; परन्तु उसने एक न मानी। अन्त में धृतराष्ट्र ने कहा—अच्छा विदुर को बुलाओ, जैसी वह सलाह दें करो। विदुर को लेने के लिए दूत भेजा गया। पीछे से दुर्योधन ने धृतराष्ट्र से कहा कि यदि आप हमको जुआ खेलने की आज्ञा न देंगे तो हम विष खाकर मर जायँगे। धृतराष्ट्र ने लड़के का हठ देखकर विदुर के आने पर उन्हें युधिष्ठिर के पास जुआ खेलने के लिए, बुलाने को भेजा। विदुर ने बुद्धिमानी के साथ दुर्योधन को बहुत कुछ समझाया, और कई एक पुरानी कथायें कहकर उनके उदाहरण भी दिये, परन्तु दुर्योधन का मन जुआ खेलने से न हटा। तब निरुपाय होकर विदुर युधिष्ठिर के पास गये और जाकर कहा कि महाराज धृतराष्ट्र ने आपको जुआ खेलने के लिए बुलाया है। क्षत्रियों को शत्रु की ओर से बुलावा आने पर, न जाना अच्छा नहीं, इसी कारण युधिष्ठिर अपनी इच्छा के विरुद्ध जुआ खेलने को सभा में गये।

सभा में भीष्म, द्रोण, कर्ण इत्यादि कौरव उपस्थित थे। दुर्योधन के बदले शकुनि पाँसे फेंकता था। हर एक दाँव पर युधिष्ठिर हारते ही गये। वे अपना धन, धान्य, राज्य, दास, दासी, भाई और अपने आपको भी हार गये। जब कुछ भी पास दाँव पर लगाने को न रहा तब अन्त में उन्होंने द्रौपदी को दाँव पर लगाया। यह दाँव भी शकुनि ने जीता। तब दुर्योधन के छोटे भाई दुःशासन ने द्रौपदी को सभा में लाने के लिए आदमी भेजा, परन्तु वह नहीं आई। तब दुःशासन क्रोधित होकर स्वयं उसके केश पकड़कर सभा में खींच लाया।

उस समय द्रौपदी की देह पर एक ही वस्त्र था। दुःशासन ने उसे भी उतारकर नङ्गी करना चाहा। तब द्रौपदी ने अपनी लज्जा रखने को ईश्वर का स्मरण किया और भरी सभा में रो-रोकर वह दुःख प्रकाशित करने लगी। द्रौपदी का करुण-स्वर सुनकर पाण्डवों को मरणान्त दुःख हुआ, परन्तु करें क्या ? वे सब प्रतिज्ञा से बँधे हुए थे। इस कारण ये कुछ भी नहीं बोल सके। राजसभा के बीच यह भयङ्कर दृश्य देख राज्य में महा-प्रलय उपस्थित होगा, ऐसा विचारशील लोगों को अनुमान हुआ। दुर्योधन की माता गान्धारी ने यह अत्याचार देखकर महाराज धृतराष्ट्र को समझाया और द्रौपदी को तीन वर दिलाये। पहले वर में द्रोपदी ने युधिष्ठिर का छुटकारा होना माँगा; और दूसरे वर में बाक़ी चारों पति के और अपने छुटकारे के लिए कहा। अन्तिम वर जो बाक़ी रहा उसे भी माँगने को धृतराष्ट्र ने जब कहा तब द्रोपदी ने उत्तर दिया कि महाराज, पाण्डव हर प्रकार बलवान् और धार्मिक हैं। वे सब कुछ करने में समर्थ हैं। इस कारण तीसरे वर की मुझे आवश्य-कता नहीं। इस प्रकार जब पाण्डवों का छुटकारा हो गया तब वे अपनी राजधानी को लौटने लगे। यह देख दुर्योधन, कर्ण और शकुनि ने मिलकर फिर महाराज धृतराष्ट्र से जाकर विनती की कि पाण्डवों के साथ एक दाँव और खेलने की आज्ञा दीजिए। धृतराष्ट्र ने पूछा कि अब की बार तुम क्या दाँव बदोगे ? दुर्यो-धन ने उत्तर दिया, पृथ्वीनाथ ! अब की बार जो हारे वह बारह वर्ष वन में रहे और एक वर्ष छिपकर रहे। यदि छिपे हुए वर्ष में भेद खुल जाय तो फिर बारह वर्ष वन में रहना पड़े। यह सुनकर धृतराष्ट्र ने खेलने की आज्ञा दी और फिर खेल आरम्भ हुआ। अभाग्यवश पाण्डवों की फिर भी हार हुई; और उन्होंने बारह वर्ष वन में रहना स्वीकार किया।

अपनी माता कुन्ती को विदुर के घर छोड़ और अपने सारे आभूषण और वस्त्र उतार द्रौपदी को साथ ले उन्होंने वन की ओर प्रस्थान किया।

बीच सभा में द्रौपदी को पकड़ लाकर जो कुवाच्य दुःशासन ने कहे उन्हें सुनकर भीम ने प्रतिज्ञा की कि यदि दुःशासन को मार उसका रक्तपान न करूँ और अपनी गदा से दुर्योधन की जाँघ चूर-चूर न कर डालूँ तो मेरा नाम भीम नहीं है। भीम का प्रण सुनकर अर्जुन ने कर्ण के, सहदेव ने शकुनि के और नकुल ने कई दूसरे कौरवों के नाश की प्रतिज्ञा की।

३—वन-पर्व

पाण्डवों ने बारह वर्ष वन में किस प्रकार निर्वाह किया,
इसकी सारी कथा इस पर्व में है; इस कारण
इसको वन-पर्व कहते हैं।

जब पाण्डव वन में जाने को निकले तब प्रजा को बहुत ही दुःख हुआ और सब प्रजा पाण्डवों के साथ वन में जाने को तैयार हुई। युधिष्ठिर ने बहुत कुछ समझाया-बुझाया और अपने-अपने घर लौट जाने को कहा, तो भी कई एक ब्राह्मण नहीं लौटे। उन्होंने कहा—"जहाँ आप तहाँ हम" यों कह साथ ही साथ वे वन को गये। युधिष्ठिर ने मन में विचारा कि यहाँ वन में हमी को खाने-पीने का सङ्कट रहेगा, इन ब्राह्मणों की रक्षा हमसे कैसे होगी? यह विचार, घोर तप करके उन्होंने सूर्य्य को प्रसन्न किया और उनसे यह वर माँगा कि द्रौपदी के भोजन करने पर्यन्त जितने अतिथि आ जावें उन सबको भोजन पाकशाला से बराबर मिलता रहे। सूर्य्य ने 'तथास्तु' कहकर प्रसन्नतापूर्वक उन्हें वर दिया। पाण्डव पहले पहल काम्यक वन में जाकर रहे।

पाण्डवों के वन में जाने के पश्चात् उनके सम्बन्ध में धृतराष्ट्र और विदुर से कुछ वार्तालाप हुआ। दुर्योधन दुष्ट और कपटी है, उसके आग्रह से आपने पाण्डवों को वनवास दिया,

यह बहुत बड़ा अन्याय हुआ। यही अन्याय आपके वंश-नाश का कारण होगा। इस प्रकार विदुर ने महाराज को बुरा-भला कहा जिसके कारण विदुर और धृतराष्ट्र में कुछ अनबन हो गई और विदुर कौरवों को छोड़ काम्यक वन में पाण्डवों के समीप जाकर रहने लगे। पीछे धृतराष्ट्र को पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने विदुर को वापस बुला लिया। कर्ण ने दुर्योधन को ऐसा उपदेश दिया कि पाण्डवों के पीछे-पीछे वन में जाकर किसी प्रकार छल-बल से उनका नाश करना चाहिए। परन्तु व्यास और मैत्रेय आदि विचारवान् और अनुभवशील पुरुषों ने कहा कि ऐसा अनुचित व्यवहार करने में उलटा कौरवों का ही नाश होगा। परन्तु इस पर किसी ने विचार न किया। तब मैत्रेय ने दुर्योधन को शाप दिया कि भीम अपनी गदा से तुम्हारा मान-मर्दन करेगा।

भोज, अन्धक और वृष्णि आदि वंशों के राजाओं ने जब यह सुना कि पाण्डव जुए में सर्वस्व हार कर वन को गये हैं, तब अति दुःखित हो वे उनसे मिलने को काम्यक वन में पहुँचे और वहाँ ही श्रीकृष्ण ने जाकर द्रौपदी से भेंट की, उनको बहुत कुछ समझाया, और कहा कि शान्ति-पूर्वक दुःख भोगने के पीछे, सुख की पारी आती है। द्रौपदी ने राजसभा का स्मरण करके कहा कि आप उस समय वहाँ क्यों नहीं आये? श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया कि मैं उस समय वहाँ आनेवाला ही था, परन्तु मैंने आना ठीक नहीं समझा, क्योंकि मेरे आने से कौरवों के पाप का घड़ा शीघ्र न भरकर उनका नाश देर में होता, यही सोचकर मैं उस समय नहीं आया; अब तुम उसके लिए दुःख मत करो। इस प्रकार द्रौपदी का समाधान करके श्रीकृष्ण सुभद्रा और अभिमन्यु को साथ लेकर द्वारका को लौट गये। अन्य-अन्य राजा लोग

भी पाण्डवों से भेंट करके अपनी-अपनी राजधानी को वापस गये।

अस्त्र लेने के लिए अर्जुन का स्वर्ग में जाना

कौरवों की सभा में विडम्बना होने के कारण द्रौपदी को अति दुःख हुआ। एक दिन जब सन्ध्या समय द्रौपदी और युधिष्ठिर बैठे हुए बातें कर रहे थे तब द्रौपदी ने कहा—महाराज, इस विडम्बना का बदला कौरवों से अवश्य लेना चाहिए। युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि यदि किसी ने अपने को गाली दी या कुछ अपना अपकार किया, तो क्या उसके बदले में हमको भी वैसा ही करना चाहिए? यदि पुरुष ने स्त्री को, अथवा पिता ने पुत्र को दण्ड दिया तो क्या वह भी उसके बदले में वैसा ही करे? यदि ऐसा हो तो संसार का काम कैसे चले? क्षमा बुद्धिमानों का भूषण है, जिसके हृदय में क्षमा है उसके हृदय में ईश्वर सदैव वास करते हैं। इस कथन से द्रौपदी का समाधान न हुआ। उसने कहा, क्षमा अवश्य बड़ा गुण है, परन्तु परमेश्वर क्या इतना अन्यायी है कि गुणवान् पुरुषों को ही अधिक दुःख देता है और दुष्ट लोगों को सुखी करता है। इस पर युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि परमेश्वर-विषयक ऐसा बुरा विचार कभी मन में न आना चाहिए। हम लोग अल्प-बुद्धि होने के कारण ईश्वर की ईश्वरता को सहज ही में नहीं समझ सकते हैं। क्षमा करना अपना धर्म है। अपना धर्म अपने को पालन करना चाहिए। उसके बदले में अपने को पुण्य हो या न हो, हमको अपना कर्त्तव्य नहीं छोड़ना

चाहिए। युधिष्ठिर के इतना समझाने पर भी जब द्रौपदी का बदला लेने का आग्रह नहीं मिटा तब भीम ने द्रौपदी के पक्ष का समर्थन किया। दो पक्षों को एक ओर देख युधिष्ठिर को विचार करना पड़ा। तब तक व्यासजी वहाँ आये और उन्होंने युधिष्ठिर को उपदेश किया कि कौरवों का नाश करके पृथ्वी का भार हलका करना बहुत बड़ा पुण्य है। परन्तु यह बड़ा कठिन काम है। यदि अर्जुन को देवताओं के अस्त्र मिलें तो उसके द्वारा यह काम हो सकता है। उन्होंने यह भी कहा कि देवताओं ने वृत्रासुर के भय से सब अस्त्र-शस्त्र इन्द्र के पास रक्खे हैं। इस कारण इन्द्र के पास से उनको तपस्या से प्रसन्न करके उन्हें लाना चाहिए। इस प्रकार पाण्डवों को समझाकर और अर्जुन को इन्द्र-लोक में जाने की सलाह देकर व्यासजी वहाँ से विदा हुए। अर्जुन ने हिमालय के ऊपर इन्द्रकील नामक पर्वत पर जाकर तपस्या आरम्भ की। एक दिन तपस्वी का वेष रखकर इन्द्र वहाँ आया, और अर्जुन से पूछा कि तुमको क्या चाहिए? अर्जुन ने कहा—भगवन्! मैं कुछ देवत्व अथवा स्वर्ग-सुख माँगने नहीं आया हूँ। जिन दुष्टों के कारण मुझे वन में रहना पड़ा है, उनसे मुझे बदला लेना है। यदि मेरे बाहुबल से यह न हुआ तो मेरे नाम पर कलङ्क का टीका सदा लगा रहेगा। इस कारण मैं देवताओं के दिव्य अस्त्र चाहता हूँ जिनके सहारे मैं शत्रुओं से बदला लूँ। यह सुनकर इन्द्र ने शङ्कर की तपस्या करने को कहा। तब अर्जुन हिमालय पहाड़ के ऊपर जाकर शङ्कर की तपस्या करने लगे। एक दिन एक वराह राह में चला जाता था, उसे देखकर अर्जुन ने उस पर बाण छोड़ा। उसी समय शङ्कर ने किरात का स्वरूप रखकर दूसरी ओर से उसी वराह पर बाण चलाया। तब अर्जुन और किरात में बातचीत होकर

युद्ध की नौबत पहुँची। अर्जुन का धैर्य और कौशल देखकर शङ्कर प्रसन्न हुए और उन्होंने अर्जुन को पाशुपत नामक अपना अस्त्र दिया। उसी समय इन्द्र ने अपने सारथि मातलि के हाथ रथ भेजकर बड़े सम्मानपूर्वक अर्जुन को इन्द्र-लोक में बुलाया। अर्जुन के वहाँ जाने पर इन्द्र ने उनको वज्र तथा अन्य कई अस्त्र देकर उनका उपयोग चित्रसेन नामक गन्धर्व से सिखवा दिया।

इधर काम्यक वन में युधिष्ठिर आदि पाण्डव अर्जुन के आने की राह देखते थे, और उनके न आने पर चिन्तित थे। इतने में बृहदश्व मुनि वहाँ आये और उन्होंने युधिष्ठिर का समाधान करके कहा कि ईश्वर अपने भक्तों को सङ्कट में डालकर उनकी परीक्षा करता है। इतना बड़ा पराक्रमी राजा नल था, परन्तु उसको तुमसे अधिक दुःख भोगना पड़ा।

तीर्थ-यात्रा

पाण्डव अर्जुन के लौटने की चिन्ता में थे कि इतने में लोमश ऋषि इन्द्र-लोक से आये और पाण्डवों से उन्होंने कहा कि अर्जुन प्रसन्न हैं और अस्त्र-विद्या सीख रहे हैं। उनके लौटने में अभी कुछ थोड़ा विलम्ब है। तब तक तुम तीर्थ-यात्रा करो। यह सुनकर सब पाण्डव लोमश ऋषि के साथ तीर्थ-यात्रा को निकले। लोमश ऋषि उनको तीर्थ दिखाते-दिखाते हरद्वार के आगे बदरिकाश्रम तक पहुँचे। वहाँ एक दिन वायु के झोंके के साथ कमल-पुष्पों की मधुर सुगन्ध आई। ऐसे

कमल-पुष्पों के देखने की द्रौपदी को इच्छा हुई। द्रौपदी की इच्छा पूर्ण करने के लिए, कमल-पुष्पों को लाने के वास्ते भीम निकले। घूमते-घूमते दैवयोग से उनकी हनुमान् से भेंट हुई। थोड़ा सम्भाषण होने पर हनुमान् ने प्रसन्न होकर युद्ध के समय अर्जुन के रथ पर बैठकर पाण्डवों की सहायता करने का वचन दिया और गन्धमादन पर्वत पर भीम को कमल-पुष्प का पता बताकर वहाँ का रास्ता दिखलाया। जिस ताल में कमल-पुष्प थे वह कुबेर का था। उनकी आज्ञा बिना वहाँ के सेवक कमल-पुष्प पर किसी को हाथ नहीं लगाने देते थे। भीम ने उनसे युद्ध करके बहुत से राक्षसों को मार डाला। तब रखवालों ने कुबेर के पास जाकर कहा कि एक योद्धा ने आकर फुलवाड़ी में बड़ा उपद्रव मचाया है और बहुत से रखवालों को मार डाला है। कुबेर ने पता लगाने पर जाना कि भीम कमल-पुष्प लेने आये हैं। तब भीम को उन्होंने बुला भेजा और उनके आने पर उन्हें बहुत से कमल-पुष्प दिये। युधिष्ठिर इत्यादि पाण्डव भी घूमते-घामते गन्धमादन पर्वत पर आ पहुँचे। वहाँ भीम और अर्जुन भी युधिष्ठिर से मिले और वहीं सबों की श्रीकृष्ण से भेंट हुई।

युधिष्ठिर के मन की परीक्षा लेने के लिए श्रीकृष्ण ने कहा कि तुम्हारी ओर से जो कोई लड़ने को तैयार हो तुम उसको शीघ्र ही बलराम के पास भेज दो, क्योंकि बलराम स्वयं सेना लेकर तुम्हारे लिए युद्ध करने को तैयार हैं। इस पर युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास की प्रतिज्ञा पूरी होने तक अपने आप कुछ नहीं कर सकते हैं, पाण्डव अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करनेवाले नहीं हैं। उनको ईश्वर और सत्य पर पूर्ण विश्वास है। यह सुनकर श्रीकृष्ण ने हँसकर कहा कि हम तुम्हारी परीक्षा करते थे।

इतने में मार्कण्डेय ऋषि वहाँ आये। उन्होंने पाण्डवों को नीचे लिखे अनुसार उपदेश दिया।

मार्कण्डेय का उपदेश

प्राणिमात्र के ऊपर दया करो। सत्य बोलो। नम्र भाव से रहो। मन को अपने अधीन रक्खो। प्रजा की रक्षा में तत्पर रहो। अच्छे गुण ग्रहण करो, बुरे छोड़ दो। देव और पितरों को सन्तुष्ट रक्खो। गर्व त्याग करो। अन्तःकरण को पवित्र रक्खो। जब तक वह पवित्र नहीं तब तक जप, तप, व्रत, पूजापाठ सभी व्यर्थ हैं। मन, वचन, कर्म से जो पापाचरण नहीं करता वही सच्चा तपस्वी है। जिसका अन्तःकरण शुद्ध नहीं, उसने तपस्या भी की तो उसे काया-कष्ट के सिवा लाभ कुछ भी नहीं होता। वह पाप से मुक्त नहीं हो सकता। सत्य का फल यज्ञ से भी अधिक है।

दुर्योधन का मान-भङ्ग

कौरव-दल में से शकुनि और कर्ण ने पाण्डवों के पीछे-पीछे जाकर उनको कपट से छलने की सलाह दुर्योधन को दी थी। धृतराष्ट्र से बहाना करके ये सब लोग द्वैत वन में, जहाँ कि पाण्डव थे, कुछ थोड़ी सी सेना लेकर निकले। राह में गन्धर्वों

से उनकी लड़ाई हुई। उसमें दुर्योधन और दुःशासन इत्यादि योद्धा सब शत्रुओं के वश में हो गये, केवल कर्ण अकेला बच रहा। कौरवों के समीप ही पाण्डव थे। जब उनको मालूम हुआ कि दुर्योधन इत्यादि कौरव शत्रुओं के हाथ में पड़ गये हैं तब युधिष्ठिर ने उनके छुड़ाने की सलाह की। इस पर भीम ने क्रोधित होकर उत्तर दिया कि जिन्होंने हमारा अपमान किया और वनवास दिया, क्या हमको उनकी सहायता करनी चाहिए? युधिष्ठिर ने भीम को समझाकर कहा कि यह समय आपस में लड़ने-झगड़ने का नहीं है। जहाँ कुल के नाम डूबने का प्रसङ्ग हो वहाँ अपने भाई-बन्दों की ओर होकर लड़ना चाहिए। क्योंकि दूसरे के हाथ से अपने कुल का नाश होते देखना अच्छा नहीं है। ऐसा कहकर युधिष्ठिर ने अर्जुन को कौरवों की सहायता के लिए भेजा। अर्जुन ने दुर्योधन इत्यादि कौरवों को छुड़ा कर युधिष्ठिर के सामने ला उपस्थित किया। युधिष्ठिर ने दुर्योधन को ऐसा बेसमझी का काम फिर कभी न करने और कुल में बट्टा न लगने देने का उपदेश किया।

दुर्योधन को यों मान-भङ्ग के होने के कारण मरणान्त दुःख हुआ। अपना मान-भङ्ग हुआ जान उदास और खिन्न-चित्त होकर वह घर जाने को लौटा। रास्ते में शकुनि और कर्ण से भेंट हुई। कर्ण ने गर्व के साथ कहा कि तुम्हारी आज्ञा पाने की देरी है। आज्ञा पाते ही दिग्विजय करके अर्जुन का वध करूँगा।

द्रौपदी और सत्यभामा का संवाद

जब श्रीकृष्ण वन में पाण्डवों से मिलने आये तब उनके साथ उनकी धर्मपत्नी सत्यभामा भी आईं। वहाँ पर, जहाँ

महात्मा, ब्राह्मण और पाण्डव लोग बैठे थे, पाण्डवपत्नी द्रौपदी भी बैठी हुई उनका वार्तालाप सुन रही थी। सत्यभामा को सामने आते देख द्रौपदी ने उठकर बड़े आदर-सत्कार से उन्हें लिया। वे दोनों बहुत दिनों के बाद मिली थीं, इस कारण आपस में एक दूसरे का सुख-समाचार पूछ-पाछकर एक स्थान पर बैठ गईं, और बातें करने लगीं। सत्यभामा ने पूछा—हे द्रौपदी! तुम पाण्डवों के साथ कैसे रहती हो? हे सुन्दरी! ये पाँचों लोकपालों के समान हैं, पाँचों आपस में बड़ा प्रेम रखते हैं, कहो ये पाँचों तुम्हारे वश में कैसे रहते हैं? तुम्हारे ऊपर क्रोध तो नहीं करते? तुम इनको अपने वश में कैसे रखती हो यह सब हमसे कहो। हे वीरपत्नी! व्रत, तप, स्नान, मन्त्र, औषध, विद्या, जप, होम, यह सब तुम हमसे कहो। अथवा और कोई सौभाग्य बढ़ाने की ऐसी युक्ति कहो जिससे कृष्ण सदा हमारे वश में रहें। द्रौपदी ने उत्तर दिया, हे सत्यभामे! तुम हमसे दुष्ट स्त्रियों के से कर्म पूछती हो। जिस मार्ग में असत् कर्म है, उस विषय में कोई उत्तर किस प्रकार दे सकता है? तुमको ऐसे सन्देह और प्रश्न नहीं करने चाहिए, क्योंकि तुम श्रीकृष्ण की प्यारी स्त्री हो और बुद्धिमती भी हो। यदि पति इस बात को जान जाय कि हमारी स्त्री मन्त्र करती है तो वे उससे ऐसे घबराते हैं जैसे घर में बैठे हुए सर्प से उस घरवाले। और घबराये हुए पुरुष को शान्ति कहाँ? और शान्ति-रहित को सुख कहाँ? इसलिए मन्त्र से पति स्त्री के वश नहीं हो सकता, और ओषधियाँ भी शरीर को नाश करनेवाली और अनेक प्रकार के रोग पैदा करनेवाली हैं। अनेक स्त्रियों ने अपने पतियों को औषध-प्रयोग से जलोदरी, कुष्ठी, बावला, नपुंसक, मूर्ख, बहरा और अन्धा कर दिया है। वे स्त्रियाँ महापापिनी हैं, जो अपने पतियों को

औषध खिलाकर वश में किया चाहती हैं। स्त्रियों को भूल करके भी अपने पति के साथ ऐसे कर्म नहीं करने चाहिएँ। हे सत्यभामे ! जिस प्रकार सत्यतापूर्वक मैं महात्मा पाण्डवों के साथ वर्ताव करती हूँ, उसको तुम सुनो। मैं सदा काम, क्रोध और अहङ्कार को छोड़कर पाण्डवों की सेवा करती हूँ। मैं अपने पतियों को सदा हर्षपूर्वक सेवती हूँ, और अपनी आत्मा को सदा वश में रखती हूँ। मैं अभिमान-रहित होकर पतियों की रक्षा करती हूँ। मैं अपने पतियों की बुरी बात, बुरी दृष्टि, बुरी चेष्टा, बुरी गति और बुरे चिह्नों से डरती रहती हूँ। चाहे देवता हो, चाहे मनुष्य हो, चाहे गन्धर्व हो, चाहे सुन्दर और अच्छे-अच्छे गहने पहने हुए कैसा ही धनवान् हो, परन्तु मैं दूसरे पुरुष से प्रेम नहीं करती। मैं अपने पतियों से पहले स्नान और भोजन कभी नहीं करती। मैं उनको बिना बिठलाये कभी नहीं बैठती। जब मेरे पति किसी खेत, गाँव अथवा वन से घर में आते हैं तब मैं उठकर खड़ी हो जाती हूँ और उनको आसन देती हूँ। मैं अपने घर के बरतनों को धोती हूँ और नाज को फटकती-बीनती हूँ। मैं पतियों को समय पर सब चीज़ें देती हूँ। मैं अपने शरीर को वश में रखती हूँ। अपने नाज को छिपाकर रखती हूँ और अपने घर को झाड़-बुहारकर साफ़ रखती हूँ और अपने वचन से दुष्ट स्त्रियों की तरह अपने पतियों का निरादर नहीं करती। मैं अपने पतियों की सेवा में तनिक भी आलस नहीं करती; कभी बिना हँसी की बात पर नहीं हँसती, और कभी द्वार पर नहीं खड़ी होती। मुझे बाग़ में रहना अच्छा नहीं लगता। मैं कभी अधिक नहीं बोलती। मैं क्रोध के स्थान में कभी नहीं जाती। मैं सदा सत्य बोलती हूँ और पतियों की सेवा करती हूँ। मुझे पतियों से अलग रहना अच्छा नहीं लगता। जिसको पति

नहीं पीते, जिसको पति नहीं खाते और जिन वस्तुओं का पति सेवन नहीं करते, मैं भी उन वस्तुओं को छोड़ देती हूँ। हे सुन्दरी! मैं उनके उपदेश के अनुसार काम करती हूँ। मेरी सास ने जो कुछ कुटुम्ब के वास्ते, धर्म कहे थे, मैं वही सब करती हूँ। हे वीरपत्नी! मेरी यह सम्मति है कि सदा पति के अनुकूल मन, वचन, कर्म से रहना ही स्त्रियों का सनातन धर्म है। स्त्रियों का पति ही देवता, पति ही गति है। इससे पति का अप्रिय कार्य्य नहीं करना चाहिए। मैं कभी अपने पतियों की आज्ञा नहीं टालती, अत्यन्त दुःख होने पर भी मैं उनको बुरे शब्द नहीं कहती हूँ। मैं अपने सास-ससुर और वृद्धों की सेवा करती हूँ। इसी से मेरे पति मेरे वश में रहते हैं। मन्त्र-तन्त्र आदि से कभी पतिदेव वश में नहीं हो सकता।

ये सब बातें सुनकर सत्यभामा ने कहा—हे वीरव्रत-पालिनी द्रौपदी! हम तुम्हारी शरण हैं। हमने यह सब तुमसे हँसी में कहा था। इसका अपराध क्षमा हो। तब द्रौपदी ने कहा, हे सत्यभामे! मैं जो मार्ग तुमसे कहती हूँ इसमें किसी प्रकार का भ्रम नहीं है। यही पति को वश में करने का अच्छा रास्ता है। हे सखी! यदि तुम अपने पति को अपनाया चाहती हो तो इसी राह पर चलो। सुख करने से सुख नहीं मिलता। इसी से पतिव्रता स्त्री दुःख उठाकर सुख पाती हैं। सो तुम प्रेम और सेवा से श्रीकृष्ण को प्रसन्न करो। जब तुम अपने पति का शब्द द्वार पर सुनो उसी समय उनके आदर के हेतु खड़ी हो जाओ, और जब वे आकर घर में आसन पर बैठ जावें तब तुम उनके पैर धोओ। जब तुम्हारे पति किसी काम को दासी से कहें तब तुम उठकर उसे आप ही कर लो। ऐसा करने से श्रीकृष्ण समझेंगे कि सत्यभामा मन से हमारी सेवा करती है। अपने पति की बात किसी से मत कहो।

अपने पति के भक्त, प्यारों और मित्रों को अच्छे-अच्छे भोजन दिया करो। जो पतिद्वेषी हों, या शत्रु हों उनसे सदा अलग रहो। कभी दूसरे मनुष्य के पास भूल से भी एकान्त में न बैठो। यही हमारा उपदेश है, और ये ही बातें जो हमने तुमसे कहीं, सुयश और सौभाग्य बढ़ानेवाली हैं। इस प्रकार द्रौपदी की बातें सुनकर सत्यभामा को बड़ा आनन्द हुआ।

दुर्वासा ऋषि से दुर्योधन का वरदान माँगना

एक दिन दुर्वासा ऋषि अपने शिष्यों-सहित दुर्योधन के दरबार में आकर खड़े हुए। उनको देखते ही दुर्योधन ने उन्हें बड़े आदर-सत्कार से लिया। उसके सत्कार से प्रसन्न होकर दुर्वासा ऋषि ने राजा से वर माँगने को कहा। राजा ने कहा—"मुझे इतना ही माँगना है कि आप अपने असंख्य शिष्यों को साथ लेकर वन में पाण्डवों के पास जाकर भोजन माँगिए और इस प्रकार पाण्डवों का सत्य हरण कीजिए।" ऋषि ने इस बात को स्वीकार किया और अचानक एक रात्रि को पाण्डवों के यहाँ जा उतरे। पाण्डवों ने उनका यथोचित आदर-सत्कार किया।

"हम स्नान करने जाते हैं, आप भोजन का प्रबन्ध कर रखिए"—ऐसा पाण्डवों से कहकर ऋषि शिष्यों-सहित प्रभास तीर्थ में स्नान करने को चले गये। पाण्डवों पर प्रसन्न होकर सूर्य्य ने पहले ही एक बटलोई दी थी। उसमें यह गुण था कि सूर्य को दिखाते ही जो भोजन माँगा जाय वही प्राप्त होता

था। पर सूर्यास्त के बाद इससे कुछ भी काम नहीं निकलता था। सन्ध्या-समय धोकर रख दी जाती थी। इसी कारण पाण्डव सीधा-सामग्री कुछ भी पास नहीं रखते थे। दुर्वासा ऋषि के कुसमय आने पर द्रौपदी को यह चिन्ता हुई कि इस समय इन सबों को भोजन कहाँ से आवेगा? यदि इनको भोजन न दिया तो अपना सत्य जायगा और ऋषि क्रोधित होकर शाप भी देंगे। हे प्रभु, इस समय हमारी लाज आपके हाथ है। ऐसी प्रार्थना द्रौपदी परमेश्वर से कर रही थी कि अचानक वहाँ पर श्रीकृष्ण आ पहुँचे और द्रौपदी से बोले कि मुझे भूख लगी है कुछ खाने को दो। द्रौपदी ने बड़े नम्र-भाव से उत्तर दिया कि "इस समय खाने को कुछ भी नहीं है।" श्रीकृष्ण ने कहा, जाकर उस बटलोई में तो देखो, कुछ है या नहीं? द्रौपदी ने उसको देखा तो उसमें एक चावल का कन कहीं चिपका रह गया था। उसको ले आई। श्रीकृष्ण ने उसे बड़े आदरपूर्वक खाया। श्रीकृष्ण के खाते ही दुर्वासा ऋषि और उनके शिष्यों की तृप्ति हो गई और फिर वे जहाँ स्नान करने गये थे वहीं से अपने आश्रम को लौट गये। इस प्रकार पाण्डवों के सत्यधर्म की श्रीकृष्ण महाराज ने रक्षा की।

द्रौपदी-हरण

एक दिन पाँचों पाण्डव आखेट के निमित्त अपने स्थान से बाहर कहीं गये थे और वहाँ पर जो ऋषि और ब्राह्मण लोग रहते थे वे भी कहीं स्नान, पूजन-पाठ करने को निकल

गये थे। वहाँ द्रौपदी अकेली रह गई थी। यह देखकर दुर्योधन का भेजा हुआ सिन्ध देश का राजा जयद्रथ पाण्डवों के स्थान पर आकर-बलात्कार से द्रौपदी को रथ में बिठलाकर भगा ले चला। पाण्डव आखेट से लौट रहे थे कि रास्ते में द्रौपदी का रोना सुनकर वे उस रथ के पीछे दौड़े। जब जयद्रथ ने पाण्डवों को पीछे आते देखा तब द्रौपदी को रथ से नीचे उतारकर वह ख़ाली रथ भगा ले चला, परन्तु भीम और अर्जुन ने उसका पीछा किया और पकड़कर युधिष्ठिर के पास ले आये। परन्तु दुर्योधन की माता गान्धारी और जयद्रथ की स्त्री के बहुत विनय करने पर युधिष्ठिर ने उसे छोड़ दिया। जयद्रथ छूटने पर पाण्डवों के नाश करने की इच्छा से हिमालय पर्वत पर तपस्या करने लगा। घोर तप करके उसने महादेव को प्रसन्न किया और उनसे यह वर पाया कि अर्जुन के सिवा तुम सब पाण्डवों पर एक दिन विजय पाओगे।

कवच-कुण्डल-हरण

कर्ण ने अर्जुन का वध करने की प्रतिज्ञा की थी, यह हमने ऊपर वर्णन किया है। यह बात सुनकर लोगों को बड़ी चिन्ता हुई। अर्जुन ने इन्द्र के लिए बहुत से राक्षसों का वध किया था। इन्द्र वह उपकार स्मरण कर अर्जुन का बचाव करने के लिए कुछ उपाय सोचने लगे। इन्द्र के ध्यान में एक बात यह आई कि कर्ण के पास एक विचित्र कवच है। उसके ऊपर अस्त्र-शस्त्र के प्रहार का कुछ भी असर नहीं होता। इसी प्रकार कर्ण के पास विचित्र कुण्डल भी हैं। उनकी सहायता से शत्रु

उसे हानि नहीं पहुँचा सकता। यह कवच और कुण्डल किसी युक्ति से कर्ण के पास से लेना चाहिए जिससे उसकी शक्ति कम हो जावे। इस पर इन्द्र को कर्ण की उदारता का ध्यान आया। इन्द्र तुरन्त ब्राह्मण का वेष रखकर कर्ण के पास पहुँचे; और उससे कवच-कुण्डल माँग लाये। इस प्रकार इन्द्र ने कर्ण की शक्ति कम करके अर्जुन की सहायता की।

युधिष्ठिर की धर्म-परीक्षा

जयद्रथ के हाथ से द्रौपदी को छुड़ाकर पाण्डव काम्यक वन से द्वैत वन को गये। वहाँ एक दिन घूमते-घामते युधिष्ठिर को वन में प्यास लगी। तब उन्होंने सहदेव को समीप के किसी सरोवर से जल लाने के हेतु भेजा। सहदेव सरोवर के समीप हुँचकर जब पानी लेने लगे तब एक यक्ष ने कहा, आप पानी न छुएँ, यह सरोवर हमारा है। पहले हमारे प्रश्नों का उत्तर दीजिए, तब पानी पीजिए। सहदेव ने यक्ष की बात सुनी अनसुनी करके पानी पी लिया। पीते ही वे वहाँ मरकर गिर गये। सहदेव को देर हुई जान युधिष्ठिर ने नकुल को भेजा। नकुल ने भी जाकर यक्ष की बात न सुन पानी पिया और वहीं रह गये। नकुल को भी गये देर हुई जान उन्होंने अर्जुन को और फिर भीम को भेजा, परन्तु वे भी नहीं लौटे। जब युधिष्ठिर ने देखा कि चारों में से एक भी वापस नहीं आया तब चिन्तित होकर स्वयं उनकी खोज़ में निकले और सरोवर के समीप जाकर चारों भाइयों को मरा देख शोकातुर

हुए। इतने में यक्ष ने पहले की भाँति उनसे भी कहा। युधिष्ठिर ने यक्ष के प्रश्नों का उत्तर देकर उसे प्रसन्न किया, और उससे वर पाकर पुनः अपने भाइयों को जीवित कराया। यक्ष ने युधिष्ठिर से एक वर माँगने को और कहा। युधिष्ठिर ने कहा कि हमारे बारह वर्ष पूर्ण होने पर हमें एक वर्ष छिप-कर रहना होगा। यह एक वर्ष निर्विघ्न समाप्त हो, यही इच्छा है। यक्ष ने कहा 'तथास्तु।'

यक्ष के प्रश्न

यक्ष ने युधिष्ठिर से अनेक धर्म और शास्त्र-सम्बन्धी प्रश्न किये थे। उनमें से कुछ का सारांश हम नीचे देते हैं।

प्र०—सूर्य को कौन उदय करता है, और सूर्य किसमें स्थित है?

उ०—धर्म (कर्त्तव्य) सूर्य को उदय करता है, और सत्य में सूर्य स्थित है।

प्र०—किससे मनुष्य श्रोत्रिय होता है? किससे मनुष्य महत्त्व को प्राप्त होता है? किससे दूसरे से युक्त होता है? और किससे बुद्धिमान् होता है?

उ०—मनुष्य वेद से श्रोत्रिय होता है। तप से महत्त्व को प्राप्त होता है। धारणा से दूसरे से युक्त होता है। और वृद्धों से बुद्धिमान् होता है।

प्र०—ब्राह्मण में देवतापन क्या है? सज्जनों का सद्धर्म क्या है? मनुष्य में भाव तथा मनुष्यता क्या है? और दुष्टों का धर्म क्या है?



यक्ष और युधिष्ठिर का संवाद

उ०—नित्य ही वेदों का पढ़ना ब्राह्मणों में देवतापन है। तप ही सज्जनों का सद्धर्म है। मरना मनुष्यों में मनुष्यता और दूसरे की निन्दा करना ही दुष्टों का धर्म है।

प्र०—क्षत्रियों में देवतापन क्या है? क्षत्रियों में सद्धर्म क्या है? क्षत्रियों में मनुष्य-भाव क्या है? और उनमें दुष्टता क्या है?

उ०—यज्ञ करना क्षत्रियों का देवतापन है। बाण और अस्त्रों का धारण करना क्षत्रियों का सद्धर्म है। भय करना क्षत्रियों का मनुष्य-भाव है। शरणागत को वा युद्ध को त्यागना क्षत्रियों का दुष्टभाव है।

प्र०—रक्षा करनेवालों में कौन उत्तम है? प्रतिष्ठा चाहनेवालों को उत्तम क्या है? और कुल की वृद्धि चाहनेवालों को क्या उत्तम है?

उ०—रक्षा करनेवालों में जल की वर्षा उत्तम है। प्रतिष्ठा चाहनेवालों को गो-सेवा उत्तम है। और कुल की वृद्धि चाहनेवालों को पुत्र उत्तम है।

प्र०—इन्द्रियों के नियमों को भोगता हुआ, बुद्धिमान् और संसार में आदर-युक्त, साँस लेता हुआ भी कौन नहीं जीता है?

उ०—देवता, अतिथि, पितर, सेवक और अपनी आत्मा को जो नहीं देता है वह साँस लेते हुए भी मरा है।

प्र०—पृथ्वी से भारी कौन है? आकाश से ऊँचा कौन है? वायु से जल्दी चलनेवाला कौन है? फूस से हलका क्या है?

उ०—माता भूमि से भारी है। पिता आकाश से ऊँचा है। मन वायु से जल्दी चलनेवाला है। माँगना फूस से भी हलका है।

प्र०—सोता हुआ कौन पलक नहीं मारता ? उत्पन्न होकर कौन नहीं चलता ? हृदय किसके नहीं है ? शीघ्रता से कौन बढ़ता है ?

उ०—मछली सोते हुए पलक नहीं मारती। अण्डा पैदा होकर नहीं चलता। पत्थर के हृदय नहीं होता। नदी शीघ्रता से बढ़ती है।

प्र०—परदेश में कौन मित्र है ? घर में कौन मित्र होता है ? रोगी का मित्र कौन है ? मरने के समय कौन मित्र होता है ?

उ०—विदेश में धन मित्र है। घर में स्त्री मित्र है। वैद्य रोगी का मित्र है। दान मरने के समय का मित्र है।

प्र०—सब प्राणियों का अतिथि कौन है ? सनातन धर्म क्या है ? अमृत क्या वस्तु है ? यह संसार क्या है ?

उ०—सब प्राणियों का अतिथि अग्नि है। मोक्ष ही सनातन धर्म है। गौ का दूध ही अमृत है। वायु ही सब जगत् है।

प्र०—अकेला कौन फिरता है। क्षीण होकर फिर कौन उत्पन्न होता है ? शीत की ओषधि क्या है ? बोने का बड़ा स्थान क्या है ?

उ०—सूर्य अकेला घूमता है। क्षीण होकर चन्द्रमा उत्पन्न होता है। अग्नि शीत की ओषधि है। बोने का बड़ा स्थान पृथ्वी है।

प्र०—धर्म का स्थान क्या है ? सुख पाने का उपाय क्या है ?

उ०—उद्योग ही धर्म है। दान ही सुख का उपाय है।

प्र०—मनुष्य की आत्मा क्या है देव का दिया हुआ मित्र कौन है ? मनुष्य का जीवन क्या है ? मनुष्य का उद्योग क्या है ?

उ०—पुत्र मनष्य की आत्मा है। स्त्री मनुष्य के लिए दैव का दिया हुआ मित्र है। मेघ जीवन है। दान मनुष्य का उद्योग है।

प्र०—धन्य लोगों में उत्तम क्या है? लाभों में उत्तम लाभ क्या है? और सुखों में उत्तम सुख क्या है?

उ०—धन्य लोगों में चतुरता उत्तम है। लाभों में नीरोगता उत्तम है और सुखों में सन्तोष उत्तम है।

प्र०—कौन धर्म सबसे उत्तम है? कौन धर्म सदा फल देनेवाला है? किसके साथ नियम करने से सोच नहीं करना होता? और किसका मेल नहीं टूटता?

उ०—सत्य बोलना सबसे उत्तम धर्म है। वेदोक्त धर्म सदा फल देनेवाला है। मन को रोककर सोचना नहीं पड़ता। सज्जन का मेल कभी नहीं टूटता।

प्र०—किसके त्यागने से मनुष्य प्यारा होता है? किसके रोकने से सोच नहीं करना होता? किसको त्यागने से मनुष्य धनी होता है? और किसको त्यागने से मनुष्य सुखी होता है?

उ०—अभिमान को त्यागने से मनुष्य सबका प्यारा होता है। क्रोध को त्यागने से सोच नहीं होता। काम को त्यागने से मनुष्य धनी होता है। और लोभ को त्यागने से मनुष्य सुखी होता है।

प्र०—जगत् को क्या आच्छादित करता है? प्रकाश को कौन रोकता है? मित्र किससे छूटते हैं? मूर्ख स्वर्ग को किस कारण नहीं जाता?

उ०—अज्ञान से संसार आच्छादित रहता है। अन्धकार प्रकाश को रोकता है। लोभ से मित्र छूटते हैं। और कुसङ्ग से मूर्ख को स्वर्ग नहीं मिलता।

प्र०—दिशा कौन सी है ? जल क्या है ? अन्न क्या है ? और विष क्या है ?

उ०—सज्जन दिशा है। आकाश जल है । वायु अन्न है। माँगना विष है।

प्र०—तप का क्या लक्षण है ? दम किसे कहते हैं ? क्षमा क्या है ? और लज्जा किसका नाम है ?

उ०—अपने धर्म का पालन तप है । मन को विषयों से रोकना दम है। बुरे कर्मों से बचना लज्जा कहाती है।

प्र०—ज्ञान किसे कहते हैं ? शम किसका नाम है ? परम दया क्या है ?

उ०—तत्त्वार्थ के बोध को ज्ञान, चित्त की शान्ति को शम, और प्राणिमात्र के सुख की इच्छा को दया कहते हैं।

प्र०—मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु कौन है ? ऐसा रोग कौन है जिसका अन्त नहीं ? साधु किसे कहते हैं, और दुष्ट किसे कहते हैं ?

उ०—क्रोध ही मनुष्य का प्रबल शत्रु है । जिसका अन्त नहीं ऐसा रोग लोभ है। सब प्राणियों का हित करनेवाला साधु और दया-रहित मनुष्य दुष्ट कहा जाता है।

प्र०—मोह किसे कहते हैं ? अभिमान क्या वस्तु है ? आलस्य क्या है ? और शोक किसका नाम है ?

उ०—धर्म को न जानना मोह है । अपने को सबसे बड़ा समझना अभिमान है । धर्म्म न करना आलस्य है, और अज्ञान शोक है।

प्र०—धैर्य्य, स्थिरता, स्नान और दान क्या वस्तु हैं ?

उ०—इन्द्रियों को रोकना धैर्य्य, अपने धर्म में दृढ़ रहना स्थिरता, मन के मैल को त्यागना स्नान और प्राणियों की रक्षा करना दान कहाता है।

प्र०—कौन पुरुष पण्डित है? कौन मूर्ख है? और कौन नास्तिक कहाता है?

उ०—धर्मज्ञ को पण्डित, अधर्मी को मूर्ख और ईश्वर पर विश्वास न करनेवाले को नास्तिक कहते हैं।

प्र०—धर्म, अर्थ, काम ये परस्पर विरोधी हैं, इनका एक स्थान में रहना कैसे हो सकता है?

उ०—जब धर्म और स्त्री वश में हो तब धर्म, अर्थ और काम परस्पर इकट्ठे रह सकते हैं?

प्र०—मनुष्य ब्राह्मण किससे होता है?

उ०—ब्राह्मण न कुल से होता है, न वेद-पाठ से, किन्तु आचरण ही ब्राह्मणता का कारण है, इसलिए मनुष्य को ब्राह्मण होने के लिए धर्म से अपने आचरणों की रक्षा करना चाहिए। जो मनुष्य आचरण-हीन है, जो पढ़ने और पढ़ानेवाले तथा शास्त्र के विचारनेवाले हैं, वे सब व्यसनी हैं, परन्तु जो क्रियावान् है वे ही पण्डित हैं। चारों वेदों का जाननेवाला यदि दुराचारी हो तो वह ब्राह्मण शूद्र से भी नीच है।

प्र०—मीठे वचन कहनेवालों को क्या मिलता है? बहुत मित्र करनेवालों को क्या मिलता है? विचार कर काम करनेवालों को क्या मिलता है? और धर्म करनेवालों को क्या मिलता है?

उ०—मीठे वचन बोलनेवाला सबका प्यारा होता है। बहुत मित्र करनेवाले को सुख मिलता है। विचार कर कार्य करनेवाले को जय मिलता है और धर्म करनेवाले को मोक्ष मिलता है।

प्र०—जगत् में सुखी कौन है? आश्चर्य क्या है? मार्ग कौन सा है? और बात क्या है?

उ०—जिसको दिन के आठवें भाग में अपने घर एक बार शाक खाने को मिलता है और जो किसी का ऋणी नहीं है वही सुखी है। संसार में प्रतिदिन प्राणियों को मरते देखते हैं, परन्तु जो बाक़ी रहते हैं, उन्हें सदैव जीने की अभिलाषा रहती है इससे अधिक आश्चर्य और क्या होगा। तर्क बेजड़ है, शक्ति भिन्न-भिन्न है और ऐसा एक भी ऋषि नहीं जिसके वाक्यों का प्रमाण माना जावे। धर्म का तत्त्व गहरी गुफा में छिपा हुआ है। इसलिए महाजन जिस राह पर चलते हों वही मार्ग है। इस महामोहरूपी जगत् के कड़ाह में सूर्यरूपी अग्नि है, रातदिन ईंधन है, मास और ऋतु ये करछुली हैं। इन सबसे काल प्राणियों का हलुआ पका रहा है। यही बात है।

४—विराट-पर्व

पाण्डव एक वर्ष छिपकर राजा विराट के यहाँ किस प्रकार रहे, इसका हाल इस पर्व में वर्णन किया है; इसी से इसको विराट-पर्व कहते हैं।

पाण्डव विराट के घर जाकर रहे

विराट-नगर में प्रवेश होने के पहले पाण्डवों ने एक शमी-वृक्ष में अपने अस्त्र-शस्त्रों को छिपाकर रख दिया, और अपना वेष बदलकर विराट राजा की सभा में पहुँचे। युधिष्ठिर ने अपना नाम कङ्क ब्राह्मण और चौपड़ खेलने में चतुर बतलाया। भीम ने अपना नाम बल्लभ रसोइया और मल्ल-युद्ध में प्रवीण बतलाया, और कहा कि मैं पहले युधिष्ठिर महाराज के भोजनागार में नौकर था। अर्जुन ने स्त्री-रूप धरकर अपना नाम वृहन्नला बतलाया और राजा विराट के राजमहल में रहने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने कहा कि हम पाण्डवों की रानी द्रौपदी के पास गाने-बजाने का काम करते थे। नकुल ने अपने को घोड़ों का वैद्य 'शालिहोत्री' प्रकट किया। सहदेव ने अपने को ज्योतिषी बतलाया, और अपना नाम तन्त्रिपाल कहा। द्रौपदी ने राजा विराट की रानी सुदेष्णा के पास जाकर कहा कि मैं सैरन्ध्री नाम की दासी हूँ और पाँच गन्धर्व मेरी रक्षा करते हैं। पहले मैं श्रीकृष्ण की रानी सत्यभामा

के पास थी। पीछे पाण्डवों की रानी द्रौपदी की सेवा करती रही। पर यदि अब आप मुझे रक्खेंगी तो मैं आपका जूठा अन्न न खाऊँगी और न किसी के पैर धोऊँगी। इस शर्त पर सुदेष्णा की नौकरी उसने स्वीकार की और राजा विराट ने भी पाण्डवों को रख लिया।

कीचक-वध

इस प्रकार वेष बदलकर पाण्डवों ने राजा विराट के यहाँ दस मास व्यतीत किये। जब छिपकर रहने की अवधि में केवल दो मास बाक़ी रह गये, तब एक दिन द्रौपदी का सौन्दर्य्य देखकर सुदेष्णा रानी का भाई—राजा विराट का सेनापति—कीचक उस पर मोहित हो गया और उस पर कई एक कलङ्क लगाकर भरी सभा में उसे अपमानित करके निकाल देने को राजा से कहा। इस दृश्य को पाण्डव सामने बैठे देखा किये। भीम ने उसी समय कीचक के मारने का विचार किया; परन्तु युधिष्ठिर ने इशारे से मना किया कि अभी यह काम लाभकारी नहीं है, कुछ भी मत कहो। द्रौपदी बड़े वेग से क्रोधयुक्त शब्द से रोदन करने लगी। तब युधिष्ठिर ने कहा कि हे सैरन्ध्री! तेरे सहायक गन्धर्व यह सब देखते हैं, परन्तु समय अनुकूल न जानकर वे प्रकट नहीं हो सकते। समय आने पर वे प्रकट होकर तुम्हारे संकट को दूर करेंगे। द्रौपदी यह अपमान सहकर युधिष्ठिर के कथनानुसार शान्त हुई। उसने भीम से अकेले में सारा हाल कहा। भीम ने कुछ दिन के बाद सैरन्ध्री का वेष धारण कर कीचक के महल में

जा उसको मारकर महल के दरवाज़े पर ला खड़ा कर दिया। इधर सैरन्ध्री ने चारों ओर यह प्रकट किया कि गन्धर्वों ने कीचक को आज रात में मार डाला है। कीचक के मरने का कारण सैरन्ध्री को जानकर लोग उसे मसान में ले गये, और उसके हाथ-पाँव बाँधकर कीचक के साथ उसे भस्म कर देने का उन्होंने विचार किया। तब फिर द्रौपदी वहाँ चिल्लाकर रोने लगी। भीम ने देखा कि अब शान्त बैठे रहने से काम न चलेगा, इसलिए राजमहल से चुपचाप निकल एक बड़े वृक्ष को जड़ से उखाड़ उसे कन्धे पर रख वेष बदले हुए वे मसान की ओर चले। जब मसान के समीप पहुँचे तब लोग उन्हें इस प्रकार भयङ्कर वेष में आते देख भय के मारे इधर-उधर छिपने लगे। उस समय अवसर पाकर द्रौपदी वहाँ से चली आई। इस तरह घोर सङ्कट से द्रौपदी का छुटकारा हुआ। यह समाचार सुन राजा ने रानी से कहला भेजा कि सैरन्ध्री से कहो कि वह राज्य छोड़कर कहीं बाहर चली जावे। परन्तु उसने तेरह दिन का समय रहने को और माँगा, और कहा कि हमारे गन्धर्व अब बाहर नहीं निकलेंगे। इस प्रकार लोगों को दिलासा दिलाई।

राजा विराट पर राजा सुशर्मा की चढ़ाई और कौरवों का गौएँ भगा ले जाना, इस कारण इन दोनों से युद्ध

जब अज्ञातवास में बहुत कम दिन बाक़ी रह गये तब कौरवों को पाण्डवों के ढूँढ़ने की अधिक चिन्ता हुई। उन्होंने

सोचा कि यदि किसी प्रकार कहीं पर उनका पता लग जावे तो फिर उन्हें बारह वर्ष वनवास में और एक वर्ष छिपकर रहना पड़े। परन्तु जब कहीं भी उनका पता न चला तब बहुतों को यह निश्चय हो गया कि पाण्डव कहीं वन में मर गये। इधर राजा विराट के सेनापति कीचक को राजा सुशर्मा ने मरा सुन विराट देश पर चढ़ाई कर दी, और इस काम में कौरवों की सहायता माँगी। जब विराट को यह मालूम हुआ तब वे सेना को तैयार कर युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव इन चारों को साथ लेकर युद्ध-क्षेत्र में जा पहुँचे। दोनों ओर से घनघोर सङ्ग्राम हुआ। शत्रुओं ने राजा विराट को पकड़ लिया, पाण्डवों ने यह देख मन में विचारा कि अब यदि हम सहायता नहीं करते तो कृतघ्नता का दोष हमारे ऊपर आता है, यही सोचकर युधिष्ठिर ने भीम को लड़ने की आज्ञा दी। भीम ने लड़कर सुशर्मा से विराट को छुड़ा लिया। और पीछे, राजा सुशर्मा को भी पकड़कर राजा विराट के पास वे ले आये, परन्तु युधिष्ठिर के कहने से राजा विराट ने सुशर्मा को छोड़ दिया।

इसी बीच दुर्योधन ने भीष्म और कर्ण इत्यादि कौरवों को साथ ले राजा विराट की गायों को हँकवा लिया। राजा विराट को जब यह समाचार विदित हुआ तब उन्होंने सोचा कि अब कौरवों के साथ युद्ध करने को कौन जावे? राजा विराट का पुत्र कुमार उत्तर वहाँ मौजूद था। उसने कौरवों से गायों को वापस लाने का प्रण किया और अर्जुन को अपना सारथि बनाया। अर्जुन ने सारथि बनना स्वीकार किया और दोनों पुरुष, जहाँ कौरव थे वहाँ, थोड़ी सी फ़ौज लेकर जा पहुँचे। नगर के सारे नर-नारियों ने प्रेम-पूर्वक आशीर्वाद दिया कि तुम दोनों विजयी होकर शीघ्र लौट आओ।

अर्जुन ने जिस शमी-वृक्ष पर अपने अस्त्र-शस्त्र रक्खे थे वहाँ रथ खड़ा किया और वहीं से कुमार उत्तर ने कौरवों की सेना



अर्जुन का शमी वृक्ष से अपना धनुष-बाण निकालना

का देखा। वह यह विचार करने लगा कि किस ओर से उन पर धावा करें। चारों ओर पड़ी हुई कौरवों की बड़ी

भारी सेना देखकर कुमार घबड़ा उठा और उसने अर्जुन से रथ घुमाने को कहा। अर्जुन ने उत्तर दिया कि अब हम रण से पीठ नहीं फेर सकते। अर्जुन से यह सुनकर कुमार उत्तर ने रथ से उतरकर पैदल भागने का विचार किया। तब अर्जुन ने बहुत कुछ समझाया कि धैर्य धरो, घबड़ाओ मत, देखो, ईश्वर क्या करता है। यदि तुमको युद्ध से इतना भय है तो तुम सारथि का काम करो, हम धनुष-बाण हाथ में लेकर लड़ाई करते हैं। तब कुमार उत्तर को धैर्य आया। कौरवों ने दूर से दोनों की ओर देखा और कहा कि लड़ाई में स्त्री को आने का साहस कैसे हुआ! किसी-किसी को यह भी शङ्का हुई कि क्या स्त्री-वेष-धारी अर्जुन तो नहीं है? यदि यह अर्जुन हैं तो उन्हें आज सहज ही में मार लेंगे। ऐसा निश्चय कर कौरवों ने आनंद मनाया। भीष्म, द्रोण आदि बुद्धिमान् पुरुषों ने दुर्योधन से कहा कि पाण्डवों के छिपे रहने का वर्ष पूरा हो गया और यह सचमुच अर्जुन ही हैं। इन्हें जीत नहीं सकते। परन्तु दुर्योधन ने इन बातों पर कुछ ध्यान न देकर लड़ाई आरम्भ कर दी। अर्जुन ने भी शमी-वृक्ष से अपने अस्त्र निकाल धनुष पर बाण चढ़ाया। उस बाण का तेज देखकर कुमार उत्तर भयभीत हो गया। उसने ऐसा धनुष और दिव्य बाण कभी नहीं देखा था। उसने इस विषय में अर्जुन से पूछा। अर्जुन ने यह समझकर कि अज्ञात वर्ष समाप्त हो गया, अतएव अपना हाल बताने में कुछ भी हानि नहीं है, कुमार उत्तर से कहा कि हम अर्जुन हैं। उन्होंने अपने भाइयों और द्रौपदी के वेष बदलने का भी हाल बतलाया—तब कुमार उत्तर ने बड़े नम्रभाव से कहा कि "हमने अज्ञात से यदि कोई आपका अपराध किया हो तो उसे क्षमा कीजिए।" अर्जुन ने उसका समाधान करके कौरवों के दल

की ओर अपना रथ बढ़ाने को कहा, और स्वयं शङ्खध्वनि करना आरम्भ किया। उस भयङ्कर ध्वनि को सुनकर कौरवों की सेना के बहुत से वीर भाग खड़े हुए। जो रह गये उनसे बहुत बड़ा घनघोर युद्ध हुआ। कर्ण, कृपाचार्य्य, द्रोणाचार्य्य सब अर्जुन के सामने घबड़ा गये और रण से भागने लगे। अश्वत्थामा ने पहले अर्जुन के धनुष की डोरी काट डालनी चाही, परन्तु अर्जुन ने ऐसा प्रयत्न किया कि अश्वत्थामा को उलटा जी बचाकर भागना पड़ा। कर्ण ने लौटकर युद्ध का फिर साहस किया, परन्तु शीघ्र ही निरुपाय हो लौट गया। भीष्म के रथ की ध्वजा नीचे गिर पड़ी। दुःशासन, दुस्सह और विकर्ण इत्यादि दुर्योधन के भाई हार कर रण-क्षेत्र से भागने लगे। इस प्रकार कौरवों को हराकर और राजा विराट की गायों को उनके हाथ से छुड़ाकर अर्जुन कुमार-सहित, जयनाद करते हुए, वापस आये। लौटते समय पहले के अनुसार शमी-वृक्ष पर अर्जुन ने अपने अस्त्र छिपाकर रख दिये और कुमार को समझा दिया कि मैं कौन हूँ और मेरे अस्त्र कहाँ रक्खे हैं; इस बात को अभी किसी से मत कहना। यह कहकर आप पूर्ववत् उसके सारथि बन वृहन्नला होकर विराट के नगर में आ पहुँचे। इस समय राजा विराट कङ्क-नामधारी युधिष्ठिर के साथ पाँसा खेल रहे थे। कौरवों से विजय पाने की बात सुनकर राजा विराट को बड़ा आनन्द हुआ और वे अपने पुत्र के पराक्रम की प्रशंसा करने लगे। तब कङ्करूपी युधिष्ठिर ने कहा—"वृहन्नला जिसकी सहायता करे उसको ऐसी विजय क्या वस्तु है?" यह वाक्य सुनकर राजा विराट को क्रोध उत्पन्न हुआ और यह समझकर कि वृहन्नला से हमारे लड़के की यह समता करता है, हाथ में जो पाँसा लिये हुए थे उन्हीं से विराट ने युधिष्ठिर के सिर में मार दिया। उनकी

चोट से युधिष्ठिर के सिर से रक्त निकलने लगा। इस समय युधिष्ठिर ने पूर्ण शान्तता दिखलाई। इतने में कुमार उत्तर वहाँ पर आया और युधिष्ठिर के सिर में रक्त बहते देख पूछने लगा कि यह क्या हुआ? रक्त बहने का कारण जान उसे बड़ा खेद हुआ। उसने राजा विराट से कहा, महाराज! जो कुछ यह आपने किया वह ठीक नहीं किया। मुझे जो युद्ध में जय प्राप्त हुई है वह मेरे बाहुबल का फल नहीं है। वह एक दिव्य-देह-धारी पुरुष की सहायता से हुई है और उसके दर्शन शीघ्र ही आपको मिलेंगे। राजा विराट ने अपनी भूल पर पश्चात्ताप किया और बहुत खेद प्रकट करके कङ्क-रूपी युधिष्ठिर को प्रसन्न किया। अन्त में अज्ञात वर्ष की समाप्ति जान पाण्डव विराट के घर प्रकट हुए। विराट को पीछे किये हुए कर्म पर खेद और आगे की दशा को विचार आनन्द प्राप्त हुआ। उसने अपनी लड़की उत्तरा को अर्जुन से ब्याहने की प्रार्थना की। परन्तु अर्जुन ने कहा कि हमने उसको नृत्य-गान सिखाया है। इस कारण हम उसे पुत्रीवत् समझते हैं और उसके साथ विवाह नहीं कर सकते; परन्तु अपने पुत्र अभिमन्यु के साथ उसका विवाह कर और अपनी पुत्रवधू बना हम उसे पुत्रीवत् समझेंगे। यह बात विराट के भी मन आ गई और उत्तरा का विवाह अभिमन्यु के साथ हो गया।

पाण्डवों ने प्रकट होने के पश्चात् देश-देशान्तरों में जाकर अपने इष्ट-मित्रों से भेंट की।

५—उद्योग-पर्व

वनवास से लौट आने का समय पूरा हो जाने पर पाण्डव राज्य पाने का उद्योग करने लगे; इससे इसका नाम उद्योग-पर्व पड़ा।

राजा विराट के यहाँ पाण्डवों के प्रकट होने पर, बहुत से राजा और नीतिज्ञ पण्डितों के सामने, सभा में श्रीकृष्णजी ने कहा कि पाण्डवों ने प्रतिज्ञानुसार बारह वर्ष वन में और एक वर्ष छिपे रहकर अपना वचन पूरा किया। अब कौरव-पाण्डव दोनों किस प्रकार से रहें, यह आप लोग बतलावें। दुर्योधन अपने आप तो कुछ करेगा नहीं; इससे उसके पास एक दूत भेजना चाहिए। यह मेरा मत है। कुछ वाद-विवाद होने के बाद राजा द्रुपद के गुरु को इस काम के लिए भेजने का विचार हुआ और वे कौरवों के यहाँ को विदा हुए। इधर बहुत से रजवाड़ों को भी, उनका मत जानने के लिए दूत भेजे गये। दुर्योधन ने जब यह बात सुनी तब उन्होंने भी अपने दूत राजाओं की राय लेने को भेजे और वे स्वयं श्रीकृष्णजी के यहाँ उनको अपने पक्ष में लाने के लिए गये। जब अर्जुन वहाँ पहुँचे तब उन्होंने दुर्योधन को पहले ही से श्रीकृष्णजी के सिरहाने (वे उस समय सो रहे थे) बैठे देखा। अर्जुन जाकर पलँग के पैताने बैठ रहे। जब श्रीकृष्णजी जागे तब

पहले उनकी दृष्टि पैताने की ओर पड़ी और अर्जुन को बैठा हुआ देख उनसे उन्होंने आने का कारण पूछा। अर्जुन ने अपने आने का कारण बतलाया। इस पर दुर्योधन ने कहा--मैं पहले से आकर बैठा हूँ; मुझे पहले सहायता मिलनी चाहिए ! श्रीकृष्णजी ने कहा—दुर्योधन ! पहले आने से तुम्हारा जितना हक़ है उतना ही अर्जुन का मुझसे पहले भेंट होने से है। इस कारण मैं दोनों की सहायता करूँगा। एक ओर मेरी दस करोड़ यादव-सेना सहायता करेगी; और दूसरी ओर मैं अकेला निःशस्त्र सहायता करूँगा। जिसको जो स्वीकार हो ले लेवे । दुर्योधन ने दस करोड़ यादव-सेना को लेना स्वीकार किया, और अर्जुन ने अकेले श्रीकृष्ण को। दुर्योधन के चले जाने पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से पूछा कि तुमने अकेले मुझको क्या पसन्द किया ? अर्जुन ने उत्तर दिया, "जहाँ कृष्ण वहाँ विजय बनी बनाई है।"

निमन्त्रित राजाओं में से कोई कौरवों की ओर और कोई पाण्डवों की ओर अपने-अपने इच्छानुसार, सेना-सहित आकर मिले। युधिष्ठिर की ओर सात और दुर्योधन की ओर ग्यारह अक्षौहिणी* सेना आकर इकट्ठी हुईं।

युद्ध के बिना राज्य प्राप्त करने का उद्योग

पाण्डवों की ओर से राजा द्रुपद के गुरु दुर्योधन के पास हस्तिनापुर को भेजे गये थे। उन्होंने जाकर कहा कि पाण्डवों

* एक अक्षौहिणी सेना में १,०९,३५० पैदल, ६५,६१० घुड़-सवार, २१,८७० रथ, और २१,८७० हाथी होते हैं।

का-राज्य उनको वापस मिलना चाहिए। इस पर भीष्म, द्रोण, इत्यादि वृद्ध और बुद्धिमान् पुरुषों ने पाण्डवों के समीप सञ्जय को उनका विचार जानने के लिए भेजा। सञ्जय पाण्डवों के पास गये। पाण्डवों ने कहा कि "विना युद्ध किये यदि राज्य का योग्य भाग हमको मिल जावे तो युद्ध करने की हमें इच्छा नहीं है।" इसे श्रीकृष्णजी ने भी पसन्द किया। सञ्जय ने यह सारा हाल धृतराष्ट्र को आ सुनाया। धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को आधा राज्य बाँट देकर घर की रार मेटने का दुर्योधन को उपदेश दिया। भीष्म, द्रोण इत्यादि वृद्ध पुरुषों ने भी दुर्योधन को ऐसा ही करने की अनुमति दी; परन्तु विना युद्ध के राज्य न देने का दुर्योधन ने हठ किया। इस दुराग्रह में कर्ण ने हाँ में हाँ मिलाई। इसलिए इसका निपटेरा होना कठिन हो गया।

युद्ध न होने देने के लिए श्रीकृष्णजी का उद्योग

किसी प्रकार दुर्योधन का मन युद्ध की प्रतिज्ञा से हटाने के लिए श्रीकृष्णजी स्वयं कौरवों के पास जाने और उन्हें समझाने को तैयार हुए। इस पर युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णजी को बहुत कुछ समझाया कि वहाँ जाने से हमारा और आप दोनों का ही विना कारण अपमान होगा। परन्तु श्रीकृष्णजी ने उत्तर दिया कि "जगत् की भलाई के आगे मुझे अपने मानापमान का विचार नहीं है।" ऐसा कह श्रीकृष्णजी, किसी की भी न सुनकर, कौरवों के पास गये। उन्होंने वहाँ पहुँचकर पहले

धृतराष्ट्र, फिर विदुर, कुन्ती और तब दुर्योधन से क्रम-क्रम से भेंट की। उन्होंने अपनी चीज़-वस्तु विदुर के घर रखकर वहीं भोजन किया। सभा के समय दुर्योधन और शकुनि विदुर के घर जाकर आदरपूर्वक श्रीकृष्णजी को बुला लाये। सभा में श्रीकृष्णजी के साथ विदुर भी आये। वहाँ बड़े-बड़े विद्वान्, पण्डित, नीतिज्ञ, राजे, महाराजे, ऋषि और मुनि एकत्रित थे। श्रीकृष्णजी ने सबके सामने कहा कि हम कौरव-पाण्डवों की रार मिटाने के लिए आये हैं। आपस की फूट से कैसे-कैसे अनर्थ उठ खड़े होते हैं और उससे दोनों पक्षों का नाश होता है, यह श्रीकृष्णजी ने सभा में सबके सामने कह सुनाया। पीछे महर्षि जमदग्नि और कण्व तथा देवर्षि नारद ने पौराणिक कथाओं के दृष्टान्त दे-देकर श्रीकृष्णजी के कथन का अनुमोदन किया। महाराज धृतराष्ट्र ने भी कहा कि जो कुछ श्रीकृष्णजी और ऋषियों ने कहा वह बहुत ही उत्तम है। यह लोकाचार के योग्य, धर्मशास्त्र के अनुकूल और न्याय के अनुसार है। इसमें किसी प्रकार की शङ्का नहीं है। परन्तु रार मेटना अथवा न मेटना मेरे हाथ में नहीं। दुर्योधन हिताहित की ओर चित्त नहीं देता। इससे मेरा यह निवेदन है कि श्रीकृष्णजी ये बातें मुझसे न कहकर दुर्योधन से कहें तो अच्छा हो। धृतराष्ट्र की बात सुनकर श्रीकृष्णजी ने द्रोण, भीष्म और विदुर इत्यादि बुद्धिमान् लोगों को दुर्योधन के पास समझाने को भेजा। दुर्योधन ने क्रोधित होकर उत्तर दिया कि "पाण्डव तो पाँच ही हैं, हम सौ हैं। अपना बलाबल देखकर जो माँगना हो वह माँगें। परन्तु मैं बिना युद्ध के पाँच गाँव तो दूर रहे, सुई की नोक के बराबर भी भूमि नहीं दूँगा।" श्रीकृष्णजी ने कहा, "दुर्योधन! क्रोध पाप का मूल है; शान्त हो।" परन्तु दुर्योधन ने श्रीकृष्णजी के कहने पर कुछ भी ध्यान न दिया। तब श्रीकृष्णजी

ने क्रोधित होकर कहा—"दुर्योधन! तुम्हारे कुल का नाश हुआ ही चाहता है, इससे अच्छा यही है कि राज्य का योग्य भाग पाण्डवों को दो, अन्यथा तुम्हारा नाश भी होगा और सारा राज्य भी देना पड़ेगा।" यह सुनकर दुर्योधन क्रोधवश हो सभा से उठकर चला गया। उसके पीछे दुःशासन, शकुनि और कर्ण इत्यादि लोग भी उठकर चले गये। तब सारे क्षत्रिय-कुल का नाश देखने की अपेक्षा दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि और कर्ण को ही पकड़कर पाण्डवों के हवाले करने का विचार श्रीकृष्णजी ने अपने मन में किया। इधर दुर्योधन ने भी श्रीकृष्ण के पकड़ने का दाँव सोचा। इस दाँव को सात्यकि ने श्रीकृष्ण, विदुर और धृतराष्ट्र पर प्रकट कर दिया। तब धृतराष्ट्र ने फिर दुर्योधन को सभा में बुलाया और श्रीकृष्णजी ने उसके सामने अपना अलौकिक बल और पराक्रम बतलाकर सभास्थान छोड़ विराट-नगर की राह ली। भीष्म और द्रोण, दोनों ही, मन से पाण्डवों की धार्मिकता पर प्रसन्न थे। परन्तु यह सोचकर कि हमने कौरवों का अन्न खाया है, युद्ध में वे उन्हीं की ओर हुए।

कर्ण कुन्ती का सबसे बड़ा पुत्र था। उसको श्रीकृष्णजी ने बहुत समझाया कि तुम पाण्डवों के बड़े भाई हो, तुम उनकी ओर होकर इस रार को मेटो। वे तुमको राजपद देकर तुम्हारी सेवा करेंगे। इसका उसने उत्तर दिया, यह सच है कि मैं कुन्ती का पुत्र हूँ। परन्तु उसने मुझे बाल-अवस्था में ही छोड़ दिया था। तब से मेरा पालन-पोषण अधिरथ नामक सारथि ने किया। इस कारण अधिरथ और उसकी स्त्री राधा ही मेरे सच्चे माँ-बाप हैं। उनको दुर्योधन ने राज्य देकर मेरा भी मान किया है। इस कारण उनके लिए प्राण देना मेरा धर्म है। एक बार स्वयं कुन्ती ने कर्ण से भेंट कर ऐसा ही कहा

था, परन्तु कर्ण ने उसे भी पूर्ववत् ही उत्तर दिया था। हाँ, इतना और अधिक कहा था कि मैं युधिष्ठिर, भीम अथवा नकुल, सहदेव, किसी को नहीं मारूँगा; केवल अर्जुन से युद्ध करूँगा; फिर चाहे मेरे प्राण जावें या रहें।

जब श्रीकृष्णजी लौट आये और सब समाचार उन्होंने पाण्डवों से कह सुनाया तब लड़ाई की तैयारियाँ बड़ी धूम-धाम से दोनों ओर होने लगीं। श्रीकृष्ण के कथनानुसार पाण्डवों ने द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न को अपना सेनापति बनाया और अपनी सात अक्षौहिणी सेना लेकर कुरुक्षेत्र के मैदान में, हिरण्यवती नदी के तट पर उन्होंने अपना डेरा डाला। उधर कौरवों ने सेनापति का पद भीष्म पितामह को दिया और अपनी ग्यारह अक्षौहिणी सेना लेकर वे युद्ध-क्षेत्र में आ डटे।

६—भीष्म-पर्व

इसमें दस दिन तक कौरवों के सेनापति रहकर भीष्म पितामह
के पाण्डवों से लड़ने का वर्णन है; इस कारण
इसको भीष्म-पर्व कहते हैं।

कौरवों और पाण्डवों का युद्ध आरम्भ होगा, यह देख श्रीकृष्णजी ने, अर्जुन के सारथि बन, उनका रथ दोनों सेनाओं के बीच में ला खड़ा किया। अर्जुन ने दोनों सेनाओं की ओर देखा और शत्रुओं की सेना में भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य सदृश पूज्य पुरुष, गुरु, मामा, काका, भाई, पुत्र और मित्र आदि को देखा। वे यह समझकर कि मेरे हाथ से ये मारे जावेंगे, मोह के वशीभूत हो गये। राज्य का लाभ और सुख की प्राप्ति यदि इनको मारकर अकेले हमको मिली तो हमें क्या आनन्द होगा? यह सोचकर अर्जुन का शरीर काँपने लगा। अङ्ग में रोमाञ्च हो आये और हाथ से धनुष-बाण गिर पड़े। यह दशा देख श्रीकृष्णजी ने उनको उपदेश करना आरम्भ किया। उन्होंने कहा कि अपना कर्त्तव्य हर एक को करना चाहिए। उसमें कभी चूकना न चाहिए। ऐसा करने से यदि अपने हाथ से कोई बुरा काम भी हो जाय तो पाप नहीं लगता। अपना कर्त्तव्य-पालन, ईश्वर का स्मरण, फल की आशा का त्याग—यही सच्चा धर्म है, यही पुण्य है

और यही मुक्ति का साधन है। इस प्रकार बहुत कुछ समझा-बुझाकर उन्होंने अर्जुन का समाधान किया। इसी उपदेश-प्रकरण का नाम "भगवद्गीता" है*।

श्रीकृष्णजी के उपदेश के बाद युद्ध आरम्भ हुआ। रथ-सवारों से रथसवार, घुड़सवारों से घुड़सवार और पैदलों से पैदल भिड़ गये। युद्ध में पहले दिन राजा विराट के पुत्र कुमार उत्तर और शल्य से युद्ध हुआ। दूसरे दिन कौरवों ने व्यूहरचना करके लड़ाई की। उसमें कलिङ्ग देश के दो राजे मारे गये। इसके सिवा असंख्य वीर योद्धाओं का नाश हुआ। आगे भीष्म पितामह और अर्जुन में युद्ध होने लगा। पहले तो अर्जुन ने भीष्म पितामह से लड़ने में आनाकानी की; परन्तु जब श्रीकृष्ण स्वयं सुदर्शन चक्र हाथ में ले भीष्म पितामह से लड़ने को आगे बढ़े तब अर्जुन ने लज्जित हो उनको पीछे कर अपने आप शस्त्र उठाया। अकेले भीष्म पितामह, नियमानुसार प्रतिदिन, दस हज़ार वीरों को मारकर शङ्ख बजा, रणभूमि से चले जाते थे। इस प्रकार नौ दिन तक बड़ा भयङ्कर संग्राम हुआ। अर्जुन ने भी अपनी विजय और अपनी सेना की रक्षा के लिए कोई बात उठा नहीं रक्खी। परन्तु भीष्म पितामह की बुद्धि और उनके बाहुबल के सामने अर्जुन की एक न चली। नौ दिन युद्ध करके दसवें दिन भीष्म पितामह ने दुर्योधन से कहा कि मैंने प्रतिज्ञानुसार नौ दिन युद्ध किया। आज दसवाँ दिन है। या तो आज सदैव के लिए मैं विश्राम लूँगा, या पाण्डवों को विजय करके ही लौटूँगा। इस प्रकार कह

---

*यही भगवद्गीता सरल हिन्दी-भाषा में "बाल-गीता" के नाम से प्रकाशित हो गई है, जो इण्डियन प्रेस, प्रयाग से ।।।) में मिलती है।

भीष्म पितामह युद्ध करने लगे। अर्जुन ने राजा द्रुपद के पुत्र शिखण्डी को सारथि बनाकर भीष्म को बाणों से व्याकुल कर दिया। अधिक घाव लगने से भीष्म मूर्च्छित हो गये और मूर्च्छा छूटने पर, वीरों के समान, उन्होंने अपना शरीर शर-शय्या पर रखवाया। अब वे मृत्यु की बाट देखने लगे। उस समय लड़ाई बन्द हो गई। सब कौरव और पाण्डव उनका समाचार लेने आये। कर्ण ने भीष्म के पास जाकर अति विनीत भाव से कहा कि जिससे आप सदा द्वेष करते आये हैं वह कर्ण अब आपकी सेवा को प्रस्तुत है। भीष्म पितामह ने कहा कि मैं तुमको सदैव अच्छी दृष्टि से देखता था। मैंने तुमसे कभी द्वेष नहीं किया। तुम बिना कारण पाण्डवों की निन्दा करते थे इसलिए मैं कभी कभी कटु शब्द कह देता था। परन्तु जो हुआ सो हुआ। अब तुम अहङ्कार छोड़कर तन, मन, धन से स्वामी के कार्य के लिए युद्ध करो। धर्म्मयुद्ध से बढ़कर क्षत्रियों को और कोई दूसरा शुभ कर्तव्य नहीं है। यही मेरा अन्तिम कथन है।



भीष्म की शर-शय्या

७—द्रोण-पर्व

भीष्म के बाद कौरवों के सेनापति द्रोणाचार्य हुए। उनका वर्णन इस पर्व में होने के कारण इसका नाम द्रोण-पर्व है।

अभिमन्यु-वध

भीष्म पितामह के बाद कौरवों के सेनानायक द्रोणाचार्य हुए। उन्होंने युधिष्ठिर को पकड़कर दुर्योधन के पास लाने की प्रतिज्ञा की। यह सुनकर पाण्डवों को भी किञ्चित् भय हुआ। श्रीकृष्ण की अनुमति से पाण्डवों ने भीम को अपना सेनापति बनाया। युद्ध में हज़ारों वीरों के सिर कट-कटकर गिरने लगे और असंख्य जीवों का नाश होने लगा। इस युद्ध में अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु ने बड़ा पराक्रम दिखलाया और सब उसकी प्रशंसा करने लगे। द्रोणाचार्य ने सेना का चमत्कारिक व्यूह रचकर युद्ध आरम्भ किया। यह देखकर पाण्डव विस्मित हुए, क्योंकि व्यूह तोड़ने की युक्ति श्रीकृष्ण और अर्जुन के अतिरिक्त और किसी को मालूम न थी। और ये दोनों उस समय दूसरी ओर युद्ध कर रहे थे। अभिमन्यु को व्यूह में प्रवेश करने की युक्ति तो मालूम थी, परन्तु बाहर निकलने की न मालूम थी। तब, पाण्डवों ने यह विचार किया कि अभिमन्यु व्यूह में प्रवेश करे, और भीम तथा अन्य कई योद्धा उसके पीछे पीछे जाकर व्यूह तोड़ने की चेष्टा करें। ऐसा निश्चय होने पर अभिमन्यु ने व्यूह तोड़कर भीतर प्रवेश किया। परन्तु भीम और अन्य



अभिमन्यु-वध

योद्धागण व्यूह के भीतर पैठ न सके। व्यूह के द्वार की रक्षा के लिए जयद्रथ खड़ा था। उसने भीम और अन्य योद्धाओं को व्यूह के भीतर न घुसने दिया। अभिमन्यु ने व्यूह के भीतर जाकर कौरवों के अनेक रथियों और महारथियों को घायल किया। दुर्योधन को भी उसने युद्ध में नीचा दिखाया। अन्त में दुर्योधन के विचारानुसार द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शकुनि, दुःशासन, कर्ण और दुर्योधन, इन सातों ने मिलकर अभिमन्यु का वध किया। मृत्यु के समय अभिमन्यु की आयु केवल सोलह वर्ष की थी!

जयद्रथ-वध

इस प्रकार अन्याय से अभिमन्यु के मारे जाने की बात दोनों ओर फैल गई। इस मृत्यु से धृतराष्ट्र को बड़ा दुःख हुआ। अर्जुन थोड़ी देर के लिए युद्ध बन्द कर शोक-सागर में डूबे रहे। परन्तु, जब उन्होंने यह सुना कि जयद्रथ ने अभिमन्यु के मरते समय उसके सिर पर एक लात मारी थी, तब वे क्रोधित हो एक-दम उठ खड़े हुए और उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि यदि मैं सवेरे से सूर्य्य डूबते सन्ध्या तक जयद्रथ को मार न डालूँ तो स्वयं अग्नि में जलकर मर जाऊँगा। यह बात सुनकर कौरवों ने जयद्रथ के बचाव की बहुत सी तदबीरें कीं। सात्यकि को युधिष्ठिर की रक्षा के लिए नियत कर श्रीकृष्ण और अर्जुन जयद्रथ को ढूढ़ने निकले। द्रोण और कर्ण जहाँ जयद्रथ था, वहाँ इन्हें जाने से रोकने का उपाय

करने लगे। इधर युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण और अर्जुन को गये बहुत समय बीता जान, व्याकुल हुए। उन्हें ढूँढ़ने के लिए उन्होंने सात्यकि को भेजा। सात्यकि अपनी जगह पर भीम को नियत कर उन्हें ढूँढ़ने को निकले। तब, सात्यकि को भी उन्होंने उस ओर जाने से रोका। जब सात्यकि के भी लौट आने में विलम्ब हुआ तब युधिष्ठिर ने घबराकर भीम को भेजा। भीम ने जाकर अनेक रथियों-महारथियों को मार भगाया। रण में चारों ओर हाहाकार मच गया। तब तक अँधियारा होने आया पर अर्जुन की प्रतिज्ञा पूरी न हुई। अब उन्होंने प्रतिज्ञा-नुसार अग्नि में प्रवेश करने का निश्चय किया। जयद्रथ भी हँसता हुआ अर्जुन की प्रतिज्ञा देखने को उस सेना से बाहर आ गया। श्रीकृष्णजी ने सुदर्शन चक्र से सूर्य्य को आड़ में कर दिया था। उसी से अँधेरा होकर सन्ध्या होने का भ्रम हो गया था। श्रीकृष्णजी ने अर्जुन से कहा कि तुम क्षत्रिय हो, तुमको अपने हथियार लेकर—धनुष में बाण लगाकर—अग्नि में प्रवेश करना योग्य है। जब इस प्रकार श्रीकृष्ण ने कहा तब अर्जुन ने उनके कथनानुसार ज्यों ही धनुष में बाण लगाया और अग्नि में प्रवेश करने लगे त्यों ही श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र को हटा लिया। हटाने से सूर्य्य का प्रकाश चारों ओर फैल गया और सामने ही जयद्रथ को खड़ा देख अर्जुन ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

घटोत्कच-वध

भीम के पुत्र घटोत्कच ने बहुत समय तक कौरवों से युद्ध करके उनके बहुत से वीरों का नाश किया। यह देखकर

कौरवों के मन में बड़ा दुःख हुआ और उसके मारने की वे युक्ति सोचने लगे। दुर्योधन ने कर्ण से कहा कि तुमको इन्द्र से जो एक शक्ति मिली है इस समय उससे काम लो। यह सुन कर्ण ने शक्ति से काम लिया और घटोत्कच का वध किया। जब घटोत्कच के मरने का समाचार पाण्डवों ने सुना तब उन्होंने बड़ा दुःख प्रकाशित किया। श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को यह समझाकर इस मोह को दूर किया कि शक्ति का उपयोग घटोत्कच पर हो गया, यह अच्छा ही हुआ; नहीं तो इसका उपयोग अर्जुन पर होता। यह सुनकर पाण्डवों का समाधान हुआ।

द्रोण-वध

घटोत्कच का वध सुनकर कौरवों ने बहुत आनन्द मनाया, परन्तु अब अर्जुन को मारने का कोई साधन न रहा। यह जानकर वे सब व्याकुल हुए। परन्तु जो होना था सो हो गया। होनहार मिटाये नहीं मिटती। अब दुर्योधन ने पाण्डवों पर ब्रह्मास्त्र छोड़ने का विचार किया और इसमें द्रोण की अनुमति ली। तब द्रोण ने पाण्डवों के मारने की प्रतिज्ञा की और धनुष-बाण ले वे युद्धक्षेत्र में आ विराजे। इधर श्रीकृष्ण ने पाण्डवों से कहा कि जब तक द्रोणाचार्य के हाथ में हथियार है तब तक उनको मारने की शक्ति किसी में नहीं है। इस कारण ऐसी युक्ति सोचना चाहिए जिससे द्रोणाचार्य के हाथ से हथियार पहले रखवा लिये जावें।

श्रीकृष्ण ने उनको यह सलाह दी कि यदि कोई यह असत्य बात जाकर उनसे कहे कि अश्वत्थामा मारा गया, तो वे पुत्र-शोक से व्याकुल होकर हथियार नीचे रख देंगे। यह सोच-कर कि झूठ बोलना महापातक है, भीम ने अश्वत्थामा नामक हाथी को मार द्रोणाचार्य से जाकर यह मुगहम बात कही— 'अश्वत्थामा मारा गया', परन्तु द्रोणाचार्य को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ और यह विचारकर कि युधिष्ठिर कभी झूठ बोलनेवाले नहीं हैं, उनके पास जाकर पूछा कि युधिष्ठिर! क्या अश्वत्थामा सचमुच मारा गया? युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णजी के बहुत समझाने पर यह कहा "हाँ, अश्वत्थामा मारा गया, परन्तु नर नहीं कुञ्जर (हाथी)!" "नर नहीं कुञ्जर" शब्द युधिष्ठिर ने कृष्ण के समझाने पर, बहुत धीरे से कहे, जिनको द्रोणाचार्य ने नहीं सुन पाया। द्रोणाचार्य ने—यह समझकर कि युधिष्ठिर ने जो कुछ कहा है अवश्य सच होगा,—पुत्र-शोक से व्याकुल होकर अपने हथियारों को पृथ्वी पर डाल दिया। इतने में राजा द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न ने उनका सिर काट लिया। इस प्रकार पाँच दिन युद्ध करके द्रोणाचार्य अपने कर्त्तव्य-कर्म से मुक्त हुए।

द्रोणाचार्य के मरने का समाचार सुनकर कौरवों ने अपार शोक किया।

अश्वत्थामा ने जब पिता की मृत्यु का समाचार सुना तब उन्होंने क्रोध-वश होकर पाण्डवों के नाश की प्रतिज्ञा की।



८—कर्ण-पर्व

द्रोणाचार्य के पीछे कर्ण ने कौरवों के सेनापति का काम किया। इसी का इसमें वर्णन है, इसी से इसको कर्ण-पर्व कहते हैं।

दुःशासन-वध

द्रोणाचार्य के बाद कर्ण कौरवों के सेनापति बने, परन्तु अश्वत्थामा की यह इच्छा थी कि मेरे पिता के बाद सेनापति का काम मुझे मिले, पर वह पूरी न हुई। तब अश्वत्थामा युद्ध छोड़कर चले गये। कौरव-पाण्डवों में फिर घनघोर युद्ध आरम्भ हुआ। एक ओर कर्ण और अर्जुन में युद्ध होने लगा, दूसरी ओर भीम और दुःशासन का मल्ल-युद्ध आरम्भ हुआ। दुःशासन को ज़ोर से पृथ्वी पर पटककर और उसकी छाती तोड़फोड़ उससे रक्त निकालकर भीम ने अपनी प्रतिज्ञा* (जो द्रौपदी का चीर खींचते समय उन्होंने की थी) पूरी की। अर्जुन ने भी कर्ण के पुत्र वृषसेन को उन्हीं के सामने मार डाला। इस पर कर्ण को बड़ा क्रोध आया।

कर्ण-वध

जब कर्ण का पुत्र वृषसेन मारा गया तब कर्ण ने जीवन की आस छोड़ बड़े क्रोध से अपना रथ आगे बढ़ाने की आज्ञा

---

* भीम की प्रतिज्ञा थी कि मैं दुःशासन का रुधिर पीकर अपनी प्यास बुझाऊँगा।

दी। सारथि ने घबराकर कहा, आपके रथ का पहिया पृथ्वी में गड़ गया, अब रथ आगे को नहीं बढ़ सकता। यह सुन-कर कर्ण को उस ब्राह्मण का वचन याद आया जिसने एक समय कहा था कि तुम्हारी मौत के समय तुम्हारे रथ के पहिये पृथ्वी में धँस जायँगे। कर्ण ने सोचा कि सम्भव है, वह समय सन्निकट हो। उन्होंने रथ से उतरकर पैदल ही अर्जुन से युद्ध किया। अर्जुन ने बाणों से कर्ण का शिरच्छेद कर डाला। इस प्रकार कर्ण, कौरवों के दो दिन सेनापति रहकर, स्वर्गधाम पधारे। इन दो दिनों में कौरवों के दल की बहुत बड़ी हानि हुई। यह हाल देख दुर्योधन को विजय में शङ्का उत्पन्न हुई और धीरज छूट गया।

९—शल्य-पर्व

एक दिन कौरवों के सेनापति का काम शल्य ने किया। उस दिन का वर्णन इस पर्व में है, इस कारण इसको 'शल्य-पर्व' कहते हैं।

युद्ध के अठारहवें दिन शल्य कौरवों के सेनापति नियत हुए। भीष्म, द्रोण, कर्ण सरीखे महापराक्रमी वीरों का एक-एक करके नाश हुआ। अब अपने पक्ष की क्या दशा होगी? इस प्रकार की चिन्ता दुर्योधन करने लगे। इसी समय युधिष्ठिर ने शल्य को भी मार डाला। यह समाचार सुन दुर्योधन बहुत ही व्याकुल हुए और उन्हें अपने नाश के सारे चिह्न दिखलाई पड़ने लगे। शल्य को मरे हुए अभी कुछ भी देर न हुई थी कि इतने में सहदेव के हाथ से शकुनि के मारे जाने का समाचार मिला। यह सुनकर दुर्योधन का रहा-सहा साहस टूट गया तब वह स्वयं हाथ में गदा लेकर युद्ध के लिए निकला। रास्ते में सञ्जय से उसकी भेंट हुई। दुर्योधन ने उससे कहा कि कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा ये तीन वीर बाकी हैं, युद्ध-यज्ञ में और सब स्वाहा हो गये। यह समाचार तुम धृतराष्ट्र से जाकर कह देना। वे स्वयं गदा को ले, एक सरोवर में जाकर छिप रहे। पाण्डवों ने दुर्योधन को बहुत ढूँढ़ा परन्तु कहीं भी वे दिखाई न पड़े। ढूँढ़ते-ढाँढ़ते पाण्डव भी उसी सरोवर के निकट जा पहुँचे। वहाँ दुर्योधन को देख युद्ध के लिए वे बुलाने लगे। तब दुर्योधन ने बाहर निकलकर भीम के साथ गदा-युद्ध करना स्वीकार किया। इन दोनों का युद्ध देखने के लिए बहुत

से आदमी इकट्ठे हुए। श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम, तीर्थ-यात्रा करते कराते, उस समय इस सरोवर के पास आ पहुँचे, और दोनों का युद्ध देखने को ठहर गये।

गदा-युद्ध में एक यह नियम है कि लड़नेवाले के शरीर पर कमर से नीचे गदा नहीं मारते। परन्तु दुर्योधन के वध की प्रतिज्ञा भीम ने पहले ही की थी। उसका ध्यान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिलाया। अर्जुन ने अपनी बाँईं जाँघ ठोककर भीम को प्रतिज्ञा का स्मरण करा दिया। तब, मौक़ा पाकर भीम ने दुर्योधन को जाँघ पर गदा का प्रहार किया। जाँघ पर गदा लगते ही दुर्योधन पृथ्वी पर गिर पड़ा। बीच सभा में दुर्योधन ने द्रौपदी की जो प्रतिष्ठा-हानि की थी, उसका स्मरण कर भीम ने दुर्योधन के सिर पर एक लात मारी। भीम का यह अन्याय देखकर उपस्थित लोगों को बहुत बुरा लगा और स्वयं युधिष्ठिर को भी इस पर पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने भीम को रोक करके दुर्योधन का समाधान किया। गदा-युद्ध का नियम तोड़कर भीम ने अन्याय किया, इस पर बलराम को क्रोध आ गया और वे भीम को मारने पर उद्यत हुए। तब श्रीकृष्णजी ने सभा में बुलाकर द्रौपदी की दुर्दशा करने का हाल बलराम को बतलाकर उनका क्रोध शान्त किया। दुर्योधन के घायल हो जाने पर अश्वत्थामा ने कहा—आज ही मैं पाण्डवों का नाश करता हूँ। ऐसी प्रतिज्ञा कर, कौरवों के सेनापति बन, वे युद्ध के लिए निकले।

१०—सौप्तिक-पर्व

द्रौपदी के सोते हुए पाँचों पुत्रों को अश्वत्थामा ने मार डाला; इस घटना का वर्णन इस पर्व में है, इस कारण इसको सौप्तिक-पर्व कहते हैं।

दुर्योधन की मृत्यु

पाण्डव तो दुर्योधन को गदा-युद्ध में घायल कर चले गये और सन्ध्या होने पर कौरवों के बचे हुए योद्धा अपने-अपने स्थान पर जाकर सो रहे। कृतवर्मा और कृपाचार्य तो लेटते ही सो गये, परन्तु अश्वत्थामा को बाप के मरने और अपने पक्ष के हारने की चिन्ता से निद्रा न आई। वह पाण्डवों से इसका बदला लेने का विचार करने लगा। तब तक एक पेड़ पर उसकी दृष्टि पड़ी। उसने देखा कि एक पक्षी अभी हाल ही में वृक्ष पर आकर एक सोती हुई चिड़िया के बच्चों को निकालकर खा रहा है। यही देखकर उसे ध्यान आया कि यदि हम भी, इसी समय, पाण्डवों के दल में जाकर सोते हुए पाँचों भाइयों का सिर काट लावें तो बिना प्रयास बाप का बदला मिल जावे, और हमारे पक्ष की जीत हो। यह सोचकर अश्वत्थामा ने उन दोनों वीरों से अपने साथ पाण्डवों के दल में चलने को कहा, परन्तु वे ऐसा पापकर्म करने के लिए राज़ी न हुए। तब उसने अपने मामा कृपाचार्य से बहुत

विनती की और कहा कि इस समय रात को शत्रु बेसुध पड़े सोते होंगे। उनके दल में जाकर पाँचों पाण्डवों का सिर काट लेना यद्यपि पाप है, परन्तु बाप का बदला लेने का यह बहुत ही अच्छा अवसर है। इस पाप-कर्म के बदले में चाहे जो फल इस जन्म में या दूसरे जन्म में मिले, मुझे स्वीकार है। तब कृपाचार्य इस काम में सहमत हुए और कृतवर्मा भी चलने को राज़ी हुए। ये तीनों पुरुष छिपकर पाण्डवों के दल के समीप पहुँचे। अश्वत्थामा तो पाण्डवों के दल में घुस गये और कृपाचार्य और कृतवर्मा बाहर खड़े रहे। अश्वत्थामा ने पहले शस्त्र-हीन, सोते हुए धृष्टद्युम्न को जगाकर मार डाला। इसी प्रकार क्रम से, अन्य सोते हुए वीरों का उसने वध किया। वह अपने मन में बड़ा प्रसन्न हुआ कि आज बाप का बदला मैंने चुका लिया। यह समाचार प्रसन्नतापूर्वक उसने दुर्योधन को, पास जाकर सुनाया। दुर्योधन ने भी, शत्रु से बदला ले लेने का समाचार जानकर आनन्द मनाया।

परन्तु वहाँ कुछ और ही हुआ। उस रात को पाण्डव कहीं शिविर से बाहर गये हुए थे। अश्वत्थामा ने द्रौपदी के पाँचों पुत्रों का, जो पाँच पाण्डवों के स्वरूप से मिलते थे, धोखे से सिर काट लिया और पाण्डवों को मरा जान आनन्द मनाया। यही जानकर दुर्योधन को भी आनन्द हुआ था। परन्तु सवेरा होने पर जब दुर्योधन को सच्चा हाल मालूम हुआ तब वे दुःख प्रकाश कर स्वर्ग-धाम पधारे। किसी समय दुर्योधन को शाप मिला था कि सुख-दुःख बराबर मिलने पर तुम मरोगे। पाण्डवों के मारे जाने की ख़बर से सुख और उनके निरपराध पुत्रों का वध होना सुनकर उन्हें दुःख हुआ। इस प्रकार सुख-दुःख की बराबर सीमा होने पर उनका देहान्त हुआ।

द्रौपदी ने जब अपने पाँचों पुत्रों को मरे पड़े देखा तब शोकसागर में डूबकर क्रोधित हो उसने पाण्डवों से कहा कि जब तक अश्वत्थामा को मारकर और उसके सिर से मणि निकालकर मुझे न ला दोगे तब तक मैं अन्न-जल कुछ भी ग्रहण न करूँगी और अपने प्राण दे दूँगी। भीम ने अश्वत्थामा को मारकर मणि लाना स्वीकार किया और इस काम के लिए वे बाहर निकले। परन्तु अश्वत्थामा के पास ब्रह्मशिर नामक अस्त्र है, अतः उसके आगे भीम की एक भी न चलेगी,—यह विचारकर श्रीकृष्णजी युधिष्ठिर और अर्जुन को साथ लेकर भीम के पीछे-पीछे गये। भीम और अश्वत्थामा से युद्ध हुआ। परन्तु नारद और व्यास ने बीच में पड़कर अश्वत्थामा की जान बचाई। अश्वत्थामा ने अपने सिर से मणि निकालकर भीम के हवाले की और भीम ने अश्वत्थामा को जीव-दान देकर वह मणि द्रौपदी के आगे ला धरी।

११—स्त्री-पर्व

इस पर्व में कौरवों की स्त्रियों के शोक का वर्णन है; इस कारण इसको स्त्री-पर्व कहते हैं।

कुरुक्षेत्र में बहुत बड़ा युद्ध हुआ। हज़ारों मनुष्य और हाथी-घोड़े मारे गये। लाशें मैदान में अड़ी पड़ी थीं। पाण्डवों ने धीरे-धीरे सबके दाह-संस्कार का प्रबन्ध किया। कौरवों के सारे वीर नष्ट हो गये। जब यह समाचार हस्तिनापुर में पहुँचा तब वहाँ हाहाकार मच गया। नगर की सारी स्त्रियाँ, कोई पति के लिए, कोई पुत्र के लिए, कोई भाई-बान्धवों के लिए रो-कर शोक प्रकट करने लगीं, और अपने-अपने सम्बन्धियों के अन्तिम दर्शन के लिए विकल होकर कुरुक्षेत्र को चलीं। धृतराष्ट्र और गान्धारी भी पुत्र-शोक से व्याकुल होकर कुरुक्षेत्र में पहुँचे। पाण्डवों ने उन्हें बड़े आदर-सत्कार से लिया। धृतराष्ट्र ने, यह सोचकर कि हमारे पुत्र दुर्योधन और दुःशासन इत्यादि को भीम ने मारा है, पाण्डवों से बदला लेना चाहा। ऊपरी मन से उन्होंने कहा कि भीम ने अलौकिक पराक्रम दिखलाया है इस कारण मैं उससे प्रेमपूर्वक मिलना चाहता हूँ। तब श्रीकृष्णजी ने धृतराष्ट्र का आन्तरिक भाव समझकर एक लोहे की मूर्ति उनके सामने खड़ी कर दी। उसको भीम समझकर धृतराष्ट्र ने ख़ूब ज़ोर से दाँत पीस कर

१२—शान्ति-पर्व

लड़ाई हो जाने के बाद जब शान्ति का समय आया तब का हाल इस पर्व में है; इस कारण इसको शान्ति-पर्व कहते हैं।

सम्पूर्ण मृतकों का अन्तिम संस्कार कर युधिष्ठिर शान्त हुए। अब यह विचारकर कि जिस राज्य के लिए अपने सारे भाई-बान्धवों को हमने मारा उस राज्य को भोगने से हमको कुछ भी आनन्द नहीं है, वे अर्जुन को गद्दी दे स्वयं वन में जाने को तैयार हुए। परन्तु यह विचार किसी को भी पसन्द न आया। श्रीकृष्णजी ने और अन्य ऋषि-मुनियों ने उन्हें बहुत कुछ समझाया। तब बड़े सोच-विचार के बाद उन्होंने राजगद्दी पर बैठना स्वीकार किया। शुभ मुहूर्त्त आने पर हस्तिनापुर में युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हुआ और वे न्यायपूर्वक राज्य करने लगे। राज्य में ग़रीबों के भोजन का प्रबन्ध उन्होंने किया। धर्मशालाएँ और पाठशालाएँ भी उन्होंने बनवाईं और अन्य बहुत से धर्म के काम किये। इस प्रकार शान्तिपूर्वक पाण्डव सुख से राज्य करने लगे।

१३—अनुशासन-पर्व

इस पर्व में भीष्म पितामह ने पाण्डवों को उपदेश दिया
है; इस कारण इसको अनुशासन-पर्व
कहते हैं।

पाण्डव आनन्दपूर्वक राज्य करने लगे, परन्तु अपने भाई-बन्दों को मारने से उनके मन में बड़ी ग्लानि आई और लाख तदबीरें करने पर भी मिटाये नहीं मिटी। जब उन्होंने किसी प्रकार मन को शान्ति मिलते न देखी तब भीष्म पितामह के पास, जो बाण-शय्या पर पड़े मृत्यु की बाट देख रहे थे, जाकर अपना हाल कह सुनाया। महात्मा भीष्म ने बहुत कुछ उपदेश देकर पाण्डवों का समाधान किया। जो कुछ उपदेश पाण्डवों को भीष्मजी ने किये उनमें से कुछ हम नीचे लिखते हैं। महात्मा भीष्म ने कहा—

"युद्ध करने को अपने सामने कोई आवे तो उसको मारना अथवा हरा देना क्षत्रियों का धर्म है। स्वयं अपना बाप अथवा भाई भी लड़ने आवे तो उससे युद्ध करना और उसको मारना क्षत्रियों का परम धर्म है। इसमें कोई पाप नहीं लगता; क्योंकि अपना कर्तव्य-पालन करना ही धर्म है।"

राजा को कैसा होना चाहिए इस विषय में भीष्मजी ने कहा—

"राजा धार्मिक, बुद्धिमान्, निर्व्यसनी, अपने कर्तव्य-कर्म में तत्पर, न्यायी, सत्यवक्ता और धैर्यवान् होना चाहिए। वह प्रजा को पुत्रतुल्य समझे; प्रजा के सुख के लिए अपना सुख छोड़ दे। वृद्ध, विद्वान् और पण्डितों की सेवा करे। उनसे राजकाज में वह अच्छी-अच्छी सलाह लेकर काम करे। वह हर एक काम को सोच-विचारकर न्यायपूर्वक करे। जो राजा इस प्रकार रहता है उसका कभी किसी बात का भय नहीं रहता। ऐसे गुणवान् राजा के ऊपर प्रजा अपना तन, मन और धन सदैव न्यौछावर करती है।"

महाराज युधिष्ठिर ने फिर पूछा कि पितामहजी! मनुष्यों के ऊपर एक राजा क्यों राज्य करता है? तब भीष्मजी ने कहा—

"प्रथम 'राजा' पदवी ही न थी। सब लोग अपने-अपने धर्म और कर्त्तव्य-कर्म का पालन करते थे। उस समय कोई किसी के ऊपर शासन नहीं करता था। परन्तु थोड़े समय बाद जब लोग दुर्व्यसनी, लोभी, पापी और दुष्ट हो गये; वे दूसरों का माल ज़बरदस्ती छीन लेने लगे तब एक सत्यवादी, न्यायी, पुण्यवान्, सदाचारी और बलवान् पुरुष की आवश्यकता हुई, जो उन पर शासन करे और बुरे कर्मों का उन्हें दण्ड दे। ऐसे उपकारी मनुष्य ईश्वर की आज्ञा में रहते हैं। इसी कारण सर्वसाधारण उनकी आज्ञा पालते हैं और उसे अपना 'राजा' मानते हैं। जिस राज्य में राजा नहीं वह राज्य शीघ्र नष्ट हो जाता है। जहाँ दुष्टों को दण्ड देनेवाला कोई नहीं होता वहाँ पुण्यात्मा जीवों को बड़ा कष्ट मिलता है।"

फिर युधिष्ठिर ने प्रश्न किया कि उद्योग और भाग्य में श्रेष्ठ कौन है?

भीष्मजी ने उत्तर दिया—

"भाग्य से उद्योग श्रेष्ठ है क्योंकि भाग्य सञ्चित कर्मों का ही फल है, अर्थात् जैसे कर्म उस जन्म में मनुष्यों ने किये हैं वैसा ही फल इस जन्म में मिलता है; यदि उस जन्म में उन्होंने बुरे कर्म किये हैं तो इस जन्म में उन्हें बुरे फल प्राप्त होते हैं। इससे हमेशा अच्छे कर्म करना और बुरे कर्मों को छोड़ना मानो अपने भाग्य को श्रेष्ठ बनाना है।"

युधिष्ठिर ने पूछा—तप किसे कहते हैं? इस विषय में भीष्मजी ने उत्तर दिया—

"अहिंसा (दूसरे को दुःख न पहुँचाना), सत्य में प्रीति, दया और परोपकार ही का नाम तप है। उपवास करके देह सुखाना तप नहीं है।" भीष्मजी ने इस विषय में एक उदाहरण दिया। उन्होंने कहा कि एक समय राजा जनक और ब्रह्मवादिनी सुलभा में वाद हुआ कि सच्चा तपस्वी कौन है? राजा जनक ने कहा कि गेरुए वस्त्र पहनने, सिर मुड़ाने, और हाथ में दण्ड-कमण्डलु लेने से कोई तपस्वी नहीं होते। ये तपस्वी के बाहरी चिह्न हैं। परन्तु इस बाहरी चिह्नों से मुक्ति नहीं प्राप्त होती। जिसकी आत्मा शुद्ध है, सांसारिक बातों में जिसका मन नहीं फँसा, उसके पास चाहे गेरुए वस्त्र हों चाहे न हों, वही सच्चा तपस्वी है, वही सच्चा योगी और वही सच्चा संन्यासी है।"

फिर युधिष्ठिर ने कहा कि बालकों के कर्त्तव्य के विषय में कुछ कहिए। इस पर भीष्मजी ने कहा—

"माँ, बाप और गुरु की सेवा करना, ब्रह्मचर्य और सदाचारी रहना, बालकों का मुख्य कर्त्तव्य है। अर्थात् माता, पिता और गुरु का सत्कार करना, उनकी आज्ञा पालना और

उनके इच्छानुकूल वर्ताव रखना ही उनका धर्म है। माँ-बाप से गुरु का दर्ज़ा बड़ा है, क्योंकि माँ-बाप तो केवल पैदा करते हैं, परन्तु शिक्षा देकर योग्य बनाना गुरु का ही काम है। इस कारण उनकी प्रतिष्ठा करने और उनके आज्ञानुकूल चलने ही में लड़कों का हित है। ब्रह्मचर्य से वीर्य की पुष्टि होकर दोनों लोकों में सुख मिलता है। बिना ब्रह्मचर्य के सच्चा सुख संसार में दुर्लभ है। क्योंकि यदि वुद्धि हुई और बल न हुआ तो उस वुद्धि से क्या लाभ? बीमार और निर्वल मनुष्य ही संसार में अधिक दुखी रहता है। इस कारण वालकों को ब्रह्मचारी रहना बहुत ज़रूरी बात है। ब्रह्मचर्य से सदाचारी होने में सहायता मिलती है। सदाचारी होने से इस लोक में कीर्ति और परलोक में सुख प्राप्त होता है।"

महाराज युधिष्ठिर ने फिर पूछा कि धर्म का सार क्या है?

भीष्मजी ने उत्तर दिया—

"दया ही धर्म का सार है। अपने समान दूसरों को समझने ही से दया का बीज उगता है। अहिंसा धर्म का मूल है; और ईश्वर में अविचल प्रेम धर्म का काया है।"

महाराज युधिष्ठिर ने फिर पूछा कि ईश्वर कैसा और कहाँ है?

भीष्मजी ने उत्तर दिया—

"ईश्वर सारे जगत् को बनानेवाला, एक, अद्वितीय है; उसके बराबर कोई नहीं है। वह अनन्त है; अर्थात् उसका आदि-अन्त कुछ नहीं है। वह सर्वव्यापक है; अर्थात् सारे जगत् में फैल रहा है। वह निर्विकार है, अर्थात् सब प्रकार के विकारों से रहित है। सर्वव्यापक होने पर भी उसको कोई-कोई विचारवान् पुरुष ही जान सकते हैं। उसको जानने

और उसकी आज्ञा पालने के लिए मनुष्यमात्र को तत्पर रहना चाहिए।"

इस प्रकार युधिष्ठिर के पूछने पर भीष्मजी ने उनको उपदेश दिया और सूर्य्य उत्तरायण होने पर धृतराष्ट्र के मन का समाधान कर, पाण्डवों को पुत्रवत् समझने का उपदेश दे—अक्षय सुख पाने के लिए—परब्रह्म परमेश्वर की पवित्र गोद में सदैव के लिए वे इस असार संसार को छोड़ कर चल दिये।

१४—अश्वमेध-पर्व

इस पर्व में पाण्डवों के अश्वमेध-यज्ञ का वर्णन है;
इस कारण इसको अश्वमेध-पर्व कहते हैं।

भीष्मजी के मरने के बाद युधिष्ठिर ने उनकी अन्तिम क्रिया की। युद्ध में अपने अनेक भाई-बन्दों को मारने के पाप से छुटकारा पाने के लिए वे बहुत चिन्तित हुए। व्यास और श्रीकृष्णजी ने उनको क्षत्रियों का धर्म बहुत कुछ समझाया और कहा कि युद्ध में मरना-मारना क्षत्रियों का काम ही है, परन्तु युधिष्ठिर की शान्ति किसी प्रकार न हुई। तब श्रीकृष्णजी ने अश्वमेध-यज्ञ करने की सलाह दी। परन्तु युद्ध में बहुत सा धन ख़र्च हो जाने से ख़ज़ाना ख़ाली हो गया था, इस कारण हिमालय पर्वत के पार से धन लाने को व्यासजी ने कहा। तब पाण्डव धन लेने को हिमालय पार गये और श्रीकृष्ण द्वारका को रवाना हुए।

परीक्षित का जन्म

पाण्डव हिमालय पार जाकर धन की खोज करने लगे। ईश्वर की कृपा से जहाँ वे पृथ्वी खोदते वहीं उन्हें बहुत सा धन प्राप्त होता। इस प्रकार असंख्य धन लेकर पाण्डव अपनी राजधानी को लौट आये। इधर अभिमन्यु की स्त्री उत्तरा गर्भ-

वती थी। उसके गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ, परन्तु पुत्र पैदा होते ही मर गया। यह चरित्र देख सुभद्रा और कुन्ती इत्यादि स्त्रियाँ रोने लगीं और कहने लगीं कि अभिमन्यु के मरने के बाद विधवा उत्तरा ने इसी आशा से इतने दिन बिताये कि पुत्र होने पर कुल का नाम चलेगा; परन्तु वह आशा भी पूरी न हुई। तब श्रीकृष्णजी ने बालक को मृत देख अपने उद्योग से उसे जीवित कर दिया। यह देख सब लोग श्रीकृष्णजी की वन्दना करने लगे और कहने लगे कि आपने इस पुत्र को जिला कर इस कुल पर बड़ा उपकार किया है। अन्त में बालक का नाम परीक्षित रक्खा गया।

अश्वमेध-यज्ञ

पाण्डवों के हिमालय से लौट आने पर यज्ञ की तैयारियाँ होने लगीं। कर्ण के पुत्र वृषकेतु और घटोत्कच के पुत्र मेघवर्ण को साथ लेकर भीमसेन अश्वमेध के योग्य घोड़ा देखने को घर से बाहर निकले। बड़े परिश्रम से उन्हें घोड़ा मिला। महाराज युधिष्ठिर के हाथ से यज्ञ का आरम्भ होना निश्चय हुआ। अर्जुन को अश्व-रक्षा का काम सौंपा गया। अश्व, छोड़ने पर, त्रिगर्त, प्राग्ज्योतिषपुर, सिन्धु इत्यादि देशों में घूमता-घामता मणिपुर पहुँचा। यहाँ अर्जुन के पुत्र बभ्रुवाहन ने अपने पिता को न पहचान घोड़ा बाँध लिया तब उसका अर्जुन से युद्ध हुआ परन्तु शीघ्र ही दोनों ने एक दूसरे को पहचान युद्ध बन्द कर दिया। बभ्रुवाहन ने घोड़े को छोड़ दिया। आगे किसी ने घोड़े

को नहीं रोका। क्योंकि कौरवों के साथ युद्ध होने में पाण्डवों का बल सारे संसार में प्रकट हो गया था। अश्व के हस्तिनापुर लौट आने पर बड़े समारोह में यज्ञ का आरम्भ हुआ।

१५--आश्रमवासिक-पर्व

धृतराष्ट्र और विदुर इत्यादि लोग वन में जा आश्रम बनाकर रहे—इसका सारा वर्णन इस पर्व में है; इस कारण इसको आश्रमवासिक-पर्व कहते हैं।

अश्वमेध-यज्ञ समाप्त हो जाने पर राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित राज्य करने लगे और राज्य की व्यवस्था भी बहुत उत्तम प्रकार से उन्होंने की। पुत्र-शोक से व्याकुल धृतराष्ट्र ने वन में जाकर रहने का निश्चय किया। जब यह बात युधिष्ठिर को मालूम हुई तब उन्होंने बहुत कुछ समझाया, परन्तु धृतराष्ट्र के मन में उसका कुछ भी असर न हुआ। तब, लाचार होकर युधिष्ठिर ने भी उनको वन में जाने की अनुमति दी। विदुर, सञ्जय, गान्धारी और कुन्ती को साथ लेकर धृतराष्ट्र वन में जाकर रहने लगे। जाते समय सभी ने पाण्डवों को आशीर्वाद दिया। सबको प्रसन्न रखने से बड़े-बूढ़े आशीर्वाद देते ही हैं।

धृतराष्ट्र को देखने के लिए पाण्डवों का वन में जाना

धृतराष्ट्र वन में जाकर आश्रम बनाकर आनन्द से ईश्वर का भजन करने में निमग्न हुए। इधर पाण्डव भी अपने राज-

काज में लगे रहे। कुछ दिन बाद पाण्डवों को अपनी माता कुन्ती के देखने की इच्छा हुई। उन्होंने यह विचारा कि वहाँ जाने से माता के दर्शन तो होंगे ही साथ ही धर्मात्मा विदुर, नीतिमान् सञ्जय और वृद्ध धृतराष्ट्र के भी दर्शन होंगे। ऐसा विचार कर वे वन की ओर चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने सबसे भेंट की। भेंट करके वे फिर अपनी राजधानी को वापस आये।

एक दिन घूमते-घामते श्रीव्यासजी धृतराष्ट्र के निकट जा पहुँचे। धृतराष्ट्र ने बड़े आदर-सत्कार से उन्हें बिठाया और विनती की कि महाराज, हमारे पुत्र जो युद्ध में मारे गये हैं उनकी क्या गति होगी? कुन्ती ने कर्ण का समाचार जानने की इच्छा भी प्रकट की। तब व्यास ने अपनी अलौकिक शक्ति से सबका समाधान किया। जो कौरववीर युद्ध में मारे गये थे उनकी स्त्रियों ने इस समय गङ्गा-तट पर अपने प्राण छोड़े। कुछ दिन बीतने पर नारद मुनि ने हस्तिनापुर में आकर पाण्डवों को धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती के मरने का समाचार सुनाया। यह सुनकर पाण्डवों को बड़ा दुःख हुआ।



१६—मौसल-पर्व

इसमें अद्भुत रूप से उत्पन्न हुए मूसल-द्वारा यादव कुल का नाश वर्णन किया है; इस कारण इसको मौसल-पर्व कहते हैं।

युधिष्ठिर ने धर्म और न्यायपूर्वक ३६ वर्ष राज्य किया; परन्तु अब उनको समय विपरीत दिखाई पड़ने लगा। यदुवंशियों ने बड़ा उपद्रव मचाया। ऋषि-मुनि लोग उनके हाथों से दुःख पाने लगे। एक दिन बहुत से मनुष्य मिलकर एक पुरुष के पेट में कढ़ाई बाँध और लहँगा-चोली पहनाकर उसे नारद के पास ले गये। उनसे उन्होंने पूछा कि महाराज! इस स्त्री के लड़का होगा या लड़की? नारद ने यह जान लिया कि ये लोग हमसे हँसी-ठट्ठा करने आये हैं, इसलिए उन्हें शाप दिया कि इसके पेट में जो कुछ है उसी से तुम्हारा सर्वनाश होगा। इस प्रकार मुनि का शाप सुनकर सब लोग चुपचाप घर को चले आये और शाप-मोचन का उपाय सोचने लगे। सबने सलाह कर उस कढ़ाई को रेतवाकर चूर-चूर कर डाला और उस चूर को उन्होंने समुद्र में फेंक दिया कि अब इससे क्या विघ्न होगा। थोड़े समय पीछे मद्य पीकर सब लोग समुद्र-तट पर गये और वहाँ उन्होंने बड़ा ऊधम मचाया। यहाँ तक कि वे आपस में एक दूसरे से लड़ने लगे। कढ़ाई के लोहे का जो चूर उन्होंने समुद्र में डाला था उसकी, धारदार पैनी तलवारों के समान, पत्तीदार बेलें बन गई थीं। वह पानी में इधर-उधर हिलोरें लेती हुई दिखलाई पड़ने लगीं।

नशे की हालत में वे उन हथियारों को पानी से निकाल एक दूसरे को मारने लगे। उस लड़ाई में वे सब वहीं समाप्त हो गये। यह समाचार सुन बलराम ने कुसमय आया जान योग द्वारा शरीर त्याग किया, और श्रीकृष्ण एक बहेलिया के हाथ से मारे गये। जब यह समाचार पाण्डवों को विदित हुआ तब वे अर्जुन के पौत्र परीक्षित को राज्य देकर स्वर्ग जाने की तैयारी करने लगे।

१७—महाप्रास्थानिक-पर्व

इस पर्व में पाण्डवों का द्रौपदी-समेत स्वर्ग जाने का वर्णन है, इस कारण इसको महाप्रास्थानिक-पर्व कहते हैं।

पाण्डव राज्य छोड़ वन में जाने को निकले, यह देख हस्तिनापुर के नगरवासी शोक प्रकाश करने लगे। युधिष्ठिर ने सबका समाधान किया और सब भाई तथा द्रौपदी-सहित वे नगर से निकले। परन्तु नगर से ही एक कुत्ता उनके पीछे-पीछे हो लिया था। पाण्डवों ने समुद्र के तट पर पहुँचकर स्नान किया। उस समय अग्नि ने आकर अर्जुन से कहा कि हमारे दिये हुए अस्त्र-शस्त्र, गाण्डीव धनुष आदि समुद्र में फेंक दो। यह सुन अर्जुन ने वैसा ही किया। पाण्डव हिमालय पर्वत की चोटी पर चढ़ गये, परन्तु रास्ते ही में द्रौपदी का शरीर छूट गया। तब भीम ने युधिष्ठिर से पूछा कि सदेह स्वर्ग न जाकर द्रौपदी ने बीच में ही अपना शरीर क्यों त्याग दिया?

युधिष्ठिर ने कहा—

द्रौपदी को अपने पाँचों पतियों पर समान प्रीति होनी चाहिए थी; परन्तु उसकी प्रीति अर्जुन पर अधिक थी, इस पक्षपात का फल इसको मिलना चाहिए था, वही मिला। थोड़ी दूर आगे चलकर सहदेव की मृत्यु हुई। भीम ने फिर पूर्ववत् प्रश्न किया। तब युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—सहदेव को यह गर्व था कि मैं सबसे अधिक-बुद्धिमान् हूँ; इस कारण उनको यह फल मिला। पीछे नकुल का देहान्त हुआ। तब

मनुष्योंको चाहिये कि सदा सच्चरित्र बननेकी चेष्टा करें। छात्रोंको तो सर्वोपरि इसका अभ्यास करना उचित है क्योंकि उनके जीवनका प्रातःकाल छात्रावस्था ही है। सच्चरित्र बननेकी चेष्टा करनेवालोंको आन्तरिक संकल्पमें दृढ़प्रतिज्ञ होकर समयोचित आत्मसंयम और कठोर आत्मशासन करना श्रेयस्कर है। अपनेको अपनेहीमें वशीभूत रखना आत्मशासन और अपनेको सब प्रकारकी उच्छृङ्खलतासे रोकना आत्मसंयम है। यदि ऐसा बनकर अपने भाव और कार्य्यको सत्पथमें प्रवृत्त करे तो मनुष्य निस्सन्देह सच्चरित्र हो सकता है। सच्चरित्र व्यक्तियोंके सदनुष्ठान सदाचार और सदुदाहरण सदा समक्ष रखकर तदनुरूप जीवनयापनकी प्रबल आकांक्षा तथा उत्तम उत्तम ग्रन्थों और जीवनचरित्रोंका अध्ययन चरित्रशिक्षाके प्रबल सहायक हैं। सत्यानुराग, परोपकारेच्छा, आज्ञानुवर्तिता और सांसारिक सुखदुःखमें अविचलचित्तता होनेसे ही सच्चरित्रताकी दृढ़ता हो सकती है।

जो मनुष्य अपने दोषदर्शनमें समर्थ नहीं है, जो दोषोंको दूर करनेमें शिथिलता करता है, जो पापकी आपातमधुरतामें प्रलुब्ध होकर प्रवृत्त होता है, जो कुत्सित ग्रन्थोंकी कुचरित्रमय कथाएं और कल्पनाएं पढ़कर मनमें कुविचार पैदा करता है, जो कुसंगमें पड़कर अपनेको कलुषित करनेका सूत्रपात करता है, वह कभी सच्चरित्र नहीं हो सकता। सदाचार शिक्षार्थी न ऐसे काम करें और न ऐसे चरित्रहीन व्यक्तियोंका संसर्गही करें क्योंकि दुराचारीका जो पापमय और दुःखमय परिणाम और अधःपात होता है वह सबको विदित ही है। जो मनुष्य सच्चरित्र है उसके हृदयमें सत्यपरायणता, न्यायनिष्ठा, संयमशक्ति प्रभृति सारी गुणावलियां लहरें मारती हैं। दया स्नेह क्षमा विनय भक्ति प्रीति आदि कोमल वृत्तियां संचालित होती रहती श्रमशीलता, कर्त्तव्यपरायणता, सहिष्णुता, प्रतिभा आदि

विकसित होती हैं। सच्चरित्र व्यक्ति क्रोध, द्वेष, अविनय, अहंकार, प्रलोभन, आदि दुर्वृत्तियोंको दूर करता है। न्यायविमुखता उच्छृङ्खलता असत्यता आदि दुर्गुणोंको पास फटकने नहीं देता। चरित्रवान् व्यक्ति माता पिता परिजन तथा गुरुजनोंको सदा सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा किया करता है। स्वजाति और स्वदेशके कल्याणार्थ आत्मत्याग करता है और विवेकपरायणता तथा कर्त्तव्यपालनमें उत्साह दिखलाता है। सच्चरित्र मृत्युलोक-निवासी होनेपर भी अमर, अकिंचन होनेपर भी सम्राट् और शास्त्रज्ञान विहीन होनेपर भी ज्ञानी है। यही क्यों सच्चरित्र व्यक्ति जनसाधारणके लिये आदर्श पुरुष है।

विद्या बुद्धि और चरित्रसे कोई अटूट और अनिवार्य्य सम्बन्ध नहीं है। विविध विद्याओंकी अभिज्ञता और चरित्रकी पवित्रता भिन्न भिन्न बात है। मूर्ख भी सुचरित्र हो सकता है और विद्वान् भी दुराचारी। इसके दृष्टान्तकी कमी नहीं है। पर विद्याके साथ सच्चरित्रताका संयोग वांछनीय है। सच्चरित्र निरक्षरकी अपेक्षा दुश्चरित्र साक्षर निकृष्ट है। यदि दुराचारी विद्या बुद्धि सम्पन्न धनाढ्य भी हो तो मणिभूषित सर्पके समान त्याज्य है। समझना चाहिये कि दुराचारीका विद्याभ्यास और अर्थोपार्जन समाजको बड़ा अनिष्टकर है। अकिंचन चरित्रवान् व्यक्ति चरित्रहीन करोड़पतिकी अपेक्षा महान् और सुखी है।

जिन कारणोंसे मनुष्य प्राणियोंमें सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है और जिन गुणोंके कारण मनुष्य अपने नामको सार्थक करता है उन सबका एकाधार सच्चरित्रता है। सुचरित्र-बल ही प्रधान बल है। निष्कलंक चरित्र ही अमूल्य सम्पत्ति है। सारी उन्नतियोंका मूल सच्चरित्रता है। महत्व और गौरवका परिचायक सच्चरित्रता ही है। सच्चरित्र होना ही मानवजीवनका प्रधान लक्ष्य और श्रेष्ठ कर्त्तव्य है। इससे सबको सुचरित्र बननेकी सदा चेष्टा करनी चाहिये।

३ कितना और कितनी बार खाना चाहिये ?

इस विषयमें डाकृरोंमें मतभेद है कि कितना खाना चाहिये ? एक डाकृरकी राय है कि खूब खाना चाहिये। इन्होंने भिन्न भिन्न प्रकारकी खुराकोंका—उनके गुणोंके अनुसार—वजन भी नियत कर दिया है। दूसरा कहता है कि मजदूरीपेशा और मानसिक काम करनेवालोंका भोजन परिमाण और गुण दोनोंमें भिन्न भिन्न होना चाहिये। तीसरेका मत है कि मजदूर और बादशाह दोनोंको बराबर खुराक मिलनी चाहिये—यह कुछ आवश्यक नहीं है कि गद्दीधरोंको कम और मजदूरोंको अधिक भोजनकी आवश्यकता हो। पर इतना सब लोग जानते हैं कि कमजोर और ताक़तवरोंके भोजनका परिमाण भिन्न भिन्न होना चाहिये। पुरुष और स्त्रीके भोजनमें अन्तर होता है, जवान और बच्चे तथा बूढ़े और जवानकी खुराकमें भी अन्तर होता है। एक लेखक तो यहां-तक कहता है कि यदि हम अपनी खुराकको इतना कुचलें कि मुँहमें ही उसका पूरा रस बनकर राल द्वारा गलेके नीचे उतर जाय तो हम पांचसे लेकर दस रुपयेभरकी खुराकसे अपना निर्वाह कर सकते हैं। इसने खुद हजारों प्रयोग किये हैं। उसकी पुस्तकोंकी हजारों प्रतियां खप चुकी हैं। लोग उन्हें खूब पढ़ते हैं। ऐसी दशामें भोजनका वज़न बताना एकदम व्यर्थ जान पड़ता है।

अधिकांश डाकृरोंने लिखा है कि सैकड़े पीछे निन्नानवे मनुष्य आवश्यकतासे अधिक खाते हैं। यह ऐसी साधारण बात है कि बिना पढ़े लिखे लोग भी आसानीसे समझ सकते हैं। अतएव यह व्यर्थ है कि इस भयसे कि लोग बहुत ही कम खाकर कहीं बीमार न पड़ जायँ इसलिये तन्दुरुस्तीके विचारसे भोजनकी एक ऐसी मात्रा नियत कर देनी चाहिये कि जिससे कम किसीको न खाना चाहिये। भोजनका विचार करते समय हमें अपनी खुराक घटानेपर ही ध्यान रखना चाहिये।

जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, खुराकको खूब कुचलनेकी जरूरत है। इससे हम बहुतही थोड़ी खुराकमेंसे अधिकसे अधिक उपयोगी सत्व ग्रहण कर सकते हैं। इससे हर तरहसे फ़ायदा है। अनुभवी लोगोंका कहना है कि जो मनुष्य पच जाने योग्य परिमाणमें हितकर भोजन करते हैं उन्हें बहुत थोड़ा, बँधा हुआ, चिकना, और दुर्गन्धरहित, सूखा, भूरे रंगका दस्त होता है। जिसे इस प्रकार खुलकर दस्त न होता हो, समझ लेना चाहिये कि उसने अधिक और अहितकर आहार किया है और जो कुछ खाया है उसे खूब कुचलकर मुंहकी रालके साथ मिलने नहीं दिया। इस प्रकार मनुष्य अपने दस्त इत्यादिसे समझ सकता है कि उसने कम खाया है या अधिक। जिन्हें रातमें सुखकी नींद न आवे, स्वप्न दिखाई पड़ें, जीभका स्वाद सवेरे खराब जान पड़े उन्हें समझ लेना चाहिये कि अधिक खा लिया है। जिन्हें रातको पेशाबके लिये उठना पड़े उन्हें समझ लेना चाहिये कि उन्होंने जल आदि द्रव मिली हुई चीजें बहुत खा पी ली हैं। सूक्ष्मतासे निरीक्षण करके हर मनुष्य अपनी खुराकका वज़न निश्चित कर सकता है। बहुतेरे मनुष्योंकी सांससे बदबू निकलती है, इससे पता चलता है कि खुराक उन्हें हज़म नहीं हुई। कितनीही बार देखा गया है कि अधिक खानेवालोंको फुन्सियां हो जाती हैं, मुहासे निकल आते हैं और नाकमें दाने पड़ जाते हैं। कितनोंको डकारें आया करती हैं। पर वह इन सब उपद्रवोंकी परवा ही नहीं करते।

हम सभी थोड़े बहुत ऐसेही बेपरवाह हैं, इसीसे हमारे महापुरुषोंने, हमारे लिये व्रत, उपवास और रोज़ा इत्यादि नियत कर दिये हैं। रोमन कैथलिक ईसाइयोंमें भी बहुतसे व्रत उपवास हैं। केवल शरीरके आरोग्यके लिये ही यदि कोई मनुष्य प्रत्येक पाखमें एक दिन उपवास या एक समय भोजन करे तो इसमें कोई बुराई नहीं। इससे उसे बहुतही फ़ायदा होगा। बहुतेरे हिन्दू चौमासेमें

एकही समय भोजन करनेका व्रत लेते हैं। इसमें सुखपूर्वक रहनेका रहस्य भरा हुआ है। जब हवामें नमी अधिक होती है और सूर्य नहीं दिखलाई पड़ता तव मेदा अपना काम वहुत कम कर सकता है, ऐसे समय मनुष्यको भोजन कम करना चाहिये।

आइये अब कितनी वार खानेपर विचार करें। हिन्दुस्तानमें असंख्य मनुष्य दोही वार खाते हैं। मजदूरी पेशा अलवत्ता तीन वार खाते हैं। चार वार खानेवाले लोग अँगरेजी दवाइयां पैदा होनेके वाद निकले जान पड़ते हैं। आजकल अमेरिका और इंगलैंडमें ऐसी सभाएं स्थापित हो गयी हैं जो लोगोंको वतलाती हैं कि दो वारसे अधिक नहीं खाना चाहिये। इन सभाओंकी सलाह है कि हमें सवेरे कुछ भी नहीं खाना चाहिये। हमारी रातभरकी नींद खुराककी गरज पूरी कर देती है। इसलिये हमें सवेरे खानेके लिये नहीं वल्कि काम करनेके लिये तैयार हो जाना चाहिये। इन सभाओंका मत है कि हमें एक पहर काम करनेके वादही खानेके लिये तैयार होना चाहिये। इसलिये ऐसे विचार-वाले मनुष्य दिनमें दोही समय खाते हैं और वीचमें चाय इत्यादि भी नहीं पीते। इस विषयमें ड्युई नामक एक वहुतही अनुभवी डाक्टरने एक पुस्तक लिखकर उपवास करने, सवेरे नाश्ता न करने और फल खानेके लाभ वड़ी ही उत्तमतासे दिखलाये हैं। मैं अपने आठ वर्षके अनुभवसे कह सकता हूं कि युवावस्था वीते-वाद तो दो दफ़ेसे अधिक खानेकी विलकुलही जरूरत नहीं है। जव मनुष्यशरीरका संगठन पूर्णताको पहुँच रहा हो अथवा पहुँच गया हो तव उसे कई वार वा अधिक परिमाणमें खानेकी कोई जरूरत नहीं।

—महात्मा गांधी

४ जीवन-संग्राम

हम बतला चुके हैं कि इस पृथ्वीपर अपना जीवन व्यतीत करनेके लिये प्राणियों तथा वनस्पतियोंको किसी न किसी प्रकारकी क्षमता अवश्य मिली है जिसके कारण वे इस जीवन संग्राममें टिके हुए हैं। फर्क केवल इतना ही है कि किसीमें क्षमता अधिक और किसीमें कम है। जिनमें क्षमता कम है उनका जीवन सुखमय नहीं होता।

जीवनसंग्राम केवल आपसमें ही नहीं होता प्रत्येक प्राणी तथा वनस्पतिको प्रकृतिका भी सामना करना पड़ता है। जो अपना शरीर प्रकृतिके अनुकूल कर सकता है वह सुखी रहता है और जो उसके विरुद्ध जाता है वह दुःख पाता है। शीत देशोंमें सूर्यकी किरणोंमें बिलकुल तेज नहीं रहता, इस कारण वहांके मनुष्योंके चमड़े सफेद होते हैं। पर जैसे जैसे अधिक उष्ण देशोंकी ओर जाते हैं तैसे तैसे वहांके निवासियोंके शरीरका रंग गहरा होता जाता है। सूर्यकी तीक्ष्ण किरणोंसे मनुष्य-शरीरकी रक्षा करनेके निमित्त प्रकृति धीरे धीरे रंग उत्पन्न करने लगती है। अँगरेज लोग जब ताजे विलायतसे आते हैं तब उनका रंग बिलकुल सफेद रहता है परन्तु कुछ वर्ष यहां रहनेके उपरांत उनके चेहरे और हाथोंमें गेहुआं रंग आ जाता है। सूर्यसे उनकी रक्षा करनेके लिये यह प्रकृतिका उपाय है। उनका शरीर इसलिये सफेद बना रहता है कि उसकी रक्षा पोशाक करती रहती है। यदि कोई श्वेत रंगका अभिमानी साबुन आदिका अधिक प्रयोग करके प्रकृतिकी चेष्टा निष्फल कर दे तो वह उसके प्रतिकूल जानेके कारण कई प्रकारके रोगोंसे क्लेश पावेगा। उदाहरणके लिये ऐसे लोगोंको लू बहुत जल्द लगती है, उन्हें मच्छड़ खटमल आदि उष्ण देशकी व्याधियां अधिक सताती हैं।

उत्तर हिन्दुस्तानके निवासी बहुधा लम्बे होते हैं और उनकी पिंडलियां क्षीण होती हैं, क्योंकि उनका देश एक सपाट मैदान

है और वे लम्बी लम्बी डगें भर सकते हैं। चलनेमें उनको विशेष परिश्रम नहीं होता, इस कारण उनके पैर गठीले नहीं होते परन्तु नेपालनिवासी गुरखों, कांगड़ा-निवासी डोगरों और सह्याद्रि-निवासी मरहठोंकी छाती चौड़ी पैर गठीले और कद छोटा होता है। वजह यह है कि पहाड़ी जमीनपर लम्बी डगें भरना असम्भव है, यह देख प्रकृतिने उनकी टांगें छोटी रखी हैं, परन्तु वहांपर चलने फिरनेसे कलेजे जांघ तथा पिण्डलियोंको बड़ी मिहनत करनी होती है। इस वास्ते उनकी छाती चौड़ी और पैर गठीले हो जाते हैं। जो जीवधारी जैसे देशमें पैदा होता है उसमें रहने योग्य बहुत कुछ उसे शरीर भी मिल जाता है और यदि कमी भी हुई तो प्रकृतिका सामना करते करते उसमें धीरे धीरे परिवर्त्तन होकर वह योग्य भी हो जाता है।

यदि कोई खासा ऊंचा पूरा मनुष्य गङ्गा किनारेसे उठकर नैपालके पहाड़ोंमें जा बसे तो दो तीन पीढ़ीमें उसके वंशजोंके शरीर नैपालियों सरीखे छोटे और गठीले हो जावेंगे। उसके शरीरमें भी थोड़ा बहुत परिवर्त्तन अवश्य होगा, परन्तु बहुत धीरे धीरे।

लोगोंके अनुभवमें आता है कि एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें जानेसे उनकी तबीयत बिगड़ जाती है, वहांका पानी माफिक नहीं आता। इसका मतलब यह है कि उस प्रदेशकी आबहवासे जीवनसंग्राम करनेमें उनको जय नहीं मिली। कभी कभी लोग परदेश जाकर टिक तो जाते हैं परन्तु फिर भी थोड़े बहुत बलहीन हो जाते हैं और यदि वहां बस गये तो उनकी सन्तति और भी बलहीन हो जाती है। उनके बारेमें यह कह सकते हैं कि जीवनसंग्राममें उन्हें जय तो मिली परन्तु पूर्ण रूपसे नहीं। पंजाब और संयुक्त प्रान्तके सैनिक यदि बहुत दिनोंतक दक्षिण बङ्गाल अथवा ब्रह्मदेशमें रह जावें तो उनका भी यही हाल होगा। अँगरेज लोग इस देशमें अधिक दिन रह जानेके उपरांत

इसी प्रकार क्षीण होने लगते हैं। कारण यही है कि वे लोग प्रकृतिके नियमोंके अनुकूल न चलकर उसके प्रतिकूल चलते हैं। उत्तर हिन्दुस्तानकी आवहवा शुष्क है, वहां बाजरा उड़द गेहूं सत्तू आदि वस्तुओंके खानेसे शरीरको बल मिलता है और लाभ होता है परन्तु बङ्गाल सरीखे उष्ण और तर देशमें वे लोग अपने भोज्य पदार्थ वही रखते हैं। सूखे देशोंका भोजन वहांकी प्रकृतिके अनुकूल नहीं होता, अजीर्ण आदि रोग उन्हें सताने लगते हैं और वे बलहीन हो जाते हैं।

प्रकृतिके नियमोंके अनुकूल न चलनेसे मनुष्यको अपने देशमें ही अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं, परदेसकी बात दूसरी है। शरीरकी आवश्यकताओंको यथोचित रीतिसे पूर्ण न करनेसे ऋतुके अनुसार खानपान रहनसहन न बदलने तथा उचित व्यायाम अथवा शारीरिक परिश्रम न करनेसे मनुष्य कहीं भी अनेक व्याधियोंसे क्लेशित हो अकाल मृत्युको प्राप्त होगा अर्थात् जीवन-संग्राममें हार जावेगा।

अब जरा यह देखना चाहिये कि जीवनसंग्राममें प्रकृति अन्य जीवधारियोंको किस प्रकार सहायता देती है। वनस्पत्याहारियोंमें हाथी सबसे बली है परन्तु उसे जलसे अधिक प्रेम है, इस कारण वह ऐसे देशमें पनपता है जहां जलकी बहुतायत हो, जैसे आसाम ब्रह्मा बङ्गाल स्याम लंका आदि देशोंमें। जहां पानी इफरातसे है वहां वनस्पतियां भी खूब होती हैं और वहीं उस भीमकायके योग्य भोजन मिलेगा। उसका सिर बहुत भारी है जिसका बोझ सँभालनेके लिये मोटी तथा छोटी गर्दन रखी गयी है। उसे ऊंचे पेड़ोंसे पत्ते तोड़कर खानेके लिये तथा मनमाना जल पीने तथा नहानेमें सहायता देनेके लिये लम्बी सूंड़ मिली है। जिन देशोंमें वह उत्पन्न होता है वहां रहनेके लिये उसका शरीर भी कैसा योग्य बना है।

ऊंटको मरुस्थलका हाथी कहें तो अनुचित न होगा। उसके

शरीरकी रचना मरुभूमिके ही योग्य है, रेतमें पैर धँसं न जावे इसलिये उसके नलुवे चौड़े गद्दीदार बने हैं। मरुस्थलमें पानी सिर्फ गाहेबगाहे मिल सकता है इस कारण उसमें सात आठ दिनके लिये पानी पेटमें रख लेनेकी शक्ति दी गयी है। मरुदेशमें बबूलके सिवाय और क्या उत्पन्न हो सकता है, परन्तु जिसके कांटेके लग जानेसे मनुष्य महीनों खाटमें पड़ा रहता है उसी बबूलको खाकर ऊंट अपना पेट भर सकता है। उसके थूकमें कांटोंको छीलकर नरम करनेकी शक्ति है। फिर तारीफ यह कि ऊपर नीचे दहिने बायें जहां कहीं खाने योग्य कोई वनस्पति हो वह अपनी लचीली गर्दन घुमाकर खा सकेगा। रेगिस्तानमें रहनेवाले एक बड़े जीवकी यदि ऐसी गर्दन न होती तो वह बेचारा वहांकी कठोर प्रकृतिसे टक्कर कैसे खा सकता? इसी ऊंटको जब तर देशोंमें ले जाते हैं तब वहांकी कीचड़ आदिमें चलनेमें उसे अत्यन्त कष्ट होता है। रेतीले देशोंमें मच्छड़ पिस्सू डांस आदि कीड़े बहुत कम होते हैं, इसलिये गाय भैंस घोड़े आदि पशुओंके समान उनके हमले सहनेकी शक्ति ऊंटमें बहुत कम रहती है। गर्म और तर देशमें तो मच्छड़ पिस्सू आदि जीवोंकी विलायत है। वहां आनेपर इनके कारण ऊंटको बड़ा कष्ट होता है, उसे घाव हो जाते हैं जो जल्दी सड़ने लगते हैं और वह बिचारा तड़प तड़पकर मर जाता है। वहांके जीवन-युद्धमें बहुत कम ऊंट जय पा सकते हैं। उनमें उतनी क्षमता नहीं। परन्तु गाय बैल घोड़ों गधों और कुत्तोंमें अधिक क्षमता होनेके कारण वे गर्म शीत तर शुष्क सभी देशोंमें रह सकते हैं।

अन्य प्राणियोंकी शरीर-रचना तथा उनका रहनसहन देखनेसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्रकृतिने प्रत्येक प्राणीको किसी न किसी प्रकारकी क्षमता दी है और वे उसकी सहायतासे अपना जीवन व्यतीत कर लेते हैं। फरक केवल इतना ही है कि

किसीको एक ही प्रकारकी आवहवाके लायक बनाया है और किसीके शरीरमें इतनी शक्ति है कि वह कई प्रकारकी आवहवामें टिक सकता है। सिवाय इसके प्रत्येक प्राणीका शरीर इस प्रकारका बना है कि जिस प्रकारका जीवन उसे व्यतीत करना है जिसकी कठिनाइयां झेलनेमें उसे सहायता मिले। तोतेको कड़ी चोंच देकर उसे बादाम सरीखे कड़े फल खानेयोग्य बनाया है। गौरैयाकी नरम चोंच है, वह केवल अन्नके दाने और छोटे छोटे कीड़ेमकोड़े खा सकती है। बतकको जुड़े नख देकर पानीमें तैरनेयोग्य बनाया है, इत्यादि।

अब यह देखना चाहिये कि वनस्पतियोंका क्या हाल है। उनके अवलोकन करनेसे भी यही ज्ञात होता है कि प्रकृतिने प्रत्येकको एक विशेष देश तथा जलवायुमें जीवनयुद्ध कर सफलता प्राप्त करनेयोग्य बनाया है। उनको दूसरे प्रान्तमें ले जानेसे उनकी तबीयत नासाज हो जाती है। मनुष्योंके समान वनस्पतियोंमें भी कई पौदे लखनवी मिजाजके होते हैं अर्थात् गर्मी सर्दी आदि ज्यादा बरदाश्त नहीं कर सकते। उनको जरा तकलीफ हुई कि सूखने लगे। पपीतेका पेड़ बड़ी कोमल प्रकृतिका होता है, पानी जरा कम वा अधिक नहीं सह सकता। उसके विपरीत अमरूद सीताफल (शरीफा) पीपल आदि पेड़ ऐसे पक्के शरीरके होते हैं कि उनको सब जगह आनन्द है। जिस प्रकार काबुली अथवा पंजाबी लोग किसी भी देशमें जाकर औरोंकी अपेक्षा सुखी रहते हैं उसी प्रकार ये पेड़ भी अनेक देशों तथा जलवायुमें अपना जीवन व्यतीत कर लेते हैं।

फिर भी चाहे वह सक्षम हों अथवा अक्षम, प्रत्येक वनस्पति किसी विशेष प्रकारकी आवहवा और धरतीके ही अनुकूल बनी है और उसी जगह उसका पूर्ण रूपसे विकास हो सकता है।

चावलके लिये गर्म और तर देश ऐसा सपाट चाहिये जहां जलखात बनाकर पानी रोका जा सके। चायके लिये भी पानी

अधिक चाहिये, पर शर्त यह है कि वह बरसकर बह जावे। उसके ठहर जानेसे चायकी जड़ें जल्दी गल जाती हैं। इसी कारण चायकी खेती ऐसे पहाड़ोंकी ढालू जमीनमें होती है जहां अतिवृष्टि होती हो। केला नारियल सुपारी हल्दी आदिके पेड़ भी अतिवृष्टि चाहते हैं, उनकी जड़ें बहुत कुछ पानी सह सकती हैं, परन्तु पेड़ लू लगनेसे बहुत कष्ट पाते हैं। नतीजा यह कि ये कोंकण मलाबार त्रावणकोर बंगाल आदि ऐसे देशोंमें पाये जाते हैं जहां जल बहुत ज्यादा होता है और समुद्रतटके किनारे होनेसे लू भी नहीं चलती। उत्तर हिन्दुस्तानमें ये पेड़ लगानेसे एक तो होते ही नहीं और यदि मेहनत करनेसे लग भी गये तो अधमरे होते हैं और उनके फल भी अच्छे नहीं होते।

ज्वार बाजरा और उड़दके लिये उष्ण वायु चाहिये, परन्तु जितना जल चावलको चाहिये उससे आधे तिहाईमें उनका काम चल जाता है। इस कारण दक्षिणकी उच्च समभूमिमें जहां तीस चालीस इंचसे अधिक वर्षा नहीं होती, ज्वार अधिक होती है। बाजरेको और भी कम जल चाहिये, इस कारण राजपूतानेकी मरुभूमिके आसपासकी प्रायः रेतीली धरतीमें उत्पन्न होता है। गेहूंको अच्छी खासी सर्दी और ओस चाहिये, थोड़ा पानी भी चाहिये। इसलिये वह उत्तर मध्य हिन्दुस्तानके मैदानोंमें जहां ठंढ अच्छी पड़ती और एक बार वर्षा भी हो जाती है बहुतायतसे होता है। रूस यूनाइटेड स्टेट्स रोमानियामें जड़कालेमें बरफ गिरती है, जो गेहूंको सह्य नहीं है, परन्तु वहांकी ग्रीष्म ऋतु हमारे जाड़ेकी ऋतुके समान हो जाती है। इस सबबसे उन देशोंकी गरमीमें ही गेहूंकी फसल पैदा होती है। गेहूंके लिये नदियोंके किनारेकी काली धरती उत्तम समझी जाती है। गोदावरी नदीके आस-पासके कछारोंमें काली धरती बहुत है परन्तु वहां बहुत कम गेहूं उत्पन्न होता है और यदि हुआ भी तो स्वादरहित और निर्जीव। वहांकी आबहवासे संग्राम करनेमें वह कमजोर हो जाता है।

चनेको गेहूंकी अपेक्षा और भी कम पानी चाहिये जहां ओस पड़ती है पर वर्षा नहीं होती।

आम एक सक्षम पेड़ है, कई प्रकारकी आवहवामें पनप सकता है। परन्तु गंगा यमुना आदि नदियोंके किनारेकी पीली कंकड़रहित धरतीमें वह जैसे उत्तम फल दे सकता है वैसे अन्य स्थानोंमें नहीं। इसी कारण यह फल उत्तर हिन्दुस्तानका मेवा हो रहा है। खरबूजे तरबूज भटे ककड़ी आदिको पानी बहुत चाहिये पर उनकी जड़ोंमें यह शक्ति नहीं कि कड़ी मिट्टीमें घुसकर बढ़ें। इसलिये नदियोंके किनारेकी रेतीली धरतीमें ही उनका जीवन सुखमय और उनका विकास पूर्ण रूपसे होता है। अन्य स्थानोंमें उनके बीज लगानेसे फल तो हो जाते हैं पर आकारमें छोटे तथा स्वादमें फीके हो जाते हैं।

इस लेखका सार यह है कि जो प्राणी और वनस्पति प्रकृतिके अनुकूल स्थानमें रहेंगे सुख पावेंगे और उसके प्रतिकूल स्थानमें यदि गये तो उन्हें कठिन जीवनसंग्राम करना पड़ेगा। उस युद्धमें यदि उनका नाश न हुआ तो वे बलहीन अवश्य हो जावेंगे।

५. अशोक

(१)

राजकीय काननमें अनेक प्रकारके वृक्ष सौरभित सुमनोंसे भरे झूम रहे हैं। कोकिला भी कूक कूककर आमकी डालीको हिलाये देती हैं। नववसन्तका समागम है। मलयानिल इठलाता हुआ कुसुम कलियोंको ठुकराता जा रहा है। इसी समय कानननिकटस्थ शैलके झरनेके पास बैठकर एक युवक जल लहरियोंकी तरंगभंगी देख रहा है। युवक सरल विलोकनसे कृत्रिम जलप्रपातको देख रहा है। उसकी मनोहर लहरियां जो कि बहुत ही जल्दी जल्दी लीन हो स्रोतमें मिलकर सरल पथका अनुकरण करती हैं, उसे बहुत ही भली मालूम हो रही हैं पर

युवकको यह नहीं मालूम कि उसकी सरल दृष्टि और सुन्दर अवयवसे विवश होकर एक रमणी अपने परम पवित्र पदसे च्युत होना चाहती है।

देखो उस लताकुंजमें पत्तियोंकी ओटमें दो नीलमणिके समान कृष्णतारा चमककर किसी अद्भुत आश्चर्यका पता बता रहे हैं। नहीं नहीं देखो चन्द्रमामें भी कहीं तारा रहते हैं ? वह तो किसी सुन्दरीके मुखकमलका आभास है। ऐसे ही स्थलोंको देखकर अभिधानकारोंने स्थलपद्मकी कल्पना की है।

युवक अपने आनन्दमें मग्न है। उसे इसका कुछ भी ध्यान नहीं है कि कोई व्याध उसकी ओर अलक्षित होकर बाण चला रहा है। युवक उठा और उसी कुंजकी ओर चला। क्यों चला ? इसका उत्तर हम नहीं दे सकते। किसी प्रच्छन्न शक्तिकी प्रेरणासे वह युवक उसी लताकुंजकी ओर बढ़ा। किन्तु उसकी दृष्टि वहां जब भीतर पड़ी तो वह अवाक् हो गया। उसके दोनों हाथ आप जुट गये। उसका शिर स्वयं अवनत हो गया। रमणी स्थिर होकर खड़ी थी, उसके हृदयमें उद्वेग और शरीरमें कम्प था। धीरे धीरे उसके होंठ हिले और कुछ मधुर शब्द निकले। पर वे शब्द अस्पष्ट होकर वायुमण्डलमें लीन हो गये। युवकका शिर नीचे ही था। फिर युवतीने अपनेको सँभाला और बोली—"कुनाल, तुम यहां कैसे ? अच्छे तो हो ?"

"माताजीकी कृपासे"—उत्तरमें कुनालने कहा।

युवती मन्द मुसकानके साथ बोली—"मैं तुम्हें बहुत देरसे यहां छिपकर देख रही हूं।"

कुनाल—"महारानी तिष्यरक्षिताको छिपकर देखनेकी क्या आवश्यकता है ?"

तिष्य०—(कुछ कम्पित स्वरसे) "तुम्हारे सौन्दर्यसे विवश होकर।"

कुनाल—(विस्मित तथा भीत होकर) "पुत्रका सौन्दर्य तो माताहीका दिया हुआ है।"

तिष्य०—नहीं कुनाल, मैं तुम्हारी प्रेम भिखारिनी हूं, राजरानी नहीं हूं। और न तुम्हारी माता हूं।

कुनाल—(कुंजसे बाहर निकलकर) माताजी, मेरा प्रणाम ग्रहण कीजिये और अपने इस पापका प्रायश्चित्त कीजिये। जहां-तक संभव होगा अब आप इस पापमुखको कभी न देखेंगी।

इतना कहकर शीघ्रतासे वह युवक, नहीं नहीं राजकुमार कुनाल, अपनी विमाताकी बातें सोचता हुआ उपवनके बाहर निकल गया। पर तिष्यरक्षिता किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर वहीं तबतक खड़ी रही जबतक किसी दासीके आभूषणशब्दने उसकी मोहनिद्राको भंग नहीं किया।

(२)

श्रीनगरके समीपवर्त्ती काननमें एक कुटीरके द्वारपर कुनाल बैठा हुआ ध्यानमग्न है। उसकी सुशील पत्नी उसी कुटीरमें कुछ भोजन बना रही है।

कुटीर स्वच्छ तथा उसकी भूमि परिष्कृत है। शान्तिकी प्रबलताके कारण पवन भी उस समय धीरे धीरे चल रहा है।

किन्तु वह शान्ति देरतक नहीं रही, क्योंकि एक दौड़ता हुआ मृगशावक कुनालकी गोदमें आ गिरा, जिससे उसके ध्यानमें विघ्न हुआ और वह खड़ा हो गया। कुनालने उस मृगशावकको देखकर समझा कि कोई व्याध भी इसके पीछे आता ही होगा। पर जब कोई उसे न देख पड़ा तो उसने उस मृगशावकको अपनी स्त्री धर्मरक्षिताको देकर कहा—"प्रिये क्या तुम इसको बच्चेकी तरह पालोगी?"

धर्म्मरक्षिता—"प्राणनाथ, हमारे ऐसे वनचारियोंको ऐसे ही बच्चे चाहिये।"

कुनाल—"प्रिये, तुमको हमारे साथ बहुत कष्ट है।"

धर्म०—"नाथ, इस स्थानपर यदि सुख न मिला तो मैं समझूंगी कि संसारमें कहीं भी सुख नहीं है।"

कुनाल—"किन्तु प्रिये, क्या तुम्हें वे सब राजसुख याद नहीं आते? क्या उनकी स्मृति तुम्हें नहीं सताती? और क्या तुम अपनी मर्मवेदनासे निकलते हुए आंसुओंको रोक नहीं लेतीं? या वह सचमुच हुई नहीं है?"

धर्म०—"प्राणाधार! कुछ नहीं है। यह सब आपका भ्रम है। मेरा हृदय जितना इस शान्त वनमें आनन्दित है उतना कहीं भी नहीं रहा। भला ऐसे स्वभाववर्द्धित सरल सीधे और सुमन-वाले साथी कहां मिलते? ऐसी मृदुल लता, जो कि अनायास ही चरणको चूमती है, कहीं उस जनरवसे भरे हुए राजकीय नगरमें मिली थी? नाथ, और सच कहना (मृगको चूमकर) ऐसा प्यारा शिशु भी तुम्हें आजतक कहीं मिला था? तिसपर आपको अपनी विमाताकी कृपासे जो दुःख मिलता था वह भी यहां नहीं है। फिर ऐसा सुखमय जीवन और कौन होगा?"

कुनालके नेत्र आंसुओंसे भर आये और वह उठकर टहलने लगे। धर्मरक्षिता भी अपने कार्यमें लगी। मधुर पवन भी उस भूमिमें उसी प्रकार चलने लगा। कुनालका हृदय अशान्त हो उठा और वह टहलता हुआ कुछ दूर निकल गया। जब नगरका समीपवर्त्ती प्रान्त उसे दिखलाई पड़ा तो वह रुक गया और उसी ओर देखने लगा।

पांच छः मनुष्य दौड़ते हुए चले आ रहे हैं। वे कुनालके पास पहुँचना ही चाहते थे कि उनके पीछे बीस अश्वारोही देख पड़े। वे सबके सब कुनालके समीप पहुँचे। कुनाल चकित दृष्टिसे उन सबको देख रहा था।

आगे दौड़कर आनेवालोंने कहा—"महाराज हम लोगोंको बचाइये।"

कुनाल उन लोगोंको पीछे करके आप आगे डटकर खड़ा हो गया। वे अश्वारोही भी उस युवक कुनालके अपूर्व तेजोमय स्वरूपको देखकर सहमकर उसी स्थानपर खड़े हो गये। कुनालने उन अश्वारोहियोंसे पूछा—"तुम लोग इन्हें क्यों सता रहे हो? क्या इन लोगोंने कोई ऐसा कार्य किया है जिससे ये लोग न्यायतः दण्डके भागी समझे गये हैं?"

एक अश्वारोही जो उन लोगोंका नायक था बोला, हमलोग राजकीय सैनिक हैं और राजाकी आज्ञासे इन विधर्मी जैनियोंका वध करनेके लिये आये हैं। पर आप कौन हैं जो महाराज चक्रवर्त्ती देवप्रिय अशोकदेवकी आज्ञाका विरोध करनेपर उद्यत हैं?"

कुनाल—"पर वह राजा कितना बड़ा है जिसकी आज्ञा माननेके लिये तुम लोग इतना घोर दुष्कर्म कर रहे हो?"

नायक—"मूर्ख! क्या तू अभीतक महाराज अशोकका पराक्रम नहीं जानता, जिन्होंने अपने प्रचण्ड भुजदण्डके बलसे कलिंग विजय किया है? और जिनकी राज्यसीमा दक्षिणमें केरल और मलयगिरि उत्तरमें सिन्धुक्रोश पर्वत, तथा पूर्व और पश्चिममें किरात देश और पटल है? जिनकी मैत्रीके लिये यवन नृपतिलोग उद्योग करते रहते हैं? उन महाराजको तू भली भांति नहीं जानता?"

कुनाल—पर कोई उससे बड़ा भी साम्राज्य है जिसके लिये किसी राज्यकी मैत्रीकी आवश्यकता नहीं है।

नायक—हमें इस विवादकी आवश्यकता नहीं है, हम अपना काम करेंगे।

कुनाल—तो क्या तुम इन अनाथ जीवोंपर कुछ दया न करोगे?

इतना कहते कहते राजकुमारको कुछ क्रोध आ गया, नेत्र लाल हो गये। नायक उस तेजस्वी मूर्त्तिको देखकर एक बार फिर सहम गया। कुनालने कहा—"अच्छा यदि तुम न मानोगे

तो यहांके शासकसे जाकर कहो कि राजकुमार कुनाल तुम्हें बुला रहे हैं।

नायक सिर झुकाकर कुछ सोचने लगा। तब उसने अपने एक साथीकी ओर देखकर कहा—"जाओ, इन बातोंको कहकर दूसरी आज्ञा लेकर जल्द आओ।

अश्वारोही शीघ्रतासे नगरकी ओर चला। शेष सब लोग उसी स्थानपर खड़े थे। थोड़ी देरमें उसी ओरसे दो अश्वारोही आते हुए दिखाई पड़े। एक तो वही था जो भेजा गया था और दूसरा उस प्रदेशका शासक था। समीप आते ही वह घोड़ेपरसे उतर पड़ा और कुनालको अभिवादन करनेके लिये बढ़ा। पर कुनालने रोककर कहा—"बस हो चुका, हमने आपको इसलिये कष्ट दिया है कि इन बेचारे मनुष्योंकी क्यों हिंसा की जा रही है।"

शासक—राजकुमार! आपके पिताकी आज्ञा ही ऐसी है, और आपका यह वेश क्यों है?

कुनाल—इसके पूछनेकी कोई आवश्यकता नहीं, पर क्या तुम इन लोगोंको मेरे कहनेसे छोड़ सकते हो?

शासक—(दुःखित होकर) "राजकुमार, आपकी आज्ञा हम कैसे टाल सकते हैं (ठहरकर) पर एक और बड़े दुःखकी बात है।

कुनाल—वह क्या?

शासकने एक पत्र अपने पाससे निकालकर कुनालको दिखलाया। कुनाल उसे पढ़कर चुप रहा और थोड़ी देरके बाद बोला—तो तुमको इस आज्ञाका पालन अवश्य करना चाहिये।

शासक—पर यह कैसे हो सकता है?

कुनाल—जैसे हो, वह तो तुम्हें करना ही होगा।

शासक—किन्तु राजकुमार, आपके इस देवशरीरके दो नेत्ररत्न निकालनेका बल मेरे हाथोंमें नहीं है। हां, मैं अपने इस पदको त्याग कर सकता हूं।

कुनाल—अच्छा तो तुम मुझे इन लोगोंके साथ महाराजके समीप भेज दो।

शासकने कहा—जैसी आज्ञा।

(३)

पौण्ड्रवर्द्धन नगरमें हाहाकार मचा हुआ है। नगरनिवासी प्रायः उद्विग्न हो रहे हैं। पर विशेषकर जैन लोगोंहीमें खलबली मची हुई है। जैन रमणी जिन्होंने कभी घरके बाहर पैर भी नहीं रखा था छोटे शिशुओंको लिये हुए भाग रही हैं। पर जायँ कहां? जिधर देखती हैं उधर ही सशस्त्र कालरूप बौद्ध लोग उन्मत्तोंकी तरह दिखाई पड़ते हैं। देखो वह स्त्री जिसके केश परिश्रमसे खुल गये हैं, गोदका शिशु अलग मचल कर रो रहा है, थककर एक वृक्षके नीचे बैठ गयी है, अरे देखो, दुष्ट निर्दय वहां भी पहुँच गये, और उस स्त्रीको सताने लगे।

युवतीने हाथ जोड़कर कहा—आप लोग दुःख मत दीजिये। फिर उसने एक एक करके अपने सब आभूषण उतार दिये और वे दुष्ट उन सब अलंकारोंको लेकर भाग गये। इधर वह स्त्री निद्रासे क्लान्त होकर उसी तरुके नीचे सो गयी।

उधर देखिये, वह एक रथ चला जा रहा है और उसके पर्दे हटकर बता रहे हैं कि उसमें स्त्री और पुरुष तीन चार बैठे हैं। पर सारथी उस ऊंची नीची और पथरीली भूमिमें भी उन लोगोंकी ओर बिना ध्यान दिये रथ शीघ्रतासे लिये जा रहा है। सूर्यकी किरणें पश्चिममें फीकी हो गयी हैं, चारों ओर उस पथमें शान्ति है। केवल उसी रथका शब्द सुनाई पड़ता है जो अभी उत्तरकी ओर चला जा रहा है। थोड़ी ही देरमें घोड़े हांफते हुए थककर खड़े हो गये। अब सारथी भी कुछ न कर सका और उसको रथके नीचे उतरना पड़ा।

रथको रुका जानकर भीतरसे एक पुरुष निकला और उसने सारथीसे पूछा—क्यों, तुमने रथ क्यों रोक दिया?

सारथी—अब घोड़े नहीं चल सकते ।

पुरुष—तब तो फिर बड़ी विपत्तिका सामना करना होगा। क्योंकि पीछा करनेवाले उन्मत्त सैनिक आ ही पहुँचेंगे।

सारथी—तब क्या किया जाय? (सोचकर) अच्छा आप लोग इस समीपकी कुटीमें चलिये, यहां कोई महात्मा हैं, वह अवश्य आप लोगोंको आश्रय देंगे।

पुरुषने कुछ सोचकर सब आरोहियोंको रथपरसे उतारा और वे सब लोग उसी कुटीकी ओर अग्रसर हुए।

कुटीके बाहर पत्थरपर एक अधेड़ मनुष्य बैठा हुआ है। उसका परिधेय वस्त्र भिक्षुकोंके समान है। रथपरके लोग उसीके सामने जाकर खड़े हुए। उन्हें देखकर वह महात्मा बोले—आप लोग कौन हैं और यहां क्यों आये हैं?

उसी पुरुषने आगे बढ़कर हाथ जोड़कर कहा—महात्मन्, हमलोग जैन हैं और महाराज अशोककी आज्ञासे जैन लोगोंका सर्वनाश किया जा रहा है। अतः हमलोग प्राणके भयसे भागकर अन्यत्र जा रहे हैं। पर मार्गमें घोड़े थक गये, अब ये इस समय चल नहीं सकते। क्या आप थोड़ी देरतक हमलोगोंको आश्रय दीजियेगा।

महात्मा थोड़ी देर सोचकर बोले, अच्छा आप लोग इसी कुटीमें चले जाइये।

स्त्री पुरुषोंने आश्रय पाया। अभी थोड़ी ही देर उन लोगोंको बैठे हुई है कि अकस्मात् अश्वपद शब्दने सबको चकित और भयभीत कर दिया। देखते देखते अश्वारोही उस कुटीके सामने पहुँच गये। उनमेंसे एक महात्माकी ओर लक्ष्य करके बोला—ओ भिक्षु, क्या तूने भागे हुए जैन विधर्मियोंको अपने यहां आश्रय दिया है? समझ रख तू हम लोगोंसे बहाना नहीं कर सकता। क्योंकि उनका रथ इस बातका ठीक पता दे रहा है।

महात्मा—सैनिको, तुम उनको क्या करोगे? मैंने अवश्य

उन दुखियोंको आश्रय दिया है। क्यों व्यर्थ नररक्तसे अपने हाथोंको रंजित करते हो?

सैनिक अपने साथियोंकी ओर देखकर बोला "यह दुष्ट भी जैन ही है ऊपरी बौद्ध बना हुआ है। इसे भी मारो।"

"इसे भी मारो"का शब्द गूंज उठा और देखते देखते उस महात्माका सिर भूमिमें लोटने लगा। इस काण्डको देखते ही कुटीके स्त्री पुरुष चिल्ला उठे। उन नरपिशाचोंने एकको भी न छोड़ा। सबकी हत्या की।

अब सब सैनिक धन खोजने लगे। मृत स्त्री पुरुषोंके आभूषण उतारे जाने लगे। एक सैनिक जो उस महात्माकी ओर झुका था, चिल्ला उठा। सबका ध्यान उसी ओर आकर्षित हुआ। सब सैनिकोंने देखा उसके हाथमें एक अंगूठी है जिसपर लिखा है "वीताशोक"।

(४)

महाराज अशोकके भाई जिनका पता नहीं लगता था वही वीताशोक मारे गये। चारों ओर उपद्रव शान्त है। पौण्ड्र-वर्द्धन नगर प्रशान्त समुद्रकी तरह हो गया है।

महाराज अशोक पाटलिपुत्रके साम्राज्य सिंहासनपर विचार-पति होकर बैठे हैं। राजसभाकी शोभा तो कहते नहीं बनती। सुवर्णरचित वेलबूटोंकी कारीगरीसे जिनमें मणिमाणिक्य स्थानानुकूल बिठाये गये हैं मौर्य सिंहासन-मन्दिर भारतवर्षका वैभव दिखा रहा है, जिसे देखकर पारसीक सम्राट् दाराके सिंहासनमन्दिरको ग्रीक लोग तुच्छ दृष्टिसे देखते थे।

धर्माधिकारी, प्राड्विवाक, महामात्य, धर्म-महामात्य, रज्जुक और सेनापति सब अपने अपने स्थानपर स्थित हैं। राजकीय तेजका सन्नाटा सबको चुप किये हुए है।

देखते देखते एक स्त्री और एक पुरुष उस सभामें आये। सभास्थित सब लोगोंकी दृष्टिको पुरुषके अवनत तथा बड़े बड़े

नेत्रोंने आकर्षित कर लिया। किन्तु सब नीरव हैं। युवक और युवतीने मस्तक झुकाकर महाराजको अभिवादन किया।

स्वयं महाराजने पूछा—"तुम्हारा नाम ?"

उत्तर—कुनाल।

प्रश्न—पिताका नाम ?

उत्तर—महाराज चक्रवर्त्ती धर्माशोक।

सब लोग उत्कण्ठा और विस्मयसे देखने लगे कि अब क्या होता है, पर महाराजका मुख कुछ भी विकृत न हुआ, प्रत्युत और भी गम्भीर स्वरसे प्रश्न करने लगे।

प्रश्न—तुमने कोई अपराध किया है ?

उत्तर—अपनी समझसे तो मैंने अपराधसे बचनेका उद्योग किया था।

प्रश्न—फिर तुम किस तरह अपराधी बनाये गये ?

उत्तर—तक्षशिलाके महासामन्तसे पूछिये।

महाराजकी आज्ञा होते ही शासक उपस्थित किया गया। उसने अभिवादनके उपरान्त एक पत्र उपस्थित किया जो अशोकके करमें पहुँचा। सब लोग देख रहे थे कि अब क्या होता है।

महाराजने क्षणभर महामात्यसे फिर पूछा, यह आज्ञापत्र कौन ले गया था ? उसे बुलाया जाय।

पत्रवाहक भी आया और कम्पित स्वरसे अभिवादन करते हुए बोला—धर्मावतार, यह पत्र मुझे महादेवी तिष्यरक्षिताके महलसे मिला था, और आज्ञा हुई थी कि इसे शीघ्र तक्षशिलाके शासकके पास पहुँचाओ।

महाराजने शासककी ओर देखा। उसने हाथ जोड़कर कहा—महाराज, यही आज्ञापत्र लेकर गया था।

महाराजने गम्भीर होकर अमात्यसे कहा—तिष्यरक्षिताको बुलाओ।

महामात्यने कुछ बोलनेके लिये चेष्टा की, किन्तु महाराजके

भृकुटिभंगने उन्हें बोलनेसे निरस्त किया और वे अब स्वयं उठे और चले।

महादेवी तिष्यरक्षिता राजसभामें उपस्थित हुई। अशोकने गम्भीर स्वरसे पूछा—यह तुम्हारी लेखनीसे लिखा गया है? क्या उस दिन तुमने इसी कुकर्मके लिये राजमुद्रा छिपा ली थी? क्या कुनालके बड़े बड़े सुन्दर नेत्रोंने ही तुम्हें अपने निकलवानेकी आज्ञा देनेके लिये विवश किया था? अवश्य तुम्हारा ही यह कुकर्म है। अस्तु तुम्हारी ऐसी स्त्रीको पृथ्वीके ऊपर नहीं किन्तु भीतर रहना चाहिये।

सब लोग कांप उठे। कुनालने आगे बढ़, घुटने टेक दिये और कहा—"क्षमा।"

अशोकने गम्भीर स्वरसे कहा—"नहीं"

तिष्यरक्षिता उन्हीं पुरुषोंके साथ गयी जो लोग उसे धरणीके भीतर रखनेवाले थे। महामात्यने राजकुमार कुनालको आसनपर बैठाया और धर्मरक्षिता महलमें गयी।

महामात्यने एक पत्र और एक अँगूठी महाराजको दी। यह पौण्ड्र्वर्द्धनके शासकका पत्र तथा वीताशोककी अंगूठी थी।

पत्र पाठकरके और मुद्राको देखकर वही कठोर अशोक विह्वल हो गये और सिंहासनपर गिर पड़े।

उसी दिनसे कठोर अशोकने हत्याकी आज्ञा बन्द कर दी। स्थान स्थानपर जीवहिंसा न करनेकी आज्ञा पत्थरोंपर खुदवा दी गयी। कुछ ही कालके बाद महाराज अशोकने उद्विग्न चित्तको शान्त करनेके लिये भगवान बुद्धके प्रसिद्ध स्थानोंके देखनेके लिये धर्मयात्रा की।

—जयशंकर प्रसाद

६ अकबरका सुशासन

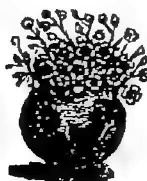
मुसलमान बादशाहोंमें अकबर ही सबसे पहला बादशाह हुआ जिसने राजनीतिक तत्त्वको समझा। वास्तवमें मुगल-वंशका संस्थापक वही था और उसे ही भारतवर्षका हिन्दू-मुसलमानोंका—सच्चा राजा बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसका जीवनचरित्र पढ़नेसे आरम्भमें ही विचित्रता झलकने लगती है। पराजित शत्रुके प्रति दया दिखाना नवस्थापित राज्यमें कितना काम करता है यह अकबर खूब समझता था। उसकी राजनीति सबसे निराली थी। उसके पहले मुसलमान बादशाहोंने न वैसा किया था न उनसे वैसा होना सम्भव ही था। पानीपतकी दूसरी लड़ाईके बाद जब प्रभुभक्त हेमू घायल होकर पकड़ा गया तब उसी आसन्नमृत्यु अवस्थामें वह अकबरके सामने लाया गया। वही योद्धा जो कुछ ही समय पहले एक बड़ी सेना इकट्ठी कर भारतवर्षकी ओरसे मुगलोंका सामना करने गया था उसके भाग्यने कुछ ऐसा पलटा खाया कि घायल और बन्दी होकर अपने शत्रुके सामने हाजिर किया जाता है। ऐसे समयमें पठान बादशाह क्या करते यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। खान बाबा बैरमखांने प्रचलित नियमोंके अनुसार ही युवक बादशाह अकबरसे कहा कि आप इस पराजित काफिरका सिर काट अपनी विजयिनी तलवारकी प्यास बुझावें। अकबर लड़का था परन्तु भावी महत्त्वका चिह्न उसके रोम रोमसे झलकता था। सच्चे वीरको जैसा चाहिये उसी प्रकार अकबरने भी पराजित बन्दी तथा काफिर शत्रुको निर्दयतासे मारनेसे साफ इन्कार किया। परन्तु बैरम कब माननेवाला था, वह जिस रंगमें रँग चुका था, उसने जिस पाठशालामें शिक्षा पायी थी उसके विरुद्ध जाना उसकी अवस्थाके मनुष्यके लिये कठिन था। बैरमने झट मरते हुये हेमूका सिर

धड़से अलगकर अपनी शत्रुताकी आग बुझायी। पर इस एक घटनाने ही स्पष्ट कर दिखाया कि भारतका भावी सम्राट् किस प्रकारका मनुष्य था। ज्यों ज्यों अकबरकी उम्र बढ़ती गयी उसके विचार भी प्रौढ़ होते गये और साथ ही भारत शासनकी पद्धति भी बदलती गयी। अकबरने मनुसंहितामें कही हुई ऋषियोंकी बातोंका ही प्रयोग करना उचित समझा। सम्भव है कि अबुलफ़ज़ल और फ़ैजी जैसे संस्कृतके विद्वानोंने उक्त बातें अकबरको सुझायी हों। जो हो, इतना अवश्य सत्य है कि अकबरने निश्चय कर लिया था कि भारतवर्षका राज्य केवल बाहुबलपर ही स्थिर नहीं रह सकेगा। जबतक इस राज्यकी नींव प्रजाके प्रेम तथा सहानुभूतिपर न पड़ेगी, जबतक हिन्दू मुसल्मानका मेल न बढ़ेगा, आपसकी फूट न मिटेगी, विजेता और विजितका भाव न घटेगा, तबतक अकबर निश्चिन्त न रह सकेगा। इन उद्देश्योंकी पूर्त्तिके लिये उसने कई उपाय किये। मुगलोंने यद्यपि पानीपतकी लड़ाईमें अफगानोंको सर करना मुगलोंके राज्यका विस्तार करना तथा हिन्दू प्रजाको भी मिलाये रहना सोच रखा था तो भी एक साथ ये तीनों काम संकीर्ण नीतिके अवलम्बनसे नहीं हो सकते थे। अकबर दूरन्देश था, उसने पहले हिन्दुओंको, विशेषकर राजपूत वीरोंको वशमें करनेकी ठानी। लड़ाईसे वा प्रलोभनसे वा मनुके बताये उपायोंसे किसी न किसी प्रकार उसने राजपूत नरेशोंको अपनी मुट्ठीमें कर लिया। क्रमशः सबके सब, केवल महाराना उदयसिंह और अद्वितीय वीर प्रतापसिंहको छोड़, अकबरके मित्र वा सम्बन्धी बन गये। वे बड़े बड़े पदोंपर बिठाये गये, राजपूतोंकी सेना बनी और उसके अधिनायक तथा नायक राजपूत राजा ही होने लगे। अब क्या था, राजाके प्रेम और विश्वास पर मुग्ध होकर हिन्दुओंने प्राणतक अर्पण करना तुच्छ समझा। उन्हें अपनी योग्यता दिखाने तथा अकबरको अपना पक्ष पुष्ट

करनेका इससे बढ़कर और कौन अवसर मिल सकता था। हिन्दू मन्सबदार काबुल या बंगालके अफगानोंके सर करनेके लिये नियुक्त किये जाने लगे। जो बातें यहां मुसलमानोंके इतिहासमें कभी नहीं हुई थीं वह अकबरने कर दिखायीं।

धर्मके नामपर, ईश्वरभक्तिके बहाने, कितनी खूनखराबी हुई इसकी गवाही इतिहास पुकार पुकारकर दे रहा है। हमारा ही धर्म सच्चा है, हम ईश्वरको जो आकार जो गुण देते हैं वही ठीक है, हम जिस प्रकार उसकी पूजा करते हैं हमने उसकी उपासनाके लिये जो पद्धति बनायी है और जो मन्दिर उठाया है वही ठीक है, मद्भिन्न दूसरोंकी सब बातें बिलकुल झूठी निःसार हैं। इतना ही नहीं हम जो कहते हैं या जो करनेकी सलाह देते हैं दूसरोंको भी वही मानना और करना पड़ेगा। यदि न करेंगे तो उन्हें तलवारके जोरसे सच्चे रास्तेपर खींच लाना हमारा धर्म है। यही आजतकके धर्म्मयुद्धोंकी नीति रही है। इन्हीं विचारोंसे परिचालित ईश्वरके भक्तोंने रक्तकी कितनी नदियां बहायीं और निरपराधियोंके रुण्ड मुण्डके कैसे कैसे पहाड़ खड़े किये, उनका अब कौन हिसाब लगा सकता है? कैथलिक और प्रोटेस्टेण्टोंके युद्ध, मुसलमानों और कृस्तानोंकी धार्मिक लड़ाइयां, हिन्दुओं और बौद्धोंके समर और हिन्दू मुसलमानोंके युद्ध उनके प्रमाण हैं। पर इन सब लड़ाई झगड़ोंका क्या फल हुआ? कोई किसी दूसरे धर्मका समूल नाश न कर सका। ईश्वर जो था वही रहा। वह न पराजितोंकेही पास आया न उसने विजेताओंहीको अपनाया। उसके लिये सब बराबर हैं, सब उसीके जीव हैं। अपनी अपनी रुचि और बुद्धिके अनुसार लोग उसके रूपकी कल्पना करते और उपासनाकी पद्धति बना लेते हैं। इन विचारोंपर चलनेके लिये असंकुचित बुद्धि चाहिये, उदार हृदय चाहिये। पर मत-मतान्तरका जोश लोगोंको अनुदार और कातर बना देता है।

मुसलमानोंके समयमें भी भारतकी ऐसी अवस्था थी। अकबरने देखा कि धार्मिक प्रभेदके कारण हिन्दू मुसलमानोंमें बहुत बड़ा वैमनस्य फैला हुआ है और यह कभी सम्भव ही नहीं है कि सबके सब हिन्दू मुसलमान हो जायँ जिससे दोनोंका झगड़ा मिटे और बादशाह सुखकी नींद सोवे। इस कारण उसने सोचा मित्रभाव तथा धार्मिक प्रश्नोंमें उदार नीतिका प्रयोग ही राजनीतिज्ञका काम होगा। अतएव उसने ऐसा ही किया और फल भी आशातीत हुआ। हिन्दुओंको अपने धर्मके कारण जो जजिया नामक कर देना पड़ता था वह उठा दिया गया। हिन्दू तीर्थयात्रियोंसे जो कर लिया जाता था वह भी माफ कर दिया गया। अबतक हिन्दू कर्मचारी उच्च पदपर नियुक्त नहीं होते थे, जोखिमका काम उनके हाथ कभी नहीं सौंपा जाता था अकबरने इस रुकावटको भी हटा दिया। हिन्दू मुसलमान दोनोंके अधिकार प्रायः बराबर हो गये, दोनों अपनी अपनी योग्यता और कार्यकुशलतासे उच्च पदोंपर पहुँचने लगे। अकबर बादशाह इस उदार नीतिसे हिन्दुओंके प्यारे हो गये। हिन्दुओंके बराबर कृतज्ञ जाति पृथ्वीपर खोजे ढूँढे ही मिलेगी। प्रेम और राजभक्तिसे गद्गद हो हिन्दुओंने कहना शुरू किया "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा।"



७ सांपोंका स्वभाव

हिन्दुस्तानके प्रायः सभी भागोंमें सांप होते हैं। सांपमें यह विशेषता है कि जबतक उसको कोई सताता नहीं तब-तक वह नहीं काटता। ऐसे बहुतसे उदाहरण हैं कि उसके ऊपरसे निकल जानेपर भी उसने किसीको नहीं काटा। इसके विपरीत यदि किसीने उसके साथ जरा भी छेड़ छाड़ की तो उसकी कोपदृष्टिसे



बचना मुश्किल हो जाता है। सांपोंके संबन्धकी दो चार सच्ची घटनाओंका यहांपर उल्लेख किया जाता है जिससे पाठकोंको मन बहलावके साथ साथ, सांपोंके स्वभावका भी थोड़ा बहुत पता लग जायगा।

छोटे छोटे गांवोंमें ग्वाले प्रातःकाल ही अपनी गाय और भैंसोंको दुहते हैं। एक दिन एक ग्वालेने जब अपनी गाय दुही तब उसको उसका दूध हमेशासे कम मालूम हुआ। उस दिन तो उसने इस बातपर विशेष ध्यान नहीं दिया। परन्तु जब प्रतिदिन उसको दूध कम मिलने लगा तब उसको सन्देह हुआ कि रातके वक्त कोई पड़ोसी आकर गायको दुह जाता होगा। यह विचारकर वह एक दिन सारी रात अपने बाड़ेमें छिपकर बैठा रहा। सारी रात बीत गयी परन्तु कोई मनुष्य न आया। निदान थककर वह गाय दुहनेकी तैयारी करने लगा, इतनेमें उसने एकाएक गायको कांपते देखा। भयसे उसके मुँहपर मुरदनीसी छा गयी थी, मानों किसी रोगसे उसका शरीर अकड़ गया हो। ग्वाला गायसे थोड़ी ही दूरपर था। इस प्रकार

गायका रंग बदला देखकर वह बड़ा विस्मित हुआ। ग्वाला इसी आश्चर्यमें डूबा था कि उसने और भी एक आश्चर्यमयी घटना देखी। उसने देखा कि एक बड़ासा सांप गायकी अगली और पिछली टांगोंमें लिपटा हुआ है और उसका एक स्तन अपने मुँहमें लेकर बच्चेकी तरह दूध पी रहा है। यह हाल देखकर ग्वाला चुपचाप एक कोनेमें छिप रहा, क्योंकि वह जानता था कि यदि थोड़ीसी भी आवाज सांपके कानमें पड़ेगी तो वह झट गायको काट खायगा। निदान जब सांप दूध पीकर अपने बिलमें घुस गया तब ग्वालेके जीमें जी आया।

एक मदारी और उसके सांप

एक गांवमें दो मदारी भाई रहते थे। वे हमेशा जंगलोंसे सांपोंको पकड़ते और लोगोंको उनके तमाशे दिखाकर टके कमाते थे। एक दिन उन्होंने जंगलसे छः सांप एक ही साथ पकड़े और एक टोकरेमें बन्द करके अपनी झोपड़ीके एक कोनेमें रख दिये। उस झोपड़ीके दो हिस्से थे, एकमें भोजन बनाया जाता था और दूसरेमें दोनों भाई सोया करते थे। सांपोंका टोकरा सोनेके कमरेमें रखा गया था। रातको दोनों भाई एक ही बिछौनेपर चादर बिछाकर सो रहे। सवेरे एक भाई बहुत जल्द उठकर भोजनकी तैयारी करने लगा और दूसरा सोता ही रहा। थोड़ी देर बाद जब उसकी आंख खुली उसने देखा कि सब सांप उसके चारों तरफ फन निकालकर खड़े हैं। पहले तो यह दृश्य देखकर वह बहुत घबड़ाया और चाहा कि कूदकर भाग जाऊँ। परन्तु चारों तरफसे घिरा होनेके कारण भागना मुश्किल था। यह भयंकर दृश्य बहुत देर-तक न देख सकनेके कारण उसने अपनी आंखें बन्द कर लीं। वह मनमें सोचने लगा कि ये सांप टोकरेसे कैसे निकल आये और इन्होंने मेरी जान लेनेका मनसूबा क्यों किया है और फिर

जान लेनेकी सारी तैयारी करके भी विलम्ब क्यों कर रहे हैं? इस प्रकार वह थोड़ी देरतक विचार करता रहा। परन्तु उसको निश्चय न हुआ कि सांपोंका मतलब क्या है। आख़िर उसके समझमें आया कि झोपड़ीकी जमीन गोबरसे लिपी होनेके कारण कुछ काले रंगकी हो गयी है और जिस चादर पर मैं पड़ा हूं उसका रंग दूधकी तरह सफेद है। इसीलिये सांप इस ओर आकर्षित हुए हैं। यह बात ध्यानमें आते ही वह अपने बचावकी तदबीर सोचने लगा। परन्तु उसको किसी सूरतसे भी सांपोंसे बच निकलनेकी तदबीर न सूझी। आखिर उसने बहुत ही दबी आवाजसे अपने भाईको बुलाया। अपने भाईका मन्द स्वर सुनकर दूसरा भाई जो उस समय दूध गरम कर रहा था, वहां आया और अपने भाईको सांपोंसे घिरा हुआ देखकर झट भोजन घरमें लौट गया। जो दूध उसने पीनेके लिये गरम कर रखा था उसे वह एक थालीमें डालकर वहांपर ले आया और उसको सांपोंसे थोड़ी दूर पर रखकर फिर भोजनघरमें चला गया। वहांसे वह देखने लगा कि अब क्या होता है। थोड़ी ही देरमें सांपोंको दूधकी सुगन्धि आयी और वे सबके सब दूधकी पर टूट पड़े। उनके दूर होते ही वह मनुष्य, जो अपनेको जीते ही मरा हुआ समझ रहा था, दौड़कर भोजन घरमें घुस गया।

सांपोंका संगीत-प्रेम

सांपोंको संगीतसे बड़ा प्रेम होता है। इसी प्रेमके कारण वे अपनेको मदारीके हाथोंमें फँसा देते हैं। इसी संगीतद्वारा ही मदारी लोग उनको अपनी बिलोंसे बाहर निकाल लेते हैं। यद्यपि मुरलीको वे सबसे ज्यादा पसन्द करते हैं तथापि अन्य वाद्य भी उनको कम प्रिय नहीं होते। किसी समय एक स्त्री अपनी वाटिकामें बैठी सारंगी बजा रही थी। इतनेमें उसने अपनेसे केवल दो फुटकी दूरीपर एक बड़ेसे सांपको फन निकाल

कर डोलते देखा। उसको देखकर वह बहुत घबराई और सोचने लगी कि किसी तरह यहांसे भाग जाऊं। परन्तु केवल एक हाथके फासलेपर सांप अपने फनको हिलाकर उसीकी तरफ देख रहा था। ऐसी अवस्थामें वहांसे भाग निकलना कठिन था। उस मौकेपर उसे एक बहुत अच्छा विचार सूझा जिससे उसकी रक्षा हुई। उसने उस वक्त एक नवीन राग बजाना शुरू किया जिससे नाग आनन्दित होकर झूमने लगा। जैसे जैसे सारंगीसे आलाप निकलने लगे वैसे ही वैसे सांप भी डोलने लगा और वह स्त्री धीरे धीरे पीछे हटती गयी। पहले तो उसका यह विचार था कि इस प्रकार सांपको धोखेमें डालकर भाग जाऊं। परन्तु जब वह बहुत दूर निकल गयी तब उसको सांपके डोलनेसे बड़ा मजा आने लगा। क्योंकि जिस प्रकारका ताल वह बजाती थी उसी प्रकार सांप भी अपने सिरको हिलाता था। कभी कभी सारंगीकी गति त्वरित हो जानेपर सांपका सिर भी बड़ी तेजीसे हिलने लगता था। वाद्यकी गति यदि मन्द हो जाती थी तो वह भी मानों नींदके झोंके खाने लगता था। एक बार उस स्त्रीने जान बूझकर तालको बिगाड़ दिया। उससे सांपने बड़ा दुःख प्रकट किया, मानों इससे वह बड़ा ही अप्रसन्न हुआ हो। मतलब यह कि रागके पहचाननेमें सांपने एक अच्छे गवैयेकी सी चतुराई दिखायी। आखिर उस स्त्रीने तंग होकर और इस प्रकार सांपसे खेल खाल करते रहनेसे शायद कोई दूसरा तूफान न खड़ा हो जाय इस भयसे अपने घरमें घुसकर किवाड़ बन्द कर लिये। सांप भी राग पूरा हो जानेसे अपने बिलमें जा घुसा।

नागको पैर तले कुचल डालनेवाली मा बेटी

हिन्दुस्तानकी स्त्रियां जूता नहीं पहनतीं, सब जगह खुले पैरों फिरा करती हैं। यह रिवाज कुछ अच्छा नहीं, क्योंकि

इससे कभी कभी बड़ी हानि होती है। एक दिन सन्ध्या समय एक लड़की अपने घरके बरामदेमें फिर रही थी। घरके बाहर पीपलका एक वृक्ष था वह लड़की फिरते फिरते उस पीपलके वृक्षके पास आयी और सहसा स्तब्ध होकर खड़ी रह गयी। डरसे उसका सारा बदन कांपने लगा। उसमें बोलनेकी शक्ति भी न रही।

"अम्मा! ओ अम्मा!" आखिर उसने ज्यों त्यों करके बहुत डरी हुई आवाजसे अपनी मांको बुलाया।

"क्यों बेटी क्या है?" अन्दरसे आवाज आयी।

"मां! मेरा पैर एक सांपपर—उसके सिरपर—पड़ गया है"—लड़कीने कहा।

"वैसे ही खड़ी रहना, मैं अभी आती हूं, देखना जरा हिलना मत"—मांने कहा।

इस प्रकार लड़कीको आश्वासन देती हुई वह एक दिया हाथमें लेकर उसके पास आयी। लड़की वहीं खड़ी थी। उसका मुँह पीला पड़ गया था। खून सूख गया था और मुखपर घब-राहट छाई हुई थी। परन्तु उसने अपना पैर सांपके सिरपर खूब जोरसे दबा रखा था। सांप भी उसकी टांगोंमें लिपट गया था और उसके पैरके नीचेसे अपना सिर छुड़ानेकी कोशिश कर रहा था। सांप कुछ छोटा था इसलिये लड़कीके पैरतलेसे निकल न सका। यदि वह बड़ा होता तो अवश्य लड़कीको मार डालता।

लड़कीकी मांने आकर अपना पैर लड़कीके पैरपर रख दिया और उसको खूब जोरसे दबाने लगी। उसने लड़कीके बगलमें अपने दोनों हाथ डालकर उसको बड़ी मजबूतीसे पकड़ रखा था। कितनी ही देरतक दोनों मां बेटी सांपका सिर अपने पैरके नीचे दबाये खड़ी रहीं। यदि थोड़ीसी भी गफलत हो जाती तो दोनों मां बेटी आलिंगित अवस्थामें ही मृत्युको प्राप्त हो

जातीं। इस प्रकार कुछ देरतक दवा रहनेसे सांप मर गया। निदान जब सांप मरकर धरतीपर गिर पड़ा तब मांने लड़कीके पैरपरसे अपना पैर उठाया और उन दोनोंके जीमें जी आया।

—छबीलदास सामन्त

८ चरित्रपालन

चरित्रमें कहींपर किसी तरहका दाग़ न लगने पावे इस बातकी चौकसीका नाम चरित्रपालन है। हमारे लिये चरित्रपालनकी आवश्यकता इसलिये मालूम होती है कि चरित्रको यदि हम सुधारनेकी फिकिर न रखें तो उसे विगड़ते देर नहीं लगती, जैसे उर्वरा फलवन्त धरतीमें लम्बी लम्बी घास और कटीले पेड़ आपसे आप उग आते हैं पर अन्न आदिक उपकारी पौधे वड़े यत्न और परिश्रमके उपरान्त उगते हैं। सच तो यों है कि त्रिगुणात्मिका प्रकृतिने चरित्रमें विकार पैदा कर देनेवाले इतने तरहके प्रलोभन संसारमें उपजा दिये हैं जिनसे आकर्षित हो मनुष्य बातकी बातमें ऐसा विगड़ जा सकता है कि फिर यावज्जीवन किसी कामका नहीं रहता। महलके बनानेमें कितना यत्न और परिश्रम करना पड़ता है पर जब बनकर तैयार हो जाता है उसे ढहाते देर नहीं लगती। इसी बातपर लक्ष्य कर कविशिरोमणि कालिदासने कहा है—

"विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः"

अर्थात् जो बातें विकार पैदा करनेवाली हैं उनके होते हुए भी जिनके मनमें विकार न पैदा हो वे ही धीर हैं। महाकवि भारविने भी ऐसा ही कहा है—

"विक्रिया न खलु कालदोषजा निर्मल प्रकृतिषु स्थिरोदया।"

अर्थात् निर्मल प्रकृतिवालोंमें कालकी कुटिलताके कारण जो विकार पैदा होते हैं चिरस्थायी नहीं रहते। चरित्ररक्षा एक

प्रकारकी सन्दली ज़मीन है जिसपर यशःसौरभ इत्रके समान बनाये जा सकते हैं अर्थात् जैसे गन्धी सन्दलका पुट दे हर किस्मका इत्र उसमेंसे तैयार करता है वैसे ही चरित्र जब आदमीका शुद्ध है तो वह हर तरहकी योग्यता प्राप्त कर सकता है। शुद्ध चरित्रवाला मनुष्य सब जगह प्रतिष्ठा पाता है और जिस काममें सन्नद्ध होता है उसीमें पूर्ण योग्यताको पहुँच हर तरहपर सरसब्ज़ होता है।

यथाहि मालिनैर्वस्त्रैर्यत्र तत्रोपविश्यते ।
एवं चलितवृत्तस्तु वृत्तशेषं न रक्षति ॥

अर्थात् जैसे मैला कपड़ा पहिने हुए मनुष्य जहां चाहता है वहां बैठ जाता है, कपड़ोंमें दाग लग जानेका खयाल उस आदमीको बिलकुल नहीं रहता उसी तरह चलितवृत्त अर्थात् जिसके चालचलनमें दाग लग गया है वह फिर बाकी अपने और चरित्रोंको भी नहीं बचा सकता वरन् वह नित्य नित्य बिगड़ता जाता है। मन जिह्वा और हाथका निग्रह चरित्रपालनका मुख्य अंग है। जिसने मनको कुपथपर जानेसे रोका है और हाथको दूसरेकी वस्तु चुरानेसे या बेईमानीसे ले लेनेमें रोक रखा है वही चरित्रपालनमें दूसरोंके लिये उदाहरण हो सकता है। ऐसा मनुष्य कसौटीमें कसे जानेपर खरेसे खरा निकलेगा।

वरं विन्ध्याटव्यामनशनतृषार्तस्य मरणम् ।
वरं सर्पाकीर्णे तृणपिहित कूपे निपतनम् ।
वरं गर्त्तावर्त्ते गहन जलमध्ये विलयनम् ।
न शीलाद्विभ्रंशो भवतु कुलजस्य श्रुतवतः ॥

सच है, कुलीन समझदार साक्षरके लिये चरित्रमें दाग लगना ऐसी ही कड़ी बात है कि उसे अपना जीवन भी बोझ मालूम होने लगता है। जैसा ऊपरके श्लोकमें कविने कहा है कि "विन्ध्य

पहाड़के वनमें भूखा प्यासा हो मर जाना अच्छा, तिनकोंसे ढके सर्पोंसे भरे कुएंमें गिरकर प्राण दे देना श्रेष्ठ, पानीके भँवरमें डूबकर विला जाना उत्तम है, पर शिष्ट पढ़े लिखे मनुष्यका चरित्रसे च्युत हो जाना अच्छा नहीं।" रुपया पैसा हाथकी मैल है आता जाता रहता है किन्तु बात गये बात फिर नहीं बनती, इसीलिये धनका दरिद्र दरिद्र नहीं कहा जा सकता यदि वह सुच-रित्रमें आढ्य हो तो। जिनके आंखका पानी ढरक गया है उनको चरित्रपालन कोई बड़ी बात नहीं है और न इसकी कुछ कदर उन्हें है, किन्तु जो चरित्रको सबसे बड़ा धन माने हुए हैं वे अत्यन्त संयमके साथ बड़ी सावधानीसे संसारमें निबहते हैं। यावत् धर्म, कर्म और परमार्थसाधन सबका निचोड़ वे इसीको मानते हैं। ऐसे लोग जनसमाजमें बहुत कम पाये जाते हैं, हजारोंमें कहीं एक ऐसे होते हैं और ऐसे ही लोग समाजके अगुआ, राह दिखलानेवाले आचार्य गुरु रसूल या पैगम्बर हुए हैं और आप्त तथा शिष्ट माने गये हैं। उनके एक एक शब्द जो मुखसे निकलते हैं तथा उनका उठना बैठना चलना फिरना अलग अलग चरित्र पालनमें उदाहरण होता है। जो प्रतिष्ठा बड़ेसे बड़े राजाधिराज सम्राट् बादशाह शाहनशाहको दुर्लभ है वह चरित्रवानको सुलभ है और यह प्रतिष्ठा चरित्रपालनवालेको सहज ही मिल गयी हो सो नहीं, वरन सच कहिये तो यह असिधारा-व्रत है। संसारके अनेक सुखोंको लात मार बड़े बड़े क्लेश उठानेके उपरान्त मनुष्य इसमें पक्का हो सकता है। चरित्रसे बहुत मिलती हुई दूसरी बात शील है। शीलका चरित्रमेंही अन्तर्भाव हो सकता है। चरित्र-पालनमें चतुर शील-संरक्षणमें भी प्रवीण हो सकेगा किन्तु शील-संरक्षणमें विचक्षण मनुष्य चरित्रपालनमें प्रवीण नहीं हो सकता। अँगरेजीमें शीलके लिये "काण्डक्ट्" और चरित्रके लिये "कैरेक्टर" शब्द है। आदमीकी बाहरी चालचलनका सुधार शील या "काण्डक्ट्" अथवा "बिहेवियर" कहा जायगा किन्तु मनुष्यका

आभ्यन्तर शुद्ध जबतक न होगा तबतक बाहरी सभ्यता "चरित्र" नहीं कहलावेगी। श्री रामचन्द्र, युधिष्ठिर, बुद्धदेव तथा महात्मा ईसाके चरित्रपालनका समाजपर वैसा ही असर होता है जैसा रक्तसंचालनका शरीरपर। सुस्निग्ध पुष्ट भोजनसे जो रुधिर पैदा होता है वह शरीरको पुष्ट और नीरोग रखता है, वैसे ही जिस समाजमें चरित्रपालनकी कद्र है और लोगोंको इसका ख़याल है कि हमारा चरित्र दगीला न होने पावे वह समाज पुष्ट पड़ती जाती है और उत्तरोत्तर उसकी उन्नति होती जाती है। जिस समाजमें चरित्रपालनपर किसीकी दृष्टि नहीं है और न किसीको "चरित्र किस तरहपर बनता बिगड़ता है" इसका कुछ खयाल है उस बिगड़ी समाजका भला क्या कहना! कुपथ्य भोजनसे विकृत रुधिर पैदा होकर जैसे शरीरको व्याधिका आलय बना नित्य उसे क्षीण और जर्जर करता जाता है वैसेही लोगोंके कुचरित्र होनेसे समाज नित्य क्षीण निःसत्व और जर्जर होता जाता है। जिस समाजमें चरित्रकी बहुतायत होगी वह समाज सर्वोपरि दीप्यमान होकर देश और जातिकी उन्नतिका द्वार होगा। हमारी प्राचीन आर्यजाति चरित्रकी खान थी जिनके नामसे इस समय हिन्दूमात्र पृथ्वीभरमें विख्यात हैं। अफ़सोस! जो क़ौम किसी समय दुनियाके सबलोगोंके लिये चरित्रशिक्षामें नमूना थी वह आजदिन यहांतक गयी बीती हो गयी कि दूसरेसे सभ्यता और चरित्रपालनकी शिक्षा लेनेमें अपना अहोभाग्य समझती है! समय खेलाड़ीने हमें अपना खिलौना बनाकर जैसा चाहा वैसा खेल खेला, देखें आगे अब वह कौन खेल खेलाता है।

—बालकृष्णभट्ट

६ मनुष्य समाज

यदि अकेले एक मनुष्यको किसी ऐसी जगह छोड़ दें जहां उसके खानेके लिये अन्न, पीनेके लिये ठंढा जल और रहनेके लिये एक झोंपड़ी हो तो क्या वह वहां सुखसे रह सकता है? हरगिज़ नहीं। सबसे पहले यदि हम उसकी साधारण जरूरतोंको ही देखें तो भी उसको रोटी बनानेके लिये कई एक चीजें चाहिये। आटा पीसनेके लिये चक्की, उसे गूंधनेके लिये बरतन, पानी रखनेके लिये लोटा आदि चाहिये। और यदि यह थोड़ा सामान उसके पास हो भी, तो भी क्या वह वहां सुखसे रह सकता है और अपनी उन्नति कर सकता है? फिर भी हम वही उत्तर देंगे—हरगिज नहीं।

जिन लोगोंको नौकरीके कारण कभी कभी पाँच पाँच चार चार वर्षतक ऐसी जगह रहना पड़ा है जहां दूसरे मनुष्यके दर्शन दुर्लभ हों, उनसे दर्याफ्त कीजिये। वे बतलाएँगे कि "हम किसीसे बात करनेके लिये तरसते थे।" यह क्यों? कारण यह है कि ऐसा जीवन मनुष्यस्वभावके विपरीत है। मनुष्य ऐसे जीवनमें न कुछ सीख सकता है और न सुख पा सकता है। ऐसा जीवन मनुष्यको पशुतुल्य बना देता है।

प्राकृतिक पदार्थोंका भोग, तथा मानसिक शक्तियोंका विकास, तभी हो सकता है जब मनुष्य मनुष्योंमें रहे। एक झोंपड़ी बनानेके लिये दो चार मनुष्य काफी हैं, परन्तु एक सुन्दर भवन बनानेके लिये सैकड़ों मनुष्य चाहिये। एक गाड़ी या रथ बनानेके लिये थोड़े ही मनुष्य बस हैं, परन्तु एक रेलगाड़ीके लिये बहुतसे मनुष्योंकी सहायता दरकार है। प्रीति, न्याय, दया, शील सन्तोष, धैर्य, आदि गुणोंकी धारणा हमलोग मनुष्य-समुदायमें रहकर ही सीख सकते हैं। अकेले आदमीके लिये धर्म अधर्म बराबर है। मानसिक तथा आत्मिक शक्तियोंका विकास भी

मनुष्य समाजमें ही हो सकता है, इसीलिये यूनान देशका प्रसिद्ध विद्वान् अरस्तू कहता है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।

यहांपर कोई हमसे यह पूछ सकता है कि योगी साधु आदि महात्मा तो एकान्तमें ही रहना पसन्द करते हैं, फिर उनके जीवन पशुतुल्य क्यों नहीं हो जाते? इसका उत्तर यह है कि वे मनुष्य-समाजमें ही उत्पन्न हुए और यहीं रहकर उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया है, फिर उस ज्ञानकी वृद्धिके लिये जब जब उन्हें मनन और निदिध्यासनकी आवश्यकता पड़ती है, तो वे एकान्तमें चले जाते हैं। इसके विपरीत जो मनुष्य बिलकुल जंगलोंहीमें रहते हैं उनके जीवन पशुओंके तुल्य हो जाते हैं। मनुष्य अकेला नहीं रह सकता। समाजमें रहना उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। यदि समाजमें नहीं रहता तो अपना मनुष्यत्व खो देता है। इसीलिये एक विद्वान् कहता है कि—

"समाजसे पृथक् रहनेवाले मनुष्यकी वही हकीकत है जो शरीरसे कटे हुए हाथकी है। जैसे कटा हुआ हाथ निकम्मा है, उसी प्रकार समाजसे अलग रहनेवाला आदमी भी निकम्मा है।"

"परस्पर सम्बन्धपूर्वक इकट्ठा रहनेवाले जनसमुदायका नाम मनुष्य-समाज है" समाजका यह साधारण लक्षण है। इस शब्दका प्रयोग यदि हम और भी विस्तृत अर्थमें करें तो समग्र पृथ्वीपर जो भिन्न भिन्न मनुष्य जातियां हैं उन सबको मनुष्य-समाजके नामसे पुकार सकते हैं। इस महान मनुष्य समुदायके आचार-व्यवहारका पाठ तथा उसकी रीति-भांति यश चरित्र आदिके ज्ञानका नाम सामाजिक विज्ञान है। इस समाजके दो बड़े उद्देश्य हैं।

प्रथम उद्देश्यको हम अधिकार नामसे उल्लेख करेंगे। जन-समुदायमें रहनेवाले व्यक्तियोंको कुछ अधिकार प्राप्त हैं। उनके लाभ उठानेका उन्हें पूरा हक है। ये अधिकार राजनीतिक श्रमविभाग विद्या अथवा धर्मसे सम्बन्ध रखते हैं।

दूसरे उद्देश्यका नाम हम कर्त्तव्य रखते हैं। प्रत्येक व्यक्तिको समाजमें रहकर उसके नियमोंका पालन करना आवश्यक है। जिन नियमोंके पालनसे सब सभ्योंका बराबर उपकार होता हो, समाजमें शान्तिरक्षा होती हो और सबकी उन्नति होती हो उनका पालन करना उसका कर्त्तव्य है।

इन दो उद्देश्योंको स्पष्ट करनेके लिये हम एक उदाहरण देते हैं। मान लीजिये कि सौ स्त्रीपुरुषोंको दस हजार एकड़ भूमि रहनेके लिये दी गयी तो बराबर बराबर हिस्सा करनेसे प्रत्येकके हिस्सेमें एक सौ एकड़ भूमि आयी। अब इस भूमिमें वे जो चाहें बोवें, जिस तरह चाहें अपने श्रमसे भूमिको अधिक उपजाऊ बनावें उस भूमिसे पूरा लाभ उठानेका उन्हें अधिकार है। दस हजार एकड़ भूमिमें कुछ वर्ष बाद उन्होंने अपनी सन्तानके लिये पाठशालाएं खोल दीं, सबके बालक, बालिकाएं उनमें पढ़ने लगे। इन सब बातोंमें सब अधिकार बराबर रहे। मान लीजिये कि इस समयतक सबका धर्म एक ही है और सबका काम उस छोटी सी बस्तीमें अच्छी तरह चला जाता है।

अब यदि इस छोटीसी बस्तीमें कोई उद्दण्ड पुरुष जबरदस्ती दूसरेकी भूमि छीनना चाहे, अथवा किसीके बालकोंको पाठशालामें न पढ़ने दे, या कोई और गड़बड़ करे तो इसका उपाय क्या है? मनुष्य-समाजमें बहुधा हम ऐसे स्वार्थी लोगोंको देखते हैं जो दूसरेका माल हज़म कर लेते हैं या अपनेको सबसे बड़ा बतलाते हैं। ऐसे अनुचित कर्मोंसे वे समाजमें अशांति फैलाते हैं। बतलाइए, ऐसे लोगोंसे किस प्रकार बचाव हो सकता है?

इस प्रश्नका उत्तर देनेके पहले हम पाठकोंसे समाजके पूर्वोक्त दो उद्देश्योंका अभिप्राय अच्छी प्रकार समझ लेनेकी प्रार्थना करते हैं। प्रथम उद्देश्य "अधिकार" या "हक"से तात्पर्य अपने स्वत्वकी रक्षा, अपने श्रमसे पूरा लाभ, विद्याप्राप्तिमें बराबर अधिकार तथा

धर्म या मजहबकी आजादीका होना है। दूसरे उद्देश्य "कर्त्तव्य" से अभिप्राय उन नियमोंका पालन है जिनसे समाजमें शान्तिपूर्वक लाभ और उन्नति हो। इसीलिये मनुष्य समाजके नियमोंपर कथन करते हुये एक विद्वान् कहता है—"मनुष्यको सामाजिक स्वहितकारी नियमोंमें स्वतंत्र होना चाहिये।"

—स्वामी सत्यदेव

१० विज्ञान और देशानुराग

सच्चे देशप्रेमका अभाव

आजकल भारतवर्ष क्या, सारे संसारमें स्वदेश-भक्तिकी धूम है। देशभक्त लोग देश-भक्तिकी अनेक प्रकारकी कल्पनाएं कर लेते हैं और अपने अपने आदर्शके अनुसार देशकी भक्ति करते हैं। कुछ लोग अपने देशपर मरते हैं, बहुतेरे अपने देशके लिये जीते भी हैं। कोई व्यापारमें, कोई व्यवहारमें, कोई वेषभूषामें, कोई अपनी बोलचालमें, निदान जिस रूपसे जिसे रुचता है देश-भक्तिका परिचय देता है। लेखक इस विषयका पण्डित नहीं जो इसपर विवेचनायुक्त बातें लिख सके, किन्तु उसका विश्वास है कि आजकलका हमारा शिक्षित समाज अपनेको कितना ही देशभक्त कहे, वैज्ञानिक दृष्टिसे उसे देशभक्त कहनेमें हमको संकोच होगा।

जिस भारत सन्ततिने अपने देशको अपने धर्म्ममें ऐसा लीन कर लिया कि नदी, वन, पहाड़, झरने, नाले, गड्ढे, पेड़, लता, पशु, पक्षी, बालक, बुड्ढे, जवान, कहांतक कहें कंकड़ पत्थर-तकको देवता माना, बड़ेसे बड़ा आदर दिया, छोटेसे बड़ेतकको पूजा, मिट्टीको सिरपर चढ़ाया और प्यारे भारतको त्यागकर बाहर जानेको महापातक ठहराया—उसीसे उद्भूत आज हमारा शिक्षित समुदाय ऐसे वायुमण्डलमें रहते हुए भी जिसमें उसे इन प्राकृतिक वस्तुओंकी खबर नहीं, देश-भक्तिका दम भरता है!

हम जिस देशको प्यार करते हैं उसके वृक्ष और लताका पता नहीं, उनके सौन्दर्य, उनके जीवनका जानना दूर रहा, नामतक मालूम नहीं। जिन पक्षियोंकी सुन्दरताका वर्णन हम कवियोंकी रचनामें पाते हैं, उनके दर्शन भी कभी हुए? जिन लताओं और पुष्पोंके नाम काव्योंमें पढ़े उनमेंसे कितने देखे हैं, कितनोंके सौन्दर्यका नयनानन्द प्राप्त किया है? जो कीड़े मकोड़े हमारे जीवनके लिये अत्यावश्यक हैं जिनका प्रत्युपकार करनेमें हम असमर्थ हैं उनमें हम किस किसको जानते हैं? जिस अन्धेरी रातसे हमें घृणा है उसमें ही स्वच्छ नीलाकाशमें सारे महिमण्डलको शोभा पहुँचाते हुए तारोंसे कितने शिक्षित लोग वार्त्तालाप करते हैं? शिक्षित समुदायने अपने मस्तिष्कपर शास्त्रके विषयोंका बोझ लाद लेना ही शिक्षाका फल समझ रखा है और रसज्ञताको एकदम विदा कर दिया है।

विज्ञानद्वारा सच्चे देशप्रेमकी शिक्षा

जिस स्थितिका हमने ऊपर वर्णन किया है उस स्थितिको बदलनेके लिये क्या उपाय है? हम किस तरह सच्चे देशभक्त, सच्चे भारतीय बनें? हम जिस देशको अपना कह रहे हैं उससे किस तरह गहरी जानपहचान करें? यही प्रश्न हमारे सामने पेश हैं और विज्ञान ही उन सब प्रश्नोंका प्रत्यक्ष उत्तर है।

हम जब किसीसे गहरी दोस्ती गाढ़ा प्रेम करना चाहते हैं, तो क्या दूर दूरसे बातचीत करने वा "लग्घों पानी पिलानेसे" काम चल सकता है? जिससे हम प्रेम करना चाहते हैं उसकी भाषामें उससे बातचीत करते हैं, उसके दुःखके साथ दुःख सहते, उसके सुखमें सुखी होते, उसके दोषोंको दूर करते, निदान सब तरहका मैत्रीका सलूक करते हैं। घूमने फिरने वा काम काजसे इधर उधर जानेमें सैकड़ों पौधे देखनेमें आते हैं इनसे मैत्री कर लेनेके लिये हमें थोड़ीसी वनस्पति विद्या जान लेना

चाहिये। हमारी मातृभाषा भाइयोंसे, मनुष्योंसे, बातचीतके लिये है। वनस्पतिसे बातचीत करनेको हमें वनस्पति-विज्ञान द्वारा बतायी हुई भाषाका प्रयोग करना होगा। बस थोड़ीसी विद्यासे ही हम जिधर जाते हैं मित्रोंके कुटुम्बका कुटुम्ब स्वागतके लिये खड़ा पाते हैं। कोई टहनी नहीं, कोई पत्ती नहीं जो हमारा जी बहलानेके लिये एक नयी कहानी लेकर खड़ी न हो। फूल, पखड़ियां, केसर, पराग, मकरन्द जिनपर हमारे कवियोंने अपनी सरस्वतीको वार दिया है आज भी हमारे लिये बागकी रविशोंको परिस्तानका तमाशा और सड़कके किनारोंको इन्द्रके अखाड़ेका दृश्य बना रहे हैं। अमृतमय मधुको पान करके मस्त भौंरे और वनस्पतियोंमें घूम घूमकर चहकनेवाले पक्षी हमको नन्दन वनका आनन्द देनेको स्वागत कर रहे हैं। पर हम हैं पढ़ेलिखे गँवार, हम पढ़ लिखकर भी इनकी भाषा नहीं समझते। हमारी आंखोंपर ऐनक चढ़ी हुई है, पर हम पत्तियों, फूलों, फलोंके सौन्दर्यको देखनेमें असमर्थ हैं। क्यों? क्योंकि हमारी आंखोंको विज्ञानका प्रकाश नहीं मिला है हमने ज्योति ठीक करनेको ऐनक ली पर अज्ञानके अन्धकारसे निकलनेकी फिक्र न की।

घूमना घामना देशान्तरकी सैर करना फैशनके अनुकूल है, परन्तु उसका उद्देश्य मुख्यतः दसपांच मित्रोंके साथ गपशप और सहभोजको छोड़ अधिक नहीं होता। हम अपने प्यारे देशके विशेष स्थानोंको भी विस्तारपूर्वक नहीं देखते। कैसी भूमि किस प्रकारकी मिट्टी वा चट्टान है, क्या उपजता है, कैसे पत्थर वा खनिज हैं कितनी ऊंचाई है, कैसी ऋतु रहती है, कैसा तापक्रम रहता है, कैसी वर्षा होती है, इत्यादि सैकड़ों बातें उस स्थानपर पहुँचकर मालूम करने और अनुभव प्राप्त करनेसे सच्ची जानकारी होती है, परन्तु हमारे सैर करनेवाले इन बातोंको भूगोलकी पुस्तकमें तह कर रखते हैं और पाठशालाकी परीक्षाओंके लिये ही इनकी जानकारी सार्थक समझते हैं।

यह समझ बैठना भी भूल है कि इन जानकारियोंसे अपने दिमाग़ क्यों थकावें। इनसे दिमाग़को थकान नहीं होता वरन् आराम मिलता है। आंखों कानोंके नाड़ीजाल जो घरेलू वा कामकी चीज़ें देखते सुनते थके रहते हैं, इन आनन्ददायक परिवर्त्तनोंसे उन्हें आराम मिलता है, उनकी पुष्टि होती है। रास्तेका चलना नहीं खलता दूरसे दूरका रास्ता आनन्दमें कट जाता है, साथ ही मनको बड़ा सन्तोष, बड़ा सुख होता है कि हम अपनोंमें ही विचर रहे हैं। यह वनस्पति यह खनिज सब हमारे ही हैं।

थोड़ी देरके लिये हम मान भी लें कि इस तरह जंगलोंकी खाक छाननेकी हमें फुरसत नहीं है। खैर साहब, अपने काम काजसे बाज़ार गये बिना तो चल नहीं सकता। आप बाज़ारमें जाकर सैकड़ों हज़ारों तरहकी चीजें देखते हैं। उनमें बहुतेरी चीजें आप अपने नित्यके काममें लाते हैं, क्या यह आपको मालूम है कि तेजपात कहांसे आता है, कैसे पेड़में होता है? लौंगका फूल कहांसे आता है? कत्था कैसे निकालते, बनाते हैं, सुपारी कहांसे मँगायी जाती है। कहांतक कहें हज़ारों चीजें हैं जिनपर सफहे नहीं काग़ज़के रीमके रीम रँगे जा सकते हैं, परंतु हमको कभी मनमें यह उत्कंठा नहीं होती कि जो वस्तुएं हमें नित्य स्वाद और सुख देती हैं कहां, कैसे, होती हैं किस प्रकार आती हैं। जिनसे हम इतना सुख उठावें उनका बिलकुल हाल न जानें, यह कैसे दुःखकी बात है। यह सच है कि आप इन सब चीजोंको पैसे देकर लेते हैं, परन्तु पैसे आप उपजाने, लाने, साफ या तय्यार करनेकी मज़दूरीमें देते हैं। इनके स्वादके लिये इनसे मिलते हुए सुखके लिये क्या हम कुछ दे सकते हैं? इतनेपर भी हम इन्हें जाननेका ज़रा भी प्रयत्न नहीं करते। यह हमारी अज्ञानता ही है जिसके कारण धीरे धीरे यह चीजें ही हमारे देशसे बाहर चली गयीं और अब हमारे पास हमारी ही अपनी अयोग्यतासे मेहमान बनकर आयी हैं। जापानी आदि विदेशी

व्यापारी इन बातोंकी छानबीन करके अपने यहांके मालसे बाज़ार भर देते हैं पर हमारे कानोंपर जूं नहीं रेंगती। रसायन, भौतिक वा प्राणिविद्यामें ही विज्ञान सीमित नहीं है। विज्ञान बहुत व्यापक शब्द है। मेथी मँगरेला सोंठ काले-नमककी जानकारी-भी विज्ञान है और वह जानकारी इतनी ही नहीं है कि "दिसावर-से मँगाते हैं।" उसका पूरा वृत्तान्त जानना विज्ञान है। आपको वनस्पतियों और खनिजोंसे यदि राहमें, जंगलमें, मैदानमें मैत्री करनेका अवसर नहीं मिलता तो बाज़ारमें ही उनके सजा-तियोंसे प्रेम पैदा कीजिये। फिर तो हर बनियेकी दुकान आपके लिये प्रदर्शिनी वा नुमायशगाह हो जायगी, हरएक कुंजड़ेकी डाल आपको खुली हुई किताब मिलेगी।

जब आप विज्ञानके सहारे अपने देशकी वस्तुओंको इस तरह जानेंगे, जब आप कंकड़ कंकड़से और पत्ती पत्तीसे दोस्ती कर लेंगे, जब आप अपने प्यारे देशको जान जायँगे, जब आपको पक्षी पक्षी पहचानने लगेगा, तब जो देशके प्रेमका आनन्द आपको होगा उसका स्वाद अवर्णनीय है, तब जो आनन्द और प्रेमका समुद्र आपके हृदयमें उमड़ेगा उसमें सारे संकुचित भाव सदैव-के लिये डूब जायँगे। अपने देशको प्राणपणसे प्यार करते हुए भी किसी अन्यसे द्वेष न होगा। कोई अपने माता पिताको चाहे, उनका आदर करे, तो इसे औरोंके मां बापसे द्वेष करना कोई पशु ही समझेगा।

इन्हीं बातोंपर विचार करनेसे समझमें आता है कि हमारी देश-भक्ति कोरी क्यों रहती है। हम भक्ति करते हैं पर जानते नहीं कि किसकी भक्ति करते हैं। पहले जो अन्धविश्वाससे देशभक्तिको परम्परागत पूजामें व्यक्त करते थे, सुधारकोंकी कृपा-से वह हमारे दिलके पन्नेसे ऐसा उड़ गया जैसे स्कूलके काले तख़्तेपरका लिखा लिखाया झाड़नके एक दौरेमें साफ हो जाता है। अब हम किसी दृष्टिसे भी प्रकृतिके दर्शन नहीं करते, न

धर्म्मकी श्रद्धासे न ज्ञानकी पिपासासे। यही बात है कि कोरा जबानी जमा खर्च रह गया। ऐसी दशामें विज्ञानको छोड़ दूसरा उपाय ही नहीं। विज्ञानके ही प्रकाशमें सत्यरूपी तेजस्वी बालक अपने शुद्ध सात्विक आकारमें देख पड़ेगा। विज्ञानसे ही हम अपने देशको जान जायँगे। जान ही न जायँगे बल्कि उसे संसारमें सबसे ऊंचा स्थान दिलवायेंगे। विज्ञान सच्ची देश-भक्ति, सच्चे देशप्रेमका अमूल्य शिक्षक है।

विज्ञानसे जीवनका सुख

संसारमें कोई ऐसा मनुष्य नहीं जिसके हृदयमें अपने देशके अनुरागका अंकुर न हो। सच्चा व्यावहारिक विज्ञान इसी अंकुरको सींचकर पल्लवित, पुष्पित करता तथा उन्नत होनेपर भी फल-भारसे नत कर देता है। परन्तु यह असंभव नहीं कि ऐसा भी कोई निखट्टू हो जिसे पशुकी नाई, अपने पेट पालनके सिवा और कोई व्यापार नहीं है। ऐसे निखट्टुओंका जीवन भी विज्ञानकी बदौलत आनन्दमय हो जाता है। अपनी वास्तविक स्थितिको समझकर वह निखट्टू भी अपनेको संसारकी एक सम्बन्ध रखने-वाली व्यक्ति समझने लगता है। विज्ञान उसे पशुसे मनुष्य बना देता है। विज्ञान सचमुच आदमी बनानेवाली विद्या है।

आजकल स्कूलोंमें प्रत्यक्ष वस्तुओंकी शिक्षापर बहुत जोर दिया जाता है, परन्तु हमारा अनुमान है कि हमारासा आदर्श अपने सामने रखकर भी शिक्षाविभाग पूरी पूरी सफलता नहीं पा सकता, क्योंकि हम तो प्रत्यक्ष देखते हैं कि इस शिक्षाकी आवश्यकता बड़ोंको लड़कोंकी अपेक्षा अधिक ही है। इस आव-श्यकताकी पूर्ति विज्ञानद्वारा अवश्य हो सकती है यदि देशके सच्चे हितू इसको सफल करनेमें तन मन धनसे उद्योगशील हों।

—रा० गौ०

११ कसरत

मनुष्योंको हवा, पानी और अन्नकी जितनी जरूरत है उतनी ही कसरतकी भी। यह माना कि कसरत विना मनुष्य बहुत वर्षों तक जी सकता है और हवा पानी तथा अन्न विना नहीं। फिर भी यह सिद्धान्त सर्वमान्य है कि कसरत विना मनुष्य नीरोग नहीं रह सकता। हमने खुराकका जैसा अर्थ किया है वैसा ही कसरतका भी करना चाहिये। कसरतका अर्थ हाकी, टेनिस, फुटवाल, क्रिकेट, और घूमना ही नहीं है। कसरत मात्रके माने हैं शारीरिक और मानसिक काम। जैसे खुराक हाड़ और मांसहीके लिये नहीं, मनके लिये भी आवश्यक है, वैसे ही कसरत शरीरहीके लिये नहीं मनके लिये भी होनी चाहिये। शारीरिक कसरत न करनेसे शरीर रोगी रहता है और मनकी कसरत न होनेसे वह भी शिथिल रहता है। मूर्खताको एक तरहका रोग ही समझना चाहिये। कोई बड़ा पहलवान कुश्ती मारनेमें तो बड़ा प्रवीण हो किन्तु मन उसका गँवारोंका सा हो तो उसके लिये नीरोग शब्दका प्रयोग करना भूल है। अँगरेजी कहावत है कि नीरोग वही मनुष्य है जिसके नीरोग शरीरमें नीरोग मनका निवास है।

ऐसी कसरतें कौन सी हैं? प्रकृतिने तो हमारे लिये ऐसा सुन्दर प्रवन्ध किया है कि हम सदा कसरत करते रह सकते हैं। शान्तिपूर्वक विचार करनेसे मालूम होगा कि दुनियाका बहुत बड़ा भाग खेतीपर ही निर्वाह करता है। किसानके परिवारको खूब कसरत करनी पड़ती है। रोज आठ दस घंटे अथवा इससे भी अधिक काम करनेपर इन्हें खाने पहननेभरको मिल सकता है। इन्हें मनके लिये अलग कसरत नहीं करनी पड़ती। किसान मूढ़ हो तो कोई काम ही न कर सके। उसे मट्टीकी पहचान, ऋतुपरिवर्तनका ज्ञान, चतुराईके साथ जोतना

और साधारणतः चन्द्रमा सूर्य और तारोंकी गति जाननी चाहिये। शहरका बड़ा भारी बुद्धिमान् भी किसानके यहां जाकर निर्बुद्धि सिद्ध होगा। किसान ही यह बता सकेगा कि अमुक बीज कैसे बोया जाता है। उसे आस पासके रास्तोंका ज्ञान होता है, आस पासके मनुष्योंको पहिचानता है, तारे इत्यादि देखकर वह रातमें भी दिशा पहचान लेता है। पक्षियोंके शब्द और उनकी गतिसे वह बहुतसी बातें ताड़ लेता है। विशेष प्रकारके पक्षियोंको इकट्ठा होते और कलोल करते देखकर वह बता सकता है कि पक्षियोंका यह काम वर्षाका चिह्न है अथवा किस बातका सूचक है। किसान अपने कामभरकी खगोल भूगोल और भूगर्भ विद्या समझता है। उसे अपने बाल-बच्चोंका पालन पोषण करना पड़ता है, इससे उसे मानवधर्म-शास्त्रका साधारण ज्ञान होना सिद्ध होता है। पृथ्वीके विशाल भागमें रहनेके कारण वह ईश्वरका महत्व सहजमें समझता है, शरीरसे मजबूत होता है, अपनी दवा आप कर लेता है। उसकी मानसिक शिक्षाकी बाबत ज़िक्र किया ही जा चुका है।

पर सब लोग किसान नहीं बन सकते, न यह प्रकरण किसानोंके फायदेके लिये लिखा ही जा रहा है। यहां व्यापार वा ऐसे अन्य धन्धे करनेवालोंका प्रश्न है कि वे क्या करें। हमने किसानोंकी जिन्दगीका कुछ वर्णन यहां इसलिये किया है जिसमें लोग इस प्रश्नका उत्तर आसानीसे समझ सकें और अपना रहनसहन उन्हींके समान बना सकें। हमारा रहनसहन किसानके रहन सहनसे जितनाही भिन्न होगा हम उतने ही अधिक रोगी भी होंगे। किसानके जीवन-वृत्तान्तसे पाठक समझ गये होंगे कि मनुष्यको आठ घंटे शारीरिक श्रम करना चाहिये और वह ऐसा कि जिसमें मानसिक शक्तियोंको भी काम करनेका अवसर मिल सके। इसमें सन्देह नहीं कि व्यापारी आदिको कुछ मानसिक कसरत करनेका अवसर

मिलता है परन्तु यह कसरत एक तरफी होती है। ये लोग किसानके समान खगोल भूगोल तथा इतिहासका ज्ञान नहीं रखते। इन्हें भावतावकी खबर रहती है, मालकी खपत करना खूब जानते हैं, परन्तु इन कामोंमें मानसिक शक्तिपर पूरा जोर नहीं पड़ता, और न इस धन्धेमें शरीरकोही अधिक मेहनत होती है।

ऐसे मनुष्योंके लिये पाश्चात्य विद्वानोंने क्रिकेट इत्यादिके खेल लाभकारक बतलाये हैं। उनकी राय है कि वार्षिक उत्सवोंपर भिन्न भिन्न खेल खेलने चाहिये और मानसिक श्रमके लिये ऐसी पुस्तकें पढ़नी चाहिये जिनमें बहुत ज्यादा सोचने विचारनेकी जरूरत न पड़े। यह एक ओरकी बात हुई। अब इसकी जांच होनी चाहिये। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे खेलोंसे शरीरकी कसरत हो जाती है, पर ऐसे व्यायामसे मनुष्यका मन नहीं सुधरता। इसके अनेक उदाहरण हैं। क्रिकेट या फुटबालके अच्छे खिलाड़ियोंकी संख्या देखी जाय तो उनमें कितने अच्छी मानसिक शक्तिवाले मिलेंगे? हिन्दुस्तानके जो राजा महाराजा अच्छे खिलाड़ी हैं उनकी मानसिक शक्तिके सम्बन्धमें हमें क्या प्रमाण मिले हैं? इसके विपरीत जो अच्छी मानसिक शक्तिवाले हैं उनमें कितने खिलाड़ी हैं? मेरी समझमें मानसिक शक्तिवाले लोगोंमें बहुत ही कम खेलनेवाले दिखलाई पड़ेंगे। विलायतके गोरे आजकल खेलनेमें खूब भाग लेते हैं, उनको उन्हींके महाकवि किपलिङ्गने बुद्धिशत्रुकी उपाधि दी है और यह भी कहा है कि ये लोग इंगलैण्डके शत्रु बनेंगे।

हमारे भारतीय बुद्धिमान गृहस्थोंका मार्ग निराला ही है—ये मनकी कसरत करते हैं, पर शरीरकी कसरत बिलकुल नहीं करते या कम करते हैं। इसीसे इन्हें हम असमय खो बैठते हैं, इनका शरीर बराबर मानसिक काम करते रहनेके कारण क्षीण हो जाता है, कोई न कोई रोग इनके शरीरमें घर किये

रहता है और उनके पुष्ट विचारोंसे देशके लाभ उठानेका समय आते आते ही वह संसारसे चल देते हैं। इससे मालूम होता है कि शारीरिक या केवल मानसिक कसरत काफी नहीं, न वही कसरत जो अनुपयोगी और सिर्फ खिलवाड़के लिये हो। जिस कसरतसे मन और शरीर दोनोंका सुधार साथ साथ और हरदम होता रहे वही कसरत अच्छी है और उसीसे मनुष्य नीरोग रह सकता है। किसानीमें ये दोनों गुण हैं।

जो किसान नहीं हैं वह क्या करें? क्रिकेट इत्यादि खेलोंसे होनेवाली कसरत ठीक नहीं, इसलिये हमें ऐसी कसरत तलाश करनी चाहिये जिससे किसानका सा कुछ काम हो। फेरी-वालोंकी तो अपने धंधेमें ही कसरत हो जाती है। व्यापारी तथा अन्यान्य लोग अपने घरके आस पास फुलवारी लगा सकते हैं और उसमें नित्य दो चार घंटे खोदनेका काम कर सकते हैं। यह प्रश्न तो वेफायदा होगा कि हम दूसरेके घरमें रहते हों तो उसकी जमीनमें कैसे काम करें? यह मनकी संकीर्णता है, जमीन चाहे जिसकी हो, हमें खोदने और बोनेसे मिलनेवाले फायदे तो मिलेंगे ही। इसके सिवा हमारा घर सुधरा रहेगा, साथही हमें सन्तोष भी होगा कि हमने दूसरेकी जमीन ठीक रखी है। जिन्हें जमीन सम्बन्धी कसरतका मौका न मिल सके या जिन्हें वह नापसन्द हो उनके लिये भी दो बातें लिख देनी जरूरी हैं। जमीनमें काम करनेकी कसरतके बाद सर्वोत्तम कसरत चलना है। इसे कसरतोंकी रानी कहते हैं, और यह बहुत ठीक है। हमारे साधु सन्त बहुत तन्दुरुस्त रहते हैं, इसके अन्य कारणोंमेंसे एक यह भी है कि ये लोग घोड़ा गाड़ी आदिका उपयोग नहीं करते। अपनी सारी मुसाफिरी पैदलही करते हैं। थोरो नामक एक बड़े विद्वान् अमेरिकनने चलनेकी कसरतके सम्बन्धमें एक बहुतही विचारपूर्ण पुस्तक लिखी है। उसने दिखाया है कि जो लोग समय न मिलनेका बहाना करके

घरसे बाहर नहीं निकलते, हिलते-डुलते नहीं और सदा लिखने आदिका काम किया करते हैं उन मनुष्योंके लेख आदि भी वैसे ही रोगी या शिथिल होते हैं जैसे वे खुद होते हैं। अपने अनुभवके सम्बन्धमें उसने लिखा है कि मैं जिस समय अधिकसे अधिक चलता था मेरे उत्तमसे उत्तम ग्रन्थ उसी समयके लिखे हुए हैं। उसके लिये रोज चार पांच घंटे चलना कुछ बात न थी। जिस प्रकार सच्ची भूख लगनेपर हम कोई काम नहीं कर सकते, पेट पूजामें ही व्यस्त हो जाते हैं उसी प्रकार हमें कसरतकी ऐसी पक्की आदत डाल लेनी चाहिये कि उसके बिना किये हम और कामही न कर सकें। अपने मानसिक कामोंका नापना हमें पसन्द नहीं, इससे हम यह नहीं देख सकते कि शारीरिक कसरतके बिना किये हुए मानसिक काम नीरस और निकम्मे होते हैं। चलनेसे शरीरके प्रत्येक भागमें खून तेजीसे दौरा करता है, प्रत्येक अंगमें हलचल पैदा होती है और सारा शरीर कस उठता है। चलनेसे हाथ पैर तो हिलतेही हैं, साथही बाहरकी शुद्ध हवा मिलती है। बाहरके सुन्दर दृश्योंका आनन्द भी प्राप्त होता है। सदा एकही जगह और गलियोंमें न चलना चाहिये, खेतों और जंगलोंमें घूमना आवश्यक है, वहां प्राकृतिक शोभाकी कुछ परख होगी। दो एक मीलका चलना कोई चलना नहीं कहलाता, दस बारह मीलका चलना, चलना है। जो लोग हर रोज ऐसा न कर सकें वे प्रति रविवारको खूब चल सकते हैं। कोई बीमार एक अनुभवी वैद्यके यहां दवा लेने गया, अजीर्णका रोगी था। वैद्यने उसे रोज थोड़ा चलनेकी सलाह दी। बीमारने कहा, मुझमें जरा भी चलनेकी ताकत नहीं है। वैद्यने समझ लिया कि बीमार कमहिम्मत है, वह उसे अपनी गाड़ीपर चढ़ाकर घुमाने ले गया। रास्तेमें उसने जान बूझकर अपना चाबुक गिरा दिया। सभ्यताकी रक्षाके विचारसे रोगी चाबुक उठानेके लिये उतर पड़ा,

इधर वैद्यने गाड़ी हांक दी। बेचारे रोगीको हांपते हुए दूरतक गाड़ीके पीछे जाना पड़ा तब वैद्यने गाड़ी घुमायी और चढ़ाकर उसे कहा कि तुम्हारे लिये चलना ही दवा थी, इसीसे तुम्हें चलानेके लिये मुझे यह निर्दय व्यवहार करना पड़ा। बीमारको खूब कड़ाकेकी भूख लगी थी, इससे वह चाबुककी बात भूल गया। उसने वैद्यका उपकार माना और घर जाकर सन्तोषपूर्वक भोजन किया। जिन्हें बदहजमी और उससे उत्पन्न होनेवाली बीमारियां हों वे चलनेका प्रयोग आजमा देखें।

—महात्मा गांधी

१२ लाला लाजपतराय

पंजाब प्रान्तके लुधियाना जिलेके अन्तर्गत जगरावँ नामक गावँमें संवत् १६२५में लाला लाजपतरायका जन्म हुआ। लालाजी अग्रवालवंशके शिरोभूषण हैं। पिता लाला राधाकिशन शिक्षक थे। उन्होंने आरंभमें सर सैयद अहमदके साथ कांग्रेसमें योग दिया था। जब सर सैयद अहमदने कांग्रेस छोड़ा लाला राधाकिशनने उन्हें एक बड़ा ही मार्मिक पत्र लिखा था जो देशभक्तोंके पढ़नेयोग्य है। जैसे उनके पिता शिक्षक थे माता भी शिक्षिता थीं। लालाजीपर माता पिताका अपूर्व प्रभाव पड़ा और बालकपनसे ही बड़े तीक्ष्णबुद्धि और स्वतन्त्रताप्रिय थे। लालाजीने संवत् १६४२में नामके साथ वकालत पास की और



हिसारमें वकालत शुरू की। लालाजी गुरुदत्तजी और हंसराज जी तीनों महाशयोंने एक साथ आर्यसमाजके आन्दोलनमें योग दिया था। इनकी निरन्तर चेष्टा अनवरत अध्यवसाय और अदम्य उत्साहसे लाहौरमें दयानन्द ऐंग्लोवैदिक कालेज स्थापित हुआ था। कालेजको लाखोंकी सहायता मिली। लालाजी बरसों उसके अवैतनिक मन्त्री और अवैतनिक व्याख्याता रहे, अपनी आमदनीसे भी कालेजको सहायता दी। यद्यपि आज सरकारी विश्वविद्यालयके अधीन है तथापि इस कालेजका प्रारम्भिक उद्देश्य राष्ट्रिय शिक्षा था। कालेजके अतिरिक्त पंजाब प्रान्तके अन्यान्य कितने ही स्कूलोंको आपसे बराबर सहायता मिलती रही है। आज जो आर्यसमाजकी शाखा प्रशाखाएं भिन्न भिन्न नगरोंमें स्थापित हो अपने उद्देश्यका प्रचार करती हुई देशसेवाके कार्यमें अग्रसर हो रही हैं लाला लाजपतराय और लाला हंसराजकी चेष्टाका फल हैं।

युवावस्थासे ही लालाजीको देशके राजनैतिक आन्दोलनमें दिलचस्पी थी। सं० १९४५में आपने सर सैयद अहमदके कार्यके विरोधमें कई पत्र लिखे जो प्रयागकी कांग्रेसके समय प्रकाशित हुए थे। तभी आपका यशसौरभ चारों ओर फैल गया। इसके पहले सर सैयदके ये बड़े भक्त थे और उनके सम्पादित सोशल रिफार्मर और अलीगढ़ ईन्स्टीच्यूट गजट श्रद्धासे पढ़ते थे। ऐसी पत्र पत्रिकाओं और पुस्तकोंके पढ़नेहीसे हृदयमें जातीय भावका बीज अंकुरित हुआ था।

कालेज छोड़ते ही आपने उर्दूमें इटलीके देशभक्त महात्मा मेजनी और गेरिबाल्डीकी जीवनी लिखी। आपके बनाये शिवाजी श्रीकृष्ण और दयानन्दके जीवनचरित्र आज भी बड़े आदरके साथ पढ़े जाते हैं। पंजाबमें इन्हींकी बदौलत पहले पहल जातीय आन्दोलन आरम्भ हुए और देशसेवाकी महिमा सब लोगोंपर प्रकट हुई। आप पंजाबी तथा अन्यान्य कई पत्रोंमें

सामयिक परिस्थितियोंपर अपने विचार प्रकट करते रहे हैं और वर्षों उर्दू पत्रोंका सम्पादन किया है।

सं० १९५४में भारतमें बड़ा भारी दुर्भिक्ष हुआ। आपने उस समय आर्यसमाजकी ओरसे सहायता की और ऐसी व्यवस्था की जिसे देशवासी कभी भूल नहीं सकते। आगेके सालोंमें भी आपने ऐसी व्यवस्था की जो किसीके किये नहीं हो सकती। असहाय, माता पितासे हीन, दीन बालक बलिकाओंको जो साहाय्य आपकी ओरसे प्राप्त हुआ था वह सदा स्मरणीय रहेगा। १९५८ के दुर्भिक्ष कमीशनके सामने आपने जो साक्ष्य दिया था उसमें ऐसी सप्रमाण बातें कहीं जिनसे आपका नाम भारतमें अमर हो गया। सं० १९६१में कांगड़ा भूकम्पके समय भी आपकी सहायता अमूल्य थी।

इसी समय लण्डनमें कांग्रेस कार्यके प्रचारके लिये दो भारतीय प्रतिनिधियोंके भेजनेका प्रस्ताव हुआ। गोखले और लाजपतराय ये ही दोनों प्रतिनिधि चुने गये। अस्वस्थ रहनेपर भी निःस्वार्थ भावसे उदारतापूर्वक विलायत जानेके लिये लालाजी तैयार हो गये। आपकी विलायत यात्राके लिये पंजाब इंडियन एसोसियेशनने तीस हजार रुपये स्वीकार किये पर आपने एक पाई भी न लेकर यह रकम विद्यार्थियोंके लाभार्थ खर्च करनेको दे दी। युरोप और अमेरिकामें भ्रमण करनेसे आन्दोलनके सम्बन्धमें आपको अनेक नयी बातें मालूम हुईं और गोखलेके साथ प्रचारका काम यथेष्ट रूपसे किया। किस प्रकार राजनैतिक आन्दोलन करनेसे स्वायत्तशासन शीघ्र ही प्राप्त होगा, इसके विषयमें आपने खूब चर्चा की। इंगलैंडकी तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितिकी रक्षा करते हुए भारतमें यथोचित आन्दोलन करना आपका प्रधान उद्देश्य था।

सं० १९६२में लालाजीने काशी कांग्रेसमें वङ्गभङ्गके सम्बन्धमें प्रभावपूर्ण व्याख्यान दिया था जिससे जनसाधारणमें नूतन

भावका आविर्भाव हुआ। इसी समयसे आपपर विपत्तिके बादल उमड़ने लगे और कष्टभोगका एक प्रकार आरम्भ हो गया। पंजाब सरकारने सहसा आपको निर्वासन दण्ड दे दिया। विना मेघके जैसे वज्रपात होता है वैसा ही यह निर्वासन दण्ड भारत-वासियोंको प्रतीत हुआ। आपके निर्वासनका क्या कारण है, इसका किसीको कुछ पता न लगा। इस निर्वासनके विरुद्ध इंगलैंडमें प्रयत्न किया गया पर वह विफल हुआ।

इस घटनासे भारतका बच्चा बच्चा लालाजीके नामसे परिचित हो गया। भारतभरमें आन्दोलनकी धूम मच गयी। लोक-मतकी प्रबलताके आगे सरकार भी नरमा गयी और छः महीने बाद लालाजीको छोड़ देना पड़ा। उस समय जनताने कृतज्ञतावश आपका जो स्वागत किया वह चक्रवर्तीके लिये भी दुर्लभ था।

सं० १९६४में सूरतकी कांग्रेसके लिये आप सभापति चुने गये पर आपने इसे अस्वीकार कर अपनी महाप्राणताका परिचय दिया। आप उक्त कांग्रेसमें स्वदेशी और बायकाटके आन्दोलनका समर्थन करनेके लिये प्रस्तुत होकर आये थे पर सूरतकी कांग्रेसकी सूरत ही बिगड़ गयी और उसका कायापलट हो गया।

लाला लाजपतराय सामान्य सम्मानके लोभी नहीं हैं। वे कर्मवीर हैं, कर्म ही उनका जीवन है। देशकी जिससे यथार्थ उन्नति हो वही कार्य वे प्राणपणसे करते हैं। आपका विश्वास है कि सरकारकी अभीप्सित प्रणालीद्वारा कभी भी स्वायत्त-शासन प्रतिष्ठित न होगा। जो हमें मिलना चाहिये तुरत मिल ही जाय। जबतक नहीं मिलता तबतक हम स्थिर कैसे रह सकते हैं।

सूरत कांग्रेसके बाद आप यथावसर राजनैतिक कार्य करते रहे। यूरोपीय युद्धारम्भके कुछ दिन पहले आप अमेरिका गये। आपको वहां कुछ दिनोंतक ब्रिटिश सरकारके भारत लौटने न देनेसे रुक जाना पड़ा। आप भारतमें उस समय आ

नहीं सके। लालाजी अमेरिकामें रहकर भी अपनी मातृभूमिकी सेवामें लगे रहे।

अमेरिकावासियोंको भारतकी यथार्थ अवस्थाका ज्ञान कराना लालाजीका अद्वितीय कार्य है। जब आप अमेरिकामें थे वहांके सामयिक पत्रोंमें भारतवर्ष सम्बन्धी अनेक गवेषणापूर्ण लेख प्रकाशित कराते रहे। आपने अमेरिकासे 'यंग इंडिया' नामक एक पत्र भी प्रकाशित किया था। अमेरिकावासियोंको भारतके सारे संवादोंसे अभिज्ञ करानेके उद्देश्यसे 'इंडियन ब्यूरो' नामक एक संस्था स्थापित की थी। वहां पत्र लिखनेहीसे भारतके सम्बन्धकी बातें मालूम हो जाती हैं। भारतवासियोंको भी अमेरिकाकी बातें जतानेकी सुविधाके लिये आप एक संस्था स्थापित कर आये हैं। आपने "अमेरिकाके युक्तराज्य" नामक जो पुस्तक लिखी है देखने ही योग्य हुई है। लालाजी १९७६में अमेरिकासे भारत आनेके लिये उद्यत हुए। उस समय अमेरिकावासियोंने जो आपका सम्मान किया सब किसीके भाग्यमें सम्भव नहीं है। उसमें बड़े बड़े गण्यमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। उन्होंने लालाजीके प्रति अपने प्रगाढ़ सम्मानका परिचय दिया था।

संवत् १९७६के फाल्गुनमें आपने अमेरिकासे भारतमें पदार्पण किया। देशवासियोंने आपको भारतमें पाकर जो आह्लाद प्रकट किया अवर्णनीय है। भारतमें आपने फिर उद्यमके साथ अपना राजनैतिक कार्य आरम्भ कर दिया। भारतके इस महादुर्दिनमें भारतमाताके सुपुत्र लाला लाजपतरायके प्रति अपना सम्मान और भक्ति प्रदर्शन करते हुए भारतीयोंने कलकत्तेकी विशेष कांग्रेसमें अपना पथप्रदर्शक बना सभापतिके सिंहासनपर समासीन किया। आप असहयोग आन्दोलनमें बड़े मान्य नेता हैं। 'वन्देमातरम्' नामक एक दैनिक पत्र उर्दूमें सम्पादित करते हैं। हम लोगोंको इससे बढ़कर और अधिक आनन्द क्या होगा कि लालाजी इस समय स्वदेशहीमें हमारे साथ हैं। भगवान उन्हें चिरायु करें।

१३ चैतन्य महाप्रभु

श्रीगौराङ्गदेवके आविर्भावके समय दिल्लीके सिंहासनपर लोदी वंशके बादशाहोंका अधिकार था। शासनमें शृंखला तो थी ही नहीं हिन्दू मुसलमानका भेद लेकर ही नित्य नयी दुर्घटना घटती थी, शान्ति कैसे होती ?



वङ्गदेशका भी शासन प्रायः मुसलमानोंके ही हाथमें था, यदि किसी प्रकार कोई हिन्दू राजा होता भी था तो स्थिर होकर रहने नहीं पाता था। सं० १५४३ वि०के लगभग वङ्गदेशका शासन सुबुद्धिरायके हाथमें था। उनके एक उच्च और विश्वासी कर्म्मचारी थे हुसेन खां। एकबार किसी काममें हुसेन खांने कुछ राजकीय द्रव्य आत्मसात् कर लिया। जब यह बात प्रकट हुई तब वह न्यायानुसार दंडित हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि हुसेन खांने षड्यन्त्र रचकर सुबुद्धिरायको वन्दी कर लिया और आप वंगदेशके सिंहासनपर बैठ गया। भोले और विश्वासपरायण सुबुद्धिरायका राज्य ही नहीं धर्म्म भी लिया गया। नवीन राज-महिषी तो उन्हें कत्ल कराकर ही टंटा मिटाना चाहती थीं, पर नमकहलाल हुसेन खांने अपने दयालु राजाके साथ ऐसा वर्ताव करना उचित न समझा, उन्हें केवल मुसलमान बनाकर छोड़ दिया।

ऐसीही धर्म्म समाज और राज्यकी क्रान्तिके समय वैक्रमीय

संवत् १५४२ फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमाको युगधर्म्म प्रवर्तक प्रेमावतार भगवान् श्री गौराङ्गदेवने मानवदेह धारण कर बंगालके नवद्वीप नगरको पवित्र किया।

श्री गौराङ्गके भाग्यवान् पिता 'पुरन्दर' उपाधिधारी श्री जगन्नाथ मिश्र थे। वे बड़े विद्वान थे। उनकी सर्वगुण सम्पन्ना प्रेममयी पत्नीका नाम था श्री शची देवी। श्री गौराङ्गके पहले श्री शची देवीको आठ कन्या और एक पुत्र कुल नौ सन्तानें हुई थीं। जिनमें सभी कन्यायें असमय स्वर्ग पधार चुकी थीं, केवल पुत्र जिनका नाम श्री विश्वरूप था उस समय वर्तमान था। विश्वरूप संस्कृत अध्ययन कर रहा था, पढ़नेमें उसकी बुद्धि-प्रखरता देख अध्यापकगण दंग हो जाते थे।

श्री गौराङ्गदेवका प्रादुर्भाव नीमके वृक्षके नीचे बने हुए सूतिकागृहमें हुआ था। इसलिये श्री शचीदेवी उन्हें 'निमाई' कहा करती थीं, और श्री जगन्नाथ मिश्र 'विश्वभार' कहा करते थे। इसके अतिरिक्त श्री गौर, गौराङ्ग, चैतन्य, कृष्ण चैतन्य, महाप्रभु, आदि नामसे भी भक्तगण उनका सम्बोधन करते थे।

पांचवें वर्ष उनका विद्यारंभ हुआ। निमाई बड़े खिलवाड़ी थे। पढ़ने लिखनेमें उनका मन लगेगा यह आशा कम थी। परन्तु बात उलटी हुई, वे बड़ी एकाग्रतासे खेलकूद छोड़कर पढ़ने लगे। उस समय उनके बड़े भाई विश्वरूप प्रायः अपना अध्ययन पूर्ण कर चुके थे। जगन्नाथ मिश्र उनके विवाहकी चिन्तामें थे कि अकस्मात् घरसे विरागी होकर वह चले गये। उन्होंने संन्यास ले लिया इससे सभी बड़े दुःखित हुए। जगन्नाथ मिश्रकी अवस्था तो जीवनमृतसी हो गयी। निमाईका पढ़ना भी शिथिल कर दिया गया। चिन्ता यह थी कि पढ़ने लिखनेके बाद कहीं वह भी विरागी होकर न चल दें। पांच छः वर्षके बालक निमाईको यह बात बहुत बुरी मालूम हुई। उन्होंने हठ करके पुनः पढ़ना आरम्भ किया और तेरह चौदह वर्षकी अवस्था-

तक ही व्याकरण साहित्य न्याय आदि शास्त्रोंमें पारङ्गत हो गये। निमाई जब ग्यारह वर्षके थे तभी जगन्नाथमिश्रका स्वर्गवास हुआ। शची मां और निमाई बड़ी विपत्तिमें पड़े। फिर भी बालक निमाईने मांको पूर्ण आश्वासन दिया, और भली भांति माताकी सेवा शुश्रूषा करते हुए निरन्तर अध्ययन करते रहे।

नवद्वीप उस समय भारतवर्षका विद्याकेन्द्र था। वहांकी जैसी स्थिति थी वैसी प्रायः कम देखी सुनी जाती है। निमाई पढ़ लिखकर अध्यापन करने लगे।

एक दिन गंगातटपर बैठे हुए निमाई अपने सैकड़ों छात्रों-को पढ़ा रहे थे, अकस्मात् वहीं दिग्विजयी केशव काश्मीरी पंडित भी आये। दोनों महापुरुष आपसमें परिचित हुए। साधा-रण बातोंके बाद शास्त्रचर्चा छिड़ पड़ी। आशुकवि केशवने एक घड़ीमें सौ श्लोक बनाकर गंगाकी स्तुति की। निमाईने उसके एक एक श्लोकको कहकर उनसे उसके गुण दोष पूछे। दिग्विज-यीको उनकी स्मरण शक्ति देख विस्मय हुआ। वे बोले—इसमें दोष कहां? सभी गुण हैं। निमाईने मन्द मुसकाते हुए बड़े विनीत भावसे श्लोकके अनेक दोषोंका उद्घाटन किया। बात सच्ची थी। दिग्विजयीको चुप हो जाना पड़ा।

पहले निमाईके साथ एक वैद्यकुमार मुकुन्द चट्टलवासी पढ़ते थे। परन्तु इन दिनों वह विद्याचर्चासे विरक्त हो भक्ति पथके पथिक हो गये थे।

एक दिन स्नानके लिये जाते हुए निमाई पंडितने उन्हें राहमें देखा। सैकड़ों शिष्योंके साथ निमाईको मुकुन्दजीने भी देखा, परन्तु निमाई उनका विद्रूप करेंगे इस भयसे वह दूसरे मार्गसे चटपट चले गये।

निमाईने सब समझ लिया। वह अपनी छात्र-मंडलीको सम्बोधन कर बोले कि देखो मुकुन्द हमें अवैष्णव जानकर बिना मिले चले गये। परन्तु तुमलोग याद रखना—

एमन वैष्णव आमि हइव संसारे ।

अज भव आसिवेक आमार दुआरे ॥

उसी दिनसे निमाईने अपनी चर्य्या बदल दी।

विवाहके बाद वर्षों तक वह नवद्वीपमें ही रहकर अपने टोलमें अध्यापन करते रहे, परन्तु अब उनका मन उस नीरस शास्त्रचर्चासे उचट सा गया था, क्योंकि हरि-प्रेम रसका स्वाद उन्हें मिल चुका था।

वे दिन रात कृष्ण प्रेममें मत्त रहने लगे, धीरे धीरे उनका प्रेमोन्माद बढ़ने लगा। दिवानिशि एक भावसे हरिनाम कीर्तन, अविरल अश्रुप्रवाह, निरन्तर पुलक, सतत आवेश देख देख सभी लोग, बड़े आश्चर्यान्वित हो जाते थे।

कुछ कुढ़ैले दुष्टोंसे निमाईकी महत्ता नहीं देखी गयी। वे सब नगरके काजी चांद खांको उनके विरुद्ध उसकाने लगे। काज़ीका स्वभाव स्वतः उग्र था, लोगोंकी भड़काहटने आगमें घीका काम किया। रोज़ रोज़ कीर्तनकी खोल-झांझसे चिढ़कर एक दिन उसने भक्तमंडलीमें आकर खोल झांझ तोड़ फोड़कर फेंक दिया। निमाईने यह बात पीछे सुनी और दूसरे ही दिन ऐसा चक्कर डाला कि काज़ी रामको छट्ठीका दूध याद आ गया। उसने अपनी आज्ञाही नहीं लौटायी प्रत्युत श्री गौराङ्गका प्रेमी शिष्य हो गया। आज भी उसके वंशज बंगालमें हैं जो एक हिन्दूकी तरह श्री गौरकृष्णके परम भक्त एवं संकीर्तनके परम प्रेमी हैं।

प्रभुके सामाजिक विचार बड़े उदार थे, जाति पांतिका बखेड़ा तो उन्होंने पहले ही दूर कर दिया था। वह जानते थे कि कलियुगमें जातिका बन्धन भलीभांति चलना कठिन है इसी लिये उसका पथ परिष्कार करना उन्हें अति आवश्यक प्रतीत हुआ था।

बिना दयाके प्रेमकी स्थिति असंभव थी इसलिये जीवमात्र-पर दयाका भाव जागृत करके श्री गौरने जगतकी बढ़ती हुई हिंसा प्रकृति रोकी थी। हिन्दू मुसलमानोंकी कलह प्रकृति रोक-नेके लिये उन्होंने धर्मजगतमें राष्ट्रीय भावकी सृष्टि की थी। असंख्य नृशंस प्रकृति मुसलमानोंको भी कलेजेसे लगा उन्होंने उन्हें प्रेमदान करते समय समाजका भय नहीं किया। चैतन्य बड़े निर्भीक थे। बात बातमें व्यर्थ बन्धन भी उन्हें पसन्द नहीं था। बंगालाधिपति सुबुद्धिरायको हुसेनखांने बलपूर्वक जल पिला कर मुसलमान कर दिया था, वे बहुत दिनोंतक पंडितोंसे अपना प्रायश्चित्त पूछते घूमते रहे। नवद्वीप काशी तथा अन्यान्य स्थानोंके सभी पंडितोंने उन्हें शरीर त्याग देनेकी व्यवस्था दी थी। परन्तु सुबुद्धिराय इस प्रायश्चित्तमें कुछ लाघव चाहते थे। उनकी वांछा कहीं सिद्ध नहीं हुई। जब महाप्रभु काशी पहुँचे तब सुबुद्धिराय प्रभुके निकट आये। प्रभुने कहा मृत्युकी व्यवस्थासे तामसी प्रायश्चित्त होगा। तुम वृन्दावन चले जाओ और कालि-न्दीके कूलपर बैठकर भगवान् श्री कृष्णका नाम संकीर्त्तन करो इसीसे तुम्हारा कल्याण हो जायगा। सुबुद्धिरायने तुरन्त उस व्यवस्थाका पालन किया। इतनी उदारता इतनी निर्भीकता मानव धर्मशास्त्रमें कहां मिलती?

—कृष्ण चैतन्य गोस्वामी

१४ इब्न बतूताकी यात्रा

मुसलमान यात्री इब्न बतूताका आसन उन सब यात्रियोंसे ऊंचा है जिन्होंने ऐसे समयमें यात्रा की थी जब न रेल थी और न आजकलके ऐसे बड़े बड़े जहाज ही थे। उस समय यात्रियों-को पगपगपर बड़ी बड़ी भयंकर विपत्तियोंका सामना करना पड़ता था। इब्न बतूता तीस वर्षतक एशिया और अफरीकाके भिन्न भिन्न देशोंमें घूमता रहा। सब मिलाकर उसने लगभग

पचहत्तर हजार मीलसे अधिककी यात्रा की। उस समय संसार भरमें इसलामकी विजयदुन्दुभी बज रही थी। यूरपकी ईसाई शक्तियां उसके आतंकसे थरथर कांपती थीं। स्पेन अफरीका हिन्दुस्तान फारिस, भारतीय समुद्रके जावा सुमात्रा आदि द्वीप सभी कहीं इसलामका आधिपत्य था। इसलाम धर्मका अनुयायी होनेके कारण ही इब्न बतूता इतना लम्बा सफर बिना विशेष कष्ट पाये हुए कर आया।

वह संवत् १३८२ विक्रमीमें यात्रा करने चला। टैंजियरसे चल कर वह मिश्र देशके प्रधान नगर काहिरामें आया। वहांसे वह जेरूशलम, मक्का आदि मुख्य मुख्य नगरों और तीर्थोंकी यात्रा करता हुआ फारिस देशमें पहुँचा। शीराज़, इस्फहान, दमश्क, बगदाद, आदि होता हुआ वह फिर मक्केको लौट गया। उसने दमश्ककी बड़ी तारीफ की है। उस समय दमश्क था भी एक बड़ा ही सुन्दर नगर। नगरभरमें नहरों और बागोंकी भरमार थी। वहांकी जामे-मसजिद उस समय संसारभरमें सर्वश्रेष्ठ समझी जाती थी। सात सौ हाफिज केवल कुरान पढ़नेके लिये उसमें नियत थे। इसके अतिरिक्त दमश्क उस समय विद्याका केन्द्र और उदार और दानवीर लोगोंका घर हो रहा था।

मक्केमें वह तीन वर्षतक रहा। एक जगहपर उसके कदम बहुत दिनोंतक न जमते थे। न मालूम उसने किस प्रकार ये तीन वर्ष मक्केमें काटे। मक्केसे अदन होता हुआ वह अफरीकामें समुद्रके पूर्वी तटकी यात्रा करने लगा। इस यात्रामें उसने जंजीबार और मुम्बासा आदि कितने ही द्वीपों और नगरोंकी सैर की। अफरीकासे वह फिर फारिस गया। कुछ दिन उस देशमें घूमकर वह फिर तीसरी बार मक्के गया। मक्केसे वह हिन्दुस्तान जाना चाहता था, परन्तु उसे हिन्दुस्तान जानेवाला कोई जहाज ही न मिला। लाचार उसने उस समय भारतयात्राका विचार त्याग दिया। परन्तु उससे बैठे न रहा गया। लालसागर पार

करके वह मिश्र देशमें आया और वहांसे नील नदीके किनारे किनारे चलकर फिर काहिरा पहुँचा। कुछ दिन वहां आराम करके वह यूरपके दक्षिणमें छोटे छोटे द्वीपोंमें घूमता रहा। वहांसे वह काले समुद्रको पार करके रूस देशके अन्तर्गत वालगा नदीके तटपर पहुँचा। मुहम्मद उज़बक उस समय उस देशका राजा था। उस समय संसारमें सात बादशाह बड़े ही शक्तिशाली समझे जाते थे। उज़बक भी उन्हीं सातोंमें था। उज़बक वंशवाले दीनेइसलामके पाबन्द थे, परन्तु स्त्रियोंको परदेमें रखनेकी प्रथा न उनमें थी और न उनकी प्रजामें ही।

रमजानमें इब्नबतूता बलगेरिया पहुँचा। वहां रात बहुत छोटी होती थी। दिनभर उसे रोजा रखना पड़ता था। वह कहता है कि मग़रिबकी नमाज़ पढ़ते ही इशाकी नमाजका वक्त आ जाता था—अर्थात् रात बीत जाती थी। इस यात्रामें वह उज़बक बादशाहसे भी मिला। बादशाहने उसका बड़ा आदर किया और अपने पास ठहरा लिया। बादशाहके कई बेगमें थीं। प्रधान बेगम कुस्तुनतुनियाके ईसाई बादशाहकी बेटी थी। वह उस समय गर्भवती थी। उसने बादशाहसे अपने पिताके यहां जानेकी आज्ञा चाही। आज्ञा मिल गयी। बादशाहकी आज्ञासे बतूता भी बेगमके साथ हो लिया। कुस्तुनतुनियामें उसका बड़ा आदर सत्कार हुआ। वहांके बादशाहसे मुलाकात होनेपर उसे बहुत कुछ इनाम मिला। वहां वह एक महीना छ दिन रहा। तथापि वह इस यात्रासे खुश न हुआ। ईसाई गिरजोंके घंटोंका नाद उसे बहुत ही नापसन्द था। एक बात और भी थी। उज़-बक बादशाहकी जिस बेगमके साथ वहां गया था वह अपने पिताके पास पहुँचकर सूअरका मांस खाने और शराब पीने लगी। उसका यह आचरण बतूताको बहुत ही बुरा लगा। जब बतूता और उसके साथियोंने देखा कि बेगम अपने पतिके पास अब नहीं जाना चाहती तब ये लोग उज़बकके पास लौट गये।

इसके बाद वह हिन्दुस्तानकी ओर चला। रास्तेमें जो जो नगर पड़े उनमें ठहरता हुआ वह उस पर्व्वतपर पहुँचा जिसे आजकल 'हिन्दू-कुश' कहते हैं। उसने लिखा है कि इस पर्वतको 'हिन्दूकुश' इसलिये कहते हैं कि जो गुलाम हिन्दुस्तानसे पकड़-कर लाये जाते थे इस पर्वतकी शीतको न सह सकनेके कारण मर जाते थे। हिन्दूकुशके निकट बशाई नामके एक पहाड़-पर उसे एक बूढ़ा आदमी मिला। उसने बतलाया कि मेरी उम्र इस समय तीन सौ पचास वर्ष की है। प्रत्येक शताब्दी समाप्त होनेपर मेरे दांत और बाल नये हो जाते हैं।

बतूताको उस वृद्धकी बातोंपर विश्वास न हुआ। वहांसे वह काबुल होता हुआ १३८६ विक्रमके मुहर्रम महीनेमें पंजाब पहुँचा।

उस समय हिन्दुस्तानमें मुहम्मद तुगलक बादशाह था। देशमें शान्ति नामको भी न थी। कोई राजपथतक सुरक्षित न था। मुसाफिर सब कहीं लूट लिये जाते थे। स्थान स्थानपर उत्पात होते थे। निर्बलोंको सताना ही बलवान अपना कर्त्तव्य समझते थे। अपनी भारतयात्राके विषयमें इब्न बतूताने अपने सफरनामेमें इस प्रकार लिखा है—

"सिन्ध हिन्दुस्तानका बड़ा भारी दरिया है। यहां डाक प्यादों और सवारोंद्वारा लायी और भेजी जाती है। हिन्दुस्तानका कोई मेवा हमारे देशमें प्रसिद्ध नहीं। केवल तरबूज ही ऐसा फल है जो यहां भी होता है और वहां भी। परन्तु यहाँका तरबूज़ बड़ा और मीठा होता है। यहां वृक्ष बहुत बड़े बड़े हैं; परन्तु अपने यहांका कोई वृक्ष मुझे नहीं दिखायी पड़ा। यहांका एक फल आम है। कच्चा आम खट्टा होता है। उसका अचार पड़ता है। पक्का सेवकी तरह मीठा होता है। खिरनी, जामन, महुआ, बेर आदि कितने ही और भी मेवे यहां होते हैं। अंगूर और अनार बहुत नहीं होते। खजूर होते ही नहीं। अनाज बहुत किस्मके होते हैं।

यहांके अधिकतर निवासी काफिर और बुतपरस्त हैं। उनमें जो इसलामी शासनके अधीन नगरों और गांवोंमें बसते हैं वे तो शान्तिप्रिय हैं परन्तु जो पहाड़ोंपर रहते हैं वे लूटमार करते हैं। इन लोगोंमें मृतपतिके साथ स्त्रियां जिन्दा जल जाती हैं। जब पति मरता है तब स्त्री शृङ्गार करती है। ब्राह्मण और अन्य लोग बाजा बजाते हैं। जिस आगमें मृतपति जलाया जाता है उसीमें स्त्री भी जा गिरती है। दोनों थोड़ी देरमें राख हो जाते हैं। यह आवश्यक नहीं कि सब विधवाएं अपने पतिकी लाशके साथ जलें। परन्तु यह प्रथा बहुत अच्छी समझी जाती है। जिस घरकी कोई स्त्री इस प्रकार जल जाती है उस घरका लोग बड़ा आदर करते हैं। जो विधवा नहीं जलती उसे मोटे कपड़े पहनकर अपना सारा जीवन अपने सम्बन्धियोंके साथ बिताना पड़ता है। जलनेके पहले स्त्री खूब खुश होकर हँसती बोलती और नाचती है।

"हिन्दू लोग जलाये हुए मुर्दोंकी राख गंगामें फेंक देते हैं। बहुतसे हिन्दू गंगामें जान बूझकर खुद ही डूब जाते हैं। जो डूबना चाहता है वह अपने किसी सम्बन्धीको बुलाकर कहता है—'यह मत समझना कि मैं गंगामें किसी सांसारिक इच्छाको पूर्ण करनेके लिये डूबता हूं। नहीं, मेरा मतलब केवल यही है कि मैं भगवानके पास पहुँच जाऊं।'

देहली हिन्दुस्तानकी राजधानी है। संसारके इसलामी राज्योंमें कहीं भी इतना बड़ा शहर नहीं। जैसी अच्छी शहरपनाह देहलीके चारों तरफ है वैसी अच्छी शहरपनाह शायद ही दुनियाके किसी शहरकी हो। शहरपनाहकी दीवार ग्यारह गज चौड़ी है। उसके ऊपर ठौर ठौरपर आड़की जगहें बनी हुई हैं जिनमें शहरपनाहकी रक्षा करनेवाले सिपाही रहते हैं। दीवारके अन्दर कितने ही सिलहखाने हैं। किलेमें गल्ला भी बेहद भरा हुआ है। गल्ला जमीनमें गड़ा रहता है परन्तु खराब नहीं होता। बादशाह

थलवनके समयके लगभग नव्वे वर्षके पुराने गड़े हुए चावल मैंने देखे। रंग उनका कुछ मैला अवश्य हो गया था पर स्वाद उनका वैसा ही था। दीवारके नीचेका भाग पत्थरका है और ऊपरी भाग ईंट और चूनेका। दीवारपर दो सवार बड़ी अच्छी तरह दौड़ सकते हैं। शहरवाले उन्हें देख सकते हैं, परन्तु बाहरवाले नहीं। इसका यह कारण है कि दीवारपर भी जाने आनेका रास्ता छोड़कर बाहरकी तरफ एक छोटी चहारदीवारी बना दी गयी है। शहरपनाहमें बाहर आने जानेके लिये अट्ठाईस फाटक हैं।

देहलीकी जामे मसजिद भी अपने ढंगकी एक ही है। पहले वह काफिरोंकी परस्तिशगाह थी। वह संगमर्मरकी बनी हुई है। लकड़ी और मामूली पत्थरका नाम नहीं। बीच मसजिदमें एक तीस गज लंबा स्तंभ है। कहते हैं वह सात धातुओंको मिलाकर बनाया गया है और किसी भी शस्त्रसे काटा नहीं जा सकता। मसजिदका एक मीनार बहुत ही ऊंचा है। वह सुर्ख पत्थरका बना हुआ है। उसके ऊपर चढ़नेकी सीढ़ियां इतनी चौड़ी हैं कि हाथी भी उनपर चढ़ सकता है।

"शहरके बाहर एक बड़ा भारी हौज है। वह दो मील लंबा और एक मील चौड़ा है। उससे भी बड़ा एक और हौज है। देहलीसे जो सड़कें और नगरोंको जाती हैं उनपर दोनों तरफ इतने वृक्ष हैं कि सदा छाया रहती है। उनपर तीन तीन मील पर सरायें बनी हुई हैं जिनमें मुसाफिर ठहरते हैं।

हमलोगोंके आनेका समाचार बादशाह मुहम्मद तुगलकको मिल गया था। उसने अपने कर्मचारियोंको आज्ञा दे दी थी कि हमें रास्तेमें किसी तरहकी तकलीफ न होने पावे। देहली पहुँचकर हम वजीर और काजीके साथ राजमाताको सलाम करने गये। राजमाताने हमारा अच्छा सत्कार किया और हमारे ठहरनेका उचित प्रबन्ध कर दिया। हर रोज प्रातःकाल

हम वजीरको सलाम करने जाते थे। एक दिन उसने मुझे दो हजार दीनार दिये और कहा कि यह आपके कपड़ोंकी धुलाई है। इसके सिवा उसने मुझे एक बहुमूल्य चोगा और मेरे नौकरोंको जो लगभग चालीस थे, दो हजार दीनार दिये। उस समय बादशाह कहीं बाहर गये हुए थे, परन्तु उनकी कृपासे हम लोगोंके आराममें कोई विघ्न नहीं पड़ा। इसी बीच मेरी एक लड़कीका देहान्त हो गया। वजीरने उसकी अन्त्येष्टि क्रियाका सब खर्च सरकारी खजानेसे दिया।

"हमारे देहली पहुँचनेके थोड़ेही दिनोंबाद समाचार मिला कि बादशाह राजधानीको लौट रहे हैं। हम लोग नजरें ले लेकर सात मील आगे बढ़कर बादशाहसे मिलने गये। बादशाहने मेरा और मेरे साथके मुसाफिरोंका खूब सत्कार किया और सबको खिलअतें दीं। देहली पहुँचकर बादशाहने हममेंसे हर मुसाफिरको योग्यतानुसार एक एक पदपर नियत कर दिया। मुझे देहलीके काजीका पद मिला। मेरी तनखाह बारह हजार रुपये साल नियत हुई। इसके सिवा बारह हजारकी जागीर भी मिली। मैं हिन्दुस्तानकी जबान बिलकुल न समझता था। इसलिये बादशाहने मेरे दो नायब नियत किये, जो मुझे हर बातमें सहायता दें।

मुहम्मद तुगलक बड़ा ही उदार और दयालु बादशाह है परन्तु साथ ही जिद्दी भी परले सिरेका है। जरा जरा सी बातपर जिद कर बैठता है। जिदमें आकर कभी कभी वह बड़े बड़े कठोर काम कर डालता है। कुछ बागियोंने देहलीवालोंको बादशाहके विरुद्ध भड़का दिया। फल यह हुआ कि बादशाहने हुक्म दे दिया कि देहली खाली कर दी जाय। यदि कोई आदमी नगरके किसी मकानमें पाया जायगा तो उसे प्राणदण्ड दिया जायगा। लोग अपने अपने घर छोड़कर भाग गये। केवल दो आदमी जिनमें एक अन्धा था, एक घरमें छिप रहे। शाही नौकरोंने उन्हें ढूंढ निकाला। जो अन्धा था उसे देहलीसे दौलताबादतक घसीटे जानेका

हुक्म हुआ और दूसरेको एक ऊँची छतपरसे गिरा दिये जानेका। कोई न कोई घटना इस तरहकी हुआ ही करती है। कभी कोई शेख अपनी जान खोता है और कभी कोई अमीर हाथीके पैरोंमें बँधवाकर मारा जाता है।

"यद्यपि बादशाह मुझपर बड़ी कृपा करता था तथापि मैं प्रति दिन होनेवाले इन अत्याचारोंको न देख सकता था। इधर हिन्दुस्तानमें रहते मुझे बरसें हो गयी थीं, इसलिये घूमनेके लिये मेरा जी ललचा रहा था। मेरा खर्च भी बहुत बढ़ गया था। पचपन हजार रुपयेका तो मेरे ऊपर क़र्ज़ हो गया था। इसी बीच एक दुर्घटना हो गयी। बादशाहने एक शेखपर नाराज होकर उसे कैद कर दिया। शेखके मिलने जुलनेवाले भी पकड़े जाने लगे। मैं भी उससे मिला करता था, इसलिये दूसरोंके साथ मुझे भी बादशाहके सामने हाजिर होना पड़ा। औरोंको तो फाँसी दे दी गयी परन्तु मैं छोड़ दिया गया। छूटते ही मैंने अपने कामसे इस्तेफा दे दिया और अपना सब माल असबाब फकीरोंको बांट-कर फकीरी वेश धारण कर लिया।

इसी समय चीनके सम्राट्ने बादशाह मुहम्मदके पास कुछ सौगातें भेजीं। मैं जो फकीरी वेशमें बादशाहसे मुलाकात करने गया तो उसने पहलेसे भी अधिक मेरा सत्कार किया। उसने कहा —"मैं जानता हूं कि तुम सफरको बहुत पसन्द करते हो। अच्छा तुम मेरे एलची बनकर चीन जाओ और मेरी तरफसे चीनके सम्राट्के पास सौगातें ले जाओ। मैंने इस कामको स्वीकार कर लिया। मैं बादशाहकी तरफसे सौगातें लेकर चीनसे आये हुए एलचीके साथ देहलीसे चल पड़ा। रास्तेमें हिन्दुओंने हम लोगोंपर डाका डाला। हम सब भागकर तितर बितर हो गये। मैं अकेला रह गया। सात दिनतक जंगली फलों और पत्तोंको खाता मैं चला गया। एक दिन कमजोरीके कारण बेहोश होकर सड़कपर गिर पड़ा। जो आंखें खुलीं तो मैंने अपनेको

शाही सिपाहियोंके बीचमें पाया। मैं बादशाहके पास पहुँचाया गया। वह मेरे लूटे जानेका हाल सुन चुका था। मुझे बारह हजार रुपये देकर कुछ आदमियोंके साथ उसने फिर रवाना किया।

"रास्तेमें हम लोग जोगियोंसे मिले। ये जोगी जमीनके नीचे अपना मकान बनाते हैं। हवा आनेके लिये केवल जरासा छेद रहता है। ये महीनों कुछ नहीं खाते। मैंने सुना है कि एक जोगीने सालभरतक कुछ नहीं खाया। बादशाह जोगियोंको बहुत पसन्द करते हैं। वे उनकी सुहबतमें भी बैठते हैं। जोगी लोग केवल एक बार देखकर ही आदमीको मार सकते हैं। एक दिन मैं बादशाहके पास बैठा था कि दो जोगी आये। बादशाहने उनका बड़ा आदर किया और मेरी तरफ इशारा करके उनसे कहा, यह मुसाफिर है, इसे कोई करामात दिखलाइये। एक जोगी उठा और आकाशमें उड़ गया। मैं इस विचित्र लीलाको देखकर बेहोश हो गया। जब मैं होशमें आया तब देखा कि जोगी उसी प्रकार हवामें उड़ रहा है। इतनेमें दूसरा जोगी उठा और चन्दनका एक टुकड़ा जमीनपर मारकर वह भी उसी तरह हवामें उड़ने लगा। जब मैं बहुत घबरा गया तब बादशाहने जोगियोंके इस खेलको बन्द करवा दिया।

"चलते चलते हम लोग सिन्धुपुर नामके द्वीपमें पहुँचे। इसमें एक बड़ा भारी तालाब और एक मन्दिर है। मैं मन्दिरके पास पहुँचा तो देखता क्या हूं कि एक जोगी दो मूर्त्तियोंके बीचमें बैठा है। मैंने उसे बुलाया, पर वह न बोला। मैंने इधर उधर देखा, पर कोई खाद्य पदार्थ मुझे न दिखायी पड़ा। मैं देख ही रहा था कि वह एकदम कड़का और एक नारियल उस वृक्षसे जो उसके सामने ही था, पटसे नीचे गिर पड़ा। यह नारियल उसने मेरी तरफ फेंक दिया। मैंने उसे कुछ रुपया देना चाहा पर उसने तुरन्त मुझे मेरे रुपयोंसे दस रुपये अधिक दे दिये। मैं उसे

मुसलमान समझता हूं क्योंकि जब मैंने उसे बुलाया तब पहले तो उसने आकाशकी तरफ संकेत किया, फिर मक्कामुअज्ज़माकी तरफ, इन इशारोंसे उसने यह प्रकट किया था कि वह खुदायवाहद और रसूल-अल्लाहको जानता है और उन्हींपर ईमान रखता है।

"यहांसे हमलोग मलाबार पहुँचे। यहाकी सड़कोंपर आधे आधे मीलपर मुसाफिरखाने बने हुये हैं। हिन्दू और मुसलमान कोई क्यों न हो, बिना किसी रोकटोकके इन मुसाफिरखानोंमें ठहर सकते हैं। इन मुसाफिरखानोंमें एक एक कुआं है। एक आदमी कुएंपर सदा बैठा रहता है और लोगोंको पानी पिलाया करता है। हिन्दुओंको पानी किसी पात्रमें दिया जाता है और मुसलमानोंको चुल्लूमें। हिन्दू अपने पात्र मुसलमानोंको नहीं छूने देते। यदि कोई पात्र किसी मुसलमानसे छू जाय तो वह तुरन्त तोड़ दिया जाता है। यहां अधिकतर हिन्दू ही रहते हैं। परन्तु मुसलमान व्यापारी भी बहुत पाये जाते हैं। नगरोंमें मुसलमान यात्री मुसलमान व्यापारियोंके यहां ठहरा करते हैं। जहां मुसलमान व्यापारी नहीं, वहां हिन्दू लोग मुसलमानोंको केले या किसी दूसरे पत्तेपर खाना दे देते हैं। इस राज्यमें मैंने दो मासतक सफर किया, परन्तु कहीं ज़रासी भी जमीन बिना जोती-बोयी न देखी। हर एक आदमीके पास एक एक बाग है, जिसमें रहनेके लिये घर बना है। यहां सिवा बादशाहके कोई घोड़ेपर सवार नहीं होता। अमीर लोग पालकियोंपर सवार होते हैं। व्यापारी लोग लदने-वाले जानवरोंका काम कुलियोंसे लेते हैं। चोरोंको यहां प्राण-दण्डतक दिया जाता है, इसीलिये यहां चोरी नहीं होती। मला-बारमें बारह राजा हैं। सबसे बड़े राजाके पास पचास हजार सेना है और सबसे छोटेके पास पांच हजार। इन राजाओंके उत्तरा-धिकारी इनकी बहनोंके पुत्र होते हैं। इस देशमें काली-मिर्च बहुत होती है।

"हेली और पट्टन होते हुए हमलोग कालीकट पहुँचे। यहांसे चीनको जहाज जाते हैं। प्रत्येक जहाजमें एक हजार नौकर रहते हैं, जिनमें छः सौ मल्लाह होते हैं और चार सौ नौकर चाकर। बड़े जहाजके साथ तीन छोटे छोटे जहाज भी रहते हैं। ये जहाज चीनमें बनते हैं। ये बड़ी बड़ी शहतीरोंके डांडोंसे खेये जाते हैं। बीस पचीस मल्लाह मिलकर एक डांड चलाते हैं। जहाजोंमें लकड़ीके घर बने रहते हैं, जिनमें जहाजके कर्मचारी रहते हैं।

"हमलोग चीन जानेवाले जहाजोंपर सवार हुए। दुर्भाग्य-वश चलते ही तूफान आया। जहाज टूटफूट गये मेरे सब साथी समुद्रमें डूब गये। केवल मैं बच गया। अन्तको घूमते घामते मैं मालद्वीप पहुँचा।

यहांसे इब्न बतूताकी भारतयात्रा समाप्त होती है। उस समय मालद्वीपमें कोई स्त्री राज कर रही थी। पहुँचते ही बतू-ताको वहांके काजीका पद मिल गया। वह वहां लगभग एक वर्षके रहा। उसने वहांकी चार स्त्रियोंसे शादी की। एकसे तो एक पुत्र भी हुआ। अधिक दिनोंतक वह वहां न ठहर सका। अपनी स्त्रियोंको तिलाक देकर वह सीलोनको चलता बना। वहां उसने बाबा आदमके पदचिह्नोंके दर्शन किये। वहांसे वह दक्षिण भारतमें घूमता हुआ बंगालके चटगांवमें पहुँचा। चटगांवसे एक जहाजपर सवार होकर वह चीन गया। रास्तेमें जावा, सुमात्रा आदि द्वीपोंकी भी सैर करता गया। उस समय चीनमें चंगेजखांका कोई वंशज राज्य करता था। वह चीनवालोंकी शिल्पकला सम्बन्धिनी चतुरताको देखकर दंग रह गया। उसने चीनकी राजपद्धतिकी भी बड़ी प्रशंसा की है। चीनमें मुसाफिरोंको बड़ा आराम था। देशभरमें कहीं डाकुओं और चोरोंका नाम न था। उसके चीनमें पहुँचनेके थोड़े ही दिनों बाद वहां एक बड़ा राज्यविप्लव हुआ। उसमें चीनका बादशाह मारा गया। उसका भतीजा सिंहासनपर बैठा।

देशमें अशान्ति बढ़ती देख बतूता वहांसे चल दिया। जावा सुमात्रा आदि द्वीपोंमें फिर एक चक्कर लगाकर वह बीस वर्ष बाद अरब पहुँचा। मक्का दमश्क काहिरा आदि तीर्थों और नगरोंमें ठहरता हुआ वह संवत् १४०६ वि०में सकुशल स्वदेशको लौट गया।

संवत् १४०६ में वह फिर यात्रा करने निकला था। दो वर्ष तक वह मध्य अफरीकाकी सैर करता रहा। बादको वह स्वदेश लौट गया। और बीस वर्षतक जीता रहा। तिहत्तरवर्षकी उम्रमें इस बड़े यात्रीकी जीवनयात्रा समाप्त हो गयी।

—महावीरप्रसाद द्विवेदी

१५ शाहजहांके अन्तिम दिन

यमुनाके किनारेवाले शाही महलमें एक भयानक सन्नाटा छाया हुआ है, केवल बार बार तोपोंकी गड़गड़ाहट और अस्त्रोंकी झनकार सुनाई दे रही है। वृद्ध शाहजहां एक आराम कुरसीपर मसनदके सहारे लेटा हुआ है और एक दासी कुछ दवाका पात्र लिये हुए खड़ी है। शाहजहां अन्यमनस्क होकर कुछ सोच रहा है। तोपोंकी आवाजसे कभी कभी चौंक पड़ता है। अकस्मात् उसके मुखसे निकल पड़ा—नहीं नहीं, क्या वह ऐसा करेगा, क्या हमको तख्तताऊससे निराश हो जाना चाहिये?

"हां, अवश्य निराश हो जाना चाहिये।"

शाहजहांने सिर उठाकर कहा—"कौन? जहांनारा? क्या तुम सच कहती हो?"

जहांनारा—(समीप आकर) हां, जहांपनाह! यह ठीक है। क्योंकि आपका अकर्मण्य पुत्र दारा भाग गया और निमकहराम दिलेरखां क्रूर औरंगजेबसे मिल गया और किला उसके अधिकारमें हो गया।

शाहजहां—लेकिन जहांनारा ! क्या औरंगजेब क्रूर है ? क्या वह अपने बुड्ढे बापकी कुछ इज्जत न करेगा ? क्या वह हमारे सामने तख़्तताऊसपर बैठेगा ?

जहांनारा—(जिसकी आंखोंमें अभिमानका अश्रुजल भरा था) जहांपनाह। आपके इस पुत्रवात्सल्यने आपकी यह अवस्था कर दी। औरंगजेब एक नारकीय पिशाच है, उसका किया क्या नहीं हो सकता, एक भले कार्यको छोड़कर।

शाहजहां—नहीं जहांनारा। ऐसा मत कहो।

जहांनारा—हां जहांपनाह, मैं ऐसा ही कहती हूं।

शाहजहां—ऐसा ? तो क्या जहांनारा ! इस बदनमें मोगल रक्त नहीं है ? तू हमारी कुछ भी मदद कर सकती है ?

जहांनारा—जहांपनाहकी जो आज्ञा हो।

शाहजहां—तो हमारी तलवार हमारे हाथमें दे। जबतक वह हमारे हाथमें रहेगी कोई भी तख्तताऊस हमसे न छुड़ा सकेगा।

जहांनारा आवेशके साथ—"हां जहांपनाह ! ऐसा ही होगा" कहती हुई वृद्ध शाहजहांकी तलवार उसके हाथमें देकर खड़ी हो गयी। शाहजहां उठा और लड़खड़ाकर गिरने लगा। शाहजादी जहांनाराने पकड़ लिया और तख्तताऊसके कमरेकी ओर बढ़ने लगी।

तख्तताऊसपर वृद्ध शाहजहां बैठा है और नकाब डाले हुए जहांनारा पासकी कुर्सीपर बैठी हुई है। और कुछ सर्दार जो कि उस समय वहां थे खड़े हैं, नकीब खड़ा है। शाहजहांके इशारा करते ही उसने अपने चिरअभ्यस्त शब्द करनेके लिये मुँह खोला। अभी पहला ही शब्द उसके मुँहसे निकला था कि उसका सिर छटककर दूर जा रहा। सब चकित होकर देखने लगे।

ज़िरः बक्तरसे लदा हुआ औरंगजेब अपनी तलवारको रूमाल से पोंछता हुआ सामने खड़ा हो गया और सलाम करके बोला—

हुजूरकी तबियत नासाज सुनकर मुझसे न रहा गया इसलिये हाजिर हुआ।

शाहजहां (कांपकर)–लेकिन बेटा। इतनी खूंरेजीकी क्या जरूरत थी। अभी अभी वह देखो, बुड्ढे नकीबकी लाश लोट रही है। ओफ मुझसे यह नहीं देखा जाता (कांपकर) क्या बेटा……" (इतना कहते कहते बेहोश होकर तख्तसे झुक गया)।

औरंगजेब—(कड़ककर अपने साथियोंसे) हटाओ इस नापाक लाशको।

जहांनारासे अब न रहा गया और दौड़कर सुगन्धित जल लेकर वृद्ध पिताके मुखपर छिड़कने लगी।

औरंगजेब–(उधर देखकर) हैं, यह कौन है जो मेरे बूढ़े बापको पकड़े हुए है (शाहजहांके मुसाहिबोंसे) तुम सब बड़े नामाकूल हो, देखते नहीं हमारे प्यारे बापकी क्या हालत है और उन्हें अभी भी पलँगपर नहीं लिटाया (औरंगजेबके साथ साथ सब तख्तकी ओर बढ़े)।

जहांनारा उन्हें यों बढ़ते देखकर फुरतीसे कटार निकालकर और हाथमें शाही मोहर किया हुआ कागज निकालकर खड़ी हो गयी और बोली देखो इस मोहरके मुताबिक मैं तुम लोगोंको हुक्म देती हूं कि अपनी अपनी जगहपर खड़े रहो जबतक मैं दूसरा हुक्म न दूं। सब उसी कागजकी ओर देखने लगे। उसमें लिखा था—इस शख्सका सब लोग हुक्म मानो और हमारी तरह इज्जत करो। सब उसकी अभ्यर्थनाके लिये झुक गये स्वयं औरंगजेब भी झुक गया और कई क्षणतक सब निस्तब्ध थे।

अकस्मात् औरंगजेब तनकर खड़ा हो गया और कड़ककर बोला—"गिरफ्तार कर लो इस जादूगरनीको। यह सब झूठा फिसाद है, हम सिवा शाहंशाहके और किसीको नहीं मानेंगे।"

सब लोग उस औरतकी ओर बढ़े। जब उसने देखा तो फौरन अपना नकाब उलट दिया, सब लोगोंने सिर झुका दिया

और पीछे हट गये। औरंगजेबने एक बार फिर सिर नीचे कर लिया और कुछ चड़चड़ाकर जोरसे बोला—कौन, जहांनारा, तुम यहां कैसे ?

जहांनारा—औरंगजेब ! तुम यहां कैसे ?

औरंगजेब—(पलट कर अपने लड़केकी तरफ देखकर) बेटा ! मालूम होता है कि बादशाह बेगमका कुछ दिमाग बिगड़ गया है, नहीं तो इस बेशर्मीके साथ इस जगहपर न आतीं। तुम्हें इनकी हिफाजत करनी चाहिये।

जहांनारा—"और औरंगजेबके दिमागको क्या हुआ है जो वह अपने बापके साथ इस बेअदबीसे पेश आया ⋯" अभी इतना उसके मुँहसे निकला ही था कि शाहजादेने फुरतीसे उसके हाथसे कटार निकाल लिया और कहा—"मैं अदबके साथ कहता हूँ कि आप महलमें चलें नहीं तो......

जहांनारासे यह देखकर न रहा गया। रमणीसुलभ वीर्य और अस्त्र क्रन्दन और अश्रुका प्रयोग उसने किया और गिड़गिड़ाकर औरंगजेबसे बोली—"क्यों औरंगजेब ! तुमको कुछ भी दया नहीं है ?"

औरंगजेबने कहा—'दया क्यों नहीं है। बादशाह बेगम ! दारा जैसे तुम्हारा भाई था वैसाही मैं भी तो भाईही था, फिर तरफदारी क्यों ?

जहांनारा—वह तो बापका तख्त नहीं लिया चाहता था, उनके हुक्मसे सल्तनतका काम चलाता था।

औरंगजेब—तो क्या मैं नहीं वह काम कर सकता ? अच्छा ज्यादा बहसकी कोई जरूरत नहीं है। बेगमको चाहिये कि वह महलमें जावें।"

जहांनारा कातर दृष्टिसे वृद्ध मूर्च्छित पिताको देखकर हाय बाप ! करती हुई शाहजादेकी बतायी राहसे जाने लगी।

(२)

यमुनाके किनारेके एक महलमें शाहजहां पलंगपर पड़ा है और जहांनारा उसके सरहाने बैठी हुई है।

जहांनारासे जब औरंगजेबने पूछा कि वह कहां रहना चाहती है तो उसने केवल अपने वृद्ध और हतभागे पिताके साथ रहना स्वीकार किया और अब वह साधारण दासीके वेशमें अपना जीवन अभागे पिताकी सेवामें व्यतीत करती है।

वह भड़कदार शाही पेशवाज अब उसके बदनपर नहीं दिखाई पड़ती, केवल सादे वस्त्रही उसके प्रशान्त मुखकी शोभा बढ़ाते हैं, चारों ओरसे उस शाही महलमें एक शान्ति दिखाई पड़ती है। जहांनाराने शाही असबाब जो उसके पास थे सब गरीबोंको बांट दिये, और अपने निजके बहुमूल्य अलंकार भी उसने पहिनने छोड़ दिये। अब जहांनारा एक तपस्विनी ऋषिकन्या सी हो गयी। अब बात बातपर दासियोंपरकी वह झिड़की उसमें नहीं रही। केवल आवश्यक वस्तुओंके सिवाय उसके रहनेके स्थानमें और कुछ नहीं है।

वृद्ध शाहजहांने लेटेलेटे आंख खोलकर कहा—बेटी, अब दवाकी कोई जरूरत नहीं है, यादे खुदा ही दवा है। अब तुम इसके लिये मत कोशिश करना। जहांनाराने रोकर कहा, पिता जबतक शरीर है तबतक उसकी रक्षा जरूर करनी चाहिये। शाहजहां कुछ न बोलकर चुपचाप पड़े रहे। थोड़ी देरतक जहांनारा बैठी रही फिर उठी और दवाकी शीशियां यमुनाके जलमें फेंक दीं। थोड़ी देरतक वहीं बैठी बैठी यमुनाका मन्द प्रवाह देखती रही। वह चित्तमें सोचती थी कि यमुनाका प्रवाह वैसाही है मुगल साम्राज्य भी तो वैसाही है फिर शाहजहां भी तो जीवित हैं, लेकिन तख्तताऊसपर तो वह नहीं बैठते। क्या संसारके सब पदार्थ ऐसेही क्षणिक हैं? इसी सोचविचारमें वह तबतक

वहां बैठी थी जबतक चन्द्रमाकी किरणें उसके मुखपर नहीं पड़ीं ।

शाहजादी जहांनारा तपस्विनी हो गयी है। उसके हृदयमें वह स्वाभाविक तेज अब नहीं है किन्तु एक स्वर्गीय तेजसे वह कान्तिमयी थी। उसकी उदारता पहलेसे भी बढ़ गयी। दीन और दुखीके साथ उसकी ऐसी सहानुभूति थी कि लोग उसे मूर्तिमती करुणा मानते थे। उसकी इस चालसे पाषाणहृदय औरंगजेब भी विचलित हुआ। उसकी स्वतंत्रता जो छीन ली गयी थी उसे फिर मिली। पर अब स्वतंत्रताका उपभोग करनेके लिये उसे अवकाश ही कहां था? पिताकी सेवा, दुखियोंकी सहानुभूति करनेसे उसे समय ही नहीं था। जिसकी सेवाके लिये हजारों दासियां हाथ बांधकर खड़ी रहती थीं वह स्वयं दासीकी तरह अपने पिताकी सेवा करती हुई अपना जीवन व्यतीत करने लगी। वृद्ध शाहजहांके इंगित करनेपर उसे उठाकर बैठाती और सहारा देकर कभी कभी यमुनाके तटतक उसे ले जाती और उसका मनोरंजन करती हुई छाया सी बनी रहती।

वृद्ध शाहजहांने इहलोककी लीला पूरी की। अब जहांनाराको संसारमें कोई कार्य नहीं है। केवल इधर उधर उसी महलमें घूमना भी अच्छा नहीं मालूम होता। उसकी पूर्व स्मृति उसे और भी सताने लगी। धीरेधीरे वह बहुत क्षीण हो गयी। अन्तमें वह बीमार पड़ गयी। उसकी सेवाके लिये जो दासियां थीं वे उसकी सेवा जीसे करने लगीं पर जहांनाराने दवा कभी न पी। धीरे धीरे उसकी बीमारी बहुत बढ़ी और उसकी दशा बहुत खराब हो गयी। औरंगजेबने सुना। अब उससे भी सह्य न हो सका। वह जहांनाराको देखनेके लिये गया ।

एक पुराने पलँगपर जीर्ण बिछौनेपर जहांनारा पड़ी थी और केवल एक धीमी सांस चल रही थी। औरंगजेबने देखा कि यह वही जहांनारा है जिसके लिये भारतवर्षकी कोई वस्तु अलभ्य

नहीं थी, जिसके बीमार पड़नेपर शाहजहां भी व्यग्र हो जाता था और सैकड़ों हकीम उसे आरोग्य करनेके लिये व्यग्र रहते थे। वह इस तरह एक कोनेमें पड़ी है। पाषाण भी पिघला, औरंगजेबकी आंखें आंसूसे भर आयीं और वह घुटनेके बल बैठ गया। समीप मुंह लेजाकर बोला—बहिन, कुछ हमारे लिये हुक्म है? जहांनाराने अपनी आंखें खोल दीं और एक पुरजा उसके हाथमे दिया, जिसे औरंगजेबने ले लिया। फिर पूछा—बहिन क्या तुम हमें माफ करोगी? जहांनाराने खुली हुई आंखोंको आकाशकी ओर उठा दिया। उस समय उसमेंसे एक स्वर्गीय ज्योति निकल रही थी और वह वैसेही देखती रह गयी। औरंगजेब उठा और आंसू पोंछते हुए पुरजेको पढ़ा। उसमें लिखा था

वग़ैर सवजः न पोशद कसे मज़ारे मरा
कि कब्रपोश गरीबां हमीं गयाह वसस्त

—जयशंकर "प्रसाद"

१६ आत्मनिर्भरता

आत्मनिर्भरता (अपने भरोसेपर रहना) ऐसा श्रेष्ठ गुण है कि जिसके न होनेसे पुरुषमें पौरुषेयत्वका अभाव कहना अनुचित नहीं मालूम होता। जिनको अपने भरोसेका बल है वे जहां होंगे जलमें तूंबीके समान सबके ऊपर रहेंगे। ऐसोंहीके चरित्रपर लक्ष्यकर महाकवि भारविने कहा है—

"लघयन् खलु तेजसा जगन्नमहानिच्छति भूतिमन्यतः"

अर्थात् तेज और प्रतापसे संसारभरको अपने नीचे करते हुए ऊंची उमंगवाले दूसरेके द्वारा अपना वैभव नहीं बढ़ाना चाहते। शारीरिक बल, चतुरङ्गिणी सेनाका बल, प्रभुताका बल, ऊंचे कुलमें पैदा होनेका बल, मित्रताका बल, मन्त्रतंत्रका बल इत्यादि जितने बल हैं निज बाहुबलके आगे सब क्षीण बल हैं, वरन् आत्मनिर्भरताकी बुनियाद यह बाहुबल सब तरहके बलको

सहारा देनेवाला और उभारनेवाला है। युरोपके देशोंकी जो इतनी उन्नति है तथा अमेरिका जापान आदि जो इस समय मनुष्य जातिके सिरताज हो रहे हैं इसका यही कारण है कि उन देशोंमें लोग अपने भरोसेपर रहना या कोई काम करना अच्छी तरह जानते हैं। हिन्दुस्तानका जो सत्यानाश है इसका यही कारण है कि यहांके लोग अपने भरोसेपर रहना भूल ही गये। इसीसे सेवकाई करना यहांके लोगोंसे जैसी खूबसूरतीके साथ वन पड़ता है वैसा स्वामित्व नहीं। अपने भरोसेपर रहना जब हमारा गुण नहीं तब क्योंकर संभव है कि हमारेमें प्रभुत्व-शक्तिको अवकाश मिले।

निरी किस्मत और भाग्यपर वे ही लोग रहते हैं जो आलसी हैं। अच्छा किसीने कहा है—

"दैव दैव आलसी पुकारा"

ईश्वर भी सानुकूल और सहायक उन्हींका होता है जो अपनी सहायता अपने आप कर सकते हैं। अपने आप अपनी सहायता करनेकी वासना आदमीमें सच्ची तरक्कीकी बुनियाद है। अनेक सुप्रसिद्ध सत्पुरुषोंकी जीवनी इसका उदाहरण तो हुई है वरन् प्रत्येक देश या जातिके लोगोंमें वल और ओज तथा गौरव और महत्वके आनेका आत्मनिर्भरता सच्चा द्वार है। वहुधा देखनेमें आता है कि किसी कामके करनेमें वाहरी सहायता इतना लाभ नहीं पहुँचा सकती जितना आत्मनिर्भरता। समाजके वन्धनमें भी देखिये वहुत तरहके संशोधन सरकारी कानूनोंके द्वारा वैसा नहीं हो सकते जैसा समाजके एक एक मनुष्यका अलग अलग अपना संशोधन अपने आप करनेसे हो सकता है। कड़ेसे कड़ा कानून आलसी समाजको परिश्रमी, अपव्ययी या फजूलखर्चको किफायतशार या परिमित व्ययशील, शरावीको परहेजगार, क्रोधीको शान्त या सहनशील, सूमको उदार, लोभीको सन्तोषी, मूर्खको विद्वान्, दर्पान्धको नम्र, दुरा-

चारीको सदाचारी, कदर्यको उत्तम, दरिद्र भिखारीको आढ्य, भीरु डरपोकको धीर धुरीण, झूठे गपोड़ियेको सच्चा, चोरको ईमानदार, क्रोधीको सहनशील, व्यभिचारीको एक पत्नीव्रतधर इत्यादि नहीं बना सकता, किन्तु ये सब बातें हम अपने ही प्रयत्न और चेष्टासे अपनेमें ला सकते हैं। सच पूछो तो जाति या क़ौम भी सुधरे हुए ऐसे एक एक व्यक्तिकी समष्टि है। समाज या जातिके एक एक आदमी यदि अलग अलग अपनेको ही सुधारें तो जातिकी जाति, या समाजकी समाज, सुधर जाय।

सभ्यता और है क्या? यही कि सभ्य जातिके एक एक मनुष्य आबाल वृद्ध वनिता सबोंमें सभ्यताके सब लक्षण पाये जायँ। जिसमें आधे या तिहाई सभ्य हैं वही जाति अर्द्धशिक्षित कहलाती है। क़ौमी तरक्की भी अलग अलग एक एक आदमियोंके परिश्रम योग्यता सुचाल और सौजन्यका मानों टोटल है। उसी तरह कौमकी तनज्जुली क़ौमके एक एक आदमीकी सुस्ती कमीनापन नीच प्रकृति स्वार्थपरता और भांति भांतिकी बुराइयोंका ग्रैण्ड टोटल है। इन्हीं गुणों और अवगुणोंको जाति-धर्मके नामसे भी पुकारते हैं जैसा सिक्खोंमें वीरता और जंगली असभ्य जातियोंमें लुटेरापन। जातीय गुणों या अवगुणोंको गवर्नमेन्ट कानूनके द्वारा रोक दे या जड़ पेड़से नेस्तनाबूद कर दे परन्तु वे किसी दूसरी शकलमें न सिर्फ फिरसे उभड़ आवेंगे वरन् पहिलेसे ज्यादा तरोताजगी और सरसब्ज़ीकी हालतमें हो जायँगे। जबतक किसी जातिके हरएक व्यक्तिके चरित्रमें आदिसे मौलिक सुधार न किया जाय तबतक औवल दर्जेका देशानुराग और सर्वसाधारणके हितकी वांछा सिर्फ कानूनके अदल बदलपनसे या नये कानून जारी करनेसे नहीं पैदा हो सकती। जालिमसे जालिम बादशाहकी हुकूमतमें भी रहकर कोई क़ौम गुलाम नहीं कही जा सकती वरन् गुलाम वही क़ौम है जिसमें एक एक व्यक्ति सब भांति कदर्य स्वार्थपरायण और जातीयताके

भावसे रहित है। ऐसी क़ौम जिसकी नस नसमें दास्यभाव समाया हुआ है कभी तरक्की नहीं करेगी चाहे कैसे ही उदार शासनसे वह शासित क्यों न की जाय। तो निश्चय हुआ कि देशकी स्वतंत्रताकी गहरी और मजबूत नींव उस देशके एक एक आदमियोंके आत्मनिर्भरता आदि गुणोंपर स्थित है। ऊंचेसे ऊंचे दरजेकी तालीम बिलकुल बेफायदा है यदि हम अपने ही सहारे अपनी बेहतरी न कर सकें। जान स्टुअर्ट मिलका सिद्धान्त है कि "राजाका भयानकसे भयानक अत्याचार देशपर कभी कोई बुरा असर नहीं पैदा कर सकता जबतक उस देशकी एक एक व्यक्तिमें अपने सुधारकी अटल वासना दृढ़ताके साथ है।"

पुराने लोगोंसे जो चूक और गलती बन पड़ी है उसीका नतीजा वर्त्तमान समयमें हमलोग भुगत रहे हैं। उसीको चाहे जिस नामसे पुकारिये यथा "जातीयताका भाव जाता रहा" "एका नहीं है" "आपसकी हमदर्दी नहीं है" इत्यादि। तब पुराने क्रमको अच्छा मानना और उसपर श्रद्धा जमाये रहना हम क्योंकर अपने लिये उपकारी और उत्तम मानें। हम तो इसे निरा चंडूखानेकी गप्प समझते हैं कि हमारा धर्म हमें आगे नहीं बढ़ने देता, अथवा विदेशी राजसे शासित हैं इसीसे हम तरक्की नहीं कर सकते। वास्तवमें सच पूछो तो आत्मनिर्भरता अर्थात् अपनी सहायता अपने आप करनेका भाव हमारे बीच हुई नहीं। हमारी यह सब वर्त्तमान दुर्गति उसीका परिणाम है। बुद्धिमानोंका अनुभव हमें यही कहता है कि मनुष्यमें पूर्णता विद्यासे नहीं वरन् कामसे होती है। प्रसिद्ध पुरुषोंकी जीवनी पढ़नेहीसे नहीं वरन् उन प्रसिद्ध पुरुषार्थी पुरुषोंके चरित्रका अनुकरण करनेसे मनुष्यमें पूर्णता आती है। युरोपकी सभ्यता जो आजकल हमारे लिये प्रत्येक उन्नतिकी बातमें उदाहरणस्वरूप मानी जाती है एक दिन या एक आदमीके कामका परिणाम नहीं है। जब कई पुश्ततक देशका देश ऊंचे काम, ऊंचे ख्याल और ऊंची वासनाओंकी

ओर प्रबलचित्त रहा तब वे इस अवस्थाको पहुँचे हैं। वहांके हरएक फिरके जातियां वर्णके लोग धैर्यके साथ धुन बांधके बराबर अपनी अपनी तरक्कीमें लगे हैं। नीचेसे नीचे दरजेके मनुष्य किसान कुली कारीगर आदि और ऊंचेसे ऊंचे दरजे-वाले कवि दार्शनिक राजनीतिज्ञ सबने मिलकर क़ौमी तरक्कीको इस दरजेतक पहुँचाया है। एकने एक बातको आरम्भ कर उसका ढांचा खड़ा कर दिया, दूसरेने उसी ढांचेपर साबित कदम रह एक दरजा और बढ़ाया। इसी तरह क्रम क्रमसे कई पीढ़ीके उपरान्त वह बात जिसका केवल ढांचामात्र पड़ा था पूर्णता और सिद्ध अवस्थातक पहुँच गयी। ये अनेक शिल्प और विज्ञान जिनकी दुनियाभरमें धूम मची है इसी तरह शुरू किये गये थे और ढांचा छोड़नेवाले पूर्व पुरुष अपनी भाग्यवान भावी सन्तानको उस शिल्प कौशल और विज्ञानकी बड़ी भारी मीरास या बपौतीका उत्तराधिकारी बना गये।

आत्मनिर्भरता या "अपने आप अपनी सहायता"के सम्बन्ध-में जो शिक्षा हमें खेतिहर दूकानदार बढ़ई लोहार आदि कारी-गरोंसे मिलती है उसके मुकाबिलेमें स्कूल और कालिजोंकी शिक्षा कुछ नहीं है और यह शिक्षा हमें पुस्तक या किताबोंसे नहीं मिलती वरन् एक एक मनुष्यके चरित्र आत्मदमन दृढ़ता धैर्य परिश्रम स्थिर अध्यवसायपर दृष्टि रखनेसे मिलती है। इन सब गुणोंसे हमारे जीवनकी सफलता है। ये गुण मनुष्य जातिकी उन्नतिका छोर हैं और हमें जन्म ले क्या करना चाहिये इसका सारांश है।

बहुतेरे सत्पुरुषोंके जीवनचरित्र धर्म्मग्रन्थके समान हैं जिनके पढ़नेसे हमें कुछ न कुछ उपदेश जरूर मिलता है। बड़प्पन किसी जाति विशेष या खास दरजेके आदमियोंके हिस्सेमें नहीं पड़ा जो कोई बड़ा काम करे या जिससे सर्वसाधारणका उपकार हो वही बड़े लोगोंकी कोटिमें आ सकता है। वह चाहे गरीबसे

गरीब या छोटेसे छोटे दर्जेका क्यों न हो बड़ेसे बड़ा है। वह मनुष्यके तनमें साक्षात् देवता है। हमारे यहां अवतार ऐसे ही लोग हो गये हैं। सवेरे उठ जिनका नाम ले लेनेसे दिनभरके लिये मंगलकी गारंटी समझी जाती है। ऐसे महामहिमाशाली जिस कुलमें जन्मते हैं वह कुल उजागर और पुनीत हो जाता है। ऐसोंहीकी जननी वीरप्रसू कही जाती है। पुरुषसिंह ऐसा एक पुत्र अच्छा, गीदड़ोंकी खासियतवाले सौ पुत्र भी किस कामके। पुत्रजन्ममें लोग बड़ी खुशी मनाते हैं, शहनाई बजवाते हैं, फूले नहीं समाते, हमें पछतावा और दुःख होता है कि जहां तीस करोड़ गीदड़ थे वहां एककी गिनती और बढ़ी क्योंकि हिन्दुस्तानकी हमारी बिगड़ी गिरी क़ौममें सिंहका जन्मना सर्वथा असम्भवसा प्रतीत होता है और न हमलोगोंके ऐसे पुण्य काम हैं कि हमारे बीच सब सिंह ही सिंह जन्में। तब हमारी इतनी अधिक बढ़ती जैसे बाल्यविवाहकी कृपासे हो रही है किस कामकी! सिवा इसके कि हिन्दुस्तानकी पृथ्वीका बोझ बढ़ता जाय। समाजमें ऐसे ऐसे कुसंस्कार और निन्दित रीतियां चल पड़ी हैं कि आत्मनिर्भरता पासतक नहीं फटकने पाती। बहुत तरहके समाजबन्धन तथा खानपान आदिकी कैद जो हमारे पीछे लगा दी गयी है उन सबका यही तो परिणाम हुआ कि आज़ादी जिसपर आत्मनिर्भरता या किसी दूसरे पौरुषेय गुणकी लम्बी चौड़ी इमारत खड़ी हो सकती है, शुरू हीसे नहीं आने पाती। जब कि युरोपके भिन्न भिन्न देशोंमें बाप मा अपने लड़कोंको तालीम देनेके साथ ही साथ अपने भरोसेपर जिन्दगीकी किश्तीको किस तरहपर खे ले जाना चाहिये यह लड़कपनसे सिखाते हैं, तब यहां दुधमुँहे बालक बालिकाओंका ब्याह कर स्वयं अपना भरणपोषण तथा अन्य समस्त पौरुषेय गुणोंकी जड़पर कुल्हाड़ा चलानेका प्रयत्न किया जाता है। युरोपके देशोंमें पिता पुत्रको शक्तिभर उत्तमसे उत्तम शिक्षा दे उसे जीवनसंग्रामके

लिये तैयार कर देता है जिसमें वह अपने आप निर्वाह कर सके। वहांके बाप मां हमलोगोंके बाप मांकी तरह अपने पुत्रके मित्रमुख शत्रु नहीं हैं कि बिना सोचे समझे लड़कपनसे चक्कीका पाट गलेमें बांध उस बेचारेको सब तरहपर हीन, दीन और लाचार कर डालें और आप भी चितापर पहुँचनेतक लड़कोंकी फिकिरसे सुचित्त न रहें। इतिहाससे पूरा पता लगता है कि जबसे यहां ब्रह्मचर्यकी प्रथा उठा दी गयी और दुधमुँहोंका ब्याह जारी कर दिया गया तबसे आजतक बराबर हमारी घटती ही होती जाती है। हम तो यही कहेंगे कि जैसा पाप हमसे बन पड़ता है उसके मुकाबिलेमें हमें कुछ भी दण्ड नहीं मिलता। दस या बारह वर्षकी कन्याओंके विवाहरूपी महापापकी इतनी सजा मिली तो कुछ न हुआ। अस्तु हमारेमें आत्मनिर्भरता न होनेका बाल्यविवाह एक बहुत बड़ा प्रधान कारण है। इसीका यह फल है कि हम नया कुआं खोद नया स्वच्छ पानी पीना जानते ही नहीं।

हमारे देशकी कुल आबादीके दस हिस्सेमें आठ हिस्सा ऐसा है जो केवल बाप दादोंकी कमाई या परम्पराप्राप्त जीविका अथवा वृत्तिसे निर्वाह करता है। सौमें एक ऐसे मिलेंगे जो अपने निज बाहुबल और पुरुषार्थके भरोसे हैं सो भी उनके सब पुरुषार्थ करतूत या सपूतीका निचोड़ केवल इतना ही है जैसा किसी कविने कहा है—

"अन्नपानजिता दारा सफलं तस्य जीवनम्"

अर्थात् सफल जीवन उसीका है जिसने अन्नवस्त्रसे अपने लड़के और स्त्रीको प्रसन्न कर रखा है। इतना जिसने किया वह पक्का सपूत और पुरुषार्थी है।

इधर पचास साठ वर्षोंसे अँगरेजी राज्यके अमन चैनका फायदा पाय हमारे देशवाले किसी भलाईकी ओर न झुके, वरन् दस वर्षकी गुड़ियोंका ब्याहकर पहलेसे ड्योढ़ी दूनी सृष्टि अल-

बत्ता बढ़ाने लगे। हमारे देशकी जनसंख्या अवश्य घटनी चाहिये और उसके घटानेका सुगम उपाय केवल बाल्यविवाहका रुक जाना है! पञ्चायतोंको चाहिये कि वह बाल्यविवाहको जुर्ममें दाखिल कर पूरे सिनपर आनेके पहले जो अपने कन्या या पुत्रका विवाह करे उसके लिये कोई भारी सजा या जुर्माना कायम कर दें, तब कदाचित् यह बुराई हम लोगोंमेंसे दूर हो। अपने आप ये कभी राहपर नहीं आनेवाले हैं। आत्मनिर्भरतामें दृढ़, अपने कूवतेबाज़ूपर भरोसा रखनेवाला पुष्ट-वीर्य, पुष्ट-बल, भाग्यवान् एक सन्तान अच्छी। कूकर शूकरसे निकम्मे, रग रगमें दासभावसे पूर्ण, परभाग्योपजीवी, दस किस कामकी!

"एकेनापि सुपुत्रेण सिंही स्वपिति निर्भयम्"

आदमीके लिये आजादी एक बेशकीमत मोती है। वह आजादी तब ही हासिल हो सकती है जब हम अनेक तरहकी फिकिर और चिन्तासे निर्द्वन्द्व हों और हमारी तबियतमें आत्म-निर्भरताने दखल कर लिया हो। इस दशामें बड़ीसे बड़ी चिन्ता और फिकिर हमें उतनी असह्य न मालूम होगी कि वह हमारी स्वच्छन्दताको जड़से उखाड़ सके। किसी वस्तुका जब बीज बना रहता है तो उसको फिर बढ़ा लेना सहज है। आत्मनिर्भरताकी योग्यता सम्पादन किये बिना ही हम लोगोंके बाप मां लड़कपनमें अपने लड़कोंका ब्याहकर यावज्जीवनके लिये उनकी स्वच्छन्दताका बीज नष्ट कर देते हैं। उपरान्त उनका शेष जीवन बोझ और अपाढ़ हो जाता है। इङ्गलैण्ड और अमेरिका जो इस समय उन्नतिके शिखरपर चढ़े हैं सो इसीलिये कि वहां गृहस्थी करना हर एक आदमी की इच्छापर निर्भर है। वहां बापमांको कोई अधिकार नहीं रहता कि निरे नाबालिगका ब्याह कर दें। यही सबब है कि उन देशोंमें प्रायः सब ही बड़प्पनका दावा कर सकते हैं। हमारे यहां भी शंकर, नानक, कबीर, कृष्णचैतन्य, बुद्धदेव, तथा हालमें स्वामी दयानन्द

जिनका बड़प्पन हमलोग मुक्तकण्ठ हो स्वीकार करते हैं और जिनका नाम लेते चित्त गद्गद् हो जाता है, सबके सब गृहस्थीके बोझसे स्वच्छन्द थे। आत्मनिर्भरता इन महापुरुषोंमें पूरा प्रभाव रखती थी। किसीका मत है मुल्कको तरक्की औरतोंकी तालीमसे होगी, कोई कहता है विधवाविवाह होनेसे भलाई है, कोई कहता है खाने पीनेकी कैद उठा दी जाय तो हिन्दू लोग स्वर्ग पहुँच इन्द्रका आसन छीन लें, कोई कहता है विलायत जानेसे तरक्की होगी, कोई कहता है फजूलखर्चो कम कर दी जाय तो मुल्क अभी तरक्कीकी सीढ़ीपर लपकके चढ़ जाय। हम कहते हैं इन सब बातोंसे कुछ न होगा जबतक हमारा बाल्य-विवाह रूपी कोढ़ साफ न होगा। हम जानते हैं हमारा यह रोना झीखना केवल अरण्यरुदनमात्र है, फिर भी गला फाड़ फाड़ चिल्लाते रहेंगे। कदाचित् किसीकी तबियतपर कुछ असर पैदा हो जाय और आत्मनिर्भरता ऐसे श्रेष्ठ गुणको हमलोगोंके बीच भी प्रकट होनेका अवकाश मिले।

—बालकृष्ण भट्ट

१७ मिताचरण

जिस वर्ष वृष्टि नहीं होती अथवा बहुत ही स्वल्प होती है उस वर्ष अकाल पड़नेकी सम्भावना हुआ करती है। योंही जब अतिवृष्टि होती है तब भी बहुतसे खेत बह जाते हैं बहुतसे सड़ जाते हैं इससे अन्नके उत्पत्तिमें बाधा पड़ती है। यह प्राकृतिक नियम हमें सिखलाता है कि जो बात मर्यादाबद्ध नहीं होती वह कष्टका हेतु होती है। यदि हम परिश्रम करना छोड़ दें तो कुछ ही कालमें आलसी होकर और धन बल मान इत्यादि खोकर नाना जातिके रोग शोकादिके भाजन बन बैठेंगे अथवा अपनी शक्तिसे अधिक श्रम करें तोभी शरीर शिथिल एवं मन खेदित होनेके कारण किसी कामके न रहेंगे, भोजन यदि स्वादिष्ट होनेसे

भूखसे अधिक खायँ तो आलस्य और अनपचके कारण भांति भांतिके कष्ट सहने पड़ेंगे तथा अत्यन्त थोड़ा भोजन करें तो भी निर्वलताजनित उपाधिसमूह झेलने पड़ेंगे। अतः बुद्धिमानको चाहिये कि जो काम करे परिमाणके भीतर ही करे क्योंकि जीवनको सुविधासम्पन्न बनानेके लिये जैसे सभी बातोंका अभ्यास रखना आवश्यक है वैसे ही यह स्मरण रखना भी प्रयोजनीय है कि अति किसी बातकी अच्छी नहीं होती, परिणाममें उसके द्वारा दुःख ही होता है। जिन बातोंको सारा संसार एक स्वरसे उत्तम कहता है, उनकी प्राप्तिके लिये भी यदि परिमितताका त्याग कर दिया जाय तो क्लेश और हानि हुए बिना नहीं रहती। विद्याध्ययन अथवा धर्मके संचयमें जितना श्रम किया जाय उतने ही कल्याणकी वृद्धि होती है किन्तु साथ ही यह भी स्मर्तव्य है कि यदि हम महाधुरन्धर पण्डित अगणित सम्पदासम्पन्न परमधर्म्मिक बननेकी धुनमें आकर आहार विहार आदिके नियमोंकी ओरसे ध्यान हटा लें तो थोड़े ही दिनोंमें स्वास्थ्यसे रहित होकर पढ़ने लिखनेके कामके न रहेंगे वा पढ़ा पढ़ाया निष्फल हो जायगा। कृषि वाणिज्यादिके लिये दौड़ने धूपनेकी शक्ति न रहेगी अथवा संचित धनका उपयोग दुष्कर हो जायगा। भलाई बुराईका यथेष्ट निर्णय न कर सकेंगे वा जिन सत्कार्योंके करनेको जी छटपटायेगा वे हाथों पावोंसे ही कठिन हो जायँगे। क्योंकि जिस अङ्ग या पदार्थसे अत्यधिक काम लिया जाता है वा नहीं लिया जाता वह सामर्थ्यहीन हो जाता है और आवश्यकताके समय काम नहीं दे सकता, अतः किसीकी दशा एक सी नहीं रहती। अतएव समय समयपर सभी कुछ करनेकी आवश्यकता पड़ती है तथा उसकी पूर्तिके उपयुक्त शक्तिके अभावसे यदि वह न हो सका तो बहुत कालतक क्लेश वा हानि अथवा अपकीर्ति सहनी पड़ती है। जो लोग सम्पत्तिकी दशामें धनका भोग या दान अनियमित रूपसे करते हैं उन्हें जब उदारता प्रद-

र्शनका अवसर पड़ता है, उचित व्यय करनेके योग्य रुपया नहीं मिलता अथवा लोग खाने पहिरने देने दिलाने आदिमें कंजूसी करते हैं। उनका ऐसी आवश्यकताके आ पड़नेपर पैसे पैसेपर जी निकलता है। इन दोनों प्रकारके पुरुष ऐसी अवस्थामें जो कुछ करते हैं सन्तुष्ट भावसे नहीं करते। अतः बुद्धिमानका कर्तव्य यही है कि जब जैसी ही आ पड़े तब वैसे बन जानेके लिये सन्नद्ध रहे। और यह तभी हो सकता है जब मिताचरणके द्वारा शरीर एवं अधिकृत वस्तुमात्रको रक्षित अथच कार्योपयुक्त रखा जाय। यद्यपि समय विशेषकी उपस्थितिमें जी खोलकर अपनी शक्तिसे कहीं अधिक साहस धैर्य्य उद्योग उदारतादिका प्रदर्शन ही असाधारण पुरुषोंका लक्षण है। इतिहासमें वही लोग गौरवास्पद होते हैं जो काम पड़नेपर अपने धर्म अथवा प्राणतकका मोह न करके कर्त्तव्यपालनका उदाहरण दिखा देते हैं। किन्तु ऐसा अवसर नित्य नहीं पड़ा करता। जीवनभरमें दोही एक बार या बहुत हुआ तो दस पांच बेर वित्त बाहर काम करनेका समय आता है और उसीमें दृढ़ रहना जन्मधारणकी सार्थकताका सम्पादन करना है। और ऐसे अवसरपर उचित आचरण वेही दिखला सकते हैं जिनकी आन्तरिक और बाह्य सभी प्रकारकी पूंजी सर्वथा सुस्थिर हो और शनैः शनैः बढ़ती रहती हो। यह योग्यता जिसमें न हो वह साधारण जनसमुदायमें भी गणनीय नहीं है। तस्मात् इसकी प्राप्तिके लिये पाठकगणको चाहिये कि शरीरके सभी अवयवों और मनकी सभी शक्तियोंसे काम लेते रहा करें पर उतनाही जितनेमें अधिक थकावट न हो। अन्न वस्त्रादिमें व्यय भी इतना ही किया करें जितना सामर्थ्यके अन्तर्गत हो। दूसरोंके साथ व्यवहार बर्त्ताव भी इतना ही रखा करें जितना सर्वदा निबह सके। अपनी वाणी और वेष भी ऐसा ही रखा करें जैसा कुलकी मर्यादाके विरुद्ध और लोकसमुदायको अप्रिय न हो। बस ऐसा ध्यान बना रखने और अभ्यास करते

रहनेसे मिताचारी और सज्जीवनाधिकारी होनेमें कोई संशय न रहेगा और आवश्यकताके समय तदनुकूल कार्यों की पूर्ण-कारिणी सामग्रीका अभाव न रहेगा।

—प्रतापनारायण मिश्र

१८ पोशाक

आरोग्य जैसे आहारपर निर्भर है वैसेही किसी हद्तक पोशाकपर भी। गोरी लेडियां मनमानी शोभाके लिये ऐसी पोशाक पहनती हैं जिससे कमर पतली और पैर छोटे रहें। इससे वे अनेक प्रकारकी बीमारियां भोगा करती हैं। चीनमें औरतोंके पैर हमारे यहांके बच्चोंके पैरसे भी छोटे कर दिये जाते हैं। इससे वहांकी औरतोंकी तन्दुरुस्तीमें बड़ा धक्का लगता है। इन दोनों बातोंसे पाठक समझ लेंगे कि आरोग्यका सम्बन्ध कुछ अंशमें पोशाकसे अवश्य है। प्रायः पोशाकका पसन्द करना हमारे हाथ नहीं रहता। हमें अपने बड़े बूढ़ोंकी पोशाक पहननी पड़ती है और आजकालकी दशाके अनुसार वैसा करना आवश्यक जान पड़ता है। पोशाकका मुख्य उद्देश्य भुलाकर लोग अब उसे अपने धर्म, देश और जातिकी सूचक मानने लगे हैं। इसके सिवा मजूर धनी और बाबू लोगोंकी पोशाक भिन्न होती है। इस दशामें आरोग्यकी दृष्टिसे पोशाकका विचार करना बहुत ही कठिन काम है, फिर भी विचार करनेसे कुछ लाभ ही होगा।

पोशाक शब्दमें जूते और जेवर इत्यादि भी शामिल समझने चाहिये।

पोशाकका मुख्य उद्देश्य क्या है? मनुष्य अपनी प्राकृतिक स्थितिमें कपड़ा नहीं पहनता था, स्त्री पुरुष केवल अपना गुप्त-भाग ढक लेते बाकी शरीरका सब भाग खुला रखते थे। इससे उनका चमड़ा कठिन और मजबूत हो जाता था। ऐसे मनुष्य हवा

और पानीको खूब सह सकते थे, उन्हें यकायक सर्दी इत्यादि नहीं होती थी। हवाके प्रकरणमें विचार कर चुके हैं कि हम केवल नथुनोंसेही हवा नहीं लेते बल्कि चमड़ेपरके अनेक छेदों-द्वारा भी लेते हैं। कपड़े पहनकर हम चमड़ेके इस बड़े कामको रोकते हैं। ठंढे देशके मनुष्य ज्यों ज्यों आलसी बनते गये त्यों त्यों उन्हें शरीर ढकनेकी जरूरत बढ़ती गयी। वे ठंढ न सह सके और पोशाकका रिवाज चल पड़ा। अन्तमें लोगोंने पोशाकको मनुष्यका आभूषणरूप मान लिया। फिर उससे देश जाति आदिकी पहचान होने लगी।

असलमें प्रकृतिने मनुष्यके शरीरपर चमड़ेकी बहुत ही योग्य पोशाक दी है। यह मानना कि शरीर नग्न दशामें बुरा मालूम होता है बिल्कुल भ्रम है। अच्छेसे अच्छे चित्र तो नग्न दशामें ही दिखाई पड़ते हैं। पोशाकसे शरीरके साधारण अंगोंको ढककर मानों हम दिखलाते हैं कि इनके दोष छिपानेके लिये हम यह कर रहे हैं, मानों हम प्रकृतिके कामोंमें दोष निकाल रहे हैं। हमारे पास ज्यों ज्यों पैसा अधिक होता जाता है त्यों त्यों हम अपनी टीमटाम बढ़ाते जाते हैं। हर तरहसे आदमी अपनी सुन्दरता बढ़ाता है। शीशेमें मुँह देख देख अकड़ता है वाह! मैं कैसा खूबसूरत हूं। यदि ऐसी आदतोंसे हम सबकी दृष्टिमें फर्क न पड़ा हो तो हम तुरन्त समझ सकते हैं कि मनुष्यका अच्छेसे अच्छा रूप उसकी नग्न दशामें दिखाई देता है और उसीमें उसका आरोग्य भी है। एक पोशाक पहनी कि रूपमें उतनाही फर्क डाला। शायद केवल कपड़ोंसे सन्तोष न होनेपर स्त्री पुरुषोंने गहने पहनने शुरू कर दिये। बहुतेरे मर्द भी पैरमें कड़े पहनते हैं, कानोंमें वालियां लटकाते हैं और हाथमें अँगूठी पहनते हैं। ये सब गन्दगीके घर हैं। यह समझना बहुत ही कठिन है कि इनके पहननेमें कौन सी शोभा फटी पड़ती है। इस विषयमें औरतोंने तो हदही कर दी है।

ये पैरोंमें ऐसे भारी भारी कड़े, पाजेब पहनती हैं कि जिनसे पैर उठाना भी कठिन हो जाता है। बालियोंसे कान गुथे रहते हैं, नाकमें भारी नथ लटकी रहती है और हाथोंमें तो जितने गहने हों उतने ही थोड़े। इस पहनावसे शरीरपर बड़ा मैल जमा हो जाता है। कान और नाकमें तो मैलकी हद ही नहीं रहती। हम इस मैली दशाको शृङ्गार समझकर खूब पैसे फूंकते हैं। चोरोंके भयसे जान जोखिममें डालते हुए नहीं डरते। किसीने बहुत ठीक कहा है कि अभिमानसे पैदा हुई मूर्खताको हम तकलीफें झेलते हुए जो नज़राना देते हैं वह बहुतही अधिक होता है। ऐसे उदाहरण बहुत लोगोंने अपनी आंखों देखे होंगे कि कानमें फोड़ा होनेपर भी औरतोंने अपनी बालियां नहीं उतारने दीं। हाथमें फोड़ा होकर हाथ पक गया फिर भी पहुँची कैसे उतरे? अँगुली पककर सूज आयी तब भी हीरा जड़ी अंगूठी मर्द और औरतें अपनी अँगुलीसे उतार डालना रूपमें फर्क आ जानेका कारण समझती हैं!

पोशाकके सम्बन्धमें अधिक सुधार मुश्किल है। फिर भी हम गहनों और अनावश्यक कपड़ोंको एकदम विदा कर सकते हैं— रीति-रवाजके लिये कुछ कपड़ोंको रखकर बाकीको अलग कर सकते हैं। पोशाक मनुष्यका आभूषण है, यह वहम जिन लोगोंके मनसे दूर हो गया है वे बहुत कुछ सुधार करके अपना आरोग्य ठीक रख सकते हैं।

आजकल यह हवा बह रही है कि युरोपकी पोशाक हमारे लिये बहुत अच्छी है, इस पोशाकसे हमारा रोब बढ़ जाता है और लोग हमारा सम्मान करने लगते हैं। इन सब बातोंपर विचार करनेका यह स्थल नहीं। यहां तो इतना ही कहना आवश्यक है कि युरोपकी पोशाक वहांके ठंढे भागोंके लिये भले ही योग्य हो, किन्तु वह भारतवर्षके लिये उपयोगी नहीं सिद्ध हो सकती। हिन्दुस्तानके लिये चाहे वह हिन्दू हो या

मुसलमान हिन्दुस्तानहीकी पोशाक समुचित हो सकती है। हमारे कपड़े खुले और ढीले ढाले होते हैं, इसलिये उनमें हवा आ जा सकती है, यही नहीं, अधिकतर सुफेद होते हैं जिससे सूर्यकी किरणें बिखर जाती हैं। काले रंगके कपड़ेमें सूर्यकी गर्मी अधिक मालूम होती है, इसका कारण यह है कि उसमें लगकर गरमीकी किरणें बिखरती नहीं बल्कि समा जाती हैं।

हम अपना सिर प्रायः ढके रखते हैं और बाहर जाते समय तो अवश्य ही ढक लिया करते हैं। पगड़ी तो हमारी पहचान हो गयी है। फिर भी जहांतक सुभीता हो, सिर खुले रखनेमें ही फ़ायदा है। बाल बढ़ाना और पट्टिया पाड़ना जंगलीपनकी निशानी है। बढ़े हुए बालोंमें धूल मैल और लीखें पड़ जाती हैं। कहीं सिरमें फोड़ा हुआ तो उसका इलाज करना भी कठिन हो जाता है। सिरपर साहब लोगोंकेसे बाल बढ़ाना पगड़ी बांधनेवालोंके लिये बेवक़ूफी है।

पैरोंके द्वारा भी हम बहुतेरे रोगोंके पंजेमें फँस जाते हैं। बूट इत्यादि पहननेवालोंके पैर नाजुक हो जाते हैं। उनसे पसीना निकलने लगता है और वह बहुत ही बदबू करता है। जिस मनुष्यको बासकी परख है वह मोजे और बूट पहननेवाले मनुष्यके पास बदबूके मारे उस समय खड़ा नहीं रह सकता जब वह अपने मोजे और बूट उतार रहा हो। हम जूतोंको पाद-त्राण या कंटकारि कहते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि हमें जब कांटोंमें, ठंढकमें अथवा धूपमें चलना पड़े तभी जूते पहनने चाहिये और सो भी इस प्रकारके जिनसे केवल तलुवे ढकें, सारा पैर न ढक जाय। इस अभिप्रायको सेंडल जूते भली भांति पूरा कर सकते हैं। जिनका सिर दुखता हो, जिनका शरीर कमजोर हो, जिनके पैरोंमें दर्द रहता हो और जिन्हें जोड़े पहननेकी आदत हो, उनके लिये तो हमारी यही सलाह है कि वे नंगे पैर चलनेका प्रयोग कर देखें इससे उन्हें तुरन्त

मालूम होगा कि पैर खुले रखने, जमीनपर नंगे पैर चलने और उन्हें पसीना-रहित रखनेसे हम तत्काल कितना लाभ उठा सकते हैं।

—महात्मा गांधी

१६ रवड़

पाठशालाके छोटे छोटे लड़कोंसे लेकर बूढ़ेतक रवड़के नामसे अवश्य परिचित होंगे। पेंसिल वा स्याहीसे लिखे हुएको मिटाने, वाइसिकिल, मोटरकार, घोड़ा गाड़ीके पहियोंमें लगाने, गेंदको उछलनेयोग्य बनाने, वरसाती पानीसे वचने, मोजोंको कसा रखनेके लिये रवड़का प्रयोग किसी न किसी रूपमें वहुतसे लोग करने लग गये हैं। वैज्ञानिक प्रयोगशालाओंमें रवड़का महत्व वढ़ा हुआ है। इसलिये रवड़का जीवनचरित प्रत्येक व्यक्तिको जानना उचित और आवश्यक समझना चाहिये।

रवड़ कहां मिलता है

रवड़ कई प्रकारके वृक्षोंके दूधसे वनाया जाता है। यह दूध वायुमें रहनेसे लचीला हो जाता है। इसके वृक्ष भारतवर्ष अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिकामें पाये जाते हैं। कोई कोई वृक्ष तीससे पचास फुटतक ऊंचे होते हैं और कोई लताकी जातिके होते हैं। लता जातिके अफ्रीकाके कुछ भागोंमें पाये जाते हैं। आसाम, जावा, पेनांग और रंगूनमें जो रवड़ वनता है वह भारतीय रवड़-वृक्षसे निकलता है। दक्षिणी अमेरिकामें रवड़ ऐसे पौधोंसे निकलता है जो रेंडकी जातिके होते हैं।

कैसे निकाला जाता है

सूखी ऋतुके आरम्भमें मनुष्य उन जंगलोंमें जाते हैं जिनमें रवड़के पेड़ खड़े होते हैं और जिन वृक्षोंका दूध रवड़ देनेके योग्य

समझा जाता है उनके चारों ओर मिट्टीके पक्के प्याले रख देते हैं। यह प्याले एक ओर चपटे होते हैं। ऐसे १५ प्यालोंका रस मिलाकर एक बोतलके बराबर होता है। मनुष्य दाहिने हाथमें कुल्हाड़ी लेकर जितनी ऊंचाईतक पहुँच सकता है गहरा और ऊपरकी ओर ढालू होता हुआ एक खत तनेमें लगाता है इससे छाल कट जाती है और लकड़ीमें भी एक इंचके लगभग गहरा क्षत हो जाता है। इसकी चौड़ाई भी एक इंच होती है।

खत लग चुकनेपर वह एक प्याला लेता है और गीली मिट्टी लगाकर उसको तनेमें खतके नीचे चिपका देता है। इसी प्यालेमें स्वच्छ दूधकी नाईं रस भरने लगता है। चार पांच इंच दूरीपर और उसी ऊंचाईपर दूसरा खत लगाया जाता है और उसके नीचे प्याला चिपका दिया जाता है। इसी प्रकार उसी ऊंचाई-पर प्यालोंकी एक पंक्ति लगा दी जाती है। यह ऊंचाई पृथ्वीसे ६ फुटके लगभग होती है। एक पेड़से दूसरे पेड़ और दूसरेसे तीसरेमें इसी प्रकार खत लगाकर प्याले चिपका दिये जाते हैं। इन खतोंसे तीन चार घंटेतक दूध बहा करता है। यह निश्चित नहीं रहता कि किस खतसे कितना दूध निकलेगा। हां, यदि पेड़ बड़ा हो और पहले बहुत खत न लगाये गये हों तो बहुतसे प्याले आधे भर जाते हैं और कुछ पूरे भर जाते हैं।

दूसरे दिन फिर खत किये जाते हैं। पहले खतोंकी पांतिसे दूसरे दिनके खतोंकी पांति सात आठ इंच नीचे होती है। इस प्रकार प्रतिदिन नये खतोंकी पांति सात आठ इंच नीचे होते होते पृथ्वीतक पहुँच जाती है तब खतका लगाना बन्द कर देते हैं। जो रस इन प्यालोंमें इकट्ठा होता है वह एक बड़े बर्तनमें उड़ेल लिया जाता है जिसको बटोरनेवाला अपने हाथमें लिये रहता है

दूधको बाहर कैसे भेजते हैं

दूध एकत्र करके ढाल देते हैं सांचा लकड़ीकी बड़ी करछीकी तरह होता है। यह चपटा होता है जिसमें रबड़ तहकी तह एक पर एक जमाया जाता है। एक तंग मुँहवाले बर्तनमें जिसका पेंदा खुला रहता है लकड़ीकी आंचसे बनाते हैं और सांचेपर चिकनी मिट्टी रगड़ देते हैं जिससे दूध चिपकने नहीं पाता। तब उसको धुएंमें गरम करते हैं। कर्म्मचारी एक हाथमें सांचेको थामता है और दूसरे हाथसे दोबार तीन प्यालोंका दूध उसपर उड़ेल देता है। तुरन्त ही वह सांचेको आगके बर्तनके मुँहपर रखकर शीघ्रता के साथ घुमाता है जिसमें धुआं चारों ओर बराबर लगे। सांचेके दूसरे ओर भी ऐसा ही किया जाता है। धुआं लगनेपर दूध कुछ कुछ पीला और ठोस होता है। जब एक तहपर दूसरी तह और इसी तरह कई जमा चुकते हैं तब एक तख्तेपर ठोस होनेके लिये रख देते हैं, ठोस होनेपर सांचेके किनारोंपर तराश देते हैं और सांचेको निकाल लेते हैं। इस प्रकार चार पांच इंच मोटी तह हो जाती है। अच्छी तरह सूखनेपर यह बाज़ार भेज दिया जाता है। ऐसी दशामें सब तहें साफ़ साफ़ दिखाई पड़ती हैं। सांचेको खुरचनेसे जो कुछ मिलता है और प्यालोंमें जो कुछ जमा रहता है वह भी इकट्ठा करके बाज़ार भेज दिया जाता है। इसको नीची श्रेणीका रबड़ कहते हैं।

शुद्ध कैसे किया जाता है।

जंगलोंमें जमाकर जो रबड़ भेजा जाता है उसमें मिट्टी, बालू, पत्तियां इत्यादि मिली रहती हैं, इसलिये बिना शुद्ध किये यह कामका नहीं होता। इसलिये कई घंटेतक इसको पानीमें उबालते हैं। आगमें इसको नहीं गलाते क्योंकि यह आग पकड़ लेता है। पानीमें उबालनेसे रबड़ नरम पड़ जाता है। जो भाग नीचे बैठ जाता है उसको अलग कर देते हैं क्योंकि इसमें बालू

मिट्टी इत्यादि मिली होती है और जो उतराया रहता है उसमें पत्ती और खर मिले रहते हैं। तब इसको मशीनद्वारा धोते हैं। इसके पश्चात् रबड़को ऐसे कमरोंमें सुखाते हैं जिनको भापके नलोंद्वारा गरम रखा जाता है। सूर्य्यकी किरणें नहीं पड़ने पातीं। इन किरणोंसे बचानेके लिये खिड़कियां पीली वा सफेद रँग दी जाती हैं। सूखनेपर रबड़को बटोरकर रख देते हैं। धुले हुए रबड़को मसलनेवाली मशीनमें रखा जाता है। बेलनोंको घुमानेसे रबड़ उनके बीचमें दबकर छोटे छोटे छिद्रोंमेंसे होकर निकलता है। मसल चुकनेपर रबड़ उस मशीनमें रखा जाता है जहां सांचेमें थक्का बँध जाता है। इन थक्कोंको खूब दबाकर ऐसी जगहमें रखते हैं जहां बर्फसे भी ज्यादा ठंढक रखी जाती है। इससे थक्के कड़े पड़ जाते हैं और तब सांचे निकाल दिये जाते हैं। यह थक्के बर्फमेंसे तभी निकाले जाते हैं जब इनका काम पड़ता है। कुछ थक्के वर्गाकार और कुछ बेलनाकार होते हैं।

जब रबड़को चद्दरोंकी आवश्यकता होती है तब यह थक्के भिन्न भिन्न मोटाईके काटे जाते हैं। काटते समय रबड़को ठंढे पानीसे लगातार भिगोते रहते हैं। काट चुकनेपर चद्दरोंको सूखनेके लिये लटका देते हैं।

इन्हीं चद्दरोंसे रबड़के फीते काटे जाते हैं। यह फीते कुछ देरतक तानकर फैलाये जाते हैं और इस समय इनको ठंढा भी रखते हैं। गरम पानीमें रखनेसे यह अपने आकारके दृढ़ हो जाते हैं। यह रीति कई बार करनेसे फीतेकी दृढ़ता पांच वा छ गुना बढ़ायी जा सकती है।

यदि फीते बहुत पतले हों तो उनको रबड़का सूत कहते हैं जो लचीले कपड़ोंमें लगता है।

रबड़से कौन कौन काम निकलते हैं।

पेन्सिलके लिखे हुए अक्षर रबड़से मिट जाते हैं। इसीसे

इसका नाम अँगरेजीमें रबर पड़ा जिसका अर्थ है घिसनेवाला। यह कहा जा चुका है कि रूई ऊनी और रेशमी मोज़ों और दस्तानोंको लचीला करनेके लिये इसके डोरे प्रयोग किये जाते हैं। रबड़में गन्धक मिला दिया जाय तो नाम गन्धकी रबड़ पड़ जाता है जिससे स्याहीके अक्षरोंको मिटानेवाली लचीली पट्टियां, किवाड़ोंकी कमानी गैस ले जानेवाली नलियां, गेंद इत्यादि बनते हैं। अलकतरेसे मिलाकर कंघे, घड़ीकी जंजीर, कलम और बहुतसी चीजें बनती हैं। जिससे यह सब चीज़ें बनती हैं उसे वल्कनाइट कहते हैं जो आबनूसकी लकड़ीके रंगका होता है परन्तु वास्तवमें वह रबड़ और अलकतरेके योगसे बनता है।

रबड़को घोलकर लाख मिला देनेसे गोंदकी नाईं जोड़नेका भी काम लिया जाता है जिसको नाव बनानेवाले बहुधा प्रयोग करते हैं। नफ्थामें घोलकर ऊनी कपड़ोंपर फैला देनेसे ऊनी कपड़ोंमें पानी नहीं सोखता। ऐसे ही कपड़े बरसाती कपड़े कहे जाते हैं क्योंकि बरसातका पानी ऊपर ही ऊपर बह जाता है। विद्युत समाचार पहुँचानेवाले तार भी इसमें लपेटे जाते हैं जिससे बिजली इधर उधर नहीं बहने पाती।

रबड़के रासायनिक गुण

यह गरम या ठंढे पानीमें नहीं घुलता परन्तु ताड़पीन और नफ्थामें घुल जाता है। यह आग पकड़ लेता है जिसकी लौसे धुआं बहुत होता है और गन्ध बड़ी तीव्र होती है।

भौतिक गुण

इसका लचीलापन हल्की गरमी पहुँचानेसे बढ़ जाता है। गरम गरम यह ताना जाय और तनावके रहते हुए ठंढा किया

जाय तो लचीलापन चला जाता है और रबड़ बना ही रह जाता है, गरम करनेसे फिर लचने लगता है। इसी गुणके कारण यह लचीले कपड़ों गेन्द और गैसकी नलियोंके बनानेमें काम आता है।

गरम पानीमें वा आगके सामने रखनेसे यह मुलायम पड़ जाता है। बहुत तेज़ आंचपर पिघलने लगता है। ताजे कटे हुए किनारे तनिक सी गरमी और दबावसे जुड़ जाते हैं।

—महावीर प्रसाद

२० अभ्रक और उसका व्यापार

यह बड़े सन्तोषका विषय है कि इस बीसवीं शताब्दिमें भी भारतवर्ष अभ्रकके व्यापारमें आज संसारभरके सब देशोंसे बढ़ा है, और उसके लाभका अधिकांश दिनोंदिन इसीके हिस्से आता जाता है।

इसका विशेष महत्व हमको उस समय मालूम होता है जब हम जानते हैं कि इस औद्योगिक क्षेत्रमें कैनाडा और संयुक्त देश अमेरिकावाले हमारे प्रतिद्वन्द्वी हैं और उनके उन्नत वैज्ञानिक और शिल्पीय ज्ञानके सामने हमने अपना पांव जमा रखा है। साथ ही जब हम यह स्मरण करते हैं कि वर्तमान समयमें अभ्रककी उपयोगिता बढ़ रही है, नित नयी नयी सैकड़ों प्रकारकी चीजें इससे बनती हैं और ऐसी अनेक जगहोंपर इसकी आवश्यकता पड़ती है जिसमें आगे कमी होनेकी कोई सम्भावना नहीं है, यहां-तक कि युरोपीय युद्धमें भी इसलिये कि शत्रु अभ्रकसे लाभ न उठाने पावें भारत सरकारका विशेष विज्ञप्तिद्वारा अभ्रककी रफ़्तनी—बाहर जाना—रोकना सिद्ध करता है कि यह हमारे धनप्राप्तिका बड़े महत्वका सूत्र है और इससे आगे आनेवाले औद्योगिक प्रयासमें हमको अच्छा सहारा मिलनेवाला है।

इसीलिये अभ्रककी चर्चा इस स्थानमें अनुचित नहीं जान पड़ती।

उत्पत्ति

प्रायः सभी तरहके आग्नेय चट्टानोंमें अभ्रक मिलता है क्योंकि अभ्रक उन चट्टानोंका आदिम और अत्यावश्यक अंग है। कई प्रकारके शिलकेत नामक खनिजोंमें जो परिवर्तन पृथ्वीकी धधकती ज्वालासे किसी समय हुए थे, उन परिवर्त्तनोंका अन्तिम रूप अभ्रक है। साथ ही वायुके प्रभावसे शिलकेतों एवं अभ्रकके संलग्न तथा भूगर्भके निरन्तर होनेवाली पारिवर्त्तिक क्रियाओंसे नया अभ्रक बनता ही रहता है। बहकर एकत्र होकर जमे हुए चट्टानोंके नीचेवाले अंशमें भी पाया जाता है।

विदेशोंमें स्वीडन, नारवे, सैबेरिया, पेरू तथा चीनमें भी अभ्रक मिलता है।

भारतीय खानियोंसे मस्कोवैट जाति निकलती है और इसके दोही प्रधान केन्द्र हैं। पहला बिहार उड़ीसा प्रान्तका हज़ारीबाग़ ज़िला और दूसरा मद्रासहातेका नेलोर ज़िला। बिहारका साधारणतः कुछ गुलाबी लिये होता है और नेलोरवालेमें थोड़ा हरापन होता है। नेलोरके इनिकर्नी खानिसे निकली हुई "चादरें" दस वा पन्द्रह फीट चौड़ी होती हैं और कभी कभी ३०+२४ इंचके चौखूंटे टुकड़े बिना ख़राश या निशानके भी पाये गये हैं। इसी लिये नेलोरवाला अभ्रक बिहारवालेसे बढ़िया समझा जाता है।

उपयोग

अभ्रकमें कई महत्वके गुण हैं। यह पारदर्शक है अर्थात् इसके आरपार दीखता है। गरमी और आंचको सहता है। सरदी गर्मीके एकाएकी घट बढ़ जानेसे जैसे कांच चटख या टूट जाता है यह नहीं टूटता या चटखता। यह बातें देख, अब इसे लोग

कांचकी जगह काममें लाते हैं। इसका व्यवहार खिड़की, अँगीठी, लालटेन, तन्दूरका मुँह, लम्पकी चिमनी और गैसवत्ती इत्यादि कई चीज़ोंमें करने लगे हैं। किसी समय रूसी युद्धके जहाजोंमें अभ्रककी झिलमिली लगी होती थी। इसीलिये उसे मसकोवी शीशा कहते थे। यह सजावटके काममें भी बहुत आता है। भारतमें तो बहुत पुराने समयसे झाड़, फानूस, आतिशबाज़ी, कुमकुमे, खिलौने और कपड़ेकी छपाईमें इससे काम लिया जाता था। इसके अतिरिक्त आयुर्वेदीय ओषधियोंमें भी इसका प्रयोग होता आया है। दीवालपर लगनेवाले फुलवर कागजकी तैयारीमें थियेटरके परदेमें और कई प्रकारके रंग और कागजके बनानेमें अभ्रकका बारीक चूर्ण डाला जाता है।

इसका चूर्ण मशीनके पुर्जोंमें जहां तेल नहीं दिया जा सकता चिकनई लानेके लिये लगाया जाता है। कई कृमिनाशक ओषधियां तथा नैट्रोग्लिसरीन नामके विस्फोटकको यह सोख लेता है अतः इस काममें उपयोगी है। इसकी साफ चमकीली सुथरी चादरोंपर चित्रकारीका काम होता है। विशेषतः हमारे देशकी यह पुरानी कला है। अभ्रक खंडोंपर लालटेनद्वारा दिखलानेवाले चित्र बनते हैं, छायाचित्र वा फोटोग्राफीकी झिल्लियां वा परदोंके लिये चौखट भी बनता है। प्राचीन ऐतिहासिक चित्र और पुस्तककी प्रतिलिपियोंको सुरक्षित रखनेके लिये इसीके तह दिये जाते हैं। अजायबखानोंमें छोटे जीवोंको स्पिरिटमें डालकर सहेजनेके पहले अबरखहीपर उन्हें मढ़ते हैं। पर आजकल इसका सबसे अधिक व्यवहार बिजलीके कल कारखानोंमें है।

बिजलीके दौड़ने और फैलनेमें अभ्रक रुकावट डालता है इसीलिये यह अवरोधक वा इनसुलेटरका काम देता है। इसके चिकने लचीले परदे डैनमोके चुम्बकत्व रक्षक बनते हैं। और भी बहुत तरहके पुर्जोंमें काम आता है जैसे अभ्रकके चोंगे ग्रामोफोन

बाजेमें दिये जाते हैं। अभ्रकमें पोटासियम होनेके कारण इसका खाद् भी बनता है। निदान, अभ्रकके अनेकानेक उपयोग हैं जिनका विस्तार लेखकी सीमाको अतिक्रम कर जायगा।

खुदाई तय्यारी और मोल

और खानोंकी तरह अभ्रककी खानोंमें भी यहां अँगरेज़ोंने ही अपना इज़ारा कर लिया था, पर उनसे यह काम बहुत दिनतक नहीं चल सका। वे हारकर बैठ गये। यहांतक कि दक्खिनकी जितनी बड़ी कम्पनियां हैं वे कुछ दिन पहले तो विदेशियोंके हाथमें रहीं पर जब उन्हें घाटेपर घाटा होने लगा, वे छोड़कर चले गये और कम्पनियां हमारे देशी भाइयोंके हाथ आयीं। वे तबसे बड़ी सफलतापूर्वक चलने लगीं। इससे हमारे दक्खिनी भाइयोंके धैर्य्य व्यवहारकुशलता और औद्योगिक साहसका प्रमाण मिलता है। पर यही बातें उत्तर भारतके कारखानोंके विषयमें नहीं कही जा सकतीं। यहांकी खुदाईका ढंग बिलकुल पुराना दकयानूसी चला आ रहा है, जिससे मालका एक बड़ा हिस्सा बरबाद जाता है। यहां खान बहुत करके खुली और उनकी सुरंगें बेतरह टेढ़ी और तिरछी होती हैं। इससे पहिले तो बहुतसा अभ्रक खराब जाता है और दूसरे मालके साथ मिली हुई मिट्टी रेत वा अन्य द्रव्यको बाहर खींचकर लानेका परिश्रम व्यर्थ होता है। "बेलुम" के आस पास जो खानें मैंने देखी हैं, दूरतक फैली हुई पहाड़ी क़तारोंके किनारे हैं जिनके ऊपर साल और महुएकी घनी झाड़ियां हैं। उन खानोंमें काम करनेवाले भी दरिद्र रजवर, मुसहर और अन्य जंगली जातियां होती हैं। ये मज़दूर अपने भाई स्त्री और बच्चोंकी एक मण्डली बनाकर खानके भीतर काम करते हैं।

बहुधा अभ्रक अलग अलग धारी धारोंमें पाया जाता है जिसे वहांके लोग "कजरा" कहते हैं। इसलिये अधिक लाभ

और सुभीता उस ढंगकी खुदाईमें होता है जो लोहे तांबे और अन्य धातुओंकी खानमें देखा जाता है। अर्थात् जिसमें खड़ी सुरंगें होती हैं कैंचिया काट होता है और जिसकी खुदाई एकबारगी उसी तहमें बराबर होती है, जहांतक अबरखकी धारीका एक सूत गया हो। उस दशामें यह ऊपर ही ऊपर निकाला जा सकता है और कूड़ा मिट्टी इत्यादि उन्हीं गड्ढोंके भीतर भरनेमें काम आ सकता है।

तैयारीमें अभ्रककी गड्डियां जहांसे फटी होती हैं वहींसे चीरी जाती हैं। तब जिस नापकी चादरोंकी ज़रूरत हुई उसमें-से एक बड़ीसी तेज़ छुरीसे जिसे "हँसुला" कहते हैं तराश ली जाती हैं और जिसमें दाग वा निशान होता है वह अलग कर दी जाती हैं। फिर अच्छी चादरोंमें भी लम्बाई चौड़ाई सफ़ाई आदि-के विचारसे बढ़िया घटिया माल अलग कर दिया जाता है। बचे हुए टुकड़े और बुरादेसे भी विलायतमें एक प्रकारका मैक-नाट द्रव्य बनता है।

मालके बढ़िया घटिया होनेपर दाममें बहुत अन्तर पड़ जाता है। सब प्रकारकी मिली हुई चादरोंका औसत मोल युद्धके पहले ४) रुपया सेर उतरता था लेकिन बड़ी नापकी चादरोंकी कीमत कभी कभी ६०) रुपया सेरतक पहुँच जाती थी। युरोपीय युद्धसे दाम गिर गया था और कारखानोंको बहुत घाटा हो रहा था तब भी उन्होंने काम नहीं रोका था और खुदाईमें सुदिनकी आशापर खर्च लगाते जाते थे।

—गोपाल नारायण सेनसिंह

२१ कबीर साहब

संयुक्त प्रान्तमें शायद ही कोई ऐसा हिन्दू हो जो कबीर साहबको न जानता होगा। कबीर साहबके भजन, मंदिरोंमें और सत्संगके अवसरोंपर गाये जाते हैं। उनकी साखियां प्रायः कहावतोंका काम दिया करती हैं।

कबीर साहब एक पंथके प्रवर्त्तक थे, जिसे कबीरपंथ कहते हैं। कबीर पंथियोंमें निम्न श्रेणीके लोग अधिकांश पाये जाते हैं। उनमेंसे कुछ तो साधू हैं जो गावोंमें कुटी बनाकर रहते हैं और कुछ गृहस्थ हैं। कबीरपंथी साधू सिरपर नोकदार पीले रंगकी टोपी पहनते हैं।

कबीर साहब कौन थे? कहां और किस समयमें उत्पन्न हुए? उनका असली नाम क्या था? बचपनमें वे कौन धर्माव-लम्बी थे? उनका विवाह हुआ था या नहीं? और वे कितने समयतक जीवित रहे? इन बातोंमें बड़ा मतभेद है। कबीर साहबकी जीवनी लिखनेवाले भिन्न भिन्न बातें बतलाते हैं। उनमें सत्यका अंश कितना है, इसका पता लगाना सहज नहीं है। "कबीर कसौटी" में कबीर साहबका जन्म संवत् १४५५ वि० में और मरण १५७५ वि० में होना लिखा है। कबीरपंथी लोग उनकी उम्र तीन सौ वर्षकी बतलाते हैं। उनके कथनानुसार कबीर साहबका जन्म १२०५ वि० में और मरण १५०५ वि० में हुआ है। इनमेंसे किसकी बात सत्य है इसका निर्णय करना बड़ी खोजका काम है। कबीरपंथके विद्वानोंकी रायमें कबीर साहबका जन्म संवत् १४५५ ही सत्य कहा जाता है।

कबीर साहबने अपनेको जुलाहा लिखा है। एक जगह वे कहते हैं—

तू ब्राह्मण मैं काशीका जुलहा बूझहु मोर गियाना।

(आदि ग्रंथ)

इससे अब इस बातमें तो कुछ संदेह रह ही नहीं जाता कि कबीर साहब जुलाहे थे। परन्तु वे जन्मके जुलाहे नहीं थे, यह कहावतोंसे मालूम होता है।

कहा जाता है कि संवत् १४५५की ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमाको एक ब्राह्मणकी विधवा कन्याके पेटसे एक पुत्र पैदा हुआ। लोक लज्जावश उसने बालकको काशीके लहर तालाबके किनारे फेंक दिया। संयोगसे नीरू जुलाहा अपनी स्त्री नीमाके साथ उसी राहसे आ रहा था। उसने उस अनाथ बच्चेको घर लाकर पाला। पीछे वही कबीर नामसे विख्यात हुआ।

कबीर साहब बालकपनसे ही बड़े धर्मपरायण थे। जब उनको सुधबुध हो गयी तब वे तिलक लगाकर राम राम करते थे। एक जुलाहेके घरमें रहकर तिलक लगाना और राम राम जपना असंभव सा प्रतीत होता है। परन्तु संगतिका प्रभाव बड़ा विचित्र होता है। वह असंभवको भी संभव कर देता है।

ऐसी कहावत है कि कबीर साहब स्वामी रामानन्दके शिष्य थे। स्वामी रामानन्द शेष रात्रिमें गंगास्नानके लिये मणिकर्णिका घाटपर नित्य जाया करते थे। एक दिन इसी समय कबीर साहब घाटकी सीढ़ियोंपर जाकर सो रहे। अँधेरेमें स्वामीजीका पैर उनके ऊपर पड़ गया। तब वे कुलबुलाये। स्वामीजीने कहा—"राम राम कह, राम राम कह।" कबीर साहबने उसीको गुरुमंत्र मान लिया। उसी दिनसे उन्होंने काशीमें अपनेको स्वामी रामानन्दका शिष्य प्रसिद्ध किया। यवनके घरमें पले होनेपर भी कबीर साहबकी प्रवृत्ति हिन्दूधर्मकी तरफ अधिक थी।

कबीर साहब अपने जीवनका निर्वाह अपना पैतृक व्यवसाय करके ही करते थे। यह बात वे स्वयं स्वीकार करते हैं—

हम घर सूतत नहिं नित ताना। हम घर सूत तनहिं नित ताना।

कबीर साहबने विवाह किया था या नहीं, इस विषयमें भी

बड़ा मतभेद है। कबीरपंथके विद्वान् कहते हैं कि लोई नामकी स्त्री उनके साथ आजन्म रही, परन्तु उन्होंने उससे विवाह नहीं किया। इसी प्रकार कमाल उनका पुत्र और कमाली उनकी पुत्री थी, इस विषयमें भी विचित्र बातें सुनी जाती हैं। "बूड़ा वंस कबीरका उपजे पूत कमाल" यह भी एक कहावत सा प्रसिद्ध हो रहा है इससे पता चलता है कि कबीरने विवाह अवश्य किया था और कमाल कबीरका पुत्र था। कमाल भी कविता करता था। परन्तु उन्होंने कबीर साहबके सिद्धान्तोंके खंडन करनेहीमें अपनी सारी उम्र बिता दी। इसीसे "बूड़ा वंस कबीरका उपजे पूत कमाल" कहा गया है।

कबीर साहब बड़े ही सुशील और बड़े सदाचारी थे। एक दिनकी बात है कि उनके यहां बीस पचीस भूखे फकीर आये। कबीर साहबके पास उस दिन कुछ खानेको नहीं था इसलिये वे बहुत घबराये। लोईने कहा—यदि आज्ञा हो तो मैं एक साहूकारके बेटेसे कुछ रुपया लाऊं क्योंकि वह मुझपर मोहित है, मैं पहुँची नहीं कि उसने रुपये दिये नहीं। कबीर साहबने कहा—जाओ ले आओ। लोई साहूकारके बेटेके पास गयी और उसने उससे अपना अभिप्राय कह सुनाया। साहूकारके बेटेने तत्काल धन दे दिया। जब अन्तमें उसने अपना मनोरथ प्रकट किया तब लोईने रातमें मिलनेका वादा किया।

दिन खाने खिलानेमें बीत गया। रात हुई, चारों ओर अँधेरा छा गया, संयोगसे उस दिन पानी बरस रहा था। लोईने कबीर साहबसे सब वृत्तान्त कह दिया था, इससे कबीर साहबको चैन नहीं थी, वे सोचते थे कि जिसकी बात गयी, उसका सब गया। उन्होंने हवा पानीकी कुछ भी परवा न की और कम्बल ओढ़कर स्त्रीको कंधेपर बिठाकर साहूकारके घर पहुँचे। आप तो बाहर खड़े रहे और लोई भीतर चली गयी। न तो उसके कपड़े भीगे थे और न उसके पैरमें कीचड़ ही लगी थी, यह देखकर साहूका-

रके लड़केने इसका कारण पूछा। लोईने सब सच सच कह दिया। यह सुनकर साहूकारके बेटेकी कुवृत्ति बदल गयी, वह लोईके पैरपर गिर पड़ा और कहा—तुम मेरी मा हो। इतना कहकर वह बाहर आया और कबीर साहबके पैरसे लिपट गया। उसी दिनसे वह उनका सच्चा सेवक बन गया।

कबीर साहबके जीवनचरित्रमें ऐसी बहुतसी कथाएं हैं जिनसे उनकी सच्चरित्रता प्रकट होती है।

कबीर साहब पढ़े लिखे न थे। सतसंगी थे। सतसंगसे ही उन्होंने हिन्दूधर्मकी गूढ़ गूढ़ बातें जान ली थीं। उनके हृदयमें हिन्दू मुसलमान किसीके लिये द्वेष न था, वे सत्यके बड़े पक्षपाती थे। जहां उन्हें सत्यके विरुद्ध कुछ दिखाई पड़ा, वहां उन्होंने उसका खंडन करनेमें जरा भी हिचकिचाहट नहीं दिखलायी।

कबीर साहबने अपना अधिकार हिन्दू मुसलमान दोनोंपर जमाया। आजकल भी हिन्दू मुसलमान दोनों प्रकारके कबीरपंथी मिलते हैं। परन्तु सर्वसाधारण हिन्दू और मुसलमान दोनोंका कबीरमतसे वैर हो गया। हिन्दूधर्मके नेता एक अहिन्दूके मुखसे हिन्दूधर्मका प्रचार देखकर भड़के और मुसलमान कबीर साहबके हिन्दू आचार्यका शिष्य होने तथा हिन्दूधर्मका प्रचार करनेके कारण कट्टर विरोधी हो गये। इस विरोधके कारण उनको बड़ी बड़ी कठिनाइयां भोगनी पड़ीं। परन्तु उनके हृदयमें जो सत्यका दीपक जल रहा था वह किसीके बुझाये न बुझा।

कबीर साहबने स्वयं कोई पुस्तक नहीं लिखी। वे साखी और भजन बनाकर कहा करते थे, और उनके चेले उसे कंठस्थ कर लेते थे, पीछेसे वह सब संग्रह कर लिया गया। कबीरपंथके अधिकांश उत्तम उत्तम ग्रंथ उनके शिष्योंके रचे हुए कहे जाते हैं।

"खास-ग्रन्थ" में निम्नलिखित पुस्तकें हैं।

१—सुखनिधान २—गोरखनाथकी गोष्ठी ३—कबीरपाँजी ४—बलखकी रमैनी, ५—आनन्द रामसागर ६—रामानन्दकी गोष्ठी ७—शब्दावली ८—मंगल ९—बसन्त १०—होली ११—रेखता १२—झूलन १३—कहरा १४—हिन्दोल १५—बारहमासा १६—चाँचर १७—चौंतीसी १८—अलिफ़नामा १९—रमैनी २०—साखी २१—बीजक।

कबीरपंथियोंमें बीजकका बड़ा आदर है। बीजक दो हैं—एक तो बड़ा जो स्वयं कबीर साहबका काशिराजसे कहा हुआ बतलाया जाता है और दूसरे बीजकको कबीरके एक शिष्य भग्गूदासने संग्रह किया है। दोनोंमें बहुत कम अन्तर है।

कबीर साहबका उलटा प्रसिद्ध है। मेरी समझमें लोगोंको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये ही कबीर साहब ऐसा कहा करते थे। यों तो अर्थ लगानेवाले कुछ न कुछ उलटा सीधा अर्थ लगा ही लेते हैं परन्तु खींच तानकर लगाये हुए ऐसे अर्थोंमें कुछ विशेषता नहीं रहती।

कबीर साहब मूर्त्तिपूजाके कट्टर विरोधी थे। यद्यपि ईश्वरका अवतार धारण करना भी वे नहीं मानते थे, परन्तु अपनेको उन्होंने स्वयं सत्यलोकवासी प्रभुका दूत बतलाया है। वे कहते हैं—

काशीमें हम प्रगट भये हैं रामानन्द चेताये।
समरथका परवाना लाये हंस उबारन आये।

(शब्दावली)

लोगोंका ऐसा कथन है कि मगहरमें प्राण त्याग करनेसे मुक्ति नहीं मिलती। भला सत्यान्वेषक कबीर इस बातको कैसे मान सकते थे, उन्होंने लोगोंका यह भ्रम मिटानेके लिये ही मगहरमें जाकर शरीर छोड़ा। इस विषयमें उन्होंने कहा है—जो कबीर काशी मरे तो रामहिं कौन निहोरा।

* * * * *

जस काशी तस मगहा ऊसर हृदय राम जो होई।

कबीर साहबकी कवितामें बड़ी शिक्षा भरी है। एक एक पद्से उनकी सत्यनिष्ठा प्रकट होती है। उन्होंने जो कहा है, प्रायः सभी एकसे एक बढ़कर है। बातें तो छोटी हैं, परन्तु उनमें अगाध ज्ञान भरा हुआ है।

—रामनरेश त्रिपाठी।

२२ तुलसीदास

हिन्दी भाषाके अपूर्वभूत महाकवि गोस्वामी तुलसीदासका जन्म संवत् १५८९ वि०में राजापुरमें हुआ। इनके पिताका नाम आत्माराम दुबे और माताका नाम हुलसी था। इनका पहला नाम रामबोला था। ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे। इनका जन्म दरिद्र कुटुम्बमें हुआ था, जैसा कि इन्होंने कवितावलीमें "जायो कुल मंगन" आदि स्पष्ट ही लिखा है। इनके गुरुका नाम नरहरिदास-जी था। रामायणके प्रारंभमें "बंदउँ गुरुपदकंज, कृपासिंधु नररूप हरि" इस सोरठेके "नररूप हरि" पद्से, लोग गुरुका नाम नरहरि निकालते हैं। इनका विवाह दीनबन्धु पाठककी कन्या रत्नाव-लीसे हुआ था। स्त्रीपर इनका प्रेम अधिक था। एक दिन वह नैहर चली गयी। इनसे पत्नीवियोग न सहा गया। वे ससुराल जाकर स्त्रीसे मिले। स्त्रीको लज्जा आयी। उसने ये दोहे कहे—

लाज न लागत आपुको दौरे आयहु साथ
धिक धिक ऐसे प्रेमको कहा कहौं मैं नाथ।
अस्थि-चरममय देह मम तामें जैसी प्रीति
तैसी जो श्रीराममहँ होति न तौ भवभीति।

यह बात गोसाइँजीको ऐसी लगी कि ये वहांसे उसी समय काशी चले आये और विरक्त हो गये। स्त्री बेचारीको क्या मालूम

था कि उसकी साधारण वातका ऐसा परिणाम होगा। उसने वहुत विनती की, और भोजन करनेको कहा, परन्तु उन्होंने एक न सुनी। यह घटना तुलसीदासके प्रेमकी प्रौढ़ता प्रकट करती है। इनके हृदयमें प्रेमका समुद्र लहरें मार रहा था, प्रेमकी अटूट धारा जो क्षणभर पहले स्त्रीकी ओर वह रही थी, उसीको दूसरे ही क्षणमें इन्होंने श्रीरामकी ओर फेर दिया, जो इनके जीवनके अन्तिम दमतक बड़े वेगसे वहती रही। उस प्रेमकी धाराने तुलसीदासको अजर अमर कर दिया। कौन जानता था कि एक छोटी सी घटनासे इनके जीवनका प्रवाह इस प्रकार वदल जायगा।

घर छोड़नेके पीछे एक वार स्त्रीने यह दोहा इनके पास लिख भेजा।

कटिकी खीनी कनक सी रहत सखिन संग सोय।
मोंहि फटेको डर नहीं अनत कटे डर होय॥

इसके उत्तरमें गोसाईंजीने लिखा

कटे एक रघुनाथ संग बांधि जटा सिर केस।
हम तो चाखा प्रेमरस पतिनीके उपदेस॥

वृद्धावस्थामें एक दिन तुलसीदास चित्रकूटसे लौटते हुए विना जाने अपने ससुरके घर टिके। इनकी स्त्री भी वृद्धा हो चुकी थी। उसने पहले तो उन्हें पहचाना नहीं, अतिथि सत्कारके लिये चौका आदि लगा दिया। पीछे वातचीत होनेपर उसने पहचाना कि ये मेरे पति हैं। उसकी इच्छा हुई कि मैं भी पतिके साथ रहूं। रातभर आगा पीछा सोचकर उसने सवेरे अपनेको तुलसीदासके सामने प्रकट किया, और अपनी इच्छा कह सुनायी। परन्तु गोसाईंजीने अस्वीकार किया। इस अचानक भेंटका प्रभाव दोनों ओर कैसा पड़ा होगा, यह अनुमान करनेपर

बड़ा करुणाजनक जान पड़ता है। गोसाईंजी और उनकी स्त्रीको अपनी युवावस्थाकी एक दिनकी वह घटना याद आयी होगी जब उन दोनोंका वियोग हुआ था। गोसाईंजी काशी और अयोध्यामें बहुत रहा करते थे परन्तु मथुरा, वृन्दावन, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, चित्र-कूट, जगन्नाथ जी और सोरों (शूकरक्षेत्रमें) भी भ्रमण किया करते थे। काशीजीमें इनके कई स्थान प्रसिद्ध हैं, जहां ये रहते थे। अन्य साधु सन्तोंकी तरह इनके माहात्म्यकी भी बहुत सी कथाएं लोकमें प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि हनुमानजीकी कृपासे इनको श्री रामचन्द्रजीका दर्शन हुआ था।

काशीमें टोडरमल्ल नामके एक जमींदारसे गोसाईंजीका बड़ा प्रेम था। उनके मरनेपर इन्होंने ये दोहे कहे थे —

महतो चारो गांवको मनको बड़ो महीप।
तुलसी या कलिकालमें अथये टोडर दीप॥
तुलसी राम सनेहको सिर धरि भारी भार।
टोडर कांधा ना दियो सब कहि रहे उतार॥
तुलसी उर थाला विमल टोडर गुन गन बाग।
ये दोउ नयननि सींचिहौं समुझि समुझि अनुराग॥
राम धाम टोडर गये तुलसी भये असोच।
जियबो मीत पुनीत बिनु यही जानि संकोच॥

अकबरके प्रसिद्ध वज़ीर नवाब खानखाना (रहीम) से भी गोसाईंजीका बड़ा प्रेम था। आमेरके राजा मानसिंह भी इनका बड़ा आदर करते थे। कहते हैं कि वृजभाषाके प्रसिद्ध कवि नन्ददासजी तुलसीदासजीके सगे भाई थे। तुलसीदासजीसे सूरदासजी, नाभाजी और केशवदासजीसे भी भेंट हुई थी, और मीराबाईके साथ जो पत्र व्यवहार हुआ था। इन बातोंसे प्रकट

होता है कि तुलसीदासजीकी कीर्ति उनके जीवनकालमें ही चारों ओर फैल गयी थी।

तुलसीदासजीने इतने ग्रन्थ बनाये

१—रामचरित मानस, २—कवित्त रामायण, ३—दोहावली, ४—गीतावली, ५—रामज्ञा, ६—विनय पत्रिका, ७—बरवै रामायण, ८—रामलला नहछू, ९—वैराग्यसंदीपनी, १०—कृष्ण गीतावली, ११—पार्वती मंगल, १२—राम सतसई, १३—रामशलाका, १४—कड़खा रामायण, १५—संकट मोचन, १६—छन्दावली, १७—हनुमानबाहुक, १८—छप्पय रामायण, १९—झूलना रामायण, २०—कुंडलिया रामायण, २१—जानकी मंगल।

इनमें कई ग्रन्थ नहीं मिलते। तुलसीदासजीके ग्रन्थोंमें रामचरित मानस सबसे बड़ा और बहुत ही लोकप्रिय ग्रन्थ है। भारतमें अबतक इसकी करोड़ों प्रतियां छप चुकी हैं। यह एक ऐसा सर्वप्रिय ग्रन्थ है कि गरीबकी झोंपड़ीसे लेकर राजाके महलतक इसकी पहुँच है। इस एक ग्रन्थने ही तुलसीदासजीको तब तकके लिये अमर कर दिया, जबतक पृथ्वीपर हिन्दू जाति और हिन्दी भाषाका अस्तित्व है। कौन कह सकता था कि एक गरीबके घरमें उत्पन्न होकर, एक साधारण स्त्री द्वारा प्रतारित युवक इस असार संसारमें अनन्त कालके लिये अपनी कीर्ति-ध्वजा स्थापित कर जायगा।

रामचरित मानसके समान भारतमें और किसी ग्रन्थका प्रचार नहीं है।

सम्वत् १६८० वि० श्रावण शुक्ला सप्तमीको तुलसीदासने असी और गंगाके संगमपर शरीर छोड़ा। उस समयका यह दोहा प्रसिद्ध है—

संवत सोरह सौ असी असी गंगके तीर ।
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर ॥

मृत्युके समय गोसाईंजीने यह दोहा पढ़ा था —

रामनाम जस बरनिकै भयो चहत अब मौन ।
तुलसीके मुख दीजिये अब ही तुलसी सौन ॥

—रामनरेश त्रिपाठी

२३ आनरेबिल लाला धड़ामदासजी

कौन्सिल आफ स्टेटकी मेम्बरीके लिये सेठ धड़ामदासजी खड़े होते तो हो गये, मगर बादको जो मुसीबतें उन्हें झेलनी पड़ीं वे सभीको मालूम हैं। हजारों अड़चनें आयीं, लोगोंने नाउम्मेद किया, रात रात भर बिना झपकी लिये घड़ीकी टिक्-टिक्पर ध्यान लगा रहा, मगर आखिरको सरकारके 'करप्ट प्रेक्टिसेज एक्ट' पास कर देनेपर भी ताऊजीने (जिनका पहले रूईके सट्टेमें बम्बईमें दिवाला निकल चुका था और जो आजकल अपने भतीजेकी कोठीका काम सँभालते हैं) भीतर ही भीतर रुपयेकी वह रेलपेल मचायी और ऐसे ऐसे ढंगसे जुगत लगायी कि धड़ामदासजीको बड़ी कौन्सिलकी कुरसी मयस्सर हो ही गयी और दुश्मन भी जल भुनकर खाक हो गये। मेम्बरी हासिल हो जानेके बाद दोस्तों और मिलनेवालोंकी दावत हुई जिसमें जात-बिरादरीमें नाचकी मनाही होनेपर भी मशहूर तवायफ अल्ला-निकालीका गाना हुआ। अमीर आदमीका मामला था, इसलिये बिरादरीकी पंचायत भी खिसियानपटकी हँसी हँसकर रह गयी। अगर कोई गरीब ऐसा करता तो फिर देखता मजा! यही नहीं, कई पंचोंने तो इंतजामके मामलेमें बड़ी सरगरमीसे अपने हाथ पैरोंको हिलाया डुलाया। लड्डू कचौड़ी और रायतेकी याद करके कई दिनोंतक लोगोंके मुँहमें पानी आया किया, और

रसभरीके बारेमें तो बस कुछ न पूछिये, कलम हाथसे छुटी जाती है।

अँगरेजोंकी भी दावत हुई। लालाजी परम वैष्णव थे और 'गोपालसहस्रनाम'के पाठके मारे पड़ोसियोंको आरामसे सोने न देते थे, अँगरेजोंकी खातिरदारीमें कमी करना आप अधर्ममें दाखिल समझते थे, इसलिये अँगरेजी होटलसे शराब और केकके साथ दूसरी चीजें गोमांसकी बनी हुई भी काफी तादादमें मँगवायी गयीं। एक नम्बरकी भगेलू पल्टनका बैण्ड भी अपनी सोरठ अलाप रहा था। अँगरेजोंने खूब छककर खाया, और फिर उनमेंसे एकने एक छोटीसी स्पीच दी जिसमें लालाजीकी तारीफमें कुछ ऐसी बातें भी कही गयीं जिनको लाला जानते थे कि झूठी हैं। लालाके अलावा कुछ और लोगोंको भी उन बातोंके झूठी होनेका हाल मालूम था, शायद इसीलिये उनको सुनकर लालाने गरदन झुका ली हो; मगर आमलोग समझते कि लाला अपनी तारीफ सुननेमें शरमाते हैं। सब अँगरेजोंने उस स्पीचकी ताईद की। इसके बाद उन्होंने कुरसियोंपरसे उठकर और 'वेल लाला वेल लाला' कह कहकर लालाजीसे हाथ मिलाया। लालाजीकी सातों पीढ़ियां तर गयीं।

लालाको अब यह धुन सवार हुई कि कौन्सिलमें मैं भी कोई तजवीज़ पेश करूं। कई दोस्तोंके अलावा ताऊजीसे भी सलाह ली गयी मगर कोई बात ध्यानमें न बैठी। एक दिन कई आदमी लालाकी बैठकमें बैठे बातें कर रहे थे, और बातें भी एकाध विषयपर नहीं, दुनियामें जितने विषय हो सकते हैं सभीपर एक साथ और अन्धाधुन्ध रायजनी की जा रही थी। लाला भी अपने कानोंको दुरुस्त करके और आंखोंको पैनी कर हर एक बातको गौरसे सुनते और अपने मनको खुफिया पुलिसका हेड कानस्टेबिल बनाकर उसकी तहतक भेजते थे क्योंकि उन्हें कौंसिलमें एक नयी तजवीज पेश करके दुनियापर अपनी लिया-

कतका सिक्का जमाना था और अपने उन दुश्मनोंको जलाना था जिन्होंने चुनावके दिनोंमें उनकी नालायकीके ढोल पीटनेकी वेहूदा हरकत की थी। कमरेके एक कोनेमें मुनीमजी चादरमें लिपटे हुए ऐसे अलग पड़े थे मानों किसी निजी और जरूरी कामके वारेमें यमराजसे काना-फूँसी कर रहे हों। तलाश करनेपर मालूम हुआ कि उनकी डाढ़में दर्द है। उसी वक्त एक शख्स अपने घरसे थोड़ासा मंजन ले आया जिसके लगाते ही मुनीमजीके मसूड़ोंमेंसे वादीका पानी निकलना तो एक तरफ, उनका सारा पेट ही साफ हो गया। खैर वैठक वरखास्त हुई और सब लोग अपने अपने घर गये।

कौन्सिलकी अगामी वैठकमें पेश करनेके लिये एक तजवीज सेठजीने भी डरते डरते भेज दी थी। मगर जब कौन्सिलके लिये दिल्ली पहुँचे और सबसे मिले-जुले तब करीब करीब सभी अँगरेज और हिन्दुस्तानी मेम्बर इनके पीछे पड़ गये कि अपनी तजवीज वापिस ले लीजिये। उस दिन कौन्सिलका वक्त दूसरे कई कामोंमें पूरा हो गया और इनकी तजवीज पेश न होने पायी।

डेरेसे लौटकर वूट जूतेके फीते खोलते हुए इन्होंने ताऊजीसे (जिन्हें ये अपने साथ दिल्ली ले गये थे) कहा "मेरी तजवीज ऐसी तगड़ी रही कि उसके मारे सब काँप गये। यों कहैं हैं के वापस ले लो। तुम्हारी क्या राय है?" ताऊजीने जवाब दिया—"वापस न लेनेसे सायद जे वदमाश मैम्वर लोग नाराज हो जायँ और कल्हसे सब कुरसियाँ आप ही घेर लें, तुझे वैठनेको न दें, इससे वापस ही ले ले। जमाना वुरा है।"

दूसरे दिन तजवीज वापिस ले ली गयी। लालाजीके शब्दोंमें तजवीज यों थी—"जे कौन्सिल लाट साहवसे सिपारस करती है कै वो एक हुक्म निकाल दें के जो लोग दांतके लिये मंजन वनानेका पेशा करते हैं वो उसमें सेर पीछैं कमसे कम तोले भर तूतिया जरूर डालें।"

—वदरीनाथ भट्ट

२४ कर्मयोग संसार और निष्कामकर्म

एक ब्रह्मसमाजी—महाराज, क्या यह बात सच है कि सर्व संग परित्याग किये विना मनुष्यको ईश्वरकी प्राप्ति नहीं हो सकती ?

महाराज—नहीं, नहीं। तुम जैसे हो वैसे ही बने रहो। यह संसार सुख और दुःखका मिश्रण है। यद्यपि तुम लोग इस संसारमें बद्ध हो तथापि इस बातकी ओर ध्यान रखो कि तुम्हारा मन सदा ईश्वरकी भक्तिमें लीन रहे तुम सदा उसकी कृपा प्राप्त करनेका यत्न करते रहो। यदि ऐसा न करोगे तो सद्गति न होगी। एक हाथसे दुनियाके सब काम काज करो और दूसरे हाथसे प्रभुके चरणोंको दृढ़तासे पकड़े रहो। जिस समय कोई भी काम काज न हो उस समय दोनों हाथोंसे प्रभुकी सेवामें लगे रहो।

स्थितिकी शक्ति

देखिये सब बातें केवल मनहीपर अवलम्बित होती हैं। यदि तुम्हारा मन मुक्त हो तो तुम भी मुक्त हो जाओगे। मनका रंग पानीके समान है जो रंग उसमें दिया जायगा, वही उसका रूप हो जायगा। उसमें लाल रंग डालो वह लाल देख पड़ेगा, पीला रंग डालो, पीला हो जायगा। मन स्वयं निर्गुण है। केवल स्थितिके कारण ही उसमें गुण या अवगुण देख पड़ते हैं। देखिये अंगरेजी लिखा-पढ़ा आदमी आप ही आप "सिट्-फिट् पट् मेट्" बोला करता है। संस्कृत जाननेवाला पंडित "घटपटादि" कहा करता है। यह सब अभ्यास, आदत या स्थितिका परिणाम है। यदि मनको कुसंगति लग जाय तो उसका परिणाम हमारे आचार विचार और उच्चारपर भी प्रकट होने लगता है। इसके बदले यदि मनको अच्छी संगतिमें भक्तजनोंके समाजमें लगा

दिया जाय तो वह ईश्वरचिंतनमें रममाण हो जाता है और फिर ईश्वरकी कथाओंके अतिरिक्त उसको कुछ नहीं सुहाता।

सारांश यह है कि सब बातें मनहीपर अवलम्बित हैं। वह सचमुच बहुरूपी है। जैसा देश हो वैसा ही वह वेश बना लेता है। देखिये, मनुष्यके एक ओर स्त्री और दूसरी ओर कन्या है। दोनोंके शरीरोंपर वह प्रेमभावसे अपना हाथ धरता है अथवा दोनोंको प्रेमभावसे आलिंगन देता है, परन्तु स्त्रीविषयक प्रेमभाव और कन्याविषयक प्रेमभावमें जमीन आसमानका अन्तर होता है! यद्यपि भाव दो प्रकारके और भिन्न भिन्न हैं तथापि मन एक ही है।

—रामकृष्ण परमहंस

२५ एक शिक्षाप्रद पत्र

चिरंजीव बाबू नवलकिशोर!

आजकलके अदब कायदे, रीत-रस्म मुझे मालूम नहीं। इसी कारणसे तुम्हारे साथ पहले पहल बातचीत अथवा चिट्ठी पत्री करनेमें कुछ डरसा मालूम होता है। पहले हम बातचीतमें प्रथम बापका नाम पूछा करते थे पर सुनता हूं कि आजकल बापका नाम पूछनेका दस्तूर नहीं है। सौभाग्यसे तुम्हारे बापका नाम मुझसे छिपा नहीं है। क्योंकि मैंने ही उनका नामकरण किया था। उसका नाम अच्छा तो नहीं रखा गया, पर गोवर्द्धन नाम क्यों रखा गया इसका पता अब मिला है। देवताओंको यह मालूम था कि तुम्हारे वर्द्धन करने अर्थात् पालन पोषण कर बड़ा करनेका भार उसीके माथे पड़ेगा। मालूम होता है इसीसे जब न्यायरत्नजीने तुम्हारे पिताका नाम तुमसे पूछा तो तुम्हारे वदनमें आग लग गयी। अच्छा अब तुम अपने पिताका एक अच्छा सा नाम रख लो, मैं अपना रखा हुआ 'गोवर्द्धन' नाम फ़ेर लेता हूं।

सच बात यह है कि तुम जानते हो, पुराने समयमें हम नामके विषयमें बहुत नहीं सोचते थे। हो सकता है यह हमारी असभ्यताका परिचायक हो, पर हम समझते थे कि नाम आदमीको बड़ा नहीं करता बल्कि आदमी ही नामको बड़ा बनाता है। बुरा काम करनेसे ही आदमीकी निन्दा होती है और भला काम करनेसे ही प्रशंसा होती है। पिता केवल एक नाम रख सकता है। उस नामको भला या बुरा बनाना लड़केहीके हाथमें है। जरा सोचो तो प्राचीन कालके बड़े बड़े नाम सुननेमें बहुत मधुर नहीं हैं—युधिष्ठिर भीष्म द्रोण भरद्वाज शाण्डिल्य जन्मेजय वैशम्पायन इत्यादि। परन्तु ये सब नाम अक्षयवटकी भांति आजतक भारतवर्षके हृदयपर अटल रूपसे विराजमान हैं। आजकलके उपन्यासोंमें ललित, नलिन, मोहन प्रभृति कितने ही मीठे मीठे नाम आविर्भूत हो रहे हैं, उन्हें आजकलकी पाठक-पिपीलिकाएं घड़ी दो घड़ीमें ही साफ कर देती हैं। सुबहका नाम शामतक भी नहीं रहता। खैर जो हो, हम नामका बहुत खयाल नहीं किया करते थे। तुम कहते हो यह हमारी भूल है। बाबू, इसके लिये विशेष चिन्ता न करना, हम अब शीघ्र ही मरेंगे इसमें सन्देह नहीं, हमारे साथ ही पुराने समाजके सारे दोष भी जड़से मिट जायँगे।

पहले ही कह चुका हूं कि आजकलकी रीतरस्म मुझे मालूम नहीं। पर मैं देखता हूं कि आजकल तो अदब कायदा कुछ है ही नहीं, यह सब हमारे ही समयमें था। आजकल तो बापको प्रणाम करनेमें लोगोंको लाज लगती है, बन्धुबान्धवसे मिलनेमें संकोच होता है, किन्तु बड़ोंके सामने तकिया लगाये, ताश फेंकनेमें शर्म नहीं आती। रेलगाड़ीमें जिस बेंचपर पाँच आदमी बैठे हैं उसपर दोनों पैर चढ़ा देनेमें जो नहीं हिचकता। हां, यह हो सकता है कि आजकल अदब कायदेकी आवश्यकता ही नहीं है, अब तो सहृदयताका प्रादुर्भाव हुआ है। इसी सहृदयतासे अब कोई आदमी अपने पड़ोसीकी खैर खबर नहीं रखता है, दुःखके समय

कोई किसीकी सहायता नहीं करता, इसीसे नाचरंगमें रुपये उड़ाये जाते हैं किन्तु दस अनाथोंका पालन नहीं किया जाता इसीसे माँ बाप दुःखसे दिन काटते हैं और बेटा अलग चैन करता है, इसीसे अपनी तो बहुत सामान्य आवश्यकताके लिये भी बड़ी बड़ी फिक्रें की जाती हैं परन्तु परिवारके लोगोंको बड़ीसे बड़ी जरूरत होनेपर भी उत्तर दिया जाता है "रुपया नहीं है।" यही है आजकलकी सहृदयता! हृदयके दुःखसे मैंने बहुत सी बातें कह डालीं। मैंने कालेजमें नहीं पढ़ा है, इसलिये मुझे यह सब कहनेका कोई अधिकार नहीं। तौ भी जब तुम मेरी निन्दा करनेमें कुछ उठा नहीं रखते तब मैं भी तुम्हारे विषयमें जो दो एक बात कहूं उनपर जरा कान दो।

चिट्ठी लिखने बैठते ही मेरे मनमें पहला प्रश्न यही उठा कि कैसे आरम्भ करूं। एक बार मनमें हुआ कि "माइ डियर नाती" लिखूं पर यह सहा नहीं गया, पीछे सोचा हिन्दीमें लिखूं "मेरे प्रिय नाती" यह भी बूढ़ेके इस सरईके कलमसे न निकला। झट लिख चला। "परमशुभाशीर्वादराशयः सन्तु"। लिखा तो सही पर पीछे पढ़कर मैंने एक सांस ली और सोचने लगा कि लड़के तो आजकल हमें प्रणाम करते ही नहीं, तो क्या अब हमको भी आशीर्वाद देना छोड़ देना चाहिये। भाई हम तो यही चाहते हैं कि तुम्हारा मंगल हो। हमारा जो होना था सो हो गया। तुम हमको प्रणाम करो या न करो इसमें हमारा हानि-लाभ कुछ नहीं है, तुम्हारा ही है। भक्ति करनेमें जिन्हें लज्जा आती है उनका कभी मंगल नहीं होता। बड़ोंके निकट नम्र होकर मनुष्य बड़ा होना सीखता है, केवल सिर ऊंचा करने हीसे कोई बड़ा नहीं हो जाता है। जो सोचता है कि पृथ्वीमें मुझसे कोई बड़ा नहीं है, मैं ही सबसे ज्येष्ठ हूं, मैं ही सबसे श्रेष्ठ हूं वह वास्तवमें सबसे छोटा है, उसका हृदय इतना क्षुद्र है कि वह अपनेसे बड़ी वस्तुकी कल्पनातक नहीं कर सकता। तुम कहोगे कि "तुम मेरे पिता-

मह हो, इतने हीसे तुम मुझसे बड़े हो गये यह कोई बात नहीं।" पर क्या मैं तुमसे बड़ा नहीं हूं? तुम्हारे पिता मेरे स्नेहसे पले हैं, मैं तुमसे बड़ा नहीं तो क्या? मैं तुम्हें प्यार कर सकता हूं इसलिये मैं तुमसे बड़ा हूं, हृदयसे मैं तुम्हारा मंगल चाहता हूं इसीसे मैं तुमसे बड़ा हूं। माना तुमने मुझसे दो चार अँगरेज़ी कितावें अधिक पढ़ी हैं, पर इससे क्या होता जाता है। यदि तुम १८००० वेब्सटर डिक्सनरियोंके ढेरपर खड़े होगे तब भी तुम्हें मेरे हृदयके नीचे ही रहना पड़ेगा, तब भी मेरे हृदयस्रोतसे आशीर्वाद तुम्हारे माथेपर बरसता ही रहेगा। पुस्तकोंके पर्वतपर चढ़कर तुम मुझे नीची दृष्टिसे देख सकते हो, अपनी असम्पूर्णताके कारण मुझे तुच्छ समझ सकते हो, पर मुझे स्नेहकी दृष्टिसे कदापि नहीं देख सकते, जो मनुष्य बिना संकोचके सिर झुकाकर प्रेमका आशीर्वाद ग्रहण करता है वह धन्य है, उसका हृदय उर्वरा खेतकी भांति फलफूलसे शोभित होता है और यदि मनुष्य बालूके ढेरकी तरह सिर ऊंचा कर प्रेमाशीर्वादकी उपेक्षा करता है तो वह उसकी शून्यता शुष्कता और श्रीहीनता है, उसका मरुभूमि तुल्य मस्तक मध्याह्न कालके सूर्यकी ज्योतिसे जलता रहेगा। खैर ज़ो हो मैं तुम्हें सौ बार "परम शुभशीर्वादराशयः सन्तु" लिखूंगा तुम चिट्ठी पढ़ो या न पढ़ो।

तुम भी जब मेरे नाम चिट्ठी लिखो, प्रणामपूर्वक आरम्भ करना। तुम कह सकते हो कि "यदि मुझे भक्ति न हो तो मैं क्यों प्रणाम करने लगा। मैं इन सब असत्य आचार व्यवहारोंसे सम्बन्ध नहीं रखता" पर यदि यही सच है तो तुम सारे संसारको "माई डियर" क्यों लिखते हो? मैं बूढ़ा तुम्हारा दादा आज तीन महीनेसे खांसीकी बीमारीसे मर रहा हूं और तुमने एकबार भी मेरी खोज नहीं की, पर समस्त संसारके आदमी तुम्हारे इतने प्रिय हो गये कि तुम्हें बिना "माई डियर" लिखे चैन नहीं पड़ता। तो "माई डियर" लिखना भी एक दस्तूरमात्र नहीं है?

अन्तर इतना ही है कि एक है अंगरेजी दस्तूर और दूसरा हिन्दी। तब यदि दस्तूरके ही अनुसार चलना पड़ा तो क्यों हिन्दुस्तानीके लिये हिन्दी दस्तूर अच्छा नहीं है? तुम कह सकते हो कि "हिन्दी या अंगरेजी किसी दस्तूरके अनुसार मैं न चलूंगा, मैं केवल अपने हृदयका अनुयायी हूं।" यदि यही तुम्हारा मत हो तो तुम जंगलमें जाकर रहो, मनुष्यसमाजमें रहनेका प्रयोजन नहीं। प्रत्येक मनुष्यका कुछ कर्त्तव्य है और उसी कर्त्तव्यकी शृंखलासे समाज बंधी हुई है। यदि मैं अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह न करूं तो तुम भी अच्छी तरह नहीं कर सकते। दादाके कई कर्त्तव्य हैं। और पोतेके भी कई कर्त्तव्य हैं। तुम यदि मेरी वश्यता स्वीकार करके मैं जो कहूं वही करो तो मैं भी तुम्हारे लिये जो करना उचित है भली भांति कर सकता हूं। पर यदि तुम कहो कि "मेरे मनमें भक्तिका उदय तो होता ही नहीं तब दादाकी बातोंपर क्यों कान दूं" तो उससे तुम्हारा ही काम बिगड़ता है और साथ ही मेरे कर्त्तव्यपालनमें भी व्याघात पहुँचता है। तुम्हें देख तुम्हारे छोटे भाई भी मेरी बातें न सुनेंगे और दादाका काम मुझसे कुछ भी करते न बनेगा। इसी कर्त्तव्यपाशमें बांध रखनेके लिये प्रत्येक व्यक्तिको अपने अपने कर्त्तव्यका सर्वदा स्मरण दिलाते रहनेको समाजमें बहुतसे नियम दस्तूर रखे गये हैं। सिपाहियोंको जिस तरह बहुतसे नियमोंसे बद्ध रहना पड़ता है नहीं तो वे युद्धके लिये प्रस्तुत नहीं हो सकते, उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्यको हजारों रीतरस्मोंके बन्धनसे बँधा रहना पड़ता है, नहीं तो वह समाजके कार्य पालनके लिये प्रस्तुत नहीं हो सकता। अपने जिन बड़ोंको तुम सदा प्रणाम करते हो, जिनके लिये चिट्ठीपत्री तथा सम्भाषणमें आदर भक्ति दिखलाते हो, जिनको देखकर तुम खड़े हो जाते हो, उनकी तुम इच्छा करनेपर भी हठात् अवमानना नहीं कर सकते। हजारों दस्तूरोंके पालन करनेसे तुम्हारी एक ऐसी शिक्षा हो जाती है

कि बड़ोंका आदर करना तुम्हारे लिये सहज ही हो जाता है और उनका आदर न करना तुम्हारी शक्तिसे बाहर हो जाता है। हम अपने पुराने दस्तूरोंको छोड़कर इसी शिक्षासे वंचित हो रहे हैं। भक्ति और प्रेमका बन्धन टूटता जा रहा है। पारिवारिक सम्बन्ध शिथिल हो रहा है। समाज उच्छृंखल हो गया है। तुम दादाको बिना प्रणाम किये ही चिट्ठी लिखना आरम्भ करते हो, यह तुमको एक बहुत सामान्य बात मालूम होती होगी, पर इसे तुम जितना सामान्य समझते हो उतना नहीं है। कितने ही दस्तूर हमारे हृदयसे ऐसे संलग्न हैं कि यह कहना कठिन है कि उनका कितना अंश दस्तूर है और कितना हृदयका कार्य है। हम स्वाभाविक भक्तिसे क्यों प्रणाम करते हैं? प्रणाम करना भी तो एक दस्तूर ही है। ऐसे भी देश हैं जहां लोग भक्ति सहित प्रणाम करनेके बदले कुछ और करते हैं। हम बड़ोंके सामने प्रणाम किये ही बिना क्यों नहीं जा खड़े होते? प्रणाम यथार्थमें क्या है। भक्तिका बाह्य लक्षणस्वरूप एक प्रकारका अंगव्यापार हमारे देशमें बहुत दिनोंसे चला आता है। जिसपर हमारी भक्ति होती है, उसके प्रति स्वभावतः हमें अपनी हार्दिक भक्ति दिखलानेकी इच्छा होती है। प्रणाम करना केवल उसी भक्ति दिखानेका एक उपाय है। यदि मैं किसी भक्तिभाजन सज्जनके पास जाकर प्रणामके बदले भक्तिपूर्वक तीन करताली बजाऊं तो जिन्हें मैं अपनी भक्ति दिखाना चाहता हूं वे मेरा भाव कुछ नहीं समझेंगे, वे इससे उलटे अपना अपमान समझ सकते हैं। यदि भक्ति दिखानेके लिये पहलेसे तालियां बजानेका ही नियम रहता तो निस्सन्देह प्रणाम करना ही दोषका विषय होता। अतएव दस्तूरको छोड़कर हम अपने हृदयका भाव प्रकाश नहीं कर सकते, प्रत्युत हृदयका अभाव ही प्रकट करते हैं।

इसलिये मुझे प्रणामपूर्वक चिट्ठी लिखना, भक्ति हो वा न हो। देखनेमें तो अच्छा लगेगा। तुम्हें देख और भी दस आदमी अपने

दादाओंको भद्रतापूर्वक चिट्ठी लिखना सीखेंगे और क्रमशः बड़ोंकी भक्ति करना सीखेंगे।

आशीर्वादक

श्री पष्टी चरणदेव शर्मा

—बद्रीनाथ वर्म्मा

२६ शासन

अब हम दूसरे प्रश्नपर विचार करते हैं। मनुष्य समाजमें शान्ति रखने और उसके स्वत्वोंकी रक्षा करनेका उपाय क्या है?

हम कह चुके हैं कि मनुष्य समाजका आपसमें धूपछांहका सा सम्बन्ध है। एकके विना दूसरा रह ही नहीं सकता। जहाँ मनुष्य है वहां समाज है, जहां समाज है वहां मनुष्य है। परन्तु समाजका अस्तित्व कायम रखनेके लिये कुछ खास नियमोंका होना जरूरी है। कोई जनसमुदाय विना किसी व्यवस्थामें बद्ध हुए काम नहीं कर सकता। उस व्यवस्थाका नाम "शासन" अथवा "गवर्नमेण्ट" है।

चोरोंके एक गरोहको लीजिये। वह भी अपने सरदारके अधीन रहता है, वह भी उसकी आज्ञा पालन करना अपना कर्त्तव्य समझता है। एक चोर दूसरे चोरके मालकी रक्षा करता है और एक दूसरेके हिस्सेका ध्यान रखता है। चोरोंके उस समुदायके लिये वही गवर्नमेण्ट है। यदि उनमें कोई सरदार न हो, और यदि वे एक दूसरेका माल चुराने लगें तो चोरोंका वह गरोह एक दिन भी इकट्ठे काम न कर सके। जो जंगली लोग समुद्रतट या जंगलमें रहते हैं उनमें कोई लिखा कानून या नियमावली नहीं होती। तथापि उनके यहां भी किसी न किसी तरहके दस्तूर या रीत रिवाज होते हैं। उनमें बड़ा बूढ़ा पंचके तौरपर होता है जिसका कहना सब लोग मानते हैं या सबसे बहादुर और मजबूत आदमी सरदारके तौरपर समझा जाता है।

गवर्नमेण्टका होना आवश्यक है चाहे वह असभ्य ढंगकी ही क्यों न हो। गवर्नमेण्टका सभ्य या असभ्य होना समाजके सभ्य या असभ्य होनेपर अवलम्बित है। पर समाजके लिये गवर्नमेण्टका होना ऐसा ही आवश्यक है जैसे कि मनुष्यके लिये समाजका। सभ्यताका इतिहास लिखते हुए युरोपका विख्यात लेखक गिजो कहता है—

कोई समाज एक सप्ताह नहीं, एक घंटा भी विना गवर्नमेण्टके नहीं रह सकता। यदि गवर्नमेण्ट न हो तो दंगा और मारपीटका अकंटक राज्य होगा। जिसका जो जी चाहेगा, करेगा। किसीको एक पल भी आराम न मिलेगा। इसलिये मनुष्य, समाज और शासन यह तीनों एक साथ रहते हैं। जैसा मनुष्य होगा वैसा समाज, जैसा समाज होगा वैसा ही शासन। यदि समाजकी अवस्था अच्छी न होगी तो शासनका ढंग भी भद्दाहोगा। कहनेका मतलब यह है कि मनुष्य समाजमें शक्ति रखने और सब सभ्योंके स्वत्वोंकी रक्षा करनेका उपाय "शासन" है। शासनका ढंग कैसा ही क्यों न हो पर उसके विना समाजका काम नहीं चल सकता।

शासनका तात्पर्य नियमोंका पालन करना है। जो नियम समाजने बनाये हों, शासन करनेवालोंका कर्त्तव्य है कि वे देखें कि लोग उनके मुताबिक चलते हैं या नहीं। इसीलिये "शासन" समाजके प्राण हैं। शासनसे अभिप्राय सब लोगोंको मुट्ठीमें रखना है। यदि ऐसा न हो तो वह शासन "शासन" नहीं। शासनको यह शक्ति समाजसे प्राप्त होती है। यदि कोई आज्ञा उल्लंघन करे तो समाजकी सहायतासे शासनकर्त्ता उसको दण्ड दे सकता है।

मनुष्य समाजके हमने दो उद्देश्य—अधिकार और कर्त्तव्य—बतलाये हैं। शासनके भी दो उद्देश्य हैं—न्याय और उन्नति। यह भी हम कह चुके हैं कि शासन समाजका प्राण है। इससे स्पष्ट

है कि शासनका विषय मनुष्यके लिये कितना उपयोगी और जरूरी है। शासनके अच्छे या बुरे होनेपर ही हमारी उन्नति या अवनति और न्याय या अन्याय अवलम्बित है तो क्या हम विनीत भावसे अपने पाठकोंसे पूछ सकते हैं कि आपमेंसे कितनोंने इस विषयकी ओर ध्यान दिया है ?

शासन प्रणालीपर विचार करते हुए हेल्स लिखता है—

शासनप्रणालीके अध्ययनकी अपेक्षा थोड़े ही ऐसे शास्त्र हैं जिनका अध्ययन मनुष्य समाजको अधिक उन्नत कर सकता है। शासकोंके कर्त्तव्य, अधिकार और विशेष करके उनकी शक्तिकी सीमा निश्चित करना बहुत जरूरी है जिसमें उसके बाहर जानेपर, समाज शासकोंके काममें दस्तन्दाजी कर सके।

शासनप्रणालीके तत्व समझाना और उनपर भाष्य रचना राजनीति-विज्ञानका काम है। शासनके कई ढंग हैं, उनके भिन्न भिन्न रूप हैं। प्रत्येकके गुण दोष बतलाना तथा समाजको ठीक ठीक मार्गपर ले जाना इस विज्ञानका उद्देश्य है। राजनीति विज्ञानका विषय बहुत गंभीर और विस्तृत है, अतएव हम इस-पर विस्तारपूर्वक लिख नहीं सकते। परन्तु बहुत आवश्यक और मोटी मोटी बातोंका उल्लेख हम सरल भाषामें करनेका यत्न करेंगे।

शासनकी भिन्न भिन्न प्रणालियां

शासनका पहला प्रकार प्रधान पुरुष-मूलक तरीकेसे होता है। इसका नमूना आप अपने घरोंमें देखिये। मान लीजिये कि घरमें सात आदमी हैं—चार बालक एक बालिका. माता और पिता। पिता उस घरमें शासन करता है। यदि बालक आपसमें लड़ते झगड़ते या दंगा फसाद करते हैं तो वह उनको दण्ड देता है। यदि दो चार परिवार इकट्ठे रहते हैं तो उनमें कोई बड़ा बूढ़ा पुरुष या स्त्री शासक होता है जिसका कहना सब मानते हैं।

परिवार बढ़ जानेपर जो जबरदस्त है, जिसकी भुजामें बल है, जिसने मारपीटमें नामवरी प्राप्त की है, उसका डंका सबके

सिरपर होता है। शासनका यह दूसरा प्रकार है। इसी प्रकारके लोग धीरे धीरे अधिक जनसंख्यापर शासन करनेके कारण सरदार, शाह, आदि नामोंसे इतिहासमें विख्यात हुए हैं। नादिरशाह, तैमूर, रणजीतसिंह इसी सिक्केके पुरुष थे। ऐसे पुरुष असभ्य देशों और असभ्य जातियोंमें समय समयपर उत्पन्न होते रहे हैं। उन्होंने अपनी ही भुजाके बलसे राज्य पाया था।

शासनका तीसरा प्रकार पैत्रिकाधिकारसे प्राप्त होता है। जिनके पिता या सम्बन्धी राजा, महाराजा नव्वाब आदि थे वे उस वंशमें उत्पन्न होनेके कारण, राज्यके अधिकारी होते हैं। तैमूर लुटेरा था, उसने अपने शारीरिक बलसे ही राज्य पाया था। बस फिर क्या था, उसका वंश परंपरासे राज्य करने लगा। हुमायूं, अकबर, जहांगीर, शाहजहां आदि इसी कारणसे अपने पूर्वजोंके राज्यके अधिकारी बने। भारतवर्षके राजा, महाराजा, जाम, नव्वाब आदि इसी चक्रमें हैं। समाजमें इस प्रकारके शासनको एक राजाका शासन कहते हैं। पिता, सरदार, शाह केवल इस शासनके रूपान्तर हैं। एक राज्याधीन शासनके दो भेद हैं—सीमारहित एकाधिपत्य और सीमाविहित एकाधिपत्य। वर्त्तमानकालमें भारतवर्ष उनमेंसे पहले प्रकार अर्थात् सीमारहित एकाधिपत्यके शासनका घर हो रहा है। इस शासनके गुणदोष सुनिये—

पहले आप अपने घरोंमें पिताहीको लीजिये, जो घरके दूसरे लोगोंपर हुकूमत करता है। पिता अपनी कन्याके लिये जो वर पसन्द करता है उसीके साथ उसका विवाह कर देता है। कन्याके अधिकार क्या हैं? वह काने, अन्धे, कुरूप पतिको चाहती है या नहीं, इस बातका वह विचार भी नहीं करता। कोई तो यहांतक अन्धेर करते हैं कि अपनी लड़कियोंको अपनी जायदाद समझकर भेड़ बकरियोंकी तरह विवाहमण्डीमें

वेंच डालते हैं। वेचारी अवला कन्याएं, इसीसे सारी उम्र दुःखसे काटती हैं। वही पिता पुत्रके साथ भी इच्छानुसार वर्ताव करता है। उसके अधिकारोंका भी वह कम विचार करता है। हजारों वालक वालिकाएं भारतमें पिताके कठोर शासनके कारण दुःख पाती हैं।

पतिके रूपमें होकर वही पिता अपनी स्त्रीको मारता है, पीटता है और उसपर अत्याचार करता है। पत्नी अर्धाङ्गिनी है, इसका उसे स्वप्नमें भी ज्ञान नहीं। वह मद्य पीता है जुआ खेलता है, चोरी करता है, यह सब करता हुआ भी वह घरमें पूरी हुकूमत दिखाता है। इस भारतभूमिमें लाखों घर सीमारहित एकाधिपत्यके दृश्य हो रहे हैं, जहां और किसीकी नहीं तो निरपराध अवलाओंकी आहें तो जरूर ही "न्याय" की पुकार कर रही हैं।

इसी उदाहरणको अधिक वढ़ा करके देखो दृश्य और भी भयानक देख पड़ेगा। देशी रियासतोंको भिन्न भिन्न समाजोंकी स्थितिमें समझ लीजिये और वहाँके राजे महाराजे और नव्वाव आदिको उन समाजोंके शासक की। ये शासक अपनी प्रजापर पूरी हुकूमत रखते हैं। यद्यपि इस समय उनके ऊपर भी एक दूसरी जाति शासकोंकी तरह है, तथापि देशी रियासतें प्रायः उस अन्याय और अत्याचारके नमूने हैं जो सीमारहित एकाधिपत्यके फल हैं। देशी रियासतोंमें वहांके शासकोंकी अपेक्षा अधिक योग्य पुरुष भले ही क्यों न हों, पर वे समाजके शासक नहीं वन सकते। खुशामदी लोगोंकी दाल वहां खूव गलती है। रिशवतके वाजार गरम रहते हैं। ईमानदार आदमियोंको कोई नहीं पूछता। "चोर उचक्का चौधरी"वाली कहावत वहां देखनेमें आती है।

मुसलमान वादशाहोंका शासन इसी ढंगका था। महाराष्ट्र देशमें भी शासनकी यही प्रथा थी। अलाउद्दीन, औरंगजेव, हैदरअली, टीपू आदिके शासन इस प्रणालीके अच्छे चित्र हैं। पंजावकी सिक्खाशाही भी इसीका उदाहरण है। ऐसे शासनमें प्रजा

अनाथोंकी भांति रहती है। शासकके खिलाफ कोई दाद फरियाद नहीं हो सकती। वह जो चाहे करे। चाहे मारे चाहे लूटे। एक मनुष्यके हाथमें सैकड़ों प्राणी भेड़ वकरियोंकी तरह होते हैं यद्यपि काम चलानेके लिये ऐसे शासकोंको भी अपने अधीन अधिकारी रखने पड़ते हैं, परन्तु वे उसके हुकमके वन्दे होते हैं। उसकी आज्ञाका उल्लंघन वे नहीं कर सकते।

यहां यह प्रश्न होता है कि क्यों लाखों, करोड़ों आदमी अपने आपको एक पुरुषके हाथमें दे देते हैं? शासन असलमें इसीलिये होता है कि शासितजनोंपर कोई अन्याय न होने पावे तथा जिससे समाजकी उन्नति हो, परन्तु यह बात नहीं होती। शासक स्वार्थान्ध होकर जो चाहता है करता है फिर क्यों समाजके अन्य अन्य सब सभ्य अपनी सारी शक्तियों और अधिकारोंको एक ही व्यक्तिके हाथमें दे देते हैं? इसका उत्तर समाजकी मूर्खताके सिवा और कुछ नहीं। कई देशोंमें और अभाग्यवश भारतवर्षमें भी राजा और शासक ईश्वरका अंश माने जाते हैं। उनकी आज्ञाका पालन धर्म समझा जाता है। फिर उसकी आज्ञा चाहे पागलपनहीका नमूना क्यों न हो।

यह विश्वास अनेक आपदाओंकी जड़ है। राजा ईश्वररूप नहीं, कोई कोई राजे तो साधारण योग्यता भी नहीं रखते, वे अनेक दुर्गुणोंकी खान होते हैं। राजा, वादशाह, शाह, सरदार आदि खाली पदवियां हैं और कुछ नहीं। असलमें शासक समाजके सेवक हैं, उनका परम धर्म समाजकी सेवा करना है, समाजकी उन्नतिमें अपनी उन्नति, अवनतिमें अपनी अवनति समझना उनका काम है।

यहां यह पूछा जा सकता है कि औरंगजेब जैसे शासकको तो हिन्दू लोग भी ईश्वररूप नहीं समझते थे, मगर वे करते क्या? कोई ढंग ऐसा न था जिससे वे उसे दूर करके अच्छे राज्यकी स्थापना करते। इसके उत्तरमें हम कहेंगे कि उनको

अच्छे राज्यकी स्थापनाका ज्ञान नहीं था। वे अधिकसे अधिक करते तो कोई हिन्दू महाराजाको उसकी जगह विठला देते। परन्तु ऐसा करना वीमारीका इलाज थोड़ा ही होता। कई हिन्दू शासक तो मुसलमानोंसे भी गये गुजरे थे। असलमें शासनकी यह परिपाटी ही खराव है। किसी देशकी, किसी जातिकी उन्नति इस प्रणालीसे हो नहीं सकती। निःस्सीम एकाधिपत्यहीके कारण चीन असभ्य था। इसी कारण रूसमें रुधिरकी नदियां वहती हैं। टर्की इसी वीमारीमें मुब्तिला रहा। एक राज्याधीन शासन-प्रणालीका दूसरा अंग सीमाविहित एकाधिपत्य है। इसमें केवल इतनी विशेषता है कि राजा या शासकको प्रजाके ऊपर पूरा अधिकार नहीं होता। यदि शासक अन्याय करें तो उसे रोकनेके लिये एक राजसभा नियत रहती है। वह राजाको सत्परामर्श देती है। यदि फिर भी वह न माने तो प्रजा उसे राज-गद्दीसे उतारनेकी कोशिश करती है। शासनकी यह प्रथा इँगलि-स्तानमें मुद्दतसे चली आती है, इस प्रथामें भी वहुत सी खरा-वियां है, जो इँगलिस्तानके इतिहाससे प्रकट हैं। शासनका एक ढंग ईश्वर कर्तृक राज्यव्यवस्था है। इसके मुताविक ईश्वर शासक, धार्मिक ग्रन्थ कानून और पुजारी या ब्राह्मण उस कानून-के उपदेष्टा समझे जाते हैं। तिव्वत यद्यपि चीनके अधीन रहा है, परन्तु शासनकी यह प्रथा वहां प्रचलित है। लामा गुरु तिव्व-तवालोंका शासक है। लोग उसको वुद्धका प्रतिनिधि समझते हैं और उसकी आज्ञाका पालन परम धर्म समझते हैं। भारतवर्षमें भी अवतक उसकी छाया पायी जाती है। वहुत लोग पुजारियोंको ईश्वरका प्रतिनिधि मानकर उनकी आज्ञा ईश्वरादेश समझते हैं।

यह प्रथा भी खराव और हानिकारिणी है। पुजारियोंके इशारेसे ही समाजमें "अन्धेर नगरी वेवूझ राजा"वाला दृश्य दिखाई दे सकता है। ईश्वरके नामसे वे जैसा चाहें कानून वना सकते हैं, कोई रोकनेवाला नहीं। यदि वे चाहें कि अमुक पेशोंके

लोगोंको विद्याका अधिकार नहीं, तो वे वैसा कर सकते हैं। क्योंकि लोग उनको ईश्वरका दूत समझते हैं। ऐसी शासन-प्रणालीके कारण उन्नतिमाताके दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं, न्याय महाराज तो वहांसे कोसों दूर भागते हैं।

धनिकशासनके भी उदाहरण इतिहासमें मिलते हैं। उसके अनुसार धनाढ्य और अच्छे खानदानी लोग राज्यके कारोबारका प्रबन्ध करते हैं। वेनिसमें ऐसी ही प्रणाली प्रचलित थी। यह प्रणाली चिरजीवी नहीं रहती। ईर्षा द्वेषमें फंसे हुए धनाढ्य लोग एक दूसरेके खिलाफ साजिशें करके अपना रुतबा बढ़ाना चाहते हैं। परिणाममें पारस्परिक धड़ेबन्दी युद्ध और अन्तको राज्यका नाश हो जाता है।

असलमें हमने शासनके मुख्य दो ही प्रकारोंका उल्लेख किया है—पहला एक राज्याधीन शासन अर्थात् एक ही पुरुषके हाथमें सब अधिकारका होना, दूसरा धनिकशासन अर्थात् थोड़ेहीसे उच्च कुलके लोगोंके हाथमें राज्यकी बागडोरका रहना। शासनके मुख्य भेदोंमें तीसरा भेद प्रजापालित शासन-प्रथा है। इसके अनुसार शासनका कुल अधिकार सर्वसाधारणके हाथमें होता है। ग्रीसकी राजधानी एथेन्समें यही प्रणाली जारी थी। सारे शहरके लोग एक जगह इकट्ठे होकर सभा करते थे। जो कानून बनाना होता था, या जिस बातका फैसला करना होता था उस-पर विचार करते थे। भिन्न भिन्न काम करनेके लिये कमेटियां बनाकर उनके अधिकारी चुनते थे और शहरका कुल प्रबन्ध खुद ही करते थे। इस प्रथामें कोई राजा नव्वाब या सरदार नहीं होता था। सबके अधिकार बराबर होते थे। समाजमें शान्ति रखना और सब तरहकी उन्नति करना यही दो उद्देश्य प्रधान समझे जाते थे, और इन्हीं उद्देश्योंकी सफलताके लिये सब लोग मिलकर कोशिश करते थे।

पर शासनका यह तरीका छोटे शहरों और छोटी बस्तियोंमें

ही चल सकता है, बड़े देशोंमें नहीं। कुछ कुछ इसी प्रणालीके अनुसार हमारे देशके भिन्न भिन्न भागोंमें पहले पंचायतें हुआ करती थीं और अब भी कहीं कहीं होती हैं। इन पंचायतोंमें आपसके झगड़ोंका फैसला तथा और दूसरी जरूरी बातोंका तस्फिया होता है। प्रजापालित शासनप्रणाली अथवा प्रतिनिधि सत्तात्मक राज्य सभ्य समाजके लिये है। इसके बिना वह समाजके न्याय अन्यायको नहीं समझ सकता और न अपनी सम्मति ही दे सकता है, हमारे यहां जो पंचायतें आजकल होती हैं उनमें अधिकांश "अन्धेनैवनीयमाना यथान्धाः"वाला नजारा देखनेमें आता है।

पंचको सर्वहितकारी नियमोंका ज्ञान नहीं होता। कोई धनके मदसे पंच बना हुआ है, कोई जातिमदसे, कोई खुशामदसे, कोई चन्दादानके मदसे। शासन-प्रणालीका विषय बड़ेही महत्वका है। यह वह विषय है जिसपर भारतवासियोंका ही नहीं, बल्कि मनुष्यमात्रका सुख अवलम्बित है। शासनकी ही खराबीसे भारतके रत्नरचित मन्दिर धूलमें मिल गये, पंजाबके वीर सिक्खोंका राज्य नष्टभ्रष्ट हो गया, मुसलमानोंकी बादशाही नामावशेष भावको प्राप्त हो गयी। जो खराबियां आजकल भारतमें देख पड़ती हैं प्रायः उन सबका इलाज अच्छी शासन-प्रणाली है। भारतवासियोंके लिये इस विषयके अध्ययनकी इस समय इतनी अधिक आवश्यकता है जितनी किसीके अध्ययनकी नहीं। कुछ कालके लिये व्याकरणकी वितण्डाको छोड़िये, न्यायकी फक्किकाओंको भूल जाइये, आध्यात्मिक विषयोंका मनन कम कर दीजिये। आंख उठाकर चारों ओर देखिये। वेदान्त बूकनेकी इस समय जरूरत नहीं।

—स्वामी सत्यदेव

२७ चमड़ेका व्यवसाय

भारतवर्षमें हर साल सब मिलाकर कोई १२से १६ करोड़ रुपयेतकका चमड़ा बाहर जाता है। और उससे अधिक नहीं तो उतने ही दामका चमड़ा देशमें ही खर्च हो जाता है। इस तरह कोई २५—३० करोड़ रुपयेका चमड़ा हर साल यहां पैदा होता है। अस्ट्रेलिया, अरजेनटाइन (दक्षिण अमेरिका) जैसे कुछ देशोंको छोड़कर जहां पशुपालनका बहुत बड़ा व्यवसाय होता है, विरलाही कोई देश होगा जो इतने मूल्यका चमड़ा इस तरह विदेश भेजता होगा। भारतवर्षमें एक तो दरिद्रताके कारण सब कोई जूते नहीं पहन सकते और दूसरे, धार्मिक विचारोंके कारण उतने व्यवहारोपयोगी द्रव्य नहीं बना सकते जितने कि पश्चिमीय देशोंमें बनते हैं। तीसरे, दरिद्रताके कारण लोग पशुओंके खिलाने पिलानेका पूरा प्रबन्ध नहीं कर सकते। इससे भी हरसाल विशेषकर दुर्भिक्ष या अनावृष्टिके समयमें हजारों लाखों पशु या तो भूखों मर जाते हैं या कसाइयोंके हाथ बेचे जाते हैं। इधर कुछ दिनोंसे सारी दुनियामें चमड़ेकी मांग बढ़ गयी है और उनका दाम बढ़ रहा है। इन सब कारणोंसे यहांसे चमड़ेकी रफ्तनी भी बढ़ती जा रही है।

व्यापारियोंने चमड़ेके दो विभाग किये हैं एक तो गाय बैल भैंस इत्यादि बड़े पशुओंके चमड़े, जिनको 'हाइड' कहते हैं। और दूसरे भेड़, बकरी, बछड़े इत्यादि छोटे जानवरोंके चमड़े जिन्हें 'स्किन' कहते हैं। यहांसे जो चमड़े बाहर भेजे जाते हैं उनकी दो श्रेणियां होती हैं, एक तो सिर्फ नमक मिलाकर सुखाई हुई खालें, छोटी या बड़ी, और दूसरे तैयार किये हुए चमड़े, बड़े या छोटे ।

बढ़िया चमड़ा तैयार करनेके अच्छे कारखाने नहीं रहनेके कारण 'खालों'की रफ्तनी ही यहांसे अधिक होती है। कल-

कत्तेसे सिर्फ नमक मिलाकर सुखाई हुई खाल (बड़ी और छोटी) बाहर जाती है। बम्बईसे खालके साथ साथ थोड़े तैयार चमड़े (बड़े और छोटे) भी बाहर जाते हैं। भारतवर्षमें चमड़ा तैयार करनेके कारखाने (टैनरी) अधिकांश मद्रास हातेमें पाये जाते हैं। इस कारण मद्रासते जितने बड़े चमड़े बाहर जाते हैं वे सब तैयार किये हुए होते हैं, तथा छोटे छोटे चमड़ेका भी दो तिहाई अंश तैयार किया हुआ होता है। सं० १९५५ तक तो मद्रासले सूखी खाल बाहर जाती ही नहीं थी, पर अब धीरे धीरे छोटी सूखी खालोंकी रफ्तनी बढ़ने लगी है, क्योंकि बाहरवाले दाम अधिक देते हैं। कराची और बर्मासे भी सूखी खाल (बड़ी और छोटी) ही भेजी जाती है।

लड़ाईके पहले जर्मनी बड़ी बड़ी सूखी खालोंका सबसे बड़ा खरीददार था। ४८ प्रतिशत माल वहीं जाता था। उसके बाद आस्ट्रिया हंगरीका नम्बर था जो अधिक माल खरीदता था। इसके बाद स्पेन, इटली, अमेरिका इत्यादि देशोंका नम्बर था। जिस तरह जर्मनी गाय बैलकी खाल सबसे अधिक लेता था, उसी तरह आस्ट्रिया हंगरी भैंसकी खाल अधिक खरीदता था इसके लिये अमेरिका आस्ट्रिया दोनोंमें चढ़ाऊपरी लगी रहती थी। छोटी छोटी सूखी खालोंका बड़ा खरीदार अमेरिका था। उसके बाद फ्रान्स, इंगलैंड, हालैंड और जर्मनीका नम्बर था। इंगलैंड बहुत कम सूखी खाल (बड़ी या छोटी) खरीदता था। वह अधिकतर बना बनाया चमड़ा ही लेता था। अमेरिका तथा जर्मनीवाले थोड़े खर्चमें अच्छा चमड़ा तैयार करनेकी हिकमत जानते हैं। इसी कारण सूखी खाल यहांसे ले जाते हैं। खालकी तिजारतको एक प्रकारसे जर्मनीने अपनी मुट्ठीमें कर लिया था, उसका खरीदना और बाहर भेजना बिलकुल उनके अधिकारमें था। दाम भी वे लोग सुविधाजनक ही रखते थे। युरोपकी कुल बिक्री जर्मनी (ब्रीमैन, हेम्बर्ग)के व्यापारियोंके

हाथ थी। खाल रपतनी करनेके लिये जर्मनीकी बहुतसी आढ़तें शहरों और कस्बोंमें खुली थीं। बड़े छोटे दोनों प्रकारके तैयार चमड़ोंकी सबसे अधिक मांग विलायतसे आती थी। युनाइटेड किंगडमके बाद अमेरिका जापानका नम्बर था। लड़ाई छिड़नेके कारण जर्मनी अस्ट्रियाके बाजार बन्द हो जानेसे बड़ी बड़ी सूखी खालोंका बाजार एक दम मन्दा हो गया। चमड़ा कहीं निष्पक्ष राज्योंसे होकर शत्रु दलको न मिल जाय, इसको रोकनेका पूरा प्रबन्ध किया गया था। तैयार चमड़ोंकी रपतनी तो सरकारने अपने हाथमें ले ली थी, क्योंकि लड़ाईके सामानमें यह भी शामिल था। पर सूखी खालको सरकार नहीं खरीदती थी, क्योंकि विलायतमें इन सूखे मरे चमड़ोंके तैयार करनेके कारखाने नहीं थे। धीरे धीरे सूखी खालोंकी भी रपतनी बढ़ने लगी। जब इटालीने लड़ाईमें ब्रिटेनका साथ दिया, तब वहां भी चमड़ोंकी जरूरत हुई। जहां १९७० में कुल पांच लाख सूखी बड़ी खालें कलकत्ते और करांचीसे इटली रवाना की गयी थीं, वहां १९७२ में करीब ४० लाख बड़ी बड़ी खालें भेजी गयीं, यह खालें कोई दो करोड़ जोड़े बूटके उपरले भागके लिये काफी थीं। यद्यपि १९७३ में इटली-की रपतनी कम हो गयी, पर तोभी शान्तिके समयसे कई गुनी अधिक ही रही। अमेरिका (संयुक्त राज्य)ने भी छोटी बड़ी सूखी खालोंकी मांग बढ़ायी। छोटी छोटी खालोंकी तो ९० प्रतिशत अमेरिकासे ही मांग आती है। लड़ाईके जमानेमें जर्मनी, आस्ट्रियाकी घटी अमेरिकाने पूरी कर दी है। अब सूखी खालोंका सबसे बड़ा खरीदार अमेरिका ही हो गया है। लड़ाईके पहले अमेरिका हर दर सैकड़े ११ बड़ी खाल और ७७ छोटी खाल लेता था। पर आजकल तो क्रमशः हर दर सैकड़े ५१ और ९७ मांग धीरे धीरे बढ़ रही है। वहांके व्यापारी कह रहे हैं कि यदि सरकार इस बातपर भरोसा दिलावे कि लड़ाई

खतम होनेपर जर्मनी आस्ट्रियनोंको वेरोकटोक खाल खरीदनेकी इजाजत न मिलेगी तो इंगलैंडमें भी मरे चमड़ेको तैयार करनेके लिये कारखाने खोले जावें तथा इस व्यापारको इन देशोंके चंगुलसे वचाया जावे।

चमड़ेका देशी व्यवसाय

देशी छोटी छोटी खालें वहुत ही अच्छी होती हैं। उनसे ऊंचे दर्जेका चमड़ा तैयार हो सकता है। पर यहांकी वड़ी खालोंसे वढ़िया चमड़ा तैयार करना मुश्किल है। देशमें जो चमड़े खर्च होते हैं प्रायः वहुत ही मामूली दर्जेके होते हैं, तथा उनको तैयार करनेकी देहाती तरकीव भी ऐसी भद्दी है कि अच्छी खाल भी खराव हो जाती है। हर जगह हर देहातमें चमार रहते हैं जो चमड़ा भी तैयार करते हैं तथा जूते वगैरह भी वनाते हैं। देहातोंमें मसालोंसे भरे कच्चे चमड़े गाछोंसे लटकते हुए प्रायः नजर आते हैं। कहीं कहीं मोचियोंके यहां नांदोंमें भी चूनेके पानीमें डूवे हुए चमड़े पाये जायेंगे। देशी चमार वहुतसी वढ़िया खाल तैयार करते समय खराव कर देते हैं, उनसे केवल भद्दे चमड़े तैयार करते हैं। अनुमान किया जाता है, कि इस तरह करोड़ोंका माल हर साल ख़राव कर दिया जाता है। यदि देशमें अच्छी "टेनरियां" खुलें या देशी चमारोंको चमड़ा तैयार करनेकी शिक्षा दी जाये तो देशका वहुत सा धन वरवाद होनेसे वच जाये। हर साल देहातोंमें करोड़ोंके लागतके देशी जूते, चपोड़े, साज, मराक, मोट इत्यादि सामान वनाये जाते हैं तथा व्यवहारमें आते हैं। यदि यह सव चीजें अच्छे टिकाऊ मज़वूत चमड़ेकी वनें तो इन चीजोंकी उम्र भी वढ़ जाये, तथा किसानोंको उनसे अधिक लाभ उठानेका मौका भी मिले और उतने कीमतकी सालाना वचत भी हो। पर पढ़ेलिखोंका ध्यान इधर नहीं आ सकता, क्योंकि चमड़ेका

व्यवसाय निकृष्ट समझा जाता है, चमारसे छू जानेसे छूत लग जाती है, लोग पतित हो जाते हैं। ऐसी अवस्था जबतक बनी रहेगी, तबतक यह व्यवसाय अपढ़ या इतर धर्मावलम्बियोंके हाथमें ही रहेगा।

इधर कुछ दिनोंसे अंगरेजी ढंगकी टैनरी और चमड़ेके कारखाने खुलने लगे हैं। कानपुरमें टैनरी और चमड़ेका सामान बनानेका एक बहुत बड़ा अड्डा है। बम्बईमें भी नये ढंगके चमड़े तैयार किये जाते हैं और कानपुरसे घटिया नहीं होते। उसी तरह आगरा, दिल्ली, इत्यादि कई शहरोंमें भी इन देशी तैयार चमड़ोंसे अँगरेजी ढंगके जूते, बूट, ट्रंक इत्यादि सामान बनानेके कई कारखाने हैं, जहां मशीनों तथा हाथोंसे काम होता है। कानपुर, बम्बई, मैसूरमें भी यह सब सामान तैयार होता है। यह सब नये ढंगके कारखाने फौजी विभागकी कृपाके फल हैं। फौजी विभागमें हर साल लाखोंकी लागतके बूट, साज़ इत्यादि इन कारखानोंसे खरीदे जाते हैं और उनकी देखादेखी अन्य विभागवाले भी बहुत सा चमड़ेका माल इन कारखानोंसे लेने लगे हैं। फल यह हुआ है, कि कानपुर बम्बई आदिमें चमड़ेके कई बड़े बड़े कारखाने चल निकले हैं। इधर स्वदेशी आन्दोलनने भी अँगरेजी जूता बनानेवाले कारखानोंको बड़ी सहायता की है। यह सस्ते अँगरेजी जूते लोगोंको खूब पसन्द आये हैं। ज्यों ज्यों इन सस्ते जूतोंका प्रचार बढ़ता गया, त्यों त्यों देशी कारखानोंकी जड़ मजबूत होती गयी और दिल्ली, आगरा और कानपुरका जूतेका व्यापार बहुत दृढ़ हो गया। लड़ाईके कारण जबसे विलायती तैयार चमड़ों तथा जूतोंका आना कम हो गया है, तबसे इन लोगोंने और भी उन्नति कर ली है। इधर सरकारने लाखों जोड़े बूट, साज वगैरह कानपुर, बम्बईसे खरीदे हैं। दक्षिण भारतमें विशेषकर मद्रासमें पहलेसे ही अच्छा चमड़ा तैयार होता था। अब इधर उन लोगोंने 'क्रोमलेदर' नामका

बहुत बढ़िया चमड़ा तैयार करना शुरू कर दिया है। यह हल्का चिकना, मुलायम, मजबूत और खूबसूरत होता है। इसके बने 'तल्ले' और 'उपरले' मुलायम तथा टिकाऊ होते हैं। पानीमें भीगनेपर भी यह मुलायम ही रहता है तथा बिगड़ता भी नहीं। इससे मद्रासप्रान्तमें चमड़ा तैयार करनेके साथ साथ चमड़ेका सामान जूता साज़ इत्यादिका भी रोज़गार बढ़ रहा है। मैसूरका चमड़ेका कारखाना बहुत बढ़िया समझा जाता है।

यद्यपि भारतवर्षसे चमड़ों और खालोंकी रफ्तनी बढ़ती जाती है, पर देशमें चमड़ा तैयार करनेके हुनरकी वैसी तरक्की नहीं हो रही है। हरसाल लाखोंके विलायती जूते तो बाहरसे आते ही हैं। १९७०-७१में प्रायः ६० लाख रुपयेके जूते आये। इनके अतिरिक्त भी कोई २५।३० लाखका बढ़िया चमड़ेका सामान प्रति वर्ष आया करता है। इसमें किताबकी जिल्द बांधनेके बढ़िया चमड़े, मशीन चलानेवाले बेल्टोंके चमड़े, तथा चमड़ेकी "फैन्सी" चीजें शामिल हैं। यद्यपि यह सब यकायक हिन्दुस्तानमें नहीं बनने लगेंगे, पर इसमें संदेह नहीं कि प्रयत्न करते ही यहां भी बढ़ियासे बढ़िया चमड़ा तैयार हो सकेगा। पर उसका पूरा उद्योग होना चाहिये। लड़ाईने चमड़ेके व्यापारको बहुत सहायता दी है, अभी सरकारने इलाहाबाद जैसी जगहोंमें "टैनिंग" सिखानेके लिये स्कूल खोले हैं। यदि हमलोग अच्छी तरह टैनिंग करना न सीखेंगे तो सदा कच्चा माल ही भेजते रहेंगे। कई साल हुए विलायतकी 'सुसाइटी आफ आर्ट्स' ने किताबोंकी जिल्दके लिये चमड़ेकी जांच करनेको कमेटी बिठायी थी। उस कमेटीने कहा था, कि हिन्दुस्तानसे जो छोटे छोटे चमड़े तरवरके छालसे तैयार किये हुए आते हैं, उनमें ज्यादे दिनतक ठहरनेकी शक्ति नहीं होती। कुछ ही दिनोंमें कीड़े लग जाते हैं। इसका फल यह हुआ कि देशी तैयार किये हुए छोटे चमड़ोंकी रफ्तनी कम हो गयी। यही अज्ञानता-

का फल है। एक बात और है जिसकी ओर सरकारने लोगोंका ध्यान आकर्षित किया है। यहां घरेलू पशुओंको दागनेकी चाल बहुत प्रचलित है। इससे चमड़े ख़राब हो जाते हैं। जहां-तक हो सके इसको रोकना चाहिये क्योंकि इससे उनका मूल्य घट जाता है। इस एक प्रथासे शायद एक करोड़का चमड़ा हर साल खराब हो जाता है। १६७२ में ४० बड़े बड़े चमड़ेके कार-खाने और टैनरियां थीं, जिनमें ६७८७ मज़दूर काम करते थे। युक्तप्रान्त मद्रास और बम्बईमें अधिकांश कारखाने हैं।

—राधाकृष्ण झा

२८ राजाका भूमिपर अधिकार

(१) मीनलदेवी

मीनलदेवी गुजरातके राजाधिराज करण सोलंखीकी रानी और सिद्धराज जयसिंहकी मां थी। बालक्रीड़ासे तीन बरसकी उमरमें बापके जीतेजी अनहिलपुरपट्टनके राजसिंहासनपर जयसिंह जा बैठा और करणने ज्योतिषियोंसे उसका शुभ मुहूर्तमें सिंहा-सनपर बैठना और आगेको बड़ा प्रतापी राजा होना सुना तो उसके वास्ते वह सिंहासन छोड़ दिया और मीनलदेवीको उसके बड़े होनेतक उसके नामसे राज्य करनेका अधिकार देकर अपने लिये दूसरा राज्यसिंहासन कर्णावती नाम नगरीमें बना लिया। उस दिनसे मीनलदेवी अपने बेटेका संरक्षण और पाटणका राज्यशासन करने लगी। उसने कई मंदिर, तालाब, बावड़ी और अन्नदानके स्थान गुजरातमें बनाये जो आज भी कुछ गिरे पड़े दिखाई देते हैं। उसका एक तालाब धोलकेमें भी है जिसको अब मीनल कहते हैं। मीनलदेवी जब इस तालाबको बनवाती थी तो एक वेश्याका घर उसके घेरेमें आता था। मीनलदेवीने उसको बुलाकर कहा कि तू अपना घर हमको दे दे और मोल लेना हो सो ले ले।

वेश्या—क्यों ?

मीनलदेवी—मुझे जरूरत है।

वेश्या—आपको जरूरत हो, पर मुझे तो जरूरत नहीं है।

मीनलदेवी—अभी तो मुँह मांगे दाम देती हूं, फिर इतना मोल नहीं मिलेगा।

वेश्या—मत मिलो। यहां बेचना किसको है, मोलका तो वह सोच करे जिसको बेचना हो।

मीनलदेवी—बेचनेमें क्या हरज है, और न बेचे तो इसके बदले दूसरा मकान ले ले।

वेश्या—क्यों लेलूं। भला जिस घरमें मैं जन्मी, बड़ी हुई, और खाई खेली, अब मरती हुई उसको तो बेंच दूं और दूसरे घरमें जाकर मरूं यह कहांका न्याय है ?

मीनलदेवी—अच्छा जो मोल और बदला नहीं लेती है तो वैसेही दे दे।

वेश्या—क्यों दे दूं। आप कुछ मुहताज नहीं हैं, महारानी हैं। सारा देश आपके अधीन है फिर मुझ ग़रीबिनका घर क्यों छुड़ाती हो !

वेश्या—मैं यों घर नहीं छुड़ाती, तेरी राजी खुशीसे लेती हूं।

वेश्या—मैं तो देनेको राजी नहीं हूं। जबरदस्ती लेती हो, तो वह घर पड़ा है ले लो।

मीनलदेवी—जबरदस्ती लेती तो तुझे क्यों बुलाती और मोलकी बात क्यों करती ?

वेश्या—मैं आपकी न्याय नीति देखकर ही तो इतना वाद विवाद करती हूं।

मीनलदेवी—न्यायकी ही बात तो मैं भी करती हूं।

वेश्या—यह तो न्याय नहीं है कि एक ग़रीबिनका घर यों ले लिया जाय।

मीनलदेवी—मैं यहां बस्तीके फायदेके लिये एक तालाब

बनवाती हूं। तेरा घर उसके नापमें आता है, जो तू नहीं देगी तो तालाबका एक किनारा बांका रह जायगा।

वेश्या—बांका रहनेका आपने भला सोच किया, इसका बांका रहना ही पीढ़ियोंतक आपकी न्याय नीतिकी याद लोगोंको दिलाता रहेगा।

मीनलदेवी—यह कैसे ?

वेश्या—बांका रहनेके साथ यह बात भी जगतमें विख्यात हो जावेगी कि वहां वेश्याका घर था उसने नहीं दिया और रानीने भी अन्याय करके नहीं लिया और यह न्याय आपका प्रमाण हो जायगा। पिछले राजाओंमेंसे जब कोई किसीपर अन्याय करेगा तो वह आपके न्यायकी दुहाई देकर अन्याय न करने देगा।

मीनलदेवीने गद्गद होकर कहा कि मेरे तालावका एक किनारा क्या, चाहे चारों किनारे भलेही बांके रह जायँ, परन्तु यह कोई न कहे कि अन्यायसे प्रजाकी जमीन ले लेकर, इन कोनोंको सीधा किया गया है। यह कहकर कर्मचारियोंसे कहा कि इसका घर छोड़ दो और पालके टेढ़ी होनेका सोच मत करो।

(२) राजा चन्द्रापीड़

काश्मीरके महाराजाधिराज चन्द्रापीड़ बड़े न्यायी थे। वे जब त्रिभुवन स्वामीका मंदिर बनवाने लगे थे तब एक दिन वहांके कर्मचारीने आकर निवेदन किया कि पृथ्वीनाथ मन्दिरकी सीधमें एक चमारकी झोंपड़ी आती है जिसपर वह सिलावटोंको सूत नहीं रखने देता और हुक्म नहीं मानता।

महाराज—(झिड़क कर) तुम लोगोंको धिक्कार है, तुमने उससे बिना ही पूछे मंदिरकी नींव क्यों रख दी। अब वहां मन्दिर बनाना बन्द कर दो और दूसरी जगह ढूंढो जहां किसीकी मिलकियत न हो। दूसरोंकी जमीन छीनकर मन्दिर बनानेसे हमको पुण्य तो क्या होगा, उल्टा हमारे प्रजापालनके धर्ममें कलङ्क लग

जावेगा। जब हमीं यों अन्याय करने लगेंगे तब दूसरे लोगोंको न्यायपर कैसे चला सकेंगे और उनसे सदाचार या सद्व्यवहारकी क्या आशा रखेंगे ?

चमारने जब यह बात सुनी तो उसने राजाके यहां अपना वकील भेजा। उसने हाज़िर होकर अर्ज़ की, मेरे मुअक्किलने यह कहलाया है कि दरबारमें आनेयोग्य तो मैं नहीं, अछूत हूं, पर बाहरके आंगनमें ही मुझे दर्शन मिलें तो मैं आकर कुछ अर्ज करूं। महाराजने दूसरे दिन उसे बुलाकर पूछा कि क्या तुम्हीं हमारे पुण्यको रोकते हो? जो ऐसा ही है तो अपने घरके बदले और सुन्दर घर या मनचाहा धन ले लो।

चमार—(महाराजाके न्याय और शील स्वभावको अपने मनमें माप तोलकर) हे राजन्! जो मैं कहता हूं उसे आप अभिमान छोड़कर सुनें। जब न तो मैं ही कुत्तेसे कम हूं और न आप राजा युधिष्ठिरसे बढ़कर हैं तो फिर मेरी और आपकी बातचीत होनेसे यह दरबारी लोग क्यों बुरा मान रहे और खफ़ा हो रहे हैं। सुनिये, इस असार संसारमें मनुष्यका नाशवान शरीर ममतासे ठहरा हुआ है, जो यह न हो तो किसीका काम ही न चले। देखिये, जैसे आपको अपने अलङ्कारोंसे सजे हुए शरीरका अहंकार है वैसे ही हम गरीबोंको भी अपने नंगे धड़ंगे शरीरोंका है। आपको बड़े बड़े महलोंवाली अपनी राजधानी जैसी प्यारी है वैसे ही मुझे भी अपनी यह बुरी सुरी झोंपड़ी अच्छी लगती है, जिसकी खिड़की घड़ेके घेरेसे सजायी गयी है और जो जन्म-दिनसे माताके समान मेरे दुखसुखकी साथिन रही है। फिर मैं उसे कैसे गिरने दूं या गिराते देखूं? घर छिन जानेसे आदमीको जो दुःख होता है उसको स्वर्गसे गिराया हुआ पुरुष या राज्यसे निकाला हुआ राजा ही जान सकता है। हां, यों जो आप मेरे घर चलकर मांगें तो मुझे वह झोंपड़ी आपको दे ही देनी पड़ेगी क्योंकि आपका हुक्म मानना मेरा धर्म है।

यह सुनकर महाराजा उस चमारके घर गये और उससे वह झोंपड़ी मांगी, उसने हाथ जोड़कर कहा कि जैसे पहले धर्मने कुत्तेके रूपमें राजा युधिष्ठिरकी परीक्षा ली थी वैसे ही आज मुझ अछूतने भी आपके धर्मकी यह जांच की है। आपका भला हो, और इसी तरह आप धर्म और न्यायसे राज करते रहें, परमेश्वरसे मेरी यही प्रार्थना है। चमारने यह कह अपनी झोपड़ी महाराजा चन्द्रापीड़की भेंट कर दी और महाराजाने कर्मचारियोंको मन्दिर पूरा करनेकी आज्ञा दे दी।

—देवीप्रसाद (मुंसिफ़)

२६ महात्मा गांधी

जिस अनुपम पुरुषने जगतको अपने जीवनसे यह दिखा दिया कि आत्माकी तेज धारके सामने पैनीसे पैनी तलवार भोंठल है, तपस्याके सामने आजकलके महादुर्धर्ष और भयङ्कर विज्ञानकी आंच ठंढी हो जाती है, त्यागके सामने दुनियाके भोगविलास फीके और नीरस हो जाते हैं, सत्यके सामने माया नटीके सारे परदे फट जाते हैं, जिस महात्माने अपने व्यवहारसे हमारे पहलेके ऋषियोंकी इन धारणाओंको जीवनकी कसौटीपर कसकर परखाया, वही महात्मा मोहनदास गांधी १९२६ विक्रमीके १६ आश्विनको काठियावाड़में दीवान



कर्म्मचन्द्रजीके घरमें सबसे छोटा पुत्र होकर इस संसारमें बावन बरस हुए आया।

महात्माजीकी शिक्षा धर्म्मात्मा मातापिताकी देखरेखमें आरंभमें हुई फिर बारिस्टरी आपने विलायत जाकर पढ़ी।

संवत् १९४९में "मिस्टर गांधी, बारिस्टर-अट-ला" को दक्खिनी अफ्रिकाका एक पेचदार मुकद्दमा मिला। इसकी पैरवीके लिये अफ्रिका जाना पड़ा। ज्योंही जहाजसे उतरकर दरबनमें कदम रखा, त्योंही इनका माथा ठनका। यह लंडनके बारिस्टर, बम्बईके मान्य एडवोकेट, दीवानके लड़के, ऊंचे हिन्दूवंशके बड़े इज्ज़तदार आदमी थे, जिनका बराबरीका आदर विलायतके बड़े लोग भी करते थे, जो लंडनमें मेहमान समझे जाते थे, जिन्हें अँगरेजो रिआयाके सभी स्वत्वाधिकार सभी हक़ हासिल थे, उन्हीं मिस्टर गांधीको वहांके लोग चमार और डोमसे भी नीच समझकर बरताव करने लगे। जब वहांके वकीलोंमें गिने जानेके लिये उन्होंने प्रार्थना की तब वहांके वकील समाजने घोर विरोध किया कि "काला कुली" हमारे समाजमें न मिलने पावे। वारे वहांकी सबसे ऊंची अदालतने उन्हें वकील स्वीकार कर लिया और मिस्टर गांधीके विजयकी नींव पड़ी।

गांधीजीने इस तरह शुरूमें ही देखा कि भारतकी सन्तानोंकी दशा दक्षिण अफ्रिकामें अत्यन्त गिरी हुई है। परदेशमें उन्हें बड़ी नफरतकी निगाहसे देखा जाता है। नेटालके रहनेवाले हिन्दुस्तानियोंने संवत् १९५०में गांधीजीसे बड़ा आग्रह किया कि आप इस देशमें रह जायँ और आगे आनेवाले राजनीतिक झगड़ोंमें सहायता दें। गांधीजीने परदेसमें दुःख उठानेवाले भाइयोंकी पुकार सुनी और वहीं ठहर गये। उन्होंने वहां "नेटाल इंडियन कांग्रेस" (नेटाल-भारतीय-राष्ट्रसभा) नामकी संस्था स्थापित की और कई बरस उसके मन्त्री रहे। मन्त्रीकी हैसियतसे आपने अनेक आवेदनपत्र भेजे और नेटालकी पार्लिमेंटने जब एशिया-

वालोंको निकालनेका कानून बनाया तब आपने उसका इस प्रकार संगठित विरोध कराया कि वह कानून रद्द कर दिया गया। इसी प्रकारके एक और कानूनके रद्द करनेकी कोशिश की पर उसमें इतनी ही सफलता हुई कि सरकारने वादा किया कि जातिभेद इस कानूनमें न रखा जायगा।

संवत् १९५२में आप इसलिये भारतवर्ष लौट आये कि भारतकी जनताके सामने अफ्रिकामें उनकी दुर्दशाकी कथा सुनावें। आपने भारतमें आकर अनेक व्याख्यान दिये और पुस्तिकाएं छपवायीं जिनका टूटा फूटा और बिगाड़ा हुआ समाचार रायटरवालोंने अफ्रिका पहुंचाया जिसपर अफ्रिकाके गोरे इनसे बहुत सख़्त नाराज़ हुए।

दक्खिनी अफ्रिकामें बहुत दिनोंसे गोरोंने अपना राज कर रखा है। पहले वहांके रहनेवालोंको बहकाकर और फँसाकर अमेरिकामें गुलाम बनाकर बेचना इनका काम था, पर जबसे गुलामोंकी बिक्री अमेरिकामें उठा दी गयी तबसे यह लोग अफ्रिकामें बसकर अपने खेतों और खानोंमें और कल कारखानोंमें वहांके असली रहनेवालोंसे काम लेने लगे। अपनी कूटनीतिसे, चालाकी और धूर्त्ततासे गोरोंने वहां अपना राज कर लिया और जो अफ्रिकावासी इनकी गुलामी और कुलीगीरीमें रहे उन्हें रखकर बाकीको छलबलसे अलग कर दिया। परन्तु यह गोरे परिश्रमी न थे। बिना मजूरोंके इनका काम चल नहीं सकता था। कोई साठ बरस हुए कि इन्होंने हमारे देशमें अपने आरकाटी भेजे जिन्होंने बहकाकर हमारे देशके हजारों गरीबोंको अफ्रिकामें कुलीगीरी करनेको पहुँचाया। यही कुली जो पीछे घर न लौट सके वहीं परदेसमें बस गये और अपने पसीनेकी कमाईसे दिन काटने लगे। यह लोग मेहनती थे, शौकीन न थे, थोड़ीही पूंजीमें इन्होंने रोजगार किये और धन पैदा करके घर लिये। खेत खरीदे। यह बातें देखकर गोरोंसे न रहा गया। राज्य तो गोरोंका

ही था। उन्होंने ऐसे ऐसे कानून बनाने शुरू किये कि हिन्दुस्तानियोंको रोजगार करना कठिन हो गया। जायदाद पैदा करना या रखना असंभव हो गया। उनका नाम "कुली" पड़ गया। यहांतक कि महात्मा गोखलेतक जब वहां गये "कुली" कहलाये।

वहां पहुँचनेपर गांधीजी भी कुली समझे गये थे। एक बार गांधीजी रेलके पहले दर्जेमें यात्रा कर रहे थे। गार्डने उनसे मालगाड़ीमें जाकर बैठनेको कहा। उन्होंने इनकार किया। गार्डने गोरे सिपाहीद्वारा उनको धक्के देकर ज़बरदस्तीसे बाहर निकलवाया, उनका असबाब बाहर फेंक दिया। गांधीजी चुपचाप मालगाड़ीमें जा बैठे, उनका सारा असबाब स्टेशनपर रह गया और गाड़ी छूट गयी। रातभर जाड़ेमें सुकड़े। दूसरी बार, वह घोड़ागाड़ीमें जा रहे थे। गाड़ीका मुखिया चुरट बहुत पीता था। दम लगाता हुआ गांधीजीके पास आया और उनसे हटकर बैठनेको बोला। जब उन्होंने कहना न माना तो ज़ोरसे उनको थप्पड़ मारा और उन्हें हटाकर उनकी जगह बैठ गया। तीसरी घटना—एक दिन गांधीजी सड़ककी पटरीपर चले जाते थे। एक सिपाहीने पीछेसे जाकर उनको लात मारी और गला दबाकर ज़ोरसे धक्का दिया। सब जगह गांधीजीके साथ इस भांति बर्ताव होता था। अदालतमें उनको पगड़ी उतारनी पड़ती थी। और यह इसलिये कि वह "काले" कहलाते थे और भारतवासी थे।

अफ्रिकाका दूसरा प्रवास

गांधीजीपर उनके मातापिताकी धार्मिकताका पूरा प्रभाव पड़ा था। जैनधर्म्मने अहिंसा तथा तप सिखाया था और हिन्दू वैष्णव धर्म्मने आस्तिकता और धर्म्मपथमें दृढ़ कर रखा था। विलायतमें रहकर सच्चा ईसाई धर्म्म समझा था और मैडेम

ब्लवट्स्कीसे मिलकर सभी ब्रह्मविद्यापर विचार किया था। महात्माजीने इन अपमानोंको बिना किसीको दुःख दिये सहा, पर देशकी मान-रक्षाकी उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली।

गांधीजीने जब भारतमें पहलेपहल हलचल मचाया था तभी गोरोंने निश्चय कर लिया कि इनसे क्या बरताव करना चाहिये। महात्माजी अपनी धर्म्मपत्नी और पुत्रोंसमेत जब जहाजपर संवत् १९५३में डरबन पहुँचे तभी वहां यह खबर मशहूर हो चुकी थी कि महात्माजी अपने साथ सैकड़ों होशियार कारीगर ला रहे हैं कि गोरे कारीगरोंको निकाल बाहर करें। बात सच्ची यह थी कि गांधीजीके साथ ही स्वाधीन रूपसे बहुतसे और देशसेवी हिन्दुस्तानी भी सवार थे। इन दोनों बातोंको एकमें मिलानेसे वहांके गोरोंका संदेह पक्का हो गया और इन बातोंमें वहांके एक हाकिम मिस्टर एस्कोम्ब यहांतक आ गये कि उन्होंने जहाजको समुन्दरमें ही रुकवा दिया। इसपर जहाजके मालिकोंने हरजेकी नालिश करनेकी धमकी दी। अन्तको जब जहाज किनारे लगा और उतरनेका समय आया हजारों गोरे किनारेपर गांधीजीको मारनेके लिये इकट्ठे हुए। दारोगाने आकर सलाह दी कि रातको उतरियेगा, परन्तु वहांके एक बैरिस्टरकी सलाहसे महात्माजी उसी समय अँगरेज गोरोंकी न्यायप्रियता और भलमनसाहतपर विश्वास करके उतरे। बिगड़ी हुई भीड़ने इन्हें पहचान लिया और पत्थरोंकी वर्षा होने लगी। उस समय गोरी पुलिसके कप्तानकी जोरूने अपनी छतरीका आड़ करके महात्माजीकी रक्षा की और उन्हें एक गोरेके गोदाममें शरण दी। परन्तु मित्रके इस गोदामकी रक्षाके लिये महात्माजी पुलीसके सिपाहीका भेष धरके किसी तरह वहांसे निकल गये।

तीन बरसके भीतर ही ट्रांसवालके "बोअर" गोरों और अँगरेजोंसे लड़ाई छिड़ी। इस घोर युद्धमें घायलोंकी सेवा करनेके लिये महात्माजीने एक सेवक-सेना बनायी जिसने तोपके मुहड़ेके

सामने लाशें उठायीं और घायलोंकी चिकित्सा की ! इसमें हिन्दुस्तानियोंने जैसी वीरता दिखलायी उससे गोरे दंग रह गये। अँगरेज सरकारने महात्माजीको सारजंट मेजर बनाया और तमगा दिया। पर असलमें यह इहसानमंदी न थी बल्कि नेताको एक तरहका घूस था। इस सेवाका इनाम भारतवासियोंपर और अधिक जुलुमके रूपमें मिला।

बोअर-युद्ध खतम होनेपर महात्माजी भारत लौटे। इधर दक्षिण अफ्रिकामें मैदान खाली पाकर वहांकी सरकारने एशियावालोंके लिये एक खास मुहकमा बनाया। उसका नाम "एशियाटिक डिपार्टमेंट" रखा। मतलब यह था कि "कालों" के लिये अलग क़ानून बनाये जायँ और उनकी राहमें कठिनाइयां पैदा की जायँ। जब गांधीजी भारतसे लौटे, इन्होंने इसको दूर करनेके लिये आन्दोलन आरम्भ किया। सरकारको चेतावनी दी गयी, प्रतिनिधि भेजे गये, पर कौन सुननेवाला था।

संवत् १९६०में गांधीजीने एक छापाखाना मोल लिया और "इंडियन ओपिनियन" नामक पत्र निकाला, जिससे यह हलचल धूमसे चला। १९६१में जोहांसवर्गकी भारतीय वस्तीमें प्लेगने ज़ोर पकड़ा। गांधीजीने निडर होकर देशवासियोंकी सेवा की।

इसके बाद ही नेटालमें सौ बीघा जमीन लेकर गांधीजीने "फीनिक्स सेटलमेंट" नामक आश्रम स्थापित किया। यहां वह भारतीय रहने लगे जिन्होंने गरीबीका बाना लिया था, जिन्होंने सच्चाईकी राहपर चलनेकी ठान ली थी। उधर गोरोंके अनुचित व्यवहारमें किसी तरह भी कमी नहीं आती थी। वह भारतीयोंकी राहमें रोड़े अटकाते ही जाते थे। संवत् १९६३में जब जुलू-जातिने अंगरेजोंसे लड़ाई छेड़ी तब भी महात्माजी और हिन्दुस्तानियोंने अंगरेजोंकी न्यायबुद्धिपर विश्वास करके उनकी मदद की, उनके घायलोंकी जान बचायी और अपनी जानकी परवाह न की। इसका इनाम भारतवासियोंको एक अपमानजनक क़ानूनके

रूपमें मिला। उसने प्रत्येक भारतीयको कुली बनाया। सब भारतवासियोंसे रजिस्टरमें नाम लिखवानेको कहा गया। साथ ही साथ कैदियोंकी तरह हिन्दुस्तानियोंसे यह भी कहा गया कि वह अपने अँगूठेकी छाप दें। इस क़ानूनके पास होते ही बड़ी खलबली मची। गांधीजी अधिकारियोंसे मिले। विलायत भी गये। पर यह सब व्यर्थ हुआ। लोगोंने ठान लिया कि मर जायँगे, मिट जायँगे, पर ऐसे अन्यायी क़ानूनके सामने माथा न नवावेंगे। सं० १९६४में सत्याग्रहकी लड़ाई छिड़ी। वह एक मारकेका दिन था कि गांधीजीने लोगोंमें एक नया बल डाल दिया। लोगोंने ठान लिया कि वैरीके पशुबलको आत्मबलसे जीतेंगे। बेड़ियां पहननेको तय्यार हो गये, मृत्युका सामना करनेकी हिम्मत आ गयी। ठान लिया कि चाहे कुछ भी हो अँगूठेकी छाप न देंगे।

सरकारी अफसरोंने दौरा शुरू किया। पर सौमें पंचानबे हिन्दुस्तानियोंने बिलकुल इनकार किया। फल यह हुआ कि सत्याग्रही वीर जेलोंमें ठूंसे जाने लगे। वह चुपचाप बिना कुछ कहे सत्यके लिये जेलमें चले गये। इस लड़ाईमें स्त्रियोंने जो वीरता दिखलायी उसपर अचम्भा होता है। कोई भी धर्मपथसे नहीं हटा। महात्माजी भी पकड़े गये, क़ैदकी सज़ा हुई। जेलके कपड़े पहनाये गये। क़ैदियोंका गन्दा खाना दिया गया। जंगली असभ्य मैले काफिरोंके साथ रहना पड़ा। घृणितसे घृणित काम लिया गया, नित्य पाख़ानातक उठाना पड़ता था। पर महात्माजीने सब ख़ुशीसे सह लिया। जेलमें रहते हुए एक चीनी ईसाईको इंजील भी पढ़ायी। अन्तको सरकारने तीन महीनेके लिये इस कानूनको मुल्तवी कर देनेका वचन दिया और कहा कि लोग अपनी इच्छासे रजिस्ट्रेशन करावें। लोगोंको यह भी आशा दी गयी कि तीन महीने पीछे क़ानून मनसूख़ हो जायगा। इसलिये गांधीजीने सब लोगोंसे रजिस्टर होनेको कहा। वह आप अपना नाम लिखाने गये।

यह सब हुआ, पर सरकारने अपने वचन नहीं निबाहे। तीन महीने पीछे भी कानून मनसूख नहीं किया। गांधीजीने सत्याग्रह फिर छेड़ा और लोग फिर अपने सिद्धान्तोंके लिये लड़नेको खड़े हो गये। लगभग दो हजार हिन्दुस्तानी अपनी मानरक्षाके लिये जेलमें डाले गये। महात्माजी फिर पकड़े गये और उनको दो महीनेकी कड़ी सज़ा मिली।

जेलसे छूटनेपर गांधीजी फिर देशबन्धुओंके कष्ट दूर करनेमें लगे। मिस्टर पोलकको भारत भेजा और आप विलायत गये। फल यह हुआ कि सं० १९६८के अन्तमें भारत सरकारने शर्तबंधी मज़दूरीकी रीतिको तोड़ना मंज़ूर किया। इसके पीछे गांधीजीके बुलानेपर मान० गोखले भी दक्षिण अफ्रीका पहुँचे। दक्खिनी अफ्रीकाके मंत्रियोंने उन्हें बहकाया कि ४५) का कर उठा लिया जायगा और हिन्दुस्तानियोंके सब कष्ट दूर हो जायँगे। तीन अठवारे रहकर मान० गोखले भारत लौटे। पर हमारे कष्ट ज्योंकित्यों रहे। इस बीच सरकारने एक राक्षसी कानून और बना डाला जिससे हमारे विवाह बेकायदे ठहराये गये। इससे हमारी बड़ी बेइज़्ज़ती हुई। स्त्रियोंमें बड़ा जोश फैल गया। वे सत्याग्रहकी लड़ाईमें शामिल हो गयीं। श्रीमती गांधीने भी जेल जाना मंज़ूर किया। चौदह स्त्रियोंके साथ उनको तीन मासकी कड़ी कैद हुई।

यह हलचल चारों ओर फैली और मज़दूरोंकी एक बड़ी हड़ताल हो गयी। सब चारों ओरसे आकर न्यूकासल नगरमें जुट गये। गांधीजी चार हजार भारतवासियोंको लेकर ट्रांसवालकी सीमापर पहुँचे। स्त्रियां छोटे बच्चे जवान और बूढ़े अपनी इज्जतके लिये उस "फौज"में शामिल थे। गांधीजी उस स्वाधीनताकी "फौज"के नेता थे। उनके धीरज और साहसके बलसे सब भारतवासी ट्रान्सवालमें घुस पड़े। हिन्दुस्तानियोंका दल बढ़ता गया। गांधीजी पकड़े गये, उनको पन्द्रह महीनेकी सज़ा हुई। गांधीजीके साथी पकड़कर नेटाल लाये गये। उनमेंसे पोलक

और केलनबेक भी जेलमें डाले गये। चारों ओर पूरी हड़ताल हो गयी। पचीस हजार आदमियोंने गोरोंका काम छोड़ दिया। हड़तालियोंको दबानेके लिये उनसे बड़ी बेरहमीका बरताव किया गया। बहुतेरे गोलीसे मार डाले गये।

भारतमें यह खबर पहुँचते ही चारों ओर जोश फैल गया। बड़ी बड़ी सभाएं हुईं। एन्ड्रूज़ और पियरसन साहब तुरन्त जांचके लिये दक्षिण अफ्रीका पहुँचे। भारत सरकारने भी हमदर्दी दिखायी। असाढ़ १६७१ में दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारने इंडियनरिलीफ ऐक्ट पास कर दिया। ४५)का कर तोड़ दिया गया। और हिन्दू मुसलमानोंके विवाह नियमित समझे गये। सत्याग्रहकी पूरी जीत हुई।

अपने देशमें जिस जातिकी इज़्ज़त नहीं, बाहर उसकी इज़्ज़तकी रक्षा कौन कर सकता है? जो हिन्दुस्तानमें अपनी बादशाहत होती तो बाहर गये हुए अपने भाइयोंकी बेइज़्ज़तीके जवाबमें हम कमसे कम उस देशसे असहयोग कर सकते थे। पर जिस पराधीनताकी दशामें हम हैं उस दशामें होते हुए भी एक वकीलने पराये देशमें जाकर अपने चरित्रबलसे अपने देशकी लाज रखी, मुर्दा कुलियोंमें जान डाल दी, उन्हें निश्चय करा दिया कि अपनी इज़्ज़तके लिये प्राण दे देना अच्छा है पर गुलामी मंजूर करना अच्छा नहीं।

महात्मा गांधीने जेलमें रहकर तपस्या की। उन्होंने जेलमें ही अपनी ध्यानशक्ति और धारणा बढ़ायी। अच्छेसे अच्छे विचार जेलके एकांतमें पक्के पोढ़े हो गये। कड़ेसे कड़े दुःख उठानेकी शक्ति जेलमें ही दृढ़ हो गयी। राजनीतिक आन्दोलनके साथ ही साथ आत्मसंयम और योगबलका अभ्यास बराबर बढ़ता और दृढ़ होता गया। सोना ज्यों ज्यों तपाया गया कुन्दन ही निकलता आया।

महात्माजीका बहुत बड़ा काम अपने देशमें ही होना था

जिसके लिये दीन भारत बड़ी मुद्दतसे टकटकी बांधे अपने सुपूतकी ओर आशा लगाये देख रहा था। महात्माजीने दक्षिण अफ्रीकामें बैठे ही भारतकी दशापर बहुत कुछ विचार किया। इसका पता वहींसे निकलनेवाले आपके इंडियन ओपीनियनके उन गुजराती भाषाके लेखोंसे चलता है जो पीछेसे "हिन्दस्वराज्य"के नामसे पुस्तकाकार प्रकाशित हुए। बम्बई सरकारने इस पुस्तकका प्रचार रोकना चाहा था पर रुक न सका। महात्माजीने इसका अँगरेजी तर्जुमा करके अँगरेजोंको भी बता दिया कि देख लो इसमें यह है।

आपने अपने सिद्धान्तोंके फैलाने और सिखानेके लिये अहमदाबादमें एक सत्याग्रहाश्रम खोला, जहां पुराने ढंगसे नयी शिक्षा दी जाती है और बालकोंको त्याग सेवा परोपकार सहनशीलता आदि गुण सिखाये जाते हैं। आपने सारे भारतके लिये एक ही भाषा होनेकी जरूरतपर ध्यान दिया। आपकी मददसे इधर पांच-सात बरसोंमें हिन्दीका बहुत जोर बँध गया है। आपहीके किये आज मद्रासमें भी हिन्दीका प्रचार हो रहा है। महात्माजीको इसीलिये हिन्दी भाषियोंने अपने साहित्य-सम्मेलनके आठवें अधिवेशनका सभापति बनाया था।

चम्पारन और खेड़ा

बिहारके चम्पारन जिलेमें सैकड़ों बरससे अँगरेज निलहोंका अधिकार चला आया है। उनके अत्याचारसे सारा जिला पिसता आता था। कोई उनके ऊपर बीतते हुए दुःखोंका देखनेवाला न था। न नेताओंको फुरसत थी, न सरकारको। अन्तमें लोगोंने महात्माजीकी शरण ली। सारा चम्पारन उथल-पुथल हो गया। निलहे गोरे घबरा उठे। जो सरकार युगोंसे कानोंमें तेल डाले पड़ी थी, उसे एक कमीशन बैठाना ही पड़ा, जिसमें महात्माजी भी रखे गये। उसमें अकेले वेही ऐसे गैर-

सरकारी मेम्बर थे, जो सच्चे लोकहितके भावसे भरे थे इसकी जांचोंसे चम्पारनकी प्रजाके बहुतसे दुःख दूर हो गये। कमीशनोंके इतिहासमें यह भी एक अनोखी बात है।

इसके बाद आपने गुजरातमें खेड़ेकी सहायतापर कमर बांधी। अकाल होते हुए भी सरकार मालगुजारी लेनेपर ही तुली थी। महात्माजीने सत्याग्रहका उपदेश दिया। किसानोंने माल असबाब जब्त होने और जेल जानेका भी डर न किया और मालगुजारी बन्द कर दी। गाय बैल जगह जमीन छिन जाने और सजा पानेपर भी लोग सत्याग्रह-व्रतसे न डिगे। लाचार हो सरकारको प्रजाके इच्छानुसार अकालके समयतक मालगुजारीकी वसूली रोक देनी पड़ी। यह सबसे भारी जीत थी। इससे महात्माजीपर सबकी श्रद्धा बढ़ गयी।

महासमर और डायरशाही

संवत् १९७१में युरोपकी लड़ाई छिड़ी। जब भारतपर भी हमला होनेका डर हुआ, सरकारने हिन्दके नेताओं और राजा-महाराजाओंकी एक सभा दिल्लीमें की और सहायताकी अपील की। इसमें महात्माजी भी बुलाये गये। पर पहले दिन यह कहकर आप सभासे उठकर चले आये, कि भारतके वृद्ध नेता लोकमान्य तिलकको न बुलाकर सरकारने बड़ी भूल की है, उसके विरोधमें मैं इस सभाको त्यागता हूं, किन्तु दूसरे दिन बड़े लाटके समझानेपर आये और सहायतापर तैयार हुए। आपने कहा कि जो लड़ाई करना नहीं जानता उसे स्वराज्य पानेका कोई अधिकार नहीं है। साथ ही इस समय देशके कल्याणके लिये सरकारकी मदद करना हमारा कर्त्तव्य है। जहां और नेता केवल सरकारकी तारीफमें स्पीचें ही झाड़कर रह गये, वहां गांधीजीने बेशुमार रंगरूट देकर सरकारकी बड़ी मदद की। वे समझते थे कि मैं यह मदद न्यायके पक्षमें कर रहा हूं।

लड़ाई बन्द होते ही सरकारका रंग बदलने लगा। एक स्वरसे विरोध होनेपर भी देशके राजनीतिक आन्दोलनको सदाके लिये नष्ट करनेका ब्रह्मास्त्र—रौलट ऐक्टके रूपमें—तैयार किया गया। इससे सारे भारतपर राजद्रोह लगता था और पुलीसके हाथमें भलेमानसोंको सतानेका पूरा अख़्तियार मिलता था। छठी अप्रैल १९१९ ईस्वीको इसी अत्याचारी कानूनके विरोधमें महात्माजीने सारे देशमें हड़ताल और उपवासकी आज्ञा दी जिसमें यह बात सारा संसार जान जाय कि भारतवर्ष इस कानूनसे अपनी आत्माका कितना बड़ा अपमान समझता है। सरकारने इस हड़तालको रोकनेकी भरपूर कोशिश की, यहांतक कि दिल्ली पंजाब और कलकत्तेमें गोलियां चल गयीं। कितने ही खून हुए। १३ अप्रैलको जल्यानवाला बागमें जनरल डायरने शान्त जनताको अपने गोलीबारूदसे लगातार दस मिनिटतक भूना। पंजाब भरमें भांत भांतके जुल्म हुए जिनकी तहकीकात कांग्रेसने की। महात्माजी इस जांच-कमिटीके सभापति थे। इस कमिटीने जो ब्यौरा छपवाया है उससे पंजावके हाकिमोंके ब्रिटिश न्यायकी पूरी पोल खुल जाती है और स्वराज्यकी आवश्यकता सोलह आना सिद्ध हो जाती है! महात्माजीकी ही आज्ञासे छठी और तेरहवीं अपरैलको हरसाल उपवास और हड़ताल हुआ करती है।

पंजावके हत्याकाण्डपर महात्माजीने सत्याग्रहका काम रोक दिया था। इसपर पीछेसे जो हंटर-कमेटी बैठी थी उसे सारा दोष सत्याग्रहके सर मढ़ देनेका और ब्रिटिश अत्याचारियोंके काले कामोंपर सफेदी करनेका अच्छा मौका मिल गया। इस कमेटीका पक्ष विलायतके पार्लिमेंटतकने लिया जिससे लोगोंका ब्रिटिश न्यायपर रहासहा विश्वास भी मिट गया। उधर युरोपकी सन्धिने रूमको मित्रराज्योंमें बांट लिया, मुसलमानोंके प्रायः सभी देश हड़प लिये जिससे खिलाफत आन्दोलन भी उठ खड़ा हुआ। इस खिलाफत आन्दोलनके नेता भी गांधीजी ही हुए।

असहयोगकी शान्तिपूर्ण लड़ाई

जब पंजाबमें इतने बड़े हत्याकांडों और बेइज़्ज़तियोंपर भी भारत और विलायत दोनोंकी सरकारोंने न्याय न किया, बल्कि अंगरेजोंने जनरल डायरको खून करनेपर चन्दा करके इनाम दिया और जब रूमके मामलेमें प्रधान मंत्री लायड जार्ज अपने किये हुए वादे भी तोड़ बैठे, तब लाचार हो गांधीजीने असहयोग प्रस्ताव देशके सामने रखा। महात्माजीने उन सभी देशभक्तोंसे, जिनके जी पंजाबके हत्याकांड और तुर्कीके निपटारेसे दुःखी हुए सरकारसे असहयोग करनेकी अपील की। सितम्बर १६२०में इण्डियन-नेशनल-कांग्रेसने एक विशेष अधिवेशन कर इसे बहु-मतसे स्वीकार कर लिया। यह प्रस्ताव सच्चे और झूठे नेताओंकी पहचान करानेवाला है और प्रत्येक देश-भक्तिका दम भरने-वालेको सबसे अधिक त्याग करनेको कहता है। देश त्यागके लिये तैयार हो गया, उपाधिधारियोंने उपाधियां छोड़ीं, वकीलोंने वकालत बन्द की, डाक्टरोंने डाक्टरी छोड़ी। सरकारी नौकरोंने नौकरयां त्याग दीं। सरकारी कचहरियोंमें मामले मुकदमे घट गये। पंचायतें होने लगीं, राष्ट्रीय स्कूल खुलने लगे। विद्यार्थियोंमें हलचल सी मच गयी, वे धड़ाधड़ स्कूल कालिज छोड़ने लगे। कई राष्ट्रीय विद्यालय और विद्यापीठ स्थापित हुए और हो रहे हैं। सरकारने भी दमन जारी कर रखा है, लोगोंको धड़ाधड़ जेल भेज रही है तो भी लोग नहीं मानते, हँसते जेल जाते हैं और उनकी जगह तुरन्त दूसरे आगे बढ़ते हैं। नागपुरमें जो कांग्रेस हुई उसमें एक स्वरसे सारे हिन्दुस्तानने बिना किसी विरोधके असहयोग-सिद्धान्तको मान लिया। कई म्युनिसि-पल्टियोंने जहां बड़े लाटका स्वागत करनेसे इनकार किया था वहां धूमधामसे महात्माजीका स्वागत किया और सरकारी सहायता लेना बन्द कर दिया। यह काम जारी है। निदान महात्मा-

जीके नेतृत्वमें स्वराज्यकी गाड़ी बड़ी शान्तिसे आगे बढ़ी जा रही है।

डायरशाही कलकत्ता रायबरेली आदि अनेक स्थानोंमें दुहरायी गयी। असहयोगकी राहमें रोड़े डाले गये पर आत्मबलकी गाड़ीकी चालमें रुकावट न आयी।

महात्माजीका व्यापक प्रभाव

आज भारतवर्षमें ऐसी बात हो रही है जिसकी कोई आशा नहीं करता था। गांव गांवमें, कोने कोनेमें, महात्माजीका संदेसा बिजलीकी तरह पहुँच चुका है। बच्चा बच्चा जल्यानवाला बाग और महात्मा गांधीको याद करता है। गांवके लोग तो "महात्माजी" "गांधी बाबा" "गांधी महाराज" "गंधारी बाबा" आदि नामोंसे महात्माजीको पूजते हैं, मन्नतें मानते हैं, ईश्वरका अवतार समझते हैं। सैकड़ों चमत्कार महात्माजीके नामपर नित्य सुननेमें आते हैं। महात्माजीके दर्शनोंको सभी तरसते हैं। चरण छूनेको बड़ा भाग समझते हैं। पर महात्माजी बारम्बार कहते हैं कि "भाई मैं साधु वैरागी नहीं हूं, सिद्ध नहीं हूं, साधारण गृहस्थ हूं, बालबच्चोंवाला हूं, राजनीतिको धार्मिक दायरेके अन्दर रखना चाहता हूं। मुझे साधु न समझो, मेरे चरण मत छुओ।" इतनी दुहाईपर भी श्रद्धा नहीं घटती और इस बारेमें लोग उनकी कम सुनते हैं। कर्नल वेजवुडका कहना है कि महात्माजी जरा हाथ उठाकर असीस दें तो लाखों जानें उनपर निछावर हों, पर महात्माजी ऐसे शुद्ध और सच्चे हैं कि इस श्रद्धा और विश्वासपर भी अपनी साधुता किसी तरहपर साबित नहीं करना चाहते।

महात्माजीके सुधारके तरीके बड़े विचित्र हैं और साथ ही अत्यन्त प्रभावशाली हैं। चम्पारनमें एक तालाबके पास ही लोग शौच करके गन्दा कर देते थे। पासके रहनेवालोंकी यह गन्दी आदत छुड़ानी थी। महात्माजी एक दिन चार बजे तड़के उठकर

टोकरी फावड़ा लेकर तालावके पास गये। वहां एक गहरा गड्ढा खोदकर तय्यार किया। जब लोग तालावके पास गन्दा करके उठते, महात्माजी फावड़ा लेकर साफ करनेको पहुँच जाते। बैठनेवाले अत्यन्त लज्जित हो गये। बात मशहूर हो गयी। अब तालाव कभी गन्दा नहीं किया जाता।

आज महात्माजी भारतवर्षके सच्चे हाकिम और बिना मुकुट सिंहासनके राजा हैं। राजनीतिके नाते राम और कृष्णके पीछे महात्माजी ही एक ऐसे पुरुष हुए हैं जिसने सबके हृदयमें जगह कर ली हो। सरकार अपने मतलबसे चाहे असहयोग आन्दोलनको कितनी ही गालियां दे ले पर महात्मा गांधीकी सचाईपर उनके घोर शत्रु भी आक्षेप नहीं करते। उनका रूप शान्ति और दयाको मूर्त्ति है। उनका रहनसहन हदसे ज्यादा सादा है। इन सब बातोंपर भो आज जहां जहां वह पधारते हैं लाखों आदमी उनका प्रेम और भक्तिसे स्वागत करते हैं, वह इज्जत करते हैं जो बादशाहोंको नसीब नहीं हुई। दिल्लीमें जब बादशाहके चचा कनाटके ड्यूक पहुँचे, मातमसराका समाँ था, सारे नगरमें हड़ताल थी, शहर उजाड़ था। दो दिन पीछे महात्माजी पहुँचे तो चांदनीचौकमें लोगोंने कमखावके थानोंसे सड़कोंकी सजावट की। दूकानें आरास्ता थीं, लाखों आदमियोंने स्वागत किया, मालूम होता था कि भारतके सच्चे राजा आज पधारे हैं।

महात्माजीके उपदेश

महात्माजीका जीवन एक जीता जागता उपदेश है। संसारके उपदेश करनेवाले प्रायः कहते ज्यादा हैं, करते कम हैं, पर महात्माजी करते ज्यादा हैं, कहते कम हैं। कितने ही देशके नेता हो गये और हैं जिनकी इज्जत लोग दूरसे ही करते हैं, परन्तु जब उनके पास रहनेका अवसर आता है तो उनका आदर पास आनेवालोंकी निगाहमें घट जाता है। महात्माजीसे जितनी ही

नज़दीकी होती है उतना ही उनके प्रति आदर बढ़ता है। उतना ही हृदयमें पवित्र भावोंका उदय होता है, जान पड़ता है कि हम पवित्र वायुमण्डलमें आ गये। कोई समय था कि वारिस्टरकी वेषभूषा थी, वही रोवदाव था, वही शान थी, वही दौलत और दवदवा था। आज आप एक दीन किसानके वेषमें रहते हैं। कपड़े अत्यन्त सादे खद्दरके, परन्तु साफ सुथरे, भाव भी अत्यन्त सीधा सादा, परन्तु दया और करुणासे भरा। वात खरी सच्ची और सीधी। भोजन अत्यन्त सादा। रोटी दूध, फल आदि। आहार विहार युक्त। ब्रह्मचर्य्य अहिंसा अद्रोह यह तो मानों जीवनके मूल मंत्र हैं। देश और जातिके विविध प्रश्नोंपर वरावर विचार। प्राचीन और भारतीय रीतिनीतिकी पूरी भक्ति। पाश्चात्य रीति नीतिका भरसक वहिष्कार। वकालत और डाक्टरीसे आपको केवल जवानी विरोध नहीं है। आपको वारिस्टरी छोड़े मुद्दत हुई। आपकी रायमें डाक्टरीसे देशको लाभके वदले हानि अधिक हो रही है। खानेपीने आहारविहारमें आदमी अपने मनको वसमें नहीं रखता, वेपरवाईसे जो जी चाहता है कर डालता है, क्योंकि उसे भरोसा रहता है कि हम दवा इलाज करके अच्छे हो जायँगे। सीधी सादी जिंदगी संयमसे वितानेवाला सदा सुखी रहता है। आत्माके ऊपर रोगी शरीरका वोझा नहीं रहता।

धर्म्म, नीति, आचारके सम्बन्धमें महात्माजीके सैकड़ों लेख, सैंकड़ों व्याख्यान हैं। आपके वाक्योंमें शब्दवाहुल्य नहीं होता। वक्ताओंकी तरह नमक मिर्च मसालेकी यहां ज़रूरत नहीं। जितनी वातें कही जाती हैं, वह पहले अच्छी तरह विचार ली जाती हैं, फिर व्यवहारकी कसौटीपर कसकर परख ली जाती हैं कि सच्ची और खरी हैं। यही वात है कि इनके लिये दिलतक सीधी राह होती है। साथ ही, वह वड़े वड़े दंभी जो अपने वचन और कर्म्मको एक समान नहीं रखते,

जिनके स्वभावमें असत्यकी निर्बलता है, जो अनीश्वरवादी हैं, अज्ञानी हैं, स्वार्थी हैं, जो देशके सच्चे भक्त नहीं हैं, उनके हृदय-का कपाट इन वचनोंके लिये वन्द रहता है। परन्तु वह भी महात्माजीके वाक्योंकी सत्यता और शुद्धताकी गवाही देते हैं।

आजकल जितने बड़े बड़े नेता हैं सभी महात्माजीको अपना अगुआ मानते हैं, कांग्रेसका प्रेसिडेंट चाहे जो हो परन्तु देशकी बागडोर इस समय महात्माजीके हाथमें है। परन्तु कोई ऐसा न समझे कि उस जर्जर और दुर्बल शरीरको जिसका आज मोहनदास नाम है कैद करके अथवा नष्ट करके कोई देशके इस भारी आन्दोलनको रोक सकेगा, आज गांधी किसी देह या अस्थिपंजरका नाम नहीं रहा। आज गांधी साढ़े तीन हाथके हड्डी चमड़ेमें बँधे प्राणीका नाम नहीं है। आज गांधी उस दिगदिगन्त व्यापी आदर्शका नाम है जिसका मन्दिर हर भारतीयका हृदय है जिसका रूप विराट् भारतका रूप है, जिसका नाम स्वाधीनताका आत्मसंयमका महामंत्र है, जिसकी सहज लीला सारे भारतमें एकताका प्रचार है। जिसका ध्यान वन्धनसे छुड़ानेवाला है, जिसकी धारणा पूर्ण स्वराज्य है।

महात्मा मोहनदास सरीखे असहयोगेश्वर जहां हों और भारत सरीखा कर्मयोगी तीरन्दाज जहां हो वहां विजयका डंका अवश्य ही वजेगा, धर्मका रथ आगे बढ़ता चलेगा, लक्ष्मी चेरी हो साथ रहेगी।

३० कल कारखाने

पाठक—आप पच्छाहीं सभ्यताको निकाल बाहर करनेकी बात कहते हैं तब तो आप यह भी कहेंगे कि हमें कलकार-खानोंकी बिलकुल ही ज़रूरत नहीं?

सम्पादक—यह प्रश्न उठाकर आपने मेरे घावको हरा कर दिया है। जब मैंने श्रीयुक्त रमेशचन्द्रदत्तकी पुस्तक "हिन्दुस्तानका

आर्थिक इतिहास" पढ़ी मुझे रुलाई आ गयी। फिर जब उसका विचार करता हूं तो मेरा दिल भर आता है। इन कल कारखानोंकी बाढ़ने ही तो हिन्दुस्तानको चौपट किया। मंचेस्टरने हमलोगोंको जो हानि पहुँचायी है। उसका हद हिसाब नहीं है। हिन्दुस्तानकी कारीगरीका प्रायः नाश हो गया, यह मंचेस्टरकी ही करतूत है।

पर मैं भूलता हूं। मंचेस्टरको दोष कैसे दिया जाय? हमलोग वहांके कपड़े पहनने लगे तो मंचेस्टर बनाने लगा। जब मैंने बंगालकी बहादुरीका वर्णन पढ़ा तो मुझे आनन्द हुआ। बंगालमें कपड़ेकी मिलें न थीं तभी लोगोंने फिर असली धंधा पकड़ लिया। बंगाल बम्बईकी मिलोंको बढ़ावा देता है यह ठीक है, पर बंगाल कल कारखानोंको एकदम त्याग देता तो और भी अच्छा था।

कलोंने युरोपको उजाड़ना आरंभ कर दिया है और उसकी हवा हिन्दुस्तानमें भी बह रही है। कलें आजकलकी सभ्यताकी मुख्य निशानी हैं और महापाप हैं, यह तो मैं अच्छी तरह देख रहा हूं।

बम्बईकी मिलोंमें जो मजदूर काम करते हैं वे गुलाम हो गये हैं। उनमें जो स्त्रियां काम करती हैं उनकी दशा देखकर सबका कलेजा थर्रा जायगा। मिलोंके न रहनेसे वे औरतें कुछ भूखों नहीं मरती थीं। यह कलोंकी आंधी तेज हो गयी तो सारा देश विपदके समुद्रमें पड़ जायगा। हिन्दुस्तानकी बड़ी दीन दशा हो जायगी।

मेरी बात मुश्किल सी जान पड़ेगी, पर यह कहना मेरा फर्ज है कि हिन्दुस्तानमें मिलें बढ़ानेकी अपेक्षा आज भी मंचेस्टरको दाम देकर उसका सड़ा हुआ कपड़ा काममें लाना अच्छा है क्योंकि उसके कपड़े काममें लानेसे केवल पैसेही जायँगे। अपने हिन्दुस्तानमें मंचेस्टर बनानेसे अपना पैसा हिन्दुस्तानमें ही रहेगा, पर वह अपनी जान ले लेगा, खून निकाल लेगा, क्योंकि

अपने चरित्रका नाश कर देगा। मिलमें काम करनेवालोंके चरित्रका पता उनसे पूछिये जिन्होंने उसमेंसे पैसे इकट्ठे किये हैं, उनका चरित्र दूसरे पैसेवालोंसे अच्छा होनेकी संभावना नहीं है। अमेरिकाके * राकफेलरसे भारतीय राकफेलर अच्छा होगा, यह समझना भूल है। गरीब हिन्दुस्तान स्वतन्त्र हो सकेगा पर चरित्र खोकर पैसेदार बना हुआ हिन्दुस्तान कभी स्वाधीन न हो सकेगा।

मुझे तो मालूम होता है कि हमें यह मानना पड़ेगा कि अँगरेजी राज्यको टिका रखनेवाले ये धनी ही हैं। उनका स्वार्थ अँगरेजोंके यहां रहनेमें ही है। पैसा आदमीको रंक बना देता है। इसके जोड़की दूसरी वस्तु तो दुनियांमें विषय है। ये दोनों ही विषय जहरीले हैं। इसका जहर सांपके जहरसे भी घातक है। सांप काटता है तो यह शरीर लेकर ही छोड़ देता है, पैसे या विषयका जहर चढ़ता है तब देह, जीव, मन सब देकर भी पिण्ड नहीं छूटता। देशमें मिलें बढ़नेसे खुश होनेकी कोई बात नहीं है।

पाठक—तो क्या मिलें बन्द कर दी जायँ?

सम्पादक—कठिन बात है। जमी हुई जड़को उखाड़ना कठिन होता है। इससे पहलेहीसे काम शुरू न करना अधिक बुद्धिमानी समझी जाती है। मिल मालिकोंकी ओर घृणासे देखनेकी ज़रूरत नहीं। उनपर दया करनी चाहिये। यह संभव नहीं, कि वे एकाएक मिलें छोड़ दें पर हम उनसे प्रार्थना कर सकते हैं कि वे हिम्मत न बढ़ावें। वे भलाईके रास्ते पड़ जायँ तो धीरे धीरे अपना काम घटाते चले जायँ। वे खुद ही पुराने पवित्र चरखे घर घर खड़े कर सकते हैं। लोगोंका बनाया हुआ कपड़ा लेकर बेच सकते हैं।

* इससे बड़ा धनी संसारमें शायद ही कोई हो। इसका जन्म संवत् १८९६में हुआ था। इसने अनुचित रूपसे बहुत धन कमाया है। पर इसने कई बड़ी बड़ी संस्थाओंको दान देकर बड़ा लाभ भी पहुँचाया है। —सं०

अगर वे यह काम न करें तो भी लोग खुद कलके कपड़ेको काममें लाना बन्द कर सकते हैं।

पाठक—खैर, यह तो कपड़ेकी बात हुई। पर कलकी तो अनगिनत चीजें हैं। वे या तो परदेशसे ली जायँ या अपने यहां कलें रोपी जायँ।

सम्पादक—यह बिलकुल सच है कि अपने देवतातक जर्मनीकी कलमेंसे गढ़कर आते हैं। फिर सुई दियासलाई और झाड़ फानूसकी तो कथा ही क्या रही? मेरा तो एक ही जवाब है। जब कलकी चीजें नहीं बनी थीं तब हिन्दुस्तान क्या करता था? वही आज भी करेगा। जबतक हाथसे आलपीनें न बना लें तबतक बिना आलपीनकेही काम चलावेंगे। झाड़ फानूसोंको किनारे कर देंगे। दीयेमें तेल डालकर अपने खेतकी उपजी बत्ती बना कर काम चलावेंगे। उनसे आंखें बचेंगी, पैसे बचेंगे, स्वदेशी रहेंगे, स्वराज्यकी धूनी जगावेंगे।

ये सभी बातें सभी मनुष्य एक ही बार करने लगेंगे या एकही वक्त कितने ही मनुष्य कलकी बनी वस्तुओंका त्याग कर देंगे यह नहीं होगा। अगर यह विचार ठीक है तो ऐसी चीजें मिलती जायँगी जिन्हें हम छोड़ सकते हैं और धीरे धीरे सभी कलकी चीज़ छोड़ देंगे। हमेशा थोड़ी थोड़ी चीजें छोड़ते जायँगे। दूसरे भी ऐसा ही करेंगे। पहले विचार बांधनेका इरादा पक्का करनेकी ज़रूरत है, फिर उसके अनुसार काम करनेकी। पहले एक ही आदमी करेगा। फिर दस, फिर सौ, जैसे खरबूजा रंग पकड़ता है, सभी करने लगेंगे। समझ लीजिये, बात बहुत सहज है। हमें बैठे बैठे दूसरेकी राह देखनेकी जरूरत नहीं। हमें तो फौरन काम शुरू कर देना चाहिये। जो नहीं करेगा उसका मौका निकल जायगा। जो समझ बूझकर भी नहीं करेगा वह दंभी समझा जायगा।

पाठक—ट्रामगाड़ी और बिजलीके लिये क्या कहते हैं?

सम्पादक—इस सवालमें अब कुछ जान नहीं रह गयी। जब हमने रेलोंका ही नाश कर डाला तब ट्रामोंकी तो हकीकत ही क्या? कलें तो सांपोंकी तरह हैं। उसमें एक नहीं हजारों सांप हैं। एकके बाद एक लगे हुए हैं। जहां कलें हैं वहां बड़ा शहर है। जहां बड़े शहर हैं वहां ट्रामगाड़ी और रेलगाड़ी भी हैं। वहां बिजलीको बत्ती भी ज़रूरत होगी। इंगलैंडमें भी गांवोंमें बिजलीकी बत्ती और ट्रामें नहीं हैं, आप यह जानते होंगे। सच्चे वैद्य और डाक्टर आपसे कह देंगे कि जहां रेलगाड़ी ट्रामगाड़ी वगैरह साधन बढ़े हैं वहां लोगोंकी तन्दुरुस्ती बिगड़ी हुई पायी गयी है। मुझे याद है कि एक शहरमें जब पैसेकी तंगी आयी तो ट्राम, वकील तथा डाक्टरोंकी आमदनी घटी और लोग तन्दुरुस्त हुए।

कलोंका मुझे गुण तो एक भी याद नहीं आता। ऐबोंका तो पोथा तैयार हो जायगा।

पाठक—यह कुल लिखी हुई बातें कलकी मददसे छपेंगी उसकी मददसे बेची जायेंगी, यह कलोंका गुण है या अवगुण?

सम्पादक—यह ज़हरसे ज़हर नाश करनेका उदाहरण है, यह कुछ कलोंका गुण नहीं है। कलें मरते मरते कह जाती हैं कि होशियार, खबरदार, मुझसे तुम कुछ लाभ नहीं उठा सकते। कल पुरजोंका पागलपन जिन्हें हुआ है उन्हें ही छापेका लाभ मिलेगा।

पर मूल बात न भूलियेगा। कलें खराब चीज़ हैं इसे मनमें खूब बैठाइये। फिर धीरे धीरे उसे काटिये। प्रकृतिने ऐसा सीधा रास्ता बनाया ही नहीं है कि कोई चीज़ इच्छामात्रसे तुरन्त मिल जाय। कलोंको जब हम बुरा समझने लगेंगे तब चलीही जायेंगी।

—महात्मा गांधी

३१ मनुष्यके अधिकार

मनुष्य समाज और शासन इनका आपसमें जो संबंध है उसके विषयमें हम लिख चुके हैं। शासनकी दो तीन प्रचलित प्रणालियोंका भी हाल थोड़ेमें दे चुके हैं। परन्तु शासनप्रणालीका सबसे अच्छा ढंग कौनसा है, इसपर हमने अभीतक कुछ नहीं कहा, और न युरोप और अमरीकाकी प्रजातंत्र राज्यप्रणालीहीका कुछ वर्णन किया है। इसके पहले कि हम उन विषयोंको छेड़ें, हम यह निहायत ज़रूरी समझते हैं कि मनुष्यके अधिकारोंका थोड़ासा वर्णन कर दें। क्योंकि राजनीति-विज्ञानकी सारी इमारत इन्हीं अधिकारोंकी नींवपर खड़ी है। इसलिये सबसे पहले हम उन्हींके विषयमें कुछ निवेदन करते हैं।

जिस भूमिपर हम रहते हैं, वह किसी खास आदमीकी जायदाद नहीं है। ईश्वरने किसीके नाम पट्टा नहीं लिख दिया है कि इतने बीघा भूमि मैं तुमको देता हूं। यह सबके भोगके लिये है। प्रत्येक मनुष्य इस संसारमें किसी खास उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिये उत्पन्न हुआ है और अपनी शारीरिक अथवा मानसिक शक्तियोंके अनुसार उसकी पूर्त्ति उसपर लाजिम है। मनुष्यको अपनी उन्नतिके लिये दो साधनोंकी सबसे अधिक जरूरत है—प्रथम काम करनेकी स्वतन्त्रता, दूसरे शरीररक्षाके लिये अन्न। इसलिये न्याय यह है कि कोई मनुष्य इनसे वंचित न हो, सबको बराबर मौका इनके ग्रहण और उपयोगका मिले। अब यदि ध्यानपूर्वक विचारें तो मालूम होगा कि सबसे बड़ा साधन और जरूरी वस्तु मनुष्यके लिये अन्न है। यदि अन्न न मिले तो उसकी सभी आशाओंपर ओले पड़ जायँ।

ईश्वरकी कृपासे भूमिकी पैदावार मनुष्यकी जरूरतोंसे अधिक है और यदि मनुष्य प्रकृतिके नियमोंको जानता हो तो वह और भी उपजाऊ हो सकती है। अब प्रश्न यह है कि क्यों फिर लाखों

आदमी हर साल भूखों मरते हैं ? इसका उत्तर स्पष्ट है। जिसके लिये दस बीघा भूमि काफी है, वह दस सौ या दस हजार बीघा भूमिका मालिक बना बैठा है और ज़ो पैदावार उससे होती है उसको अपना समझे हुए है। उसे औरोंको वह तभी देगा यदि उसके बदले उसे रुपया मिलेगा। रुपये पैसेसे-वह अपने ऐश-आरामके सामान खरीदता है। जिन कृषकोंने ज्येष्ठ आषाढ़की धूप सहकर अन्न पैदा किया था वे तो भूखों मरते हैं, हमारा बना बनाया जमींदार मजेमें सुखकी नींद सोता है। यही नहीं, एक और तमाशा देखिये। जिनके पास थोड़ी बहुत भूमि पेट पालनेके लिये है उनके पीछे एक और बला चिपटी हुई है। उन्हें लगान देना पड़ता है और न दे सकनेसे उनके घरद्वार बिक जाते हैं।

इस मनुष्य-समाजका दूसरा परदा उठाकर देखिये। रेलवे कम्पनियोंको हर साल करोड़ों रुपयेका फायदा है। जानते हो यह रुपया कहां जाता है? थोड़ेसे मनुष्योंकी विषयवासना पूरी करनेके लिये। यह करोड़ों रुपयेका फायदा किनकी मेहनतका फल है?—उन मजदूरों और कारीगरोंकी—जो रेलके दफ्तरों और स्टेशनोंपर काम करते हैं। उन्हें सिर्फ उतना ही खानेको दिया जाता है जितनेसे उनकी शरीररूपी गाड़ी चल सके। अकालके कारण हजारोंको उतना भी नहीं मिलता। और इन लोगोंके पसीनेसे कमाया हुआ रुपया कहां जाता है? उनके पास जो एक रातके जलसेमें लाखों रुपये फूंक देते हैं! ये कर्मचारी एक प्रकारके दास हैं। आप शायद कहेंगे कि दास कैसे? कोई इन्हें जबरदस्ती थोड़े ही नौकर रखता है। अपनी मरजीसे ये लोग नौकरी करते हैं। उत्तरमें हम कहेंगे कि आप भूल करते हैं। अपनी मर्जीसे लोग नौकरी नहीं करते, पेटके लिये मजबूर होकर इन्हें नौकरी करनी पड़ती है।

हम पहले ही कह चुके हैं कि मनुष्य जीवनके लिये अन्न सबसे प्रधान चीज है। अब हम एक दम आगे बढ़कर यह कहते

हैं कि मनुष्यकी शारीरिक सामाजिक और आत्मिक उन्नतिका प्रश्न "अन्न" इस एक शब्दकी महिमा समझनेसे हल हो सकता है। फकीरसे लेकर बादशाहतक सभी इसके मोहताज हैं। और इस जादूकी छड़ी अन्नके प्रभावसे अन्त्यज ब्राह्मण हो सकता है और ब्राह्मण अन्त्यज। पक्षपातसे अन्धे होकर हम चाहे इस सत्यसिद्धान्तकी महिमा न समझें, पर नीतिकारके इस वाक्यके अन्दर दुनियाभरकी सचाई भरी हुई है—

बुभुक्षितः किं न करोति पापम् क्षीणा नरा निष्करुणा भवंति"

अर्थात् पेटकी ज्वाला बुझानेके लिये मनुष्य कौन कौन पाप नहीं करता? भूखे मनुष्य दया माया और करुणा सभीसे हाथ धो बैठते हैं। लोग जानते हैं कि अमुक नौकरी करनेसे हम आत्माके अनुकूल काम न कर सकेंगे, पर जीवननिर्वाहका दूसरा उपाय न देखकर बेचारोंको लाचारीसे वही करना पड़ता है। अतएव आत्माकी उन्नति चाहनेवालोंके लिये सबसे पहले भोजनकी व्यवस्था करनी चाहिये।

मनुष्य-समाजके सभ्योंको मनमाना काम करनेकी स्वतंत्रताका होना बहुत जरूरी है। प्रत्येक मनुष्य अपनी योग्यता या रुचिके अनुसार जिस कामको पसन्द करे उसीको करनेका उसे हक है। यह नहीं कि हमने नियम कर दिया कि अमुक अमुक लोग चमारका काम करें। बस हमारे कहनेसे वे उस पेशेको अख्तियार कर लें। यदि यह बात है तो उनको भी हमारे ऊपर नियम पास करनेका वैसा ही हक है जैसा कि हमें उनपर है। इससे समाजको एक सूत्रमें बद्ध करनेके लिये न्याय यह है कि सबको अपना अपना काम करनेके लिये समान स्वतंत्रता मिले, ताकि किसीको शिकायतका मौका न रहे।

मनुष्यका दूसरा अधिकार अपने स्वत्वकी रक्षा करना है। यदि कोई किसीका स्वत्व हरण करने आवे तो उसे तत्काल ही अपनी रक्षा करनी चाहिये अतएव रक्षाके सब साधन उसे मिलने

उचित है। जो अपने स्वत्वकी रक्षा नहीं कर सकता उसे जीता ही मुर्दा समझना चाहिये।

तीसरा अधिकार अपने श्रमसे पूरा लाभ उठाना है। बेगार पकड़कर कोई किसीसे काम नहीं ले सकता। जितनी मेहनत हमने किसी काममें की है उसीके अनुसार हम मजदूरीके मुस्त-हक हैं। जिस खेतमें हमने महीनों मेहनत करके फसल तैयार की है वह फसल हमारी ही है, महाजन या जमीन्दारकी नहीं। हां, कुछ कर जरूर देंगे, परन्तु समाजको हमारी रक्षाका जिम्मा लेना होगा। यदि हम दस घंटे किसी कारखानेमें काम करते हैं तो कारखानेकी आमदनीके मुताबिक मजदूरीके हम हकदार हैं। यह नहीं कि हमें तो आठ आने रोज मिलें और कारखानेका मालिक हजार रुपये रोज ले। आप शायद कहेंगे कि कारखानेके मालिकको अधिक आमदनी हुई सो इसलिये कि कारखाना उसका है। हम कहेंगे आमदनीके दो उपाय हैं—श्रम और पूंजी। ये दोनों एक दूसरेपर निर्भर हैं। कारखानेका स्वामी विना मज-दूरोंकी मेहनतके कारखाना चला ही नहीं सकता, और न मजदूर ही उसके विना अपना गुजारा कर सकते हैं। अतएव न्याय यह है कि जो आमदनी कारखानेसे हो वह मुनासिब तौरसे दोनोंमें बांट दी जाय।

चौथा अधिकार—विद्याप्रेमियोंसे पूरा लाभ उठाना है। किसी बालकको पाठशालासे इसलिये निकाल देना कि वह बढ़ई या और कोई पेशा करनेवालेका लड़का है, अन्याय है। सभी पेशे मनुष्य-समाजके लिये उपयोगी हैं। विद्या मनुष्यकी उन्नतिका एक साधन है। इसलिये समाजके प्रत्येक सभ्यको विद्योपार्जन करना चाहिये। अज्ञानी और मूर्ख सभ्योंसे समाजहीकी हानि है। शिक्षाप्रणालीका ढंग ऐसा होना चाहिये कि एक भी मनुष्य विद्यासे वंचित न रहे।

पांचवां अधिकार धर्मकी आजादीका होना है। मनुष्य चाहे

जैसे विचार रखे—ईश्वरको माने चाहे न माने, मूर्त्तिपूजा करे चाहे न करे, ईसाई हो या मुसलमान—सबको अपने सिद्धान्तोंकी स्वतंत्रता देनी उचित है। इसके बिना सत्यासत्यका निर्णय नहीं हो सकता, और मनुष्य क्षुद्राशय हो जाते हैं। युक्तिके बलसे हम दूसरोंको अपने विचारोंका बना सकते हैं, परन्तु जबरदस्ती करनेका हमें हक नहीं है।

यों तो मनुष्यके अधिकार बहुतसे हैं और उनकी लंबी चौड़ी व्याख्या हो सकती है, परन्तु हमने मोटी मोटी बातोंको संक्षेपमें लिख दिया है।

—स्वामी सत्यदेव

३२ महात्मा टालस्टाय

टालस्टाय रूस देशके निवासी थे। पर वे सारे संसारके लिये उत्पन्न हुए थे। अत्यन्त देशभक्त होनेपर भी उनका प्रेम विश्वजनीन था। पृथ्वीपर जितने देश हैं और जहां पद-दलित जन-समूह दासत्वसे छुटकारा पाकर स्वतन्त्रता प्राप्त करनेकी चेष्टा कर रहा है उन सबसे टालस्टायकी सहानुभूति रहती थी। उनका ध्यान मनुष्यकी उन्नतिके केवल एक ही पगपर नहीं रहता था। वे धर्मनिरीक्षक, समाजसंशोधक, राजनीतिज्ञ, योद्धा और तत्ववेत्ता थे। अपने विचारोंको उपन्यास, और अन्य प्रकारके निबन्धोंद्वारा प्रकाशित करते थे और उन विचारोंपर स्वयं भी चलते थे। ऐसा करनेमें उनको अनेक कष्ट हुए। उनके कुटुम्बी उनसे अप्रसन्न रहते थे। राजाका क्रोध कभी कभी उचित सीमाका उल्लंघन कर जाता था, पर दृढ़प्रतिज्ञ टालस्टाय अपने सिद्धान्तोंसे विचलित न हुए। ऐसे महानुभावका जीवनवृत्तान्त मनुष्यमात्रके लिये शिक्षाप्रद है, विशेषकर हमारे देशके लिये कि



जो प्रायः उन्हीं दुःखोंसे पीड़ित हैं कि जिनके दूर करनेके लिये यह महात्मा अपना तन मन धन लगाते थे।

टालस्टायका जन्म संवत् १८८५ विक्रमीमें जो रूसकी प्राचीन राजधानी मास्कोसे प्रायः साठ कोसपर यास्नूया पोलयाना नामक स्थानमें हुआ था। जब इनकी अवस्था तीन वर्षकी थी तब ही

इनकी माताका, और नव वर्षकी अवस्थामें इनके पिताका, देहान्त हो गया। इनके कुटुम्बके मर्द सेनाविभागमें सरकारी नौकरी करते थे और उनमेंसे अनेक विख्यात योद्धा भी थे। पिताके मरनेपर इनकी चाचीने इनको पाला। यह स्त्री रात दिन संसारके सुखभोगमें लीन रहती थी। प्रतिदिन उसके घर दावतें हुआ करती थीं, खेलतमाशे होते थे। काज़ान नगरमें जहां वह रहती थी, प्रतिदिन भोज हुआ करते थे। टालस्टाय भी बाल्यावस्थामें इनमें शरीक होते थे। हँसी दिल्लगी देखते थे। पंद्रह वर्षकी अवस्थामें इनका नाम उस नगरके विश्वविद्यालयमें लिखवाया गया। पढ़नेमें इनका मन नहीं लगता था। इन्होंने विश्वविद्यालयमें भी जाकर आमोदप्रमोदके उपाय सोचे और अनेक विद्यार्थियोंको अपना साथी बनाया। अब इनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। बाप दादेकी जायदाद काफ़ी थी। ज़मींदार थे। समझते थे कि चिन्ता काहेकी है, पढ़ना लिखना रुपया कमानेके लिये है, रुपयोंका अभाव तो है ही नहीं। प्रतिष्ठा धनसे होती है, सोचा कि चलकर अपनी ज़मींदारीमें रहें। पढ़ना लिखना छोड़ ज़मींदार हुए। कभी कभी काश्तकारोंकी अवस्था देख दया आती, परन्तु खेलकूदसे फ़ुरसत कहां? कभी शिकारको निकल गये, कभी महीनों जुआ ही हो रहा है। नाच देखना विशेष प्रिय था। फल यह हुआ कि आमदनीसे ज्यादा खर्च होने लगा। ऋण बढ़ गया। घर रहना कठिन हो गया। काफ पर्वतपर भागे और वहां एकान्तमें एक कुटी बनाकर रहने लगे। तेईस वर्षकी अवस्थामें सेनाविभागमें नौकरी कर ली। कुछ लिखना-पढ़ना भी आरम्भ किया। इसी समय क्रिमियाका महायुद्ध आरम्भ हुआ। उन्होंने अपने देशकी ओरसे बिना वेतन स्वेच्छासैनिक होकर लड़ना आरम्भ किया। लड़नेमें इतनी दक्षता दिखलायी कि सेवैस्टोपोलके पहाड़ी गढ़की सेनाके सेनापति हो गये। इसी स्थानपर इन्होंने सेवैस्टोपोलकी लड़ाईकी

कहानियां लिखीं। इस पुस्तकका विलक्षण प्रभाव पड़ा। राजाकी आज्ञा हुई कि इनका लड़ाईसे छुटकारा करके इनसे प्रार्थना की जाय कि युद्धका एक वृहत् वृत्तान्त लिखें। इस बीचमें ये रूसकी राजधानी पेट्रोग्राड पहुँचे, जहां इनका अत्यन्त मनोहर स्वागत हुआ। सब प्रकारके स्त्रीपुरुष इनके दर्शनोंको आये। नगरमें बड़ा जोश था। जिधर देखिये, इन्हींकी चर्चा थी। कहां तो एकान्तवास करनेकी इच्छा थी और कहां देशके नेता हो गये। थोड़े दिनोंसे टालस्टायने फ्रान्स देशके विख्यात लेखक, सुधारक और तत्ववेत्ता रूसोके ग्रन्थोंका अवलोकन आरम्भ किया था। रूसोके ग्रन्थ विलक्षण हैं। इनमें स्वतन्त्रता और उन्नतिके मूलमन्त्र लिखे हैं। इनमें शिक्षाके प्रचारका उपदेश है। टालस्टायके जीवनके आदर्शको इन ग्रन्थोंने बदल दिया। टालस्टायने जो पुस्तकें लिखी हैं उनपर रूसोके उपदेशोंका स्पष्ट प्रभाव मालूम होता है। इन दिनों रूस देशमें गुलामीकी प्रथा थी। ज़मींदार काश्तकारोंसे बेगारीका काम लेते थे। कामके बदलेमें कुछ वेतन नहीं देते थे। इस दुर्दशाको टालस्टायने देशके लिये श्रेयस्कर नहीं समझा। उन्होंने इसी विषयपर उपन्यास लिखने आरम्भ किये। स्वयं अपनी जमींदारीमें कृषिकारोंसे सुन्दर व्यवहार आरम्भ किया। उनके लिये पाठशालाएं खोलीं। स्वयं उनमें इंजीलका गाना, इतिहास इत्यादि पढ़ाना आरम्भ किया। एक पाठशालामें सफलता होनेपर कई और पाठशालाएं खोलीं। चारों तरफसे लोगोंने विरोध करना आरम्भ किया। लोग कहने लगे, सब लोग पढ़ जायँगे तो खेती कौन करेगा, मज़दूर कहांसे मिलेंगे। टालस्टायका मत था कि प्रत्येक बालक, चाहे वह किसी अवस्थामें उत्पन्न हुआ हो, शिक्षा प्राप्त करनेका अधिकारी है। राजा और धनाढ्य लोगोंका कर्त्तव्य है कि वे जातिके बालकोंकी शिक्षाका प्रबन्ध करें। मनुष्यमात्रके लिये जैसे नग्न अवस्थाको ढकनेके लिये वस्त्रकी आवश्यकता है उसी प्रकार,

अपनी अज्ञताको दूर करनेके लिये विद्या प्राप्त करनेकी आवश्यकता है। परन्तु अपने मतके प्रचारमें वे अकेले ही थे। लाचार होकर उनको अपने खोले हुए स्कूल बन्द करने पड़े। परन्तु उनका यह मत दृढ़ होता गया कि उच्च श्रेणीके धनाढ्य पुरुष उन लोगोंकी ओर अपना कोई कर्तव्य नहीं समझते जो निर्धन होनेके कारण उनके अधीन हैं। इस समय उन्होंने जो उपन्यास लिखे वे इसी मतका प्रतिपादन करते हैं। इन ग्रन्थोंका बड़ा आदर हुआ। युरोपकी अनेक भाषाओंमें उनके अनुवाद हुए। परन्तु इन ग्रन्थोंके कारण उनको राजा और जमींदारोंकी तरफसे बहुत कष्ट पहुँचाये गये। उनकी पुस्तकोंका छापना बन्द किया गया। उनके मित्रोंको दंड दिया गया जिसमें उनके साथ देनेवाले कम हो जायँ। उनकी चिट्ठियां चोरीसे पढ़ी जाने लगीं। उनके पीछे डिटेक्टिव छोड़े जाने लगे। इसके पूर्व उनका विवाह हो चुका था। अब उनके मनमें समायी कि धन और जायदाद एक व्याधि है। चारों तरफ लोग दुःखी हैं। सैकड़ों स्त्रीपुरुष बच्चे भूखों मरते हैं। हमको यह अधिकार नहीं कि हम तो धनवान हों और ऐसा भोजन करें और ऐसे वस्त्र पहनें कि जो मनुष्य-जीवनके निर्वाहके लिये अत्यावश्यक नहीं और हमारे चारों ओर ऐसे लोग हों कि जिनको शरीर-रक्षाके निमित्त आवश्यक अन्नवस्त्र भी न मिले। इसी विचारसे उन्होंने यह ठानी कि अपनी सब सम्पत्ति सर्वसाधारणको बांट दें। यह सुन कर उनकी स्त्री और बच्चे बड़े घबराये और उन्होंने न्यायालयकी शरण लेनेका विचार किया। इससे टालस्टाय दब गये और जो कुछ था अपने कुटुम्बको दे आप निर्धनकी नाईं रहने लगे। एक कुटी बना ली। स्वयं खेती करने लगे। मांस-भोजन परित्याग किया। जो मिल जाता खा लेते और पहन लेते। किसी प्रकारका व्यसन नहीं रखा। खेती करना और पुस्तकें लिखना। संवत् १८३७में रूस देशकी मनुष्यगणना हुई। उसमें इनको भी

कुछ काम मिला। इस कामके करनेमें इन्होंने सर्वसाधारणकी सामाजिक और आर्थिक अवस्थाकी खूब जांचपड़ताल की। इस समयकी उनकी जो पुस्तकें हैं उनमें सर्वसाधारणकी अवस्थाका बहुत अच्छा वर्णन है। उनकी पुस्तकें प्रायः कहानियोंके रूपमें होती थीं। बहुतसी कहानियां उन्होंने शराबकी बुराइयोंके वर्णनमें लिखीं। इसके कुछ वर्षोंके अनन्तर रूस देशमें बड़ा अकाल पड़ा। उस समय टालस्टायकी दीनवत्सलताको जिन लोगोंने अपनी आंखोंसे देखा था उनका लिखा हुआ वर्णन पढ़कर महान् पुरुषोंके उच्च लक्षणोंका अनुभव होता है। टालस्टाय और उनके कुटुम्बी मिलकर दीनोंको अपने हाथसे खिलाते थे और वस्त्र पहनाते थे। अपनी जमीन्दारीकी सारी आय उन्होंने ग़रीबोंको अर्पण करनी आरम्भ की। स्वयं भी वही भोजन करते कि जो कंगालोंको खिलाते। टालस्टायके धार्मिक भावका उज्ज्वल रूपसे प्रादुर्भाव तब होता था जब वे दुःखित पीड़ित पद्-दलित लोगोंको देखते थे। उस समय उनके चित्तमें ऐसे लोगोंके लिये दया, और जिनके कारण संसारमें दुःख पीड़ा और अन्याय फैलता है उनके लिये अत्यन्त क्रोध उत्पन्न होता था। ऐसे धार्मिक भावोंका वर्णन करनेमें टालस्टायकी लेखनी बड़ी प्रभावशाली हो जाती थी। उनके वाक्य अद्भुत आदर्शोंका परिचय देते थे। अब टालस्टायके चित्तमें वानप्रस्थाश्रममें प्रवेश करनेकी इच्छा हुई। परन्तु इसमें कई कठिनाइयां प्रतीत हुईं। घरवालोंका झगड़ा, लोगोंका मिन्नत करना और समझाना कि घर बैठे ही संसार त्यागा जा सकता है, जल्दी क्या है, आवश्यकता क्या है, इत्यादि। इस समयका लिखा हुआ एक पत्र जो इन्होंने अपनी स्त्रीके नाम लिखा था अब प्रकाशित किया गया है। उसमें उन्होंने, अन्य बातोंके अतिरिक्त यह वाक्य लिखा है, "मुख्य बात यह है कि प्राचीन आर्योंकी नाईं जो साठ वर्षकी अवस्थाके निकट जंगलमें चले जाते थे और सच्चे धार्मिक पुरुषोंके समान अपना

अन्तिम समय ईश्वरकी आराधनामें बिताते थे न कि खेल और गप्पोंमें, मेरी भी अपने अस्सी वर्षमें यह प्रबल इच्छा है कि मुझे शान्ति प्राप्त हो, एकान्त मिले और मेरे जीवनके कार्य और मेरे विश्वासमें एकता हो।"

कई वर्षोंके कोलाहलके पीछे अन्तमें उन्होंने घर छोड़ ही दिया। बयासी वर्षकी अवस्थामें पीठपर एक गठड़ी डाली और जंगलकी राह ली। गठड़ीमें दो तीन आवश्यक चीजें थीं। परन्तु घर छोड़े थोड़े ही दिन हुए थे कि एक सरायमें उनको ज्वर आया। यह समाचार पाते ही उनके घरके लोग उनके पास पहुँचे। घरवालोंकी ओर देखकर उन्होंने कहा कि, "संसारमें अनेक दुःखी पड़े हैं, उनके पास क्यों नहीं जाते और उनसे सहानुभूति क्यों नहीं प्रगट करते ?" ये ही उनके अन्तिम वाक्य थे। संसार भरमें मृत्युके समाचार पहुँचे। जिस स्थानका नाम भी लोग नहीं जानते थे, वहां सहस्रों आदमियोंकी भीड़ इनके दर्शनोंको पहुँचने लगी। तारपर तार आने जाने लगे। इस प्रकार संवत् १९६७ की शरद् ऋतुके अन्तमें संसारका एक विलक्षण पुरुष मनुष्य शरीरके कर्तव्योंका अद्भुत उदाहरण हम लोगोंको देकर चल बसा। इनका जीवनचरित्र सिद्ध करता है कि प्राचीन आर्य्योंके सिद्धान्त इस समयमें भी कार्य्यमें परिणत हो सकते हैं। टालस्टायको आर्यसिद्धान्तोंसे प्रेम था। वे गीता और उपनिषदोंका पाठ किया करते थे। आर्यग्रन्थोंके पढ़नेका उपदेश संसारीमात्रको दिया करते थे। उन्हें भारतवासियोंसे प्रेम था। उनके दुःखसे दुखी और उनके सुखसे सुखी होते थे। उन्हें ईसाई धर्ममें विश्वास नहीं था। ईसाको वे एक महापुरुष मानते थे, परन्तु ईश्वरका लड़का नहीं। उनका सिद्धान्त था कि हमारा दैनिक जीवन ऐसा होना चाहिये कि हमलोग सर्वदा ईश्वरकी इच्छाके अनुसार चलें। मन्दिरों और गिरजाघरोंमें ईश्वर नहीं मिलता। यह कहा करते थे कि जब कभी अच्छे

काम करते हुए कोई सताया जाय तो उसको बरदाश्त करना चाहिये। बुरे आदमियोंका सामना नहीं करना चाहिये परन्तु अपने सिद्धान्तोंपर दृढ़ रहना चाहिये।

—रामनारायण मिश्र

३३ स्वार्थ और राजनीति

न्याय और अन्यायके बीचमें बहुत ही सूक्ष्म भेद है। यदि किसी कामको एक व्यक्ति करे तो वह अन्याय कहाता है और वही काम समस्त राष्ट्र करे तो वह न्याय हो जाता है। यदि एक पुरुष अपने पड़ोसीके घरको लूट ले, या अन्य उपायोंसे उसकी सम्पत्तिका हरण कर ले तो मनुष्यसमाज उसके साथ कोई सामाजिक व्यवहार नहीं करती। वह मनुष्य इतनी घृणाकी दृष्टिसे देखा जाता है कि मानों उसके साथ रहना नीच वृत्तिवाले मनुष्यके साथसे भी बुरा हो। इससे विपरीत जब एक देशके कुछ लोग अन्य देशके भोले भाले लोगोंपर आक्रमण करते हैं तब उस देशके लोग विजयी बहादुर पराक्रमी तथा अन्य सुन्दर सुन्दर विशेषणोंसे विभूषित किये जाते हैं। अपने पड़ोसीका घर लूटनेवालेको समाज कायर नीच तथा मनुष्य जातिका शत्रु समझेगी परन्तु विजयिनी जातिकी तलवारकी चमकसे अन्यायका न्याय बन जाता है तथा कायरता वीरतामें, नीचता सज्जनतामें और मनुष्य जातिकी शत्रुता संसारसुधारके महान् उद्देशमें परिणत हो जाती है। अतएव मनमें यह विचार आ सकता है कि, संसारमें ऐसी विशृङ्खलता क्यों है।

कोई कुछ भी कहे, हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि संसार स्वार्थके सूत्रमें बँधा हुआ है। कहा जाता है कि अमुक जातिके निकट-सान्निध्यसे अमुक जातिका उत्थान हुआ। परमेश्वरने अमुक जातिको केवल रक्तपात और अन्याय रोकनेको भेजा। मृदंगके मुँहपर आटा लगानेसे जिस प्रकार उसकी आवाज बढ़

जाती है उसी प्रकार जिन लोगोंके मुँहमें विजयिनी जातिने स्वार्थका आटा लगा दिया है वे लोग ऊपर कहे अनुसार दुरंगी रागिनी अलापने लगते हैं। यदि स्वतंत्रतापूर्वक विचार किया जाय—अपने लाभालाभकी परवा न की जाय—तो प्रत्येक विचारशील हृदयसे यह एक ही आवाज निकलेगी कि संसार स्वार्थसूत्रसे बँधा हुआ है और जिसमें मनुष्यका स्वार्थ होता है उसी विचारको वह सर्वोपरि समझने लगता है।

इतिहासभक्तोंका कथन है कि प्रजाके सुभीतेके लिये राजाकी सृष्टि हुई। जब दस पांच लोग एक जगह रहने लगे तब कार्यकी सुव्यवस्थाके लिये उनको किसी मुखिया या राजाकी आवश्यकता हुई। जो व्यक्ति बलवान् होता था वही मुखिया बन सकता था। धीरे धीरे यही मुखिया किसी और बड़े बलवानके अधीन हुए, तथा समयानुसार राजवंशकी परम्परा स्थापित हो गयी। राजाका अर्थ महाकवि कालिदासने रघुवंशमें इस तरह बतलाया है— "प्रकृतिरंजनात् राजा" (४ श्लो०। १२) अर्थात् जो प्रजाको आनन्दमें रखे वही राजा है। अन्य देशोंके नैतिक ग्रंथोंमें भी राजाका यही कर्त्तव्य बतलाया गया है। ऐसा होनेपर भी राजाके कर्त्तव्योंके साथ देश जीतनेकी लालसा भी संसारके आरंभसे चली आ रही है, यहांतक कि हमारे भारतवर्षके कुछ राजनीतिज्ञ तो "संतुष्टाश्च महीभुजः" अर्थात् संतुष्ट राजा नष्ट हो जाते हैं— इस मंत्रसे यह कहते हैं कि राजा हमेशा अपना राज्य बढ़ाता रहे। संसारके सारे संसारी लोग यही करते आये हैं। यह स्वार्थ नहीं तो और क्या है? मनुष्यकी स्वार्थबुद्धि देशोंके आक्रमणों और अन्य देशोंके धनजन लूटनेपर ही संतुष्ट नहीं होती परन्तु वह अपनेसे कम बलवाले प्राणीपर, चाहे वह मनुष्य भले न हो, सदासे अत्याचार करती आयी है। शहदके लिये मधुमक्खियोंको मारना तथा रेशमी वस्त्रोंके लिये रेशमके कीड़ेको उबालना दो साधारण उदाहरण हैं। क्या आवश्यकता थी कि मनुष्य बेचारी

परिश्रमी मधुमक्षिकाओं तथा रेशमके कीड़ोंका अन्न और वस्त्र छीन ले? इसका उत्तर एक यही हो सकता है कि "मनुष्यकी स्वार्थबुद्धि बड़ी प्रबल है।" संसारके सब जीवोंमें अपनेको श्रेष्ठ समझनेवाले मनुष्यको इस बातपर लज्जित होना चाहिये।

राज बढ़ाना राजाका एक कर्त्तव्य बतलाया गया है यह माना, तथापि श्रेष्ठ राजा लोग राज्यवर्द्धनके स्थानमें कीर्त्तिवर्द्धन ही किया करते थे। भारतके सूर्यवंशके राजा प्रजापालन तथा कीर्त्तिवर्द्धनके तत्त्वको प्रत्यक्ष कार्यक्षेत्रमें लानेवाले ज्वलंत उदाहरण हैं। रघुवंशके चतुर्थ सर्गमें रघुराजाओंके राज्यविस्तारका वर्णन है। जब रघु अपने राज्यपर अच्छी तरह प्रतिष्ठित हो गया तब वह पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर चारों दिशाओंमें देश जीतनेके लिये गया। यहां यह भी कह देना अयुक्त न होगा कि रघु केवल भारतवर्षीय नृपतिसमूहोंको ही जीतनेके लिये नहीं निकला था, किन्तु वह पारसीक (ईरान) काम्बोज इत्यादि देशोंको जो आज भारतीय सीमान्तर्गत नहीं हैं जीतनेके लिये निकला था। सब देशोंको जीतनेके पश्चात् वह सम्राट् माना गया और अन्य पराजित नृपति सामन्त कहलाये। सम्राट्का कर्त्तव्य होता था कि वह विश्वजित नामक यज्ञ करे। इस यज्ञमें सब सामन्त बुलाये जाते थे तथा विजयी सम्राट्का सर्वधनकोष इस यज्ञमें दान कर दिया जाता था, अर्थात् सम्राट्की शक्तिकी भयङ्करता इस प्रकार कम कर दी जाती थी। जो सामन्त लोग जाते थे उनके राज्य लौटा दिये जाते थे। शर्त केवल यह थी कि वे सम्राट्की अधीनता स्वीकार करें। कालिदासने एक जगह कहा है—

"आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव"

(रघु० ४।८६)

अर्थात् "बादलोंकी तरह सत्पुरुषोंका संग्रह दानके लिये ही होता है।" देश जीतनेकी लालसासे नहीं, धन बढ़ानेकी इच्छासे

नहीं, वस एक कीर्त्तिवर्द्धनकी अभिलाषासे ही आर्यनृपतिगण अन्य देशोंपर आक्रमण करते थे। यहां यह प्रश्न हो सकता है कि जब धन या देशकी सीमा बढ़ानेकी इच्छा नहीं थी तो ये नृपतिगण वृथा जीवहत्या कर अपनी कीर्त्तिध्वजाको नरक्तके धब्बोंसे क्यों अपवित्र करते थे? इसका उत्तर सरल है। मनुष्य-स्वभावमें स्वार्थबुद्धिकी मात्रा अधिक है। यदि किसी व्यक्तिके स्वार्थको सीमाबद्ध करनेवाली कोई अन्य शक्ति न हो तो वह (सिकन्दर) अलक्षेन्द्रके समान संसारविजयकी अभिलाषा करेगा तथा अपनी जाति मनुष्यजातिको संकटके अथाह समुद्रमें डुबा देगा। ऐसे पुरुषोंकी शक्तिका दमन करनेके लिये किसी अधिक शक्तिशाली व्यक्तिकी आवश्यकता रहती है। यह व्यक्ति राजा पदको शोभित करता है तथा अपनी शक्तिको लोकहितके कार्यमें खर्च कर देता है। ऐसे राजाओंका कर्त्तव्य होता है कि संसार-कार्यकी सरलताके लिये वे अत्याचार करनेकी शक्ति भी न रखें।

भारतवर्षीय राजाओंके लिये आर्योंका यही आदर्श रहा है। भारतवर्षके राजनैतिक अखाड़ोंमें कई वीरोंने मल्लयुद्ध किया, किन्तु आक्रमणकारियोंमेंसे एक भी विजेता जातिने भारतीय आदर्शको पूरा नहीं किया। पुराने आक्रमणकारी तो जनहिंसा स्त्री-छल पशुता इत्यादिका ठेका लेकर ही भारतवर्षमें आये थे। उनके पश्चात् जिनके चरण भारत भूमिपर टिके हैं उन्होंने भी अपने स्वार्थके सामने "राजशक्तिके आदर्श"का कुछ भी विचार नहीं किया। इसलिये किसीको दोष देनेकी आवश्यकता नहीं। यह मनुष्यस्वभाव है। मुँहसे चाहे उपकारकी लम्बी गप्पें निकाली जावें, किन्तु हृदयका तार सदैव स्वार्थकी ही मधुर ध्वनि निकालता है। आश्चर्य और खेद उन दुम हिलानेवालोंपर है जो इन बातोंको नहीं समझते। और समझें भी कैसे? वे भी तो मनुष्यस्वभावके अनुसार स्वार्थमें लिप्त हैं।

—इन्द्र

३४ कार्क नगरके मुखिया महात्मा मेक्स्विनी

संवत् १९७७ सौर कार्त्तिकके प्रातःकाल ५ बजकर २० मिनटपर जिस देवपूज्य आत्माने स्वर्गलोकको प्रयाण किया वह संसारके इतिहासमें एक ऐसा आदर्श उपस्थित कर गयी जिसने कवियोंकी त्याग सम्बन्धी चरम कल्पनाओंको भी प्रत्यक्ष कर दिखाया है। जिस युगमें छब्बीस वर्षका एक नवयुवक स्वदेशके लिये हँसते हँसते इस प्रकार बलि हुआ उस युगपर सत-युग सौ वार निछावर। संकल्पकी दृढ़ता और सुनिश्चित त्याग-का जैसा उदाहरण महात्मा मेकस्विनीने उपस्थित किया है वैसा उदाहरण और कहां मिलेगा? धन्य आयर्लैंड! धन्य बीसवीं शताब्दिका यह वर्ष! मेक्स्विनीकी देशभक्ति और उनकी त्यागेच्छा क्षणिक आवेश-प्रेरित न थी बल्कि वह उनके जीवनकी सहचरी थी। मेक्स्विनी ग्रेजुएट थे। उनमें कवित्वकी झलक थी। और वे एक सिद्धान्तवादी दार्शनिक थे। वे कवि और सुलेखक थे। उन्होंने कुछ राष्ट्रीय कविताएं तथा गीत भी लिखे थे। परन्तु उनका समस्त जीवन स्वदेश-सेवाके महापापके कारण धर-पकड़में ही बीता। अतः उनकी काव्य और लेखनसम्बन्धिनी प्रतिभाका पूर्ण विकाश न हो पाया। पहली बार वे संवत् १९७३-के आरंभमें पकड़े जाकर वेकफ़ील्ड भेज दिये गये। परन्तु कुछ दिन पीछे छोड़ दिये गये। संवत् १९७३के माघमें वे फिर पकड़े गये और इंगलैंड भेज दिये गये। कुछ दिनों पीछे वे वहांसे भी मुक्त कर दिये गये। दोनों बार न तो उनपर किसी प्रकारका अभियोग ही लगाया गया और न उन्होंने अपने छुटकारेके लिये किसी प्रकारकी क्षमा-प्राथना या शर्त्त ही की। कार्त्तिक संवत् १९७४में वे फिर पकड़े गये और इस बार भड़कानेवाली वक्तृता देनेके अपराधमें उन्हें नौ मासकी क़ैदकी सज़ा मिली। परन्तु अस्वस्थ होनेके कारण वे उसी वर्ष माघमें छोड़ दिये गये।

एक ही महीना पीछे वे फिर पकड़े लिये गये और बेलफास्ट जेलमें अपना दंडकाल पूरा करनेके लिये भेज दिये गये। वहांसे वे संवत् १९७५के २१ सौर भाद्रपदको अस्वस्थताके कारण छोड़ दिये गये, परन्तु जेलके फाटकसे निकलते ही फिर गिरफ्तार कर लिये गये और विना किसी प्रकारके अभियोग चलाये इंग्लैंड भेज दिये गये। वहांसे उसी वर्षके अन्तमें विना किसी प्रकारकी क्षमा-प्रार्थना किये छोड़ दिये गये। इसके बाद उनको पकड़नेके लिये संवत् १८७५में ही कुँआरमें, कार्त्तिकमें, माघमें और फाल्गुनमें वारंट निकले। अन्तमें वे २७ श्रावण संवत् १९७७को पकड़े गये और इंग्लैंड भेज दिये गये। इस समयतक कार्कके लार्ड मेयर मेक्कर्टनकी पुलिसद्वारा हत्या हो चुकी थी और उनके स्थानपर मेक्स्विनीकी नियुक्ति भी हो चुकी थी। जिस समय मेक्स्विनी लार्ड मेयरकी उपाधिसे विभूषित किये गये उस समय उन्होंने यह भविष्यद्वाणी की थी कि मेरी मृत्यु समीप है, फिर चाहे वह क्रान्तिके कारण हो या उस उपवासके कारण, जो मैं ब्रिटिश सरकारद्वारा पकड़े जानेपर करूंगा। उनकी यह भविष्यद्वाणी सच निकली और उनकी मृत्युका श्रेय ब्रिटिश सरकारने अपने ऊपर लिया।

२७ श्रावणकी शामको कार्क नगरके सिटी हालको ख़ाली करनेके लिये सैनिकोंकी एक बड़ी संख्या दो गाड़ियोंमें बैठकर क्रुएटार्फ पुलसे होती हुई वहांपर आयी। सैनिकोंने आतेही हालको घेर लिया और जो मनुष्य उधर होकर जा रहे थे उनको गिरफ़्तार कर लिया। सिटी हालको घेरकर सैनिकोंने उसमें प्रवेश किया। उनके पास संगीनें चढ़ी हुई बन्दूकें थीं। भवनपर अधिकार करके उन्होंने उसकी तलाशी लेनी शुरू कर दी। जब लार्ड मेयर मेक्स्विनीको भवनके घिर जानेकी ख़बर मिली वे अपने सच्चे अनुयायियोंकी सहायतासे भवनसे निकलकर नाजकी मंडीमें पहुँच गये, परन्तु सैनिकोंने वहां उन्हें घेर लिया और गिरफ़्तार

कर ले गये। भवनके नौकर तथा अन्य कर्मचारी इस धोखेमें रहे कि लार्ड मेयर भवनसे निकलकर सुरक्षित हो गये हैं। नौ वजेतक यह पता न लगा कि लार्ड मेयर पकड़ लिये गये हैं। पकड़े जानेपर, जैसा कि पहले कहा जा चुका है मिस्टर मेक्स्विनी इंग्लैंडके ब्रिस्टन-जेलमें लाये गये। लार्ड मेयर मेक्स्विनी अपने विचारोंके कितने सच्चे, अपनी वातके कितने पक्के और अपने संकल्पके कितने दृढ़ थे! अदालतके अध्यक्षसे आपने कहा था कि "तुम्हारी न्याय-पद्धति अन्याययुक्त है। मैं कार्कका लार्ड मेयर, नगरका प्रधान हूं। मैं इस अदालतको ग़ैरक़ानूनी घोषित करता हूं। अतः जो लोग इसमें भाग ले रहे हैं वे आयरिश प्रजातन्त्रीय सरकारद्वारा दंडके भागी हैं। जब उनसे सफाई देनेके लिये कहा गया तब आप अपनी कुर्सीसे उठकर खड़े हो गये। अदालतके अध्यक्षने उनसे कहा "मि० मेक्स्विनी आप वैठे रह सकते हैं।" इसपर आपने जो वीरता-पूर्ण उत्तर दिया वह यह है—

"जबतक अदालत वैठी रहेगी तबतक मैं खड़ा रह सकता हूं। आपको जान लेना चाहिये, आपको जानना पड़ेगा, कि आयरिश प्रजातन्त्रीय सरकार विद्यमान है। मैं आपको यह बता देना चाहता हूं कि सबसे भारी अपराध जो एक मनुष्य कर सकता है वह किसी देशके प्रधानकी मानहानि करना है। एक प्रधान नगरके प्रधानको पकड़ने, उसके घरपर छापा मारने और उसके काग़ज़ात छीननेका अपराध प्रधानकी मानहानि करनेके अपराधसे भी गुरुतर अपराध है और आपलोग इस अपराधके अपराधी हैं।"

अदालतकी दूसरी वैठकमें आपने कहा कि इसके अतिरिक्त मैं यह भी वतला देना चाहता हूं कि "मैं जो करनेवाला हूं उसके कारण मैं कुछ नियत दिनोंसे अधिक क़ैदमें नहीं रह सकता। मैंने गुरुवारसे भोजन नहीं किया है, इसलिये मैं एक मासमें

स्वतन्त्र हो जाऊंगा" इसपर अध्यक्षने पूछा कि "क्या कारावास-की सज़ा देनेपर आप भोजन नहीं करेंगे ?" लार्ड मेयर मेक्स्विनीने उत्तर दिया "मैं केवल इतना ही कहता हूं कि मैंने क़ैदमें रहनेका समय नियत कर लिया है। आपकी सरकार जो चाहे करे परन्तु मैं एक मासके अन्दर जीवितावस्थामें या मरकर स्वतन्त्र हो जाऊंगा।"

लार्ड मेयरने अपनी यह प्रतिज्ञा पूरी की। कारावासमें आपने अन्नजल छोड़ दिया। लाख प्रयत्न किये गये, समझाया बुझाया गया, बलप्रयोग किया गया, परन्तु उन्होंने किसीकी एक न मानी और अपने संकल्पपर अटल रहे। जबतक वे जीवित रहे तबतक उन्होंने अन्नका एक कण भी अपने मुँहमें न जाने दिया और लगातार तिहत्तर दिनतक निराहार रहकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और पूर्णतया स्वतंत्र हो गये। ब्रिटिश साम्राज्यकी प्रबल शक्ति भी सिर पटक पटककर मर गयी परन्तु उन्हें स्वतन्त्र होनेसे न रोक सकी। जिन्हें स्वतंत्रतासे इतना प्रेम है, जो ऐसे भीष्मप्रतिज्ञ हैं, उन्हें कौन परतंत्र रख सकता है ? ब्रिटिश साम्राज्य तो क्या समस्त संसारकी शक्ति भी उन्हें स्वतंत्र होनेसे नहीं रोक सकती। ऐसी आत्माएं न तो पराधीन रह सकती हैं और न मरी ही हैं, क्योंकि यदि मेक्स्विनीकी मुक्तिको मृत्यु कहें तो फिर जीवित कौन है ?

—प्रभासे

३५. कनफ्यूशियस

प्रत्येक मनुष्यको सदा यही इच्छा रहती है कि मैं उत्तरोत्तर आगे ही बढ़ता जाऊं। कोई भी मनुष्य न तो अपनी वर्त्तमान स्थितिसे नीचे जाना चाहता है और न उसीपर स्थित ही रहना चाहता है। जिस मनुष्यको यह इच्छा नहीं रहती, समय

उसका साथ नहीं देता, इसलिये मनुष्योंमें स्वभावहीसे बढ़नेकी इच्छा होती है।

जो लक्ष्य व्यक्तिगत जीवनका है वही जातीय जीवनका भी है। जैसे प्रत्येक व्यक्ति अपने भूत और वर्त्तमान कालके जीवनसे भविष्य जीवनको अतिशायी बनाना चाहता है वैसे ही प्रत्येक जाति भी सदैव आगे बढ़नेकी धुनमें लगी रहती है। इस धुनको फलवती करनेके लिये अर्थात् किसी जातिको ऊपर उठानेके लिये संगठनकी आवश्यकता होती है। इस जातीय संगठनके लिये ऐसे महात्माओंकी आवश्यकता होती है जो नेता बनकर अपने सिद्धान्तों और व्यावहारिक कार्यों द्वारा जातिकी तितरबितर शक्तिको संगठित कर सकें। संसारकी प्रत्येक सभ्य जातिने कमसे कम एक ऐसे महापुरुषको अवश्य जन्म दिया है। प्रसिद्ध चीनी विद्वान् कनफ्यूशियस इन्हीं महात्माओंमेंसे एक हैं।

चीनी सम्राज्य दो सहस्र वर्षों से कनफ्यूशियसके सिद्धान्तोंके बल खड़ा है। इसी महात्माने चीनी जातिका संगठन किया था। चीन देशवासी अपनी वर्त्तमान शक्ति तथा राजनैतिक और सामाजिक एकताका एक मात्र कारण इसी पूज्य पुरुषको मानते हैं। वे इसका इतना आभार मानते हैं और आदर करते हैं कि इसकी समानताके योग्य वे किसीको समझते ही नहीं, और न इसके नामकी बराबरीमें किसी दूसरेका नाम ही रखने देते। सचमुच कनफ्यूशियसकी अनुपम नैतिक महत्तामें शंका करना वृथा है। उसके पक्षमें यही एक बड़ा सबल प्रमाण है कि लगभग साठ पीढ़ियोंसे उसके देशवासी उसे पूज्य मानते आये हैं और अब भी चालीस करोड़ मानव स्वच्छ हृदयसे उसकी पूजा करते हैं।

ढाई सहस्र वर्ष पूर्व चीन साम्राज्य बहुतसे छोटे राज्योंमें विभक्त था। वहां दलबन्दीका राज्य था। सामाजिकता तथा

राजनैतिकता अरक्षित थी। ऐसे समयमें एक ऐसी आत्माकी आवश्यकता थी जो इन तितर-वितर राज्यों और दलोंको एकत्र कर उनका शान्तियुक्त समरूप संगठन करती। यह आत्मा कनफ्यूशियसके रूपमें विक्रमसे ४९४ वर्ष पहले प्रकट हुई।

यह आत्मा किसी सेनापति नृपाल अथवा संसार विजेताके रूपमें नहीं आयी और न उसने उत्पात तथा रक्तपातद्वारा साम्राज्यमें एकता लानेका प्रयत्न किया। वह आत्मसंयम, न्याय और शान्तिके शिक्षकके रूपमें ठीक उसी समय प्रकट हुई जिस समय भारतमें महात्मा बुद्धने अवतार लिया था। इस आत्माने साधारण जनों तथा भिन्न भिन्न प्रान्तों या रियासतोंके राजाओंको आत्मशासन, सदाचार और शुद्ध जीवनके मूल सिद्धान्त समझाकर एकत्रित करनेका प्रयत्न किया। उसका यह कहना था कि आत्मशासन सच्चे शासनका आधार होना चाहिये। वह इसी सिद्धान्तका अनुयायी था। दूसरोंको शिक्षित तथा दक्ष बनानेके पूर्व कनफ्यूशियस अपने आपको दक्ष बना लेता था, अर्थात् सदाचार और धार्मिकताद्वारा पहले अपना शासन कर लेता था। इसी सिद्धान्तमें उसकी अनन्त शिक्षा और उसका आदर्श अन्तर्हित है। एक बार लड़कपनहीमें उसने इस आदेशके शब्द कहे थे कि—

पर उपदेश कुशल बहुतेरे

जे आचरहिं ते नर न घनेरे

'घनेरे' क्या, एक भी मनुष्य उसे ऐसा नहीं दिखायी दिया, इसीलिये उसने प्रतिज्ञा की कि "मैं ऐसा ही करूंगा।" अनन्तर उसने अपने शिष्योंको भी यही सिखाया कि "दूसरोंको ऐसी कोई भी बात मत सिखाओ जिसका तुमने स्वयं पूर्ण रीतिसे अभ्यास न कर लिया हो।" कनफ्यूशियसकी शिक्षणपद्धतिका विशेष लक्षण यही है कि उपदेश देनेके पूर्व उसका अभ्यास कर

लो और यही उसकी शिक्षाकी कुंजी है। न तो उसने आत्मविद्या या मानसशास्त्र सिखाया और न तत्त्वज्ञान अथवा दर्शनके गूढ़ और काल्पनिक तत्त्व ही बताये। उसने कार्यसंचालनके कुछ नियम बना दिये जिनके द्वारा मनुष्य पुरुषत्व और बुद्धिमें दक्षता प्राप्त कर सकें और राज्यबलके स्तंभ हो जायँ। उसकी शिक्षाकी नितान्त सरलताहीने उसपर एकदम महर्षिकी छाप लगा दी।

उसका यह कथन था कि सब दुर्गुणोंको त्यागकर कुछ थोड़ेसे सद्गुणोंका अभ्यास किया जाय, छोटे छोटे पदाधिकारी अपने मालिकोंकी आज्ञाओंका पालन करें और कोई भी व्यक्ति पूर्ण सदाचारी बननेके पूर्व किसी अधिकारपूर्ण उच्च पदकी प्राप्तिका न तो प्रयत्न ही करे और न प्राप्त होनेपर उसे स्वीकार ही करे। प्रजा अपने शासकों और राजाओंके प्रति भक्ति और आज्ञापालन आदि गुणोंका ध्यान रखे, पर शासक और राजा भी नम्र, शान्त, निष्पक्ष और न्यायी हों। कनफ्यूशियसके मतानुसार जो व्यक्ति सद्गुणोंका राजा नहीं है वह राजा बनने योग्य नहीं है, उसे राजा पद ग्रहण न करना चाहिये। राजाको प्रजाके लिये ऐसा आदर्श होना चाहिये कि लोग उसे पूजनीय और विश्वसनीय समझें। उसका यह भी कर्त्तव्य है कि अपने सद्गुणोंद्वारा वह प्रजाकी सहायता करे।

उसकी यह प्रबल इच्छा थी कि चीनमें एक ऐसा राजा हो जो न्यायपूर्वक राज्य करे और ऐसी प्रजा हो जो धार्मिक जीवन व्यतीत करते हुए अपने देशकी व्यवस्थाओंका पालन करे। इसी इच्छाकी पूर्त्तिके उद्देश्यसे उसने बहुतसी पुस्तकें लिखीं जो चीनके धर्म ग्रन्थ और वहांके विद्यार्थियोंकी पाठ्य पुस्तकें अभीतक बनी हैं। इन पाठ्य पुस्तकोंको विद्यार्थी ऐसा रट लेते हैं कि संकेत पाते ही श्लोकोंके समान उगलने लगते हैं। तब उन्हें उनका अर्थ समझाया जाता है। इस स्थितिमें नवीन सुधारक 'कुआंगसी'के मतने हालहीमें कुछ परिवर्त्तन कर दिया है।

जीवनके साधारण कार्योंके शीघ्र और निःस्वार्थ संचालन-पर कनफ्यूशियस बड़ा जोर देता था। उसके कथनानुसार यही क्रिया बुद्धिकी पहली सीढ़ी है। वह कहता था कि जो मनुष्य ऋषि होना चाहता है उसे नम्र होना चाहिये और साव-धानतापूर्वक उन कर्त्तव्यों और आचारोंसे अपना कार्य प्रारंभ करना चाहिये जो साधारण मर्त्यके लिये भी नितान्त आव-श्यक हैं।

कनफ्यूशियस स्वभावसे ही शिक्षक था। उसकी शिक्षामें कोई भी बात अटपट या गूढ़ नहीं थी। अपने समकालीन महात्मा बुद्धके समान वह भी आत्मा, परमात्मा, भूतप्रेत, अलौकिक जीवों अथवा भविष्यके विषयकी चर्चा भी न करता था। उसके कार्यक्षेत्रकी सीमा व्यावहारिक ज्ञान ही था जिसके भीतर कल्पनाओं और सिद्धान्तोंके लिये स्थान नहीं था। यही उसकी महत्ताका स्पष्ट लक्षण है। वह स्वयं कहता था कि मेरे सिद्धान्त बिलकुल सरल हैं और मेरी शिक्षापद्धति और भी सरल है। जो कोई मेरे शब्दोंको तौल लेता है उसे उनका अर्थ समझने और उन्हें व्यावहारिक रूप देनेमें कठिनाई नहीं होती। एक बार उसके एक शिष्यने उससे पूछा कि क्या ऐसा कोई शब्द है जिससे मनुष्यका पूर्ण कर्त्तव्य व्यक्त हो सके। उसने कहा कि हाँ, ऐसा शब्द 'परस्परता' है जिसका अर्थ है—

जो चाहो सद्प्रत्युपकार
करो अन्यसे सद् व्यवहार

कनफ्यूशियसका गार्हस्थ्यजीवन विशेष सुखमय नहीं था। उसका विवाह उन्नीस वर्षकी अवस्थामें हुआ और एक पुत्र उत्पन्न होनेके पश्चात् उसने अपनी स्त्रीको त्याग दिया। वह अनाजके मालगोदाम और भूमिका संरक्षक नियुक्त किया गया था, पर बाईस वर्षकी अवस्थामें उस कार्यको छोड़कर वह शिक्षणकार्य

करने लगा। अट्ठाईस वर्षकी अवस्थामें उसने धनुर्विद्या और गायन-कलाका अभ्यास किया। तीसवें वर्षमें उसके हजारों शिष्य हो गये जो उसके प्रति प्रायः असीम प्रेम रखते थे। उसके आचरण और दैनिक जीवनसे जितने अधिक वे परिचित होते गये उतना ही अधिक उनका प्रेम उसके प्रति उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

जब कनफ्यूशियसकी अवस्था सत्तर वर्षकी हुई तब एक दिन सवेरे उसके शिष्योंने देखा कि वह अपने बगीचेमें घूमता हुआ इन पंक्तियोंको गुनगुना रहा है—

पर्वत होंगे चूर चूर, ग्रहमंडल टकरा जावेंगे।
धीमानोंके जीवन-पौधे, निश्चय मुरझा जावेंगे॥

इस घटनाके एक सप्ताह पश्चात् वह पञ्चत्वको प्राप्त हो गया। उसके कुटुम्बी अब भी चीनमें हैं और उनकी वहां अच्छी ख्याति है। कनफ्यूशियसके जीवनकालमें शासकों और राजाओंने उसकी बातोंको ध्यानपूर्वक नहीं सुना और न उसके नैतिक सिद्धान्तोंका उपयोग राजनैतिक समस्याओंमें करनेका उद्योग ही किया, परन्तु उसकी मृत्युके उपरान्त भीतरी फूटसे उत्पन्न अनन्त दुःखोंसे थककर उन्होंने उस मृत ऋषिके वचनोंपर ध्यान दिया तब कुछ शासक उन्हें व्यवहारमें लाने लगे जिसमें उनको सफलता मिली, इसलिये दूसरोंने भी उनका अनुकरण किया जिसका फल यह हुआ कि सब झगड़े उपद्रव शान्त हुए और वर्त्तमान वृहद् चीन साम्राज्यकी सृष्टि हुई। चीनी लोग अपनी उन्नति, शान्ति, ऐक्य आदिके लिये इसी महर्षिके ऋणी हैं और जहां कहीं उन्होंने उसकी शिक्षाका उपयोग नहीं किया, वहीं उन्हें असफलता हुई है और वहीं उनकी न्यूनता प्रकट हुई है।

—सुखदेवप्रसाद चौबे

३६ सत्याग्रह आश्रम

मैंने कितने ही विद्यार्थियोंसे, जो पिछले साल मुझसे मिलने आये थे, कहा था कि मैं हिन्दुस्तानमें कहीं एक आश्रम खोलनेवाला हूं। आज मैं उसी आश्रमके सम्बन्धमें आपसे कुछ कहना चाहता हूं। अपने जीवनका जितना समय मैंने जनसेवामें व्यतीत किया है उसमें मुझे यह अनुभव हुआ है कि जिस चीज़की हमको सबसे अधिक आवश्यकता है वह चरित्रगठन है। सभी जातियोंको इसकी आवश्यकता है पर भारतवासियोंको सबकी अपेक्षा अधिक है। महान् देशभक्त मिस्टर गोखलेकी भी यह सम्मति थी। आप जानते हैं कि वह अपने अनेक व्याख्यानोंमें कहा करते थे कि जबतक हमारा चरित्र हमारी इच्छाओंका सहायक न होगा तबतक हम कुछ पानेके योग्य न होंगे। इसी लिये उन्होंने भारत-सेवा-समिति स्थापित की थी। आपको यह भी मालूम है कि इस समितिके सम्बन्धमें जो नियमावली प्रकाशित हुई है उसमें मिस्टर गोखलेने स्पष्ट कहा है कि इस देशके राष्ट्रीय जीवनमें धर्मका संचार करना परमावश्यक है। वह प्रायः कहा करते थे कि हमारा चरित्र युरोपीय जातियोंकी अपेक्षा हीन-तर है। मैं नहीं कह सकता कि उस महान पुरुषका जिसे मैं अभिमानके साथ अपना राजनैतिक गुरु समझता हूं, यह विचार कहांतक सत्य है। किन्तु मुझे निश्चय है कि शिक्षित समुदायको देखते हुए उस कथनके पक्षमें बहुत कुछ कहा जा सकता है। इसका यह कारण नहीं है कि शिक्षित लोग भटक गये हैं, पर बात यह है कि अवस्थाओंने उन्हें ऐसा ही बना दिया है। चाहे जो कुछ हो यह जीवनका मुख्य नियम है, जिसपर मेरा अटल विश्वास है, कि चाहे हम कितने ही बड़े हों हमारा कोई काम सफल नहीं हो सकता जबतक उसका आधार धर्मपर न हो। प्रश्न यह होगा कि धर्म क्या है? मेरा यह उत्तर है कि वह धर्म

नहीं है जो संसारके धर्मग्रन्थोंके अवलोकनसे प्राप्त होता है। इसका सम्बन्ध मस्तिष्कसे नहीं वरन् हृदयसे है। यह ऐसी चीज नहीं है जो हममें न हो, किन्तु हममें उसका विकास होना आवश्यक है। यह सदैव हमारे साथ रहता है, किसीमें ज्ञात रूपसे और किसीमें अज्ञात रूपसे। चाहे हम इस धार्मिक भावको कर्मद्वारा जागृत करें वा ज्ञानद्वारा, यह हमारा एक परमावश्यक कर्तव्य है। यदि हम किसी कामको उत्तम रीतिसे करना वा उसे स्थायी बनाना चाहते हैं तो हमें धर्मका आश्रय लेना चाहिये। हमारे धर्मग्रन्थोंने जीवनके कुछ सिद्धान्त निश्चित कर दिये हैं, हमें उन सिद्धान्तोंको निर्भ्रान्त समझना चाहिये। शास्त्रानुसार इन सिद्धान्तोंका पालन किये विना हमें धर्मका यथोचित ज्ञान नहीं हो सकता। इन सिद्धान्तोंपर अटल विश्वास रखते हुए और इन शास्त्रीय आदेशोंका पालन करते हुए मैं यह आवश्यक समझता हूं कि इस आश्रमके खोलनेमें उन लोगोंकी सहायता लूं जो मेरे ही विचारके हैं। आज मैं आपके सामने उन नियमोंको उपस्थित करता हूं जो इस आश्रमके निवासियोंको पालन करने होंगे।

इनमेंसे पांच यह हैं और सबमें पहला है

सत्यव्रत

सत्यव्रतसे हमारा केवल यही अभिप्राय नहीं है कि यथासम्भव झूठ न बोलें, अर्थात् वह सत्य नहीं जिसका भाव इस लोकोक्तिमें दर्शाया गया है "सचाई सर्वोत्तम नीति है", जिसके भीतर यह अर्थ छिपा हुआ है कि यदि वह सर्वोत्तम नीति न हो तो हम उसे त्याग सकते हैं, लेकिन यहां सत्यका यह अर्थ है कि हम सदैव सब प्रकारसे अपने जीवनको इसी नियमके अधीन रखें। इस अर्थको स्पष्ट करनेके लिये मैंने प्रह्लादके जीवनका उदाहरण दिया है। सत्यका पालन करनेके लिये उसने अपने

ही पितासे विरोध किया। और उनसे बदला लेकर अपनी रक्षा नहीं की वरन् सत्यकी रक्षाके लिये वह अपने प्राण देनेको प्रस्तुत था। उसने अपने पितापर अथवा उन लोगोंपर जो उसके पिताकी आज्ञासे उसे कष्ट दे रहे थे, हाथ नहीं उठाया। इतनाही नहीं, वह इन आघातोंको रोकना भी नहीं चाहता था। उसने प्रसन्न चित्तसे कष्टोंको सहन किया। अन्तमें सत्यकी विजय हुई। यह बात नहीं है कि प्रह्लादने इन यंत्रणाओंको इसलिये सहन किया कि वह जानता था कि उसके जीवनकालमें ही किसी न किसी दिन सत्यकी जय होगी। यदि उन कठोर आघातोंसे उसकी मृत्यु भी हो जाती तो भी वह अपने व्रतपर दृढ़ रहता। सत्यका यह आदर्श है, जिसका मैं पालन करना चाहता हूं। अभी कलकी बात है, बात तुच्छ है, लेकिन वह उस घासके तिनकेकी भांति है जो बतलाता है कि हवाका रुख किधर है। घटना यह थी—मैं अपने एक मित्रसे, जो मुझसे एकान्तमें बातें करना चाहते थे, कुछ निजकी बातें कर रहा था। इतनेमें एक तीसरे मित्र आ गये और उन्होंने नम्रतासे पूछा कि मेरे आनेमें कोई बाधा तो नहीं है? वह मित्र जिनसे मैं बातें कर रहा था, बोले, नहीं नहीं, कोई ऐसी गुप्त बात नहीं है। मैं यह सुनकर चौंक पड़ा। क्योंकि वह मुझे एकान्तमें ले जाकर बातें कर रहे थे। लेकिन उन्होंने नम्रतावश कह दिया कि कोई गुप्त बात नहीं है। यह बात मेरे सत्यकी परिभाषासे बाहर है। मेरे विचारमें मेरे मित्रको विनयभावसे किन्तु साफ़ साफ़ कह देना चाहिये था कि हां, आप इस समय क्षमा कीजिये। ऐसा करनेसे हमारे नये मित्र ज़रा भी—यदि सज्जन होते तो—बुरा न मानते। हमें हर मनुष्यको तबतक सज्जन ही समझना चाहिये जबतक हम उसमें कोई बुराई न देखें। सम्भव है, कुछ लोग कहें कि इस घटनासे हमारी जातीय नम्रता प्रकट होती है। मेरे विचारमें यह बनावटीपन है। यदि हम शिष्टाचारके वश ऐसी बातें करते

रहेंगे तो वास्तवमें हम कपट-धर्मियोंकी जाति बन जायँगे। मुझे अपने एक अँगरेज मित्रकी याद आती है। वह एक कालेज-के प्रिन्सिपल हैं और इस देशमें कई सालसे रहते हैं। वह मेरे विचारोंसे अपने विचारोंकी तुलना कर रहे थे। उन्होंने मुझसे पूछा, क्या आप यह मानते हैं कि आपलोग साधारण अँगरेजोंके प्रतिकूल जहां "नहीं" कहना चाहिये वहां "हां" कह दिया करते हैं? मैंने कहा, हां हम वास्तवमें नहीं करते हुए सकुचाते हैं, हम किसी मनुष्यको दुःखी नहीं करना चाहते। हमारे आश्रममें यह नियम है कि जब मनमें नहीं हो तो साफ साफ नहीं कह दिया जाय। यह हमारा पहला नियम है। दूसरा नियम

अहिंसा व्रत

है। अहिंसाका आशय है जीवोंकी रक्षा करना, लेकिन मुझे इसमें अत्यन्त उच्च और पवित्र भाव भरे हुए मालूम होते हैं। अहिंसाका अभिप्राय यह है कि हमसे किसीको दुःख न पहुँचे, हम अपने हृदयमें उस मनुष्यके प्रति भी अनुदार विचार न आने दें जो हमें अपना शत्रु समझता हो। देखिये, यह विचार कितने तुले हुए शब्दोंमें रखा गया है। मैं यह नहीं कहता "जिसे तुम अपना शत्रु समझते हो" बल्कि "जो तुम्हें अपना शत्रु समझता हो।" क्योंकि अहिंसाके व्रतधारीके लिये शत्रुका अस्तित्वही नहीं है। किन्तु उनलोगोंपर उसका कोई वश नहीं होता जो अपनेको उसका शत्रु समझते हैं। इसीलिये यह कहा गया है कि हम ऐसे आदमियोंसे भी बुरा न मानें। यदि हम घूंसेके बदले घूंसा मारें तो हम अहिंसाव्रतको भंग करते हैं। लेकिन मैं इससे भी आगे जाता हूं। यदि हम अपने किसी मित्र वा शत्रुके किसी कामसे रुष्ट हों तो भी हम इस व्रतको भंग कर देते हैं। रुष्ट होनेसे मेरा अभिप्राय यह है कि हम शत्रुका बुरा मनाने लगें अथवा उसे स्वयं वा किसी अन्य पुरुषके द्वारा अपने मार्गसे हटानेका यत्न करें। यदि हम इस विचारको मनमें आने दें

तो हम अहिंसा सिद्धान्तसे दूर हो जाते हैं। जो लोग इस आश्रममें प्रवेश करेंगे उन्हें अहिंसाका यही आशय मानना पड़ेगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम इस सिद्धान्तका पूर्णरूपसे पालन करेंगे, नहीं, यह एक आदर्श है, जिसे हमें सदैव अपने सामने रखना चाहिये। लेकिन यह रेखागणितकी कोई परीक्षा नहीं है जो कंठ की जाय, और न यह उच्च गणितका कोई प्रश्न हल करनेके समान है। यह इससे कहीं कठिन है। तुम उन प्रश्नोंके हल करनेमें आधी आधी राततक जागे हो, पर यदि तुम इस सिद्धान्तपर चलना चाहो तो तुमको इससे कहीं अधिक परिश्रम करना पड़ेगा। तुम्हें कितनीही रातें जागते हुए बितानी पड़ेंगी। कितने ही मानसिक कष्ट भोगने पड़ेंगे तब जाकर कहीं तुम उस लक्ष्यके निकट पहुँचोगे, यदि हम और आप धार्मिक जीवनका तत्व समझना चाहते हैं तो हमें उस लक्ष्यतक पहुँचना पड़ेगा। इस विषयमें इसके सिवा और कुछ न कहूंगा कि वह मनुष्य जो इस सिद्धान्तके सामर्थ्यपर विश्वास रखता है, अन्तमें जब वह लक्ष्यके निकट पहुँच जाता है सारे संसारको अपने पैरोंपर गिरा हुआ पाता है। उसे इसकी इच्छा नहीं होती। लेकिन इसे वह रोक नहीं सकता। यदि तुम अपना प्रेम अपने शत्रुपर दृढ़ताके साथ प्रगट करो तो वह इस प्रेमका बदला अवश्य देगा। दूसरा विचार जो अहिंसा व्रतसे उत्पन्न होता है यह है कि यहां हत्याकारियोंके लिये कोई स्थान नहीं है। यहां तक कि तुम अपने देशके उपकारके लिये भी, अपने भाई बंधुओंके लिये भी किसीपर आघात नहीं कर सकते। अहिंसाव्रत हमको सिखलाता है कि हम अपने शरणागतोंकी मानरक्षा करनेके लिये अपनेको अत्याचारीके सिपुर्द कर दें। इसके लिये शस्त्रप्रहारसे अधिक शारीरिक और मानसिक बलकी आवश्यकता है। इस सिद्धान्तके अनुसार वह 'स्वदेशप्रेम भी अक्षम्य है जो परस्पर युद्धको नीतिसंगत सिद्ध करता है। तीसरा व्रत

ब्रह्मचर्य्य

है। जो लोग जातीय सेवा करना चाहते हैं अथवा सच्चे धार्मिक जीवनका आनन्द उठाना चाहते हैं उन्हें ब्रह्मचर्य्यका पालन करना चाहिये, चाहे वह ब्याहे हों या कुंवारे। विवाह स्त्री और पुरुषको विशेष रूपसे मित्रताके बंधनमें बांध देता है। इससे वे इस जन्ममें या दूसरे जन्ममें भी पृथक नहीं हो सकते। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि इस मित्रतामें कुवासनाएं सम्मिलित हों, चाहे जो कुछ हो, हम आश्रम-निवासियोंके लिये यही नियम रखना चाहते हैं। चौथा व्रत

इंद्रियोंका दमन

करना है। जो मनुष्य अपनी पाशविक वासनाओंको सहजमें रोकना चाहता है उसे इन्द्रियोंका दमन करना आवश्यक है। यह बहुत कठिन व्रत है। मैं विक्टोरिया होस्टल देखकर अभी चला आ रहा हूं। ये पाकशालाएं जातिभेदके कारण नहीं बनी हैं, बल्कि भिन्न भिन्न प्रान्तोंके आदमियोंके लिये भिन्न भिन्न पदार्थ बनानेके लिये बनी हैं। केवल ब्राह्मणोंके लिये अलग अलग कमरे हैं, उनकी पाकशालायें भी अलग अलग हैं, जहां उनकी रुचिके अनुसार भोजन मिलता है। आप समझ सकते हैं कि यह केवल इन्द्रियोंके वशमें हो जाना है, जब कि हमें उनको अपने वशमें करना चाहिये था। मेरा यह कहना है कि जबतक हम इन आदतोंको छोड़ न देंगे, जबतक हम चाय और कहवेकी दूकानों और इन पाकशालाओंको त्याग न देंगे, जबतक हम उस सादे भोजनसे तृप्त न होंगे जो हमारे स्वास्थ्यके लिये आवश्यक है, और जबतक हम उन उत्तेजक पदार्थोंको छोड़ न देंगे जिन्हें हम अपने भोजनके साथ मिला लेते हैं, तबतक हम कभी अपनी कुवासनाओंको वशमें न कर सकेंगे। यदि हम ऐसा न करेंगे तो उसका परिणाम यह होगा कि हम भ्रष्ट हो जायँगे

और पशुओंसे भी गये बीते हो जायँगे। खानेपीने और विषय-भोग करनेमें हम पशुओंहीके समान हैं। लेकिन क्या कभी आपने किसी घोड़े बैलको वासनाओंमें इतना आसक्त देखा है? क्या आप समझते हैं कि यह भी सभ्यताका कोई लक्षण है कि हम अपने खाने योग्य पदार्थों की संख्या यहांतक बढ़ाते चले जायँ, कि हमें उनके नाम भी याद न रहें, सदा नये नये पदार्थों की खोज करते रहें, और नये भोजनोंके विज्ञापन देखते रहें? पांचवां व्रत

अस्तेय व्रत

है। मेरा कहना है कि हम सभी एक प्रकारसे चोर हैं। यदि मैं कोई ऐसी चीज़ ले लूं जिसकी मुझे तत्काल ही आवश्यकता नहीं है और उसका संचय करूं तो मैं उसे किसी दूसरे मनुष्यसे चुरा रहा हूं। प्रकृतिका यह नियम है कि वह प्रतिदिन हमारी आवश्यकताओंके लिये काफ़ी सामग्री पैदा करती है। यदि प्रत्येक मनुष्य उसमेंसे उतनाही ले जितना कि उसके लिये आवश्यक है अपनी आवश्यकतासे जरा भी अधिक न ले तो संसारमें दरिद्रताका नाम भी न रहे, और कोई भूखों न मरे। मैं सोशलिस्ट नहीं हूं। धनवानोंसे उनका धन छीनना नहीं चाहता। लेकिन मेरा अपना विश्वास है कि जो लोग अन्धकारमें प्रकाश फैलाना चाहते हैं उनके लिये इस नियमका पालन करना आवश्यक है। मैं किसीको उसके अधिकारोंसे वंचित नहीं करना चाहता। ऐसा करना अहिंसाव्रतका भंग करना है। यदि किसीके पास मुझसे अधिक विभव है, तो हो, मुझे इसकी चिन्ता नहीं। किन्तु अपने जीवनको सात्विक बनानेके लिये यह आवश्यक है कि मैं आडम्बरोंसे मुक्त रहूं। हिन्दुस्तानमें तीन करोड़ मनुष्य ऐसे हैं जिनको दिनमें केवल एकबार खाना मिलता है, वह भी सूखी रोटी और नमक। हमको और आपको अपनी सम्पत्तिपर तबतक कोई अधिकार न होना चाहिये जबतक इन

मनुष्योंको काफी अन्न और वस्त्र न मिले। हमें और आपको ज्ञान रखनेके कारण अपनी आवश्यकताओंको घटाना और सहर्ष भूखका कष्ट सहना चाहिये। इसलिये कि उन दरिद्रोंका भली भांति पालनपोषण हो सके। इसके बाद छठा व्रत

स्वदेशीका व्रत

है। यह एक परमावश्यक व्रत है कि हम स्वदेशी जीवन और स्वदेशी भावसे परिचित हों। मेरा आपसे कहना है कि यदि हम अपने पड़ोसीको छोड़कर अपनी आवश्यकताएं कहीं औरसे पूरी करें तो हम जीवनके एक पवित्र नियमको भंग कर रहे हैं। यदि कोई मनुष्य बम्बईसे आवे और आपको अपनी चीज़ें दे तो आपको उन चीजोंके मोल लेनेका तबतक अधिकार नहीं है जबतक कि आपके ही नगरका कोई व्यापारी वही चीज़ें दे सकता है। आपके गांवमें यदि कोई नाई है तो आपको मद्रासके कुशल नाईसे बाल बनवानेका कोई अधिकार नहीं है। अगर आप चाहते हैं, कि आपका नाई भी ऐसा ही होशयार हो तो उसको मद्रास भेजकर अपने व्यवसायमें निपुण बना दीजिये। जबतक आप ऐसा न कर लें आपको दूसरे नाईसे बाल न बनवाने चाहिये। इसको स्वदेशी कहते हैं। इसलिये यदि हिन्दुस्तानकी बनी हुई चीज़ें न मिलें तो हमें उन्हें त्याग देना चाहिये। सम्भव है हमें बहुत सी ऐसी चीज़ें न मिल सकें जिन्हें हम आवश्यक समझते हैं। किन्तु जब एक बार यह भाव आपके मनमें आ जायगा तो आपके सिरसे एक बड़ा बोझ उतर जायगा। इसके बाद सातवां व्रत

निर्भय व्रत

है। हिन्दुस्तानमें भ्रमण करते हुए मैंने देखा है कि शिक्षित समुदाय एक बड़े भयसे दबा हुआ है, हम किसीके सामने मुंह नहीं खोल सकते, हम अपने माने हुए सिद्धान्तोंको सर्वसाधारणके सम्मुख प्रगट नहीं कर सकते। यदि हमारी इच्छा हो तो

उनके विषयमें गुप्त रीतिसे बातें करें। अपने घरमें बैठे हुए जो चाहें सो करें, समाजके सामने कहनेका साहस नहीं रखते। यदि हमने मौनव्रत धारण किया होता तो कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं थी, जब हम जनताके सामने कुछ कहते हैं तो वही बातें कहते हैं जिनपर हमारा विश्वास नहीं है। यह हाल उन सब मनुष्योंका है जो हिन्दुस्तानमें व्याख्यान दिया करते हैं। इसलिये मैं आपसे कहता हूं कि ईश्वरके सिवा किसीसे नहीं डरना चाहिये। जब ईश्वरसे डरने लगेंगे तो हमें किसी मनुष्यका भय नहीं रहेगा चाहे वह कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो। निर्भयताके बिना सत्यका पालन करना असम्भव है। इसीलिये भगवद्गीतामें कहा गया है कि निर्भयता ब्राह्मणका परम धर्म है। हम सत्यसे इसलिये मुंह मोड़ते हैं कि हम उसके फलसे डरते हैं। धर्मका तत्व समझनेसे पहले और भारतका नेता बननेका विचार करनेसे पहले हमें निर्भयताका यह व्रत पालन करना चाहिये। इसके बाद आठवां व्रत

अछूत जातियोंका व्रत

है। हिन्दू जातिपर यह बड़ा भारी कलंक है। मैं यह नहीं मानता कि यह प्रथा सनातनसे चली आती है। मेरा विचार है कि अछूत जातियोंसे घृणा करनेकी प्रथा उस समय हममें आयी होगी जब हमारा जीवन बहुत ही अवनत दशामें रहा होगा और वही कुसंस्कार अब तक हमारे सिरपर सवार हैं। मैं समझता हूं कि यह प्रथा हमारे लिये और आपके लिये समान है। जबतक यह पाप हमसे दूर न होगा तबतक हमारी दशाका सुधार होना असम्भव है। यह वह दण्ड है जो हमारे दुष्कर्मों के बदले हमें मिल रहा है। किसी पुरुषको केवल उसके उद्यमके कारण अछूत समझ लेना मेरी समझसे बाहर है। यदि आप भी जो आधुनिक शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं इस पापमें भाग लेते हैं तो

इससे तो आपका मूर्ख रह जाना ही अच्छा था। वास्तवमें यह हमारे मार्गमें बड़ी कठिन वाधा है। यद्यपि हम समझते हैं कि समस्त संसारमें एक मनुष्य भी ऐसा नहीं जिसे हम अछूत समझ सकें लेकिन आपके विचारोंका असर न तो अपने परिवार पर होता है, न पड़ोसियोंपर क्योंकि आपके विचार अंगरेजी भाषामें होते हैं, इसलिये हमने आश्रममें यह नियम रखा है कि

शिक्षा देशी भाषाओंद्वारा दी जाय

युरोपमें प्रत्येक शिक्षित मनुष्य केवल अपनी ही भाषा नहीं, वल्कि और दो तीन भाषाएं सीखते हैं। हमने यह नियम रखा है कि हम जितनी देशी भाषाएं पढ़ना चाहें पढ़ें। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि इन भाषाओंके सीखनेमें उतनी कठिनाई नहीं होती जितनी अंगरेजी भाषाके। हम अंगरेजी भाषाके अधिकारी नहीं हो सकते। हम इस भाषामें अपने विचारोंको उतनी स्पष्टतासे वर्णन नहीं कर सकते जितना अपनी मातृ भाषामें। आप अपनी स्मृतिसे वाल्यावस्थाको कैसे निकाल देंगे? लेकिन हम जिस दिन अंगरेजी आरम्भ करते हैं उसी दिनसे अपने पूर्वकालको भूलने लगते हैं। यही कारण है कि हमारा जीवन इतना बनावटी हो गया है। शिक्षाका इतना प्रचार होनेपर भी हम अभीतक दूसरेको अछूत समझते आते हैं। शिक्षासे हमें इस दुरवस्थाका ज्ञान तो हो गया है किन्तु हम भीरुतावश इस ज्ञानको व्यवहारमें नहीं ला सकते, हममें अपनी कुलप्रथा और वन्धुओंके आज्ञापालनका मिथ्या-विचार घुसा हुआ है। हम कहते हैं यदि हम ऐसा करें तो हमारे मातापिता शोकसे मर जायँगे। लेकिन प्रह्लादने यह कभी न सोचा कि विष्णुका पवित्र नाम लेनेसे उसके पिताका प्राणान्त हो जायगा। उसने रामनामकी ध्वनिसे सारा घर गुंजा दिया। यहांतक कि अपने पिताके सामने भी उसकी जिह्वापर यही नाम था। इसलिये यदि हम इस विषयमें अपने मातापिताकी आज्ञाको

न मानें तो भी कोई हानि नहीं है। यदि वह इस आघातसे मर जायँ तो इससे कोई अपकार नहीं होगा। कभी कभी इस प्रकारके दुस्साहसकी आवश्यकता होती है। क्योंकि ईश्वरीय नियम सर्वोपरि है और उसके सामने हमको और हमारे माता पिताको यह बलिदान करना पड़ेगा।

इस आश्रममें हम अपने हाथसे कपड़े बुनते हैं। आप कहेंगे हम अपने हाथसे काम क्यों करें। यह मोटे काम अपढ़ लोगोंके हैं हमें तो केवल साहित्य और राजनैतिक प्रबन्धोंसे प्रेम है। हमें परिश्रमका महत्व जानना चाहिये। यदि कोई नाई या मोची कालेजमें पढ़ने लगे तो उसे अपना उद्यम नहीं छोड़ना चाहिये। मेरी समझमें नाईका पेशा उतना ही अच्छा है जितना वैद्यकका। अन्तमें जब हम इन नियमोंका साधन कर चुकें तब हमें—

राजनीति

में प्रवेश करना चाहिये। उस समय हमारे भटकनेकी जरा भी शंका न रहेगी। धर्महीन राजनीति एक निरर्थक वस्तु है। यदि इस देशके विद्यार्थी राष्ट्रीय सम्मेलनोंमें उत्साह दिखाने लगें तो यह हमारी जातीय उन्नतिका कोई लक्षण नहीं है। किन्तु इससे मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि आपको अपने शिक्षाकालमें राजनीतिका अध्ययन ही न करना चाहिये। राजनीति हमारे जीवनका एक अङ्ग है। हमें अपनी राष्ट्रीय संस्थाओंका अपने राष्ट्रीय उत्थानका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। हम यह बाल्यकालहीसे कर सकते हैं। इसलिये हमारे आश्रममें हरएक बच्चेको इस देशकी राजनैतिक प्रथा समझायी जायगी, उसे बतलाया जायगा कि देशमें कैसे कैसे नये भाव, नयी आशायें और नये जीवनका उद्भव हो रहा है। लेकिन हमको धर्मके स्थिर और उज्ज्वल प्रकाशकी आवश्यकता है। इस धर्मकी नहीं जिसका हमारे मस्तिष्कसे सम्बन्ध है, बल्कि उस धर्मकी जो अमिट रूपसे

हमारे हृदयपर अंकित हो गया हो। सबसे पहले हम उसी धार्म्मिक भावका अनुभव आवश्यक समझते हैं, और जब हमें वह प्राप्त हो गया तो हमें जीवनके सभी विभागोंमें प्रवेश करनेका अधिकार है। उस समय विद्यार्थियोंको सम्पूर्ण विभागोंमें सम्मिलित होना चाहिये। इसलिये कि वह जीवन संग्राममें पुरुषोंके समान अपना कर्त्तव्य कर सकें। आज हम क्या देखते हैं? राजनैतिक जीवन विशेषकर विद्यार्थियों हीतक आवद्ध है। ये लोग जैसे ही कालेज छोड़ते हैं नौकरियोंके पीछे दौड़ने लगते है। उनकी सदिच्छायें दब जाती हैं, न वह ईश्वरको जानते हैं न शुद्ध वायु और प्रकाशका सेवन कर सकते हैं। उन्हें उस शक्तिपूर्ण स्वाधीनताका कुछ भी ज्ञान नहीं होता जो इन नियमों के पालन करनेसे प्राप्त होती है। —म० गांधी

३७ पद्यभाग

(१) कृष्णावतार

१ सुतने वित हित बाप न समझा बन्द कराया
पति यमद्वार उतार जार कर बैठी जाया
कंचन कामिनि हेत बन्धु हो गया कसाई
पाप छिपा, सन्तान मार, हिय दया न आई

२ डाकू चोर जुआर हुए मंत्री. पद पाये
सारे कोष लबार छलीके हाथों आये
डूब गये व्यवहार घूसने दृष्टि घुमाई
न्यायमूर्त्ति जल्लाद हुए कलि-नीति निभाई

३ फैल गये भर देश लफंगे और लुटेरे
चलने लगे कुचक्र कलहमय कुटिल घनेरे

महा भीम दुर्भिक्ष लगा चुन चुन कर खाने
जग दुर्दैव दरिद्र विराजा खुले खजाने
४ खेत गये सब सूख सूखके हिय सी धरती
यद्यपि डाले गोड़ न छोड़े ऊसर परती
कहीं न बरसा मेह खेह भागोंने खायी
कहीं हुई अतिवृष्टि सृष्टि सब खोद बहायी
५ कुछ भी कहीं कुधान्य कभी भूलोंसे होते
खाते उल्लू मूस घूस टिड्डीदल तोते
फैले कितने रोग, महामारीने लूटे
मरे असंखों लोग, भाग भारतके फूटे
६ जितनी पैदावार भूमिकर उससे भारी
खेतीकी कुछ हौस बची थी, इसने मारी
खिंचता था धन रत्न प्रजा होती थी रीती
सुख था मरना, कौन सुनै था उनकी बीती
७ अस्त्र शस्त्र सब छीन दीनजन शान्त कराया
हुआ शत्रु बलहीन देख जीमें जी आया
बैठाया आतंक निहत्थ प्रजाको भूना
लाय बसाये दस्यु, देख गांवोंको सूना
८ फैला अत्याचार प्रजा अधमेरी बनायी
नारि जाति अपमान किया, दुर्नीति चलायी
पर नरपति दे घूस धूर्त्तको धन बँटवाये
सेनाके बल धाक बढ़ायी यश फैलाये

९ राजा कंस नृशंस लगा करने यों शासन
करके बन्दी बाप, आप बैठा सिंहासन
कर स्वतंत्र अधिकार सभी पिटवायी डौंडी
धूर्त्त चला जो जाल पड़ी वह कभी न औंडी

१० हुआ सत्यका लोप, अस्त मित ज्ञान दिवाकर
गया मोह तम फैल, हुए स्वारथरत सब नर
धर्माधर्म-विवेक भगा विश्वास विलाना
श्रद्धा हियसे ओट हुई यश दूर पराना

११ साहस हुआ सभीत वीरता कुत्सित कायर
आर्त्त हुआ परमार्थ, हुआ औदार्य दीनतर
फैला तर्क कुतर्क, हुए नृप स्वेच्छाचारी
वादि-विषयरत पाप-परायण सब नरनारी

१२ छिपे सुजन नर साधु पड़े प्राणोंके लाले
दुष्ट हुए बलवान सभी अरमान निकाले
ऐसा देख अनर्थ प्रकृति थिरता थहरायी
विकृत व्यवस्था विश्व हुआ धरती घबरायी

१३ हुआ विकट संघर्ष उभय बलने बल खाया
घोर शक्ति उत्कर्ष हुआ पलटी जग काया
क्या हो रहा युगान्त ? क्रान्तिसे भ्रान्त हुए सब
लख उत्कट दुर्दान्त दुकाल अशान्त हुए सब

१४ जितने बलके देव, विश्वके धारण हारे
विकल हुए सब लौटे केन्द्रकी ओर निहारे

विद्युल्लता समान शक्ति-सहसा-संचालन
हुआ उसीका पूर्ण विश्व करता जो पालन

१५ हुई गिरा गम्भीर मेटनेको सब बाधा
कि नैराश्य-घनश्याम १ अंकमें प्रकटी राधा २
सुनते थे सब देव ब्रह्मने अर्थ बखाना
हुई आस दुख दूर हुए यह निश्चय माना

* * * * * *

१६ यह बन्दीगृह धन्य, पुण्यका मन्दिर पावन
सज्जनको विश्राम, सत्यव्रतको मनभावन
देख भयानक भीत, भीत होते हैं पापी
कठिन कराल कपाट देख काँपै परितापी

१७ अन्धकार अति घोर, निशीथ घटामय काली
पहरा चारों ओर चौकसी कड़ी निराली
लोहेकी जंजीर द्वारमें पैरोंमें थी
अपनोंमें था बन्ध, मुक्ति कुछ गैरोंमें थी

१८ यंत्रित चारों ओर न ऐसा भौन कहीं था
हिये ज्ञानकी जोत पौनका गौन नहीं था
बुद्धि जीवकी भांत अविद्याकी बन्दीमें
बेड़ी दोनों पांव कोसते दम्पति जीमें

१९ वे ही ये वसुदेव देवकी धर्मपरायन
करके जिनका ब्याह दिये सब भांत रतन धन

---

१ घनश्याम = कृष्ण तथा बादल। २ राधा = गोपी तथा बिजली

भगिनी छोटी जान, हजारों रथ कसवाये
बड़ी धूमसे साज, अनूप जलूस बनाये
२० बना सारथी आप, चला पहुँचाने घरतक
राजा कंस नृशंस सुनी इक गिरा भयानक
भावीसे भयभीत हाथमें खड्ग उठाया
बीच पड़े वसुदेव, बचाय उसे समझाया
२१ "यदपि आठई वार जन्म लेगा तव घालक
तव भी मैं प्रतिगर्भ तुम्हें दूंगा निज बालक
वैरीको पहचान खड्गकी धार पिलाना
नारीपर वीरत्व नहीं तलवार चलाना"
२२ था भावी बलवान मीच सिर आय विराजी
हुआ एकको छोड़ आठपर मूरख राजी
अगला लाभ निहार मूलको यथा लगाया
हत्याकी सम्पत्ति कालका व्याज बढ़ाया
२३ पर न हुआ विश्वास उन्हें बन्दीमें डाला
कड़ी बेड़ियां पांव, पड़ा तालोंपर ताला
एक एक कर सात हुए नवजात हवाले
राक्षसने बध बाल लाल दामन कर डाले
२४ उधर आठवां शत्रु खास है आनेवाला
कड़ी चौकसी रात हुई चिन्ता दोबाला
इधर आठवां पुत्र वही आंखोंका तारा
आते ही वह नूर गोदसे होगा न्यारा

३६ क्या अद्भुत व्यापार ! लिये सागर गागरमें
उसको नदी अथाह लगे डूबे सरि सरमें
सिरपर लिये स्वराज विपदकी नदी थहाता
जैसे भारत आज सुदिन तटकी दिशि जाता

३७ सिरपर उनकी छांह सृष्टि लय जिसकी माया
कर हिय दृढ़ विश्वास, बढ़े भय खोय बहाया
जमुनाजीने गोद लिया दममें पहुंचाया
झटपट तटपर आय गांवको पांव बढ़ाया

३८ सोते जसुदा नन्द, सभी गोकुल सोता था
जो जागे था आज, रत्न अपना खोता था
मणि ले ली, धर लाल, चोर सच्चा झट सरका
वही सूप सह बाल, वही मग कारावरका

३९ सुता देवकी गोद गयी पग बेड़ी डाली
लगे किवाड़े आप, रही फिर भी निशि काली
गये सन्तरी जाग नींदसे डर पछताये
रोना सुन भय भाग गया, संवाद सुनाये

४० आगेका कुछ हाल कहें क्या जो कि अधमने
मार बाल निर्दोष किया उस राक्षस यमने
गोकुल भी जासूस भेदिये असुर पठाये
विषसे मिससे जोड़ तोड़ कितनेहि लगाये

४१ क्रमशः बढ़े गुविन्द चन्दकी कला सरीखे
ग्वालबालके बीच पले पर थे अति तीखे

सुनकर इनकी वृद्धि तेज उसका घटता था
हुए सयाने जान नित्य राक्षस लटता था

४२ सामदाम भय भेद कोई छल छन्द न छूटे
शत्रु न पाया फाँस, कपटके फन्द न छूटे
मारे गये अनेक वीर रणधीर गुप्तचर
जिया आस बल आप बार बहु डरसे मर कर

४३ प्रतिभाशाली शत्रु, अनूपम भुजबलवाला
बड़ी बुद्धि लघु वैस, कि आफतका परकाला
देख मिले कुछ कंस पक्षके, खलसे फूटे
हुआ पापका अन्त दुष्टके डैने टूटे

४४ प्रभुने उसको मार भूमिका भार उतारा
बन्दी गृहको खोल, किया सबका छुटकारा
उग्रसेनको फेर राज्य आसन बैठाला
राजपुरुष बन आप सुशासन काज सँभाला

४५ यादवकुलकी राजसभा संगठन करायी
न्याय नीति फैलाय युद्धकी रीति सिखायी
देख अखंड सुराज लगे जलने परितापी
जरासन्ध बहु बार चढ़ा पर हारा पापी

४६ यादव-रक्षा हेत द्वारकापुरी बसायी
जरासन्ध बधवाय शांति डौंडी फिरवायी
कौरव पाण्डव बीच सन्धि-उद्योग रचाया
हुआ न राजी स्वार्थ, युद्धका चक्र चलाया

४७ समझ युद्धफल पार्थहृदय दुर्बलता आयी।
सब सन्देह निवार राजविद्या सिखलायी।
हुए स्वार्थके यज्ञ हवन नरपति बहुतेरे
सैनिक हुए समाप्त युद्धमें कहीं घनेरे

४८ पाय स्वार्थपर नाश किये यादवकुल सारे
पृथ्वी भार उतार आप निज लोक सिधारे
"जब जब होगा लोप धर्मका तब आऊंगा"
आज्ञाकी पनरोप "दुष्टवध करवाऊँगा।"

४९ वही दशा है आज, कष्टसे हम हैं आरत
व्यापा जगत अधर्म, पड़ा विपदामें भारत
फैला है अन्याय, रही पिस प्रजा दुखारी
ईति-अग्नि-भय-रोग—विवश छीजे नरनारी

५० कब प्रकटोगे श्याम ! दीन-भारत-हित प्यारे !
जायेंगे अन्याय-स्वार्थ-दानव कब मारे !
है बन्दी यह मातृभूमि कब मुक्त करोगे ?
अपना प्यारा देश धर्मसे युक्त करोगे ?

—रा० गौ०

२

१—काशीमें गंगाका दृश्य

नव उज्जल जलधार हार हीरक सी सोहति।
बिच बिच छहरति बूंद मध्य मुक्ता मनि पोहति॥

लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर-गन मन विविध मनोरथ करत मिटावत॥
सुभग स्वर्ग सोपान सरिस सबके मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत॥
श्रीहरि-पद-नख-चन्द्रकान्त-मणि द्रवित सुधारस।
ब्रह्म-कमण्डल मण्डन भवखण्डन सुर-सरबस॥
शिव-सिर-मालति माल भगीरथ नृपति पुण्य फल।
ऐरावत-गज-गिरि-पति-हिम-नग-कण्ठहार कल॥
सगर-सुवन सठि सहस परस जलमात्र उधारन।
अगनित धारा रूप धारि सागर संचारन॥
कासी कहँ प्रिय जानि ललकि भेंट्यो जग धाई।
सपने हूं नहिं तजी रही अंकम लपटाई॥
कहूँ बँधे नव-घाट उच्च गिरिवर सम सोहत।
कहुँ छतरी कहुँ मढ़ी बढ़ी मन मोहत जोहत॥
धवल धाम चहुँ ओर फरहरत धुजा पताका।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका॥
मधुरी नौबत बजत कहूँ नारी नर गावत।
वेद पढ़त कहुं द्विज कहुँ जोगी ध्यान लगावत॥
कहुँ सुन्दरी नहात नीर कर जुगल उछारत।
जुग अम्बुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निकारत॥
धोवत सुन्दरि बदन करन अतिही छवि पावत।
वारिधि नाते ससि-कलङ्क मनु कमल मिटावत॥

सुन्दरि ससि मुख नीर मध्य इमि सुन्दर सोहत ।
कमल बेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत ॥
दीठि जहीं जहँ जात रहत तितहीं ठहराई ।
गङ्गा-छवि हरिचन्द कछू बरनी नहिं जाई ॥

२—प्रभाती

प्रगटहु रवि-कुल-रवि निसि बीती प्रजा-कमलगन फूले ।
मन्द परे रिपुगन तारा सम जन-भय-तम उनमूले ॥
भगे चोर लम्पट खल लखि जग तुव प्रताप प्रगटायो ।
मागध बन्दी सूत चिरैयन मिलि कल रोर मचायो ॥
तुव जस सीतल पौन परसि चटकीं गुलाबकी कलियां ।
अति सुख पाइ असीस देत कोई करि अँगुरिन चट अलियाँ ॥
भये धरममें थित सब द्विज जन प्रजा काज निज लागे ।
रिपु-जुवती-मुख-कुमुद मन्द, जन चक्रवाक अनुरागे ॥
अरब सरिस उपहार लिये नृप ठाढ़े तिनकहँ तोखो ।
न्याय कृपा सों ऊँच नीच सम समुझि परसि कर पोखो ॥

—हरिश्चन्द्र

३

१—भारत वन्दना

जय जय भारत भूमि भवानी ।
जाकी सुयश-पताका जगके दसहूँ दिसि फहरानी ॥
सब सुख सामग्री पूरति ऋतु सकल समान सोहानी ।
जा श्री सोभा लखि अलका अरु अमरावती खिसानी ॥

धर्म सूर जित उयो नीति जहँ गई प्रथम पहिचानी ।
सकल कला गुन सहित सभ्यता जहँ सों सबहिं सुभानी ॥
भये असंख्य जहां जोगी तापस ऋषिवर मुनि ज्ञानी ।
विबुध विप्र विज्ञान सकल विद्या जिनतें जग जानी ॥
जग विजयी नृप रहे कबहुँ जहँ न्याय निरत गुन खानी ।
जिन प्रताप सुर असुरनहूकी हिम्मत विनसि बिलानी ॥
कालहु सम अरि तृन समझत जहँके छत्री अभिमानी ।
बीर बधू बुध जननि रहीं लाखन जित सती सयानी ॥
कोटि कोटि जित कोटिपती रज बनिक बनिक धनदानी ।
सेवत शिल्प यथोचित सेवा सूद समृद्धि बढ़ानी ॥
जाको अन्न खाय ऐंडति जग जाति अनेक अघानी ।
जाकी सम्पति लुटत हजारन बरसनहूं न खोटानी ॥
सहस सहस बरिसन दुख नित नव जो न ग्लानि उर आनी ।
धन्य धन्य पूरब सम जग-नृपगन-मन अजहुँ लोभानी ॥
प्रनवत तीस कोटि जन अजहूं जाहि जोरि जुग पानी ।
जिनमें झलक एकताकी लखि जगमति सहमि सकानी ॥
ईस कृपा लहि बहुरि प्रेमघन बनहु सोइ छवि छानी ।
सोइ प्रताप गुणजन गर्वित ह्वै भरी पुरी धन धानी ॥

—बद्रीनारायण चौधरी

४

१—हिन्दीकी हिमायत

चहहु जु सांचो निज कल्यान । तो सब मिलि भारत संतान ।
जपो निरंतर एक जबान । हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ।
तबहिं सुधरिहै जन्म निदान । तबहिं भला करिहै भगवान ।
जब रहिहै निसिदिन यह ध्यान । हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ॥१॥

२—तृप्यन्ताम्

केहि विधि वैदिक कर्म होत कब कहा बखानत ऋक यजु साम।
हम सपनेहूंमें नहिं जानैं रहैं पेटके बने गुलाम।
तुमहिं लजावत जगत जनम ले दुहूं लोकमे निपट निकाम।
कहैं कौन मुख लाइ हाइ फिर ब्रह्मा आवा तृप्यन्ताम् ॥ १ ॥
देख तुम्हारे फरज़न्दोंका तौरो तरीक़ तुआमो कलाम।
ख़िदमत कैसे करूं तुम्हारी अक़ल नहीं कुछ करती काम।
आबे गंग नज़र गुज़रानूं या कि मये गुलगूंका जाम॥
मुंशी चितर गुपत साहब तसलीम कहूं या तिरपिताम ॥२॥

३—बुढ़ापा

हाय बुढ़ापा तोरे मारे, अब तो हम नकन्याय गयन।
करत धरत कुछ बनतै नाहीं, कहां जान औ कैस करन।
छिन भरि चटक छिनै मा मद्धिम, जस बुझात खन होय दिया।
तैसे निखबख देख परत है, हमरी अक्किलके लच्छन ॥ १ ॥
अस कुछ उतरि जाति है जीतें बाजी बेरियां बाजी बात।
कैस्यो सुधि ही नाहीं आवत, मूंड़इ काहे न दे मारन।
कहा चहौं कुछ निकरत कुछ है, जीभ रांड़का है यह हालु।
कोऊ इहिका बात न समझै, चाहे बीसन दाँय कहन ॥ २ ॥
दाढ़ी नाक याक मां मिलगै, बिन दांतन मुहुँ अस पोपलान।
दढ़िही पर बहि बहि आवति है कबौं तमाखू जो फांकन।
बार पाकि गे रीरौ झुकि गै, मूँड़ौ सासुर हालन लाग।
हाथ पांव कछु रहे न आपन, केहिके आगे दुख रवावन॥ ३ ॥
यही लगुटियाके बूते अब जस तस डोलित डालित है।
जेहिका लैकै सब कामन मा, सदा खखारत फिरतं रहन।
जियत रहें महराज सदा जो हम ऐस्यन का पालति हैं।
नाही तो अब कोवौं पूंछै, केहि के कौने कामके हन॥ ४ ॥

४—गैया माता

गैया माता तुमका सुमिरौं, कीरति सब तें बड़ी तुम्हारि ।
करौ पालना तुम लरिकन कै, पुरिखन बैतरनी देउ तारि ।
तुम्हरे दूध दहीकी महिमा, जानैं देव पितर सब कोय ।
को अस तुम बिन दूसर जिहिका, गोबर लगे पवित्तर होय ॥१॥
जिनके लरिका खेती करिके, पालैं मनइनकै परिवार ।
ऐसी गाइनकी रछ्या मां, जो कुछ जतन करौ सो थ्यार ।
घासके बदले दूध पियावैं, मरिके देयँ हाड़ औ चाम ।
धनि वह तन मन धन जो आवै, ऐसी जगदम्बाके काम ॥२॥
को अस हिन्दू तै पैदा है, जो तब हालु देखि एक साथ ।
रकतके आंसन रोय न उठिहै, माथे पटकि दुहत्था हाथ ॥३॥
सब दुख सुख तो जैसे तैसे, गाइनकी नहिं सुनै गुहार ।
जब सुधि आवै मोहि गैयन की, नैनन बहै रकतकी धार ।
हियांकी बातै तो हियनैं रहिं, अब कम्पूकै सुनो हवाल ।
जहांके हिन्दू तन मन धनसे, निस दिन करै धरम प्रतिपाल ॥४॥

५—ईश्वर स्तुति

शरणागतपाल कृपाल प्रभो ! हम को इक आस तुम्हारी है ।
तुम्हरे सम दूसर और कोऊ नहिं दीनन को हितकारी है ॥
सुधि लेत सदा सब जीवन की अति ही करुना विस्तारी है ।
प्रतिपाल करैं बिन ही बदले अस कौन पिता महतारी है ॥
जब नाथ दया करि देखत हौ छुटि जाति बिथा संसारी है ।
बिसराय तुम्हें सुख चाहत जो अस कौन निदान अनारी है ॥
परवाहि तिन्हें नहिं स्वर्गहु की जिनको तब कीरति प्यारी है ।
धनि हैं धनि हैं सुखदायक जो तव प्रेम सुधा अधिकारी है ॥
सब भांति समर्थ सहायक हौ तव आश्रित बुद्धि हमारी है ।
परताप नारायण तौ तुम्हरे पद पंकज पै बलिहारी है ॥ १ ॥

पितु मातु सहायक स्वामि सखा तुमहीं इक नाथ हमारे हौ ।
जिनके कछु और अधार नहीं तिनके तुमहीं रखवारे हौ ।।
सब भांति सदा सुखदायक हौ दुख दुर्गुन नासनहारे हौ ।
प्रतिपाल करौ सगरे जग को अतिसै करुना उर धारे हौ ।।
भूलैं हमही तुम को तुमतौ हमरी सुधि नाहिं विसारे हौ ।
उपकारन को कछु अंत नहीं छिन ही छिन जो विस्तारे हौ ।।
महराज महा महिमा तुम्हरी समुझै विरले बुधिवारे हौ ।
शुभ शान्तिनिकेतन प्रेमनिधे ! मन मन्दिर के उजियारे हौ ।।
यहि जीवन के तुम जीवन हौ इन प्रानन के तुम प्यारे हौ ।
तुम सों प्रभु पाय प्रताप हरी किहि के अब और सहारे हो ।।२।।

—प्रतापनारायण मिश्र

५

१—रघुवंश

भये प्रभात धेनु ढिग जाई । पूजि रानि माला पहिराई ।।
बच्छ पियाइ बाँधि तब राजा । खोल्यो ताहि चरावन काजा ।।
परत धरनि गो चरन सुहावन । सो मग धूरि होत अति पावन ।।
चली भूप तिय सोइ मग माहीं । स्मृति श्रुति अर्थ संग जिमि जाहीं ।।
चौ सिन्धुन थन रुचिर बनाई । धरनिहि मनहु बनी तहँ गाई ।।
प्रिया फेरि अवधेश कृपाला । रक्षा कीन्ह तासु तेहि काला ।।
व्रत महँ चले गाय करि आगे । सेवक शेष सकल नृप त्यागे ।।
इक केवल निज वीर्य्य अपारा । मनु सन्तति तन रक्षनहारा ।।
कबहुँक मृदु तृन नोचि खिलावत । हांकि माछि कहुँ तनहि खुजावत ।।
जो दिसि चलत चलत सोइ राहा । यहि विधि तेहि सेवत नर नाहा ।।
जहँ बैठी सोइ धेनु अनूपा । बैठे तहहिं अवधपुर भूपा ।।
खड़े ताहि ठाढ़ी नृप जानी । चले चलत धेनुहि अनुमानी ।।

पियत नीर कीन्हो जल पाना । रहे तासु सँग छाँह समाना ॥
राज चिह्न यद्यपि सब त्यागे । तऊ तेज वस नृप सोइ लागे ॥
छिपे दान रेखा के संगा । होत मनहु मद मत्त मतंगा ॥
केश लता सब बांधि बनाये । वन विचरयो धनु बान चढ़ाए ॥
अपय धेनु रक्षक जनु होई । आयो पशुन सुधारन सोई ॥
वरुन सरिस धरि तेज प्रभाऊ । चले जदपि सेवक बिनु राऊ ॥
तरु पंछिन करि शब्द सुहावा । जनु चहुँ दिसि जयघोष सुनावा ॥
जानि निकट कोशलपति आये । फूल वायु वस लता गिराये ॥
जिमि नरेश निज पुर जब आवहिं । धान नगर कन्या बरसावहिं ॥
चले जदपि नृप कर धनु धारी । तउ दयाल तेहि हरिनि विचारी ॥
निरखत तासु शरीर मनोहर । लोचन फल पायो तेहि अवसर ॥
भरि भरि पवन रन्ध्र युत वांसा । वेणु शब्द तब करत प्रकासा ॥
वन देविन कुंजन महँ जाई । नृप कीरीत तहँ गाइ सुनाई ॥
जानि घाम वस म्लान सरीरा । लै सुगन्ध सोइ मिलत समीरा ॥
वन रक्षक तेहि आवत जानी । विना दृष्टि वन अग्नि बुझानी ॥
बाँध्यो सबल निवल पशु नाहीं । भे फल फूल अधिक वन माहीं ॥
करि पवित्र दिसि चहुँ दिसि जाई । धेनु साँझ आश्रम कहँ आई ॥
यज्ञ श्राद्ध साधन सोइ साथा । इमि सोहत तहँ कोशल नाथा ॥
श्रद्धा मनहुँ दृश्य तनु धारी । सोहत सन्त प्रयत्न मझारी ॥
जल सन उठत बराह समूहा । चलत रूख दिश नभचर जूहा ॥
हरी घास जहँ बैठ कुरंगा । चल्यो लखन सोइ सौरभिसंगा ॥
एक भरे थन भार दुखारी । धरे शरीर एक अति भारी ॥
मन्द चाल सन दोउ तहँ आई । तपवन सोभा अधिक बढ़ाई ॥
चलत वशिष्ठ धेनु के पाछे । लौटत अवध भूप छवि आछे ॥
प्यासे दृगन विलास बिसारी । लख्यो ताहि मगधेस कुमारी ॥
आगे खड़ी रानि मग माहीं । पीछे भूप मनहुँ परछाहीं ॥

सोहत बीच धेनु यहि भांती। संध्या संग मनहुँ दिन राती ॥
अछत पात्र कर धरे सयानी। फिरी गाय चहुँ दिसि तव रानी ॥
चरन वन्दि गो माथ विसाला। पूज्यो अवध रानि तेहि काला ॥
मिलन हेत बच्छहिं अकुलानी। यद्यपि रही धेनु गुन खानी ॥
पूजन काज रही सोइ ठाढ़ी। सो लखि प्रीति भूप मन बाढ़ी ॥
समरथ चहत देन फल जेही। प्रथम प्रसाद जनावत तेही ॥
पुनि सन्ध्या विधि नृप निपटाई। सादर गुरु पद कमल दबाई ॥
जिन नृप भुज बल शत्रु गिराये। दुहन अन्त गो सेवन आये ॥
पुनि पत्नी सँग भूप दिलीपा। धारि धेनु आगे बलि दीपा ॥
सोये तहँ तेहि सोवत जानी। जागे जगी धेनु अनुमानी ॥
सन्तति हित सेवत यहि भांती। बीते त्रिगुण सप्त दिन राती ॥

—सीताराम

६

१—आगामी अवतारका आवाहन

हे वैदिक दलके नर नामी, हिन्दू मण्डलके करतार।
स्वामि सनातन सत्य धर्मके, भक्ति भावनाके भरतार ॥
सुत वसुदेव देवकीजीके, नन्द यशोदाके प्रिय लाल।
चाहक चतुर रुक्मिणीजीके, रसिक राधिकाके गोपाल ॥
मुक्त अकाय बने तन धारी, श्रीपतिके पूरे अवतार।
सर्व सुधार किया भारत का, कर सब शूरों का संहार ॥
ऊंचे अगुआ यादवकुलके, बीर अहीरोंके सिरमौर।
दुविधा दूर करो द्वापरकी, ढालो रङ्ग ढङ्ग अब और ॥
भड़क भुला दो भूत कालकी, सजिये वर्तमानके साज।
फैसन फेर इंडिया भर के, गोरे गाड बनो ब्रजराज ॥

गौर वर्ण वृषभानु सुताका, काढ़ो काले तनपर तोप ।
नाथ उतारो मोर मुकुट को सिरपै सजो साहिबी टोप ॥
पौडर चन्दन पोंछ लपेटो, आननकी श्री ज्योति जगाय ।
अञ्जन अँखियोंमें मत आँजो, आला ऐनक लेहु लगाय ॥
रबधर कानो मे लटका लो, कुण्डल काढ़ मेकराफून ।
तज पीताम्बर कम्बल काला, डाटो कोट और पतलून ॥
पटक पादुका पहिनो प्यारे, बूट इटालीका लुकदार ।
डालो डवल वाच पाकट में, चमके चेन कञ्चनी चार ॥
रख दो गांठ गठीली लकुटी, छाता बेंत बगल में मार ।
मुरली तोड़ मरोड़ बजाओ, बांकी बिगुल सुने संसार ॥
फरिया चीर फाड़ कुबरी को, पहिनालो पँचरङ्गी गौन ।
अबलक लेडी लाल तिहारी, कहिये और बनेगी कौन ॥
मुँदना नहीं किसी मन्दिर में, काटो होटलमें दिन रात ।
पर नजखौआ ताड़ न जावें, बढ़ियां खानपानकी बात ॥
वैनतेय तज व्योमयान पै, करिये चारों ओर विहार ।
फक फक फूँ फूँ फूँको चुरटें, उगलें गाल धुआंकी धार ॥
यों उत्तम पदवी फटकारो, माधो मिस्टर नाम धराय ।
बांटो पदक नयी प्रभुताके, भारत जातिभक्त हो जाय ॥
कह दो सुबुध विश्वकर्मासे, रच दे ऐसा हाल विशाल ।
जिस पै गरमी नरमी वारे, कांगरेस कुलकी पण्डाल ॥
सुर नर मुनि डेलीगेटोंको, देकर नोटिस टेलीग्राम ।
नाथ बुला लो उस मण्डपमें, बैठें जैंटिलमैन तमाम ॥
उमगें सभ्य सभासद सारे, सर्वोपरि यश पावें आप ।
दर्शक रसिक तालियां पीटें, नाचें मंगल मेल मिलाप ॥
जो जन विविध बोलियां बोलें, टर्राली गिटपिट को छोड़ ।
रोको उस गोबर गणेश को, करे न सुरभाषा की होड़ ॥

वेद पुराणों पर करते है, आरज हिन्दू वादविवाद।
कान लगा कर सुनलो स्वामी, सबके कूट कटीले नाद॥
दोनोंके अभिलषित मतों पै, बीच सभा में करो विचार।
सत्य झूठ किसका कितना है, ठीक बता दो न्याय पसार॥
जगदीश्वरने वेद दिये है, यदि विद्या बलके भण्डार।
उनके ज्ञाता हाथ न करते, तो भी अभिनव आविष्कार॥

समझा दो वैदिक सुजनो को, उत्तम कर्म करे निष्काम।
जिनके द्वारा सब सुख पावै, जीवित रहै कल्प लों नाम॥
निपट पुराणोंके अनुगामी, ऊले निरखो इनकी ओर।
निडर आपको भी कहते है, नर्त्तक जार भगोड़ा चोर॥
प्रतिदिन पाठ करें गीताके, गिनते रहैं रावरे नाम।
पर हो मनमौजी मतवाले, बनते नहीं धर्मके धाम॥

कलुष कलंक कमाते हैं जो, उनको देते है फल चार।
कहिये इन तीरथ देवोंके, क्यो न छीनते हो अधिकार॥
यों न किया तो डर न सकेंगे, डांकू उदरासुरके दास।
अधम अनारी बीच करेंगे, मनमाने सानन्द बिलास॥
वैदिक पौराणिक पुरुषोंमें, टिके टिकाऊ मेल मिलाप।
गैल गहैं अगले अगुवोंकी. इतनी कृपा कीजिये आप॥
जिस विधिसे उन्नत हो बैठे, यूरुप अमरीका जापान।
विद्या बल प्रभुता उनकी सी, दो भारतको भी भगवान॥
देव आदिके अधिवेशन मे, पूरे करना इतने काम।
हिप हिप हुरोंके सुनते ही, खाना टिफन पाय आराम॥

झंझट झगड़े मतवालों के, जानों सबके खण्ड विभाग।
तीन चार दिन की बैठक में, कर दो संशोधन बेलाग॥
बनिये गौर श्यामसुन्दरजी, ताक रहे है दर्शक दीन।
हमको नहीं हँसाना बनके, बाघ वितुण्डी कछुआ मीन॥

धार सामयिक नेतापनको, दूर करो भूतलका भार ।
निष्कलङ्क अवतार कहेंगे, शंकर सेवक वारम्बार ॥ १८ ॥

—नाथूराम शंकर शर्म्मा

७

१—बंक-मयंक

ए हो सुघर सुधांशु बंकिमा संशोभित शशि ।
तू मोहि करत सशक आजु अति रैनि-अंक बसि ॥
होइ न निहचय मोहिं नील नभमें को है तू ।
जोह्यौ जो शशि काल्हि आजुको नहिं सो है तू ॥
व्योम-पंक-प्रस्फुटित सेत सरसिज दल है तू ।
पारिजात सों पतित मुकुल कोइ कोमल है तू ॥
कै कोई आनन्द-कन्द नन्दन-फल है तू ।
शची-कर्न-आभर्न-रत्न कोइ चंचल है तू ॥
दिसि-भामिनि-भ्रूभंग, काल-कामिनि-निहंग असि ।
कै जामिनि रही अधर बिम्ब सो मन्द हास हँसि ॥
सुर-सुन्दरि कल कंठ-हँसुलि, विलुलित थल सों खसि ।
कै अनंग भष लसत चपल निसिके उछंग बसि ॥
कुपित काम-नृप-धनुष, वक्र परजन्य-शस्त्र कोइ ।—
किधौं भिन्न हरि चक्र, स्वर्गको अन्य अस्त्र कोइ ॥
मन्दाकिनि तट पर्‍यौ तृपित जल-हीन मीन कोइ ।
तड़पि रह्यो तन-छीन, व्योम-चर कै नवीन कोइ ॥
वृत्र विदारक इन्द्र-कुलिसकी कुटिल नोक तू ।
निसि विरहिनि तन लगी मदनकी किधौं जोक तू ॥
प्रथम कालको बच्यौ प्रकृतिको बाल-खिलौना ।
नजर विडारन रच्यौ बजरवट्टू कै टौना ॥

दृष्टि तुला के पला किधौं स्रष्टा-बैठारौ।
सृष्टि-गोद कौ लला मोद-प्रद मात-दुलारौ॥
निशा-योगिनी-भाल-भस्म कौ बाँकौ टीका।
कै माया-महिषी-किरीट-छाया सु श्री का॥
कै विरञ्चि-मस्तक-त्रिपुंड-आभास मनोहर।
कै भारत-तप-तेज-पिंडकौ खंड मंजु तर॥
कै अद्भुत ब्रह्मांड-छोर कौ छिलुका छूव्यौ।
किधौं प्रेम-आनन्द-अमृतकौ मटुका टूव्यौ॥

किधौं नन्दिनी श्रृङ्ग व्यौम पटमें प्रतिबिम्बित।
किधौं कुशंक त्रिशंकु अधरमे है अवलम्बित॥
सप्त ऋषिन कौ व्यवहृत वक्रीकृत तर्पण-कुश।
किधौं अभ्र पथ पतित शुभ्र मघवा-इभ-अंकुश॥
शिव गिरि सों नित शिला खंड मुरि गयौ उछरि कोइ।
गैल भूल निज संगिन सों सुर गयौ बिछुरि कोइ॥
कै सुमेरु शुचि वर्न स्वर्न सागरकौ कौड़ा।
कै सुर-कानन-कदलि मूलकौ कोमल वौड़ा॥

किधौं स्वर्ग फुलवारीके माली कौ हँसिया।
कै अम्मृत एकत्र करनकी सेत अँकुसिया॥
रवि-हय खुरकी छाप किधौं कै नाल नुकीली।
काल चक्रकी हाल परी खंडित कै कीली॥
नभ-आसन आसीन कोइ कै तपोलीन ऋषि।
कै कछु जोति मलीन कृशित सोइ कला छीन शशि॥

—श्रीधर पाठक

८

१—ग्रन्थकार-लक्षण

एक प्रवासी ज्ञान निधान
तीर्थराज-वासी गुणवान
बुद्धिराशि विद्याका वारिधि, पास हमारे आया है।
नाना कथा नवीन नवीन
कहनेमें वह महा प्रवीण
ग्रन्थकार माहात्म्य मनोहर उसने हमें सुनाया है।
सुनकर वह माहात्म्य अपार
सोच समझकर भले प्रकार
परमानन्द रूप नदमें मन बहता है लहराता है।
उसका ही लेकर आधार
निज वचनोंका कर विस्तार
लक्षण मात्र ग्रन्थकारोंका यहाँ सुनाया जाता है।
शब्द शास्त्र है किसका नाम
इस झगड़ेसे जिन्हें न काम
नहीं विराम चिन्हतक रखना जिन लोगोंको आता है।
इधर उधरसे जोड़ बटोर
लिखते हैं जो तोड़ मरोड़
इस प्रदेशमें वे ही पूरे ग्रन्थकार कहलाते हैं।
भला बुरा छपवाये सिद्ध
धन न सही, नाम ही प्रसिद्ध
नाटक उपन्यास लिखनेमें ज़रा न जो सकुचाते हैं।
जिनके नाच कूदका सार
बँगला भाषाका भंडार
वे ही महामहिम विद्वज्जन ग्रन्थकार कहलाते हैं॥

जिनके लोचन कोटर-लीन
कच कलापतक तैल-विहीन
जिनके जर्जर तनको मैले कपड़े सदा छिपाते हैं।
कुटिल कटाक्ष किन्तु दुर्दान्त
मति भी गति भी कुटिल नितान्त
वेही भारतवर्ष देशमें ग्रन्थकार पद पाते हैं॥
अन्य देश भाषाका ज्ञान
कालकूटकी घूँट समान
स्वयं मातृभाषा भी जिनको देख देख घबड़ाती है।
भाड़पर रख चिह्न विशेष
लिखवाते हैं जो निज लेख
ग्रन्थकार पदवी उनको ही दौड़ दौड़ लिपटाती है॥
जिनकी जिह्वाकी खर धार
देख चमकते छुरे हजार
किन्तु लेखनी जिनके करमे धारहीन हो जाती है।
लेखनकला कुशलता हीन
बातोंमें जो बड़े प्रवीण
ग्रन्थकार पदवी उनको-ही बिना मोल मिल जाती है॥
लक्ष्मी जिन लोगों के द्वार
आती नही एक भी बार
सरस्वती जिनके प्रताप से भूतलसे भग जाती है।
मानी मत्त गयन्द समान
अथवा मूर्त्तिमान अभिमान
उनको ही सद्ग्रन्थकारकी पदवी गले लगाती है॥
पाकालयका अन्तर्भाग
नहीं देखता जलती आग

किन्तु सदा ईर्षानलसे तन जिनका जलता रहता है।
निज गुरुको भी गाली दान
देनेमें जिनको लज्जा न
उनको ही ऊँचे दरजेके ग्रन्थकार जग कहता है॥
ए वी सी डीका भी ज्ञान
जिनको अच्छी भाँति हुआ न
अँगरेजी उद्धृत करनेमे किन्तु न जो शरमाते है।
ऐसे विद्या बुद्धि-निधान
जिनका बड़ा मान सम्मान
निश्चय वे ही परम प्रतिष्ठित ग्रन्थकार कहलाते हैं॥
संस्कृत भाषा कौन पदार्थ
जिन्हें न यह भी विदित यथार्थ
धर्म्मशास्त्रका मर्म्म किन्तु जो लिख लिखकर समझाते है।
जन समाज-संशोधनकार
व्यर्थ वाद जिनका व्यापार
सत्य सत्य वे ही अति उत्तम ग्रन्थकार कहलाते है॥
अपने ग्रन्थोका प्रतिवर्ष
विज्ञापन लिख स्वयं सहर्ष
व्यास और वाल्मीकि तुल्य जो अपनेको बतलाते है।
अथवा पुत्र मित्रका नाम
देकर जो निकालते काम
अति गम्भीर ग्रन्थकारोके गुरुवर वे कहलाते हैं॥
अपनी पुस्तकको सानन्द
स्वयं समीक्षा लिख स्वच्छन्द
अन्य नामसे अखबारोमें जो शतवार छपाते हैं।

निज मुखसे जो गुण विस्तार
करते सदा पुकार पुकार
ग्रन्थकार-पद योग्य सर्वथा वेही समझे जाते हैं ।
गृहमें गृहिणी कोप-निधान
देतीं जिन्हें न आदर दान
बाहर जिन्हें न पाठकगण भी भक्ति भाव दिखलाते हैं ।
जिनका कहीं नहीं सम्मान
तिसपर घोर घमण्ड घटा न
ग्रन्थकार सिंहासन ऊपर आसन वही लगाते हैं ॥
ग्रह ज्यों रविके चारों ओर
किया करें हैं दौरा दौर
त्यों पुस्तक विक्रेताकी जो बहु प्रदक्षिणा करते हैं ।
दग्धोदर जो किसी प्रकार
भरते हैं सदैव झख मार
ग्रन्थकार गौरवकी झोली वेही यशसे भरते हैं ॥
किसी समालोचक के द्वार
सिर घिस घिस कर बारम्बार
निज पुस्तककी समालोचना जो सविनय लिखवाते हैं ।
यदि आशय पाया प्रतिकूल
ढूँढ़ा और कहीं अनुकूल
ग्रन्थकार कुल कुमुद चन्द्रमा वेही माने जाते हैं ॥
टेकस्ट बुक्सकी सभा प्रधान
उसके जितने सभ्य सुजान
उनके प्रिय पुत्रादिकको जो मोदक मंजु खिलाते हैं ।
आते हैं जो प्रातःकाल
और झुकाते हैं निज भाल

ग्रन्थकार काननासन ऊपर वेही मजे उड़ाते हैं ॥

नूतन चित्त चरित्र प्रचार
करके उनकी रुचि अनुसार
निज पुस्तकमें जो धनिकों की व्यर्थ बड़ाई गाते हैं।

उनसे रख भिक्षाकी आस
करते हैं जो वचन-विलास
ग्रन्थकार गुरुओंके भी वे कर्णधार कहलाते हैं ॥

ग्रन्थकार गुणगण निःशेष
गान नहीं कर सकता शेष
इसीलिये हम इस वर्णनको आगे नहीं बढ़ाते हैं।

हे हे ग्रन्थकार गुणधाम
हे समर्थ ! हे पावन नाम
शत योजनसे हम यह अपना मस्तक तुम्हें झुकाते हैं ॥

—महावीरप्रसाद द्विवेदी

६

प्रताप-विसर्जन

उन्नत सिर गिरिअवलि गगन सों उत बतरावत।
इत सरवर पाताल भेदि अति छवि छहरावत ॥
मन्द पवन सीरी बहै होन लगे पतझार।
पर्नकुटी नरसिंह लसत इक मानो कोउ अवतार
हरन भुवभार को ॥

मुखमंडल अति शान्त कान्तिमय चितवन सोहै।
भरे अनेकन भाव व्यग्र चारिहुँ दिसि जोहै ॥

वीर मण्डली घेरिके प्रभुकी गति रहे जोहि।
मनु भीषम सर-सयन परे कौरव पाण्डव रहे सोहि
हृदय उमड़्यो परं॥

लखि निज प्रभुकी अंत समयकी वेदन भारी।
व्याकुल सब मुख तकैं सकैं धीरज नहिं धारी॥
राव सलूमर रोकि निज हिय उद्वेग महान।
हाथ जोरि बिनती कियो अति हरुए लगि प्रभु कान
बैन आरत सने॥

अहो नाथ अहो वीर-सिरोमनि भारत-स्वामी।
हिन्दू-कीरति थापनमे समर्थ सुभ नामी॥
कहाँ वृत्ति है आपकी, कौन सोच, कहँ ध्यान?
देखि कष्ट हिय फटत है, केहि सङ्कट मे हैं प्रान
कृपा करिकै कहौ॥

सुनत दुख भरे बैन नैन तिनके दिशि फेरयो।
भरि कै दीरघ साँस सबन तन व्याकुल हेरयो॥
पुनि लखि सुत तन फेरि मुख अति संतप्त अधीर।
धरि धीरज अति छीन सुर बोले वचन गँभीर
परम आतङ्क सो।

हे हे वीर सिरोमनि सब सरदार हमारे।
हे विपत्ति-सहचर प्रताप के प्रान पियारे॥
तुँवै भुज-बल लहि मै भयो इच्छा करना समर्थ।
मातृभूमि-स्वाधीनताको प्रवल सत्रु करि व्यर्थ
अनेकन कष्ट नाहि॥

या प्रतापनै उचित कहाँ कै अनुचित माख्यौ।
वा स्वतन्त्रता हेतु जगत सुख तृन सम नाख्यौ॥

ढाइ महल खँडहर किये सुख सामान बिहाय।
छाइ बननकी धूरिको गिरि गिरि मैं टकराय
क्लेश को लेश नहिं ॥

पै जब आवत ध्यान लह्यो जो सहि दुख इतने।
सो अमूल्य विधि मम पाछे रहिहै दिन कितने ॥
तुच्छ वासनामें पय्यो दुःख सहन असमर्थ।
चञ्चल अमरहि देखि कै होत आस सब व्यर्थ
सोचि भावी दसा ॥

कहि 'दुखमय ये वचन अमर तन दुख सों देख्यो।
मूँदि नैन जल भरे स्वास लै सब दिशि पेख्यो ॥
सन्नाटा चहुँ दिशि छयो सबके मुख गंभीर।
पृथ्वी दिशि हेरैं सबै भरे महा हिय पीर
बैन नहि कछु कहैं ॥

करि साहस पुनि राव सलूमर सीस नवायो।
अभिवादन करि अति विनीत ये वचन सुनायो ॥
पृथ्वीनाथ यह सोच क्यों उपज्यो प्रभु हिय आज।
कुँवर बहादुर तें परी कौन चूक केहि काज
निरासा जो भई ॥

बदलि पास कछु सँभरि बैन परताप कह्यो पुनि।
अति गंभीर सतेज मनहुँ गुंजत केहरि धुनि ॥
"सुनो वीर मेवारके गौरव राखनहार।
मेरे हियकी वेदना जो कियो आस सब छार
अमरके कर्मने ॥

एक दिवस एहि कुटी अमर मेरे ढिग बैठ्यो।
इतनेहिमें मृग एक आनि कै वहाँ जु पैठ्यो ॥

हरबराइ सन्धानि सर अमर चल्यो ता ओर।
कुटियाके या बाँस में फँस्यो पागको छोर
अमर तौहुँ न रुक्यो ॥

बढ़न चहत आगे वह पगिया खैंचत पाछे।
पै नहिं जियमें धीर छुड़ावै ताको आछे॥
पागहु फटी सिकारहू लग्यो न याके हाथ।
पदाकि पाग लखि झोपड़िहिं अतिहिं क्रोधके साथ
वैन मुख ते कढ़े ॥

रहु रहु रे निर्बोध अमर-गति रोकनहारे।
हम न लेहिंगे सांस विना तोहिं आज उजारे॥
राजभवन निर्मान करि तेरो चिन्ह मिटाइ!
जो दुख पाये तोहि मैं सो देहौं सबै भुलाइ
सुखद आवास रचि ॥

तबहीं ते ये बैन शूल सम खटकत मम हिय।
यह परि सुख वासना अवसि दुख दिवस विसारिय।
अति अमोल स्वाधीनता तुच्छ विषयके दाम।
बेचि सिसोदिय कीर्त्तिको यह करिहै अवसि निकाम
रुके हम सोचि एहि ॥"

हिन्दूपतिके बैन सुनत छत्री कोपे सब।
अति पवित्र रजपूत रुधिर नस नस दौरयो तब॥
लै लै असि दृढ़ पन कियो छ्वै छ्वै प्रभुके पाय।
"जौ लौं तन, स्वाधीनता तौ लौं रखौं बचाय
सङ्क करिय न कछु ॥"

दृढ़ प्रतिज्ञ छत्रिनपन सुनि राना मुख विकस्यो।
आश-लता लहलही भई मुखते यह निकस्यो॥

"धन्य वीर तुम जोग ही यह पन तुमहिं सुहाइ।
अब हम सुख सों मरत हैं, हरि तुम्हरे सदा सहाय,
यही आसीस मम ॥"

देखत देखत शान्ति-सदन परताप सिधाये।
पराधीनता मेघ बहुरि भारत सिर छाये॥
सबही सुख परताप सँग कियो विसर्जन हाय।
दीन हीन भारत रह्यो सुख सम्पदा गँवाय
याहि प्रभु रच्छिए ॥

—राधाकृष्ण दास

१०

१—श्री रामस्तोत्र

अब आये तुम्हरी सरन "हारे के हरि नाम।"
साख सुनी रघुवंशमणि "निर्वलके बल राम॥"
जपबल तपबल बाहुबल, चौथो बल है दाम।
हमरे बल एकौ नहीं, पाहि पाहि श्रीराम॥
सेल गई बरछी गई, गये तीर तलवार।
घड़ी छड़ी चसमा भये, छतिनके हथियार॥
जो लिखते अरि हीय पै, सदा सेलके अङ्क।
झपत नैन तिन सुतनके, कटत कलमको डङ्क॥
कहाँ राज कहँ पाट प्रभु, कहाँ मान सम्मान।
पेट हेत पायन परत, हरि तुम्हरी सन्तान॥
जिनके करसों मरन लौं, छुट्यो न कठिन कृपान।
तिनके सुत प्रभु पेट हित, भये दास दर्बान॥
जहाँ लरैं सुत बाप सँग, और भ्रात सों भ्रात।
तिनके मस्तक सों हटे, कैसे पर की लात॥

बार बार मारी परत, बारहिं बार अकाल ।
काल फिरत नित सीस पै, खोले गाल कराल ॥
अब तुम सों बिनती यहै, राम गरीब नेवाज ।
इन दुखियन अँखियान महँ, बसै आपको राज ॥
जहँ मारीको डर नहीं, अरु अकालको त्रास ।
जहाँ करै सुख सम्पदा, बारह मास निवास ॥
जहाँ प्रबलको बल नहीं, अरु निबलनकी हाय ।
एक बार सो दृश्य पुनि, आँखिन देहु दिखाय ॥
अबलों हम जीवित रहे, लै लै तुम्हरो नाम ।
सोहू अब भूलन लगे, अहो राम गुनधाम ॥
कर्म्म धर्म्म संयम नियम, जप तप जोग विराग ।
इन सबको बहु दिन भये, खेलि चुके हम फाग ॥
धनबल, जनबल, बाहुबल, बुद्धि विवेक विचार ।
मान तान मरजादको, बैठे जूआ हार ॥
हमरे जाति न बर्न है, नहीं अर्थ नहिं काम ।
कहा दुरावैं आपसे, हमरी जाति गुलाम ॥
बहु दिन बीते राम प्रभु, खोये अपनो देस ।
खोवत हैं अब बैठके, भाषा भोजन भेस ॥
नहीं गाँवमें झूँपड़ो, नहिं जङ्गलमें खेत ।
घर ही बैठे हम कियो, अपनो कञ्चन रेत ॥
दो दो मूठी अन्न हित, ताकत पर मुख ओर ।
घर हीमें हम पारधी, घर ही में हम चोर ॥
तौ हू आपसमें लड़ैं, निसदिन स्वान समान ।
अहो! कौन गति होयगी, आगे राम सुजान ?
घरमें कलह बिरोधकी, बैठ आग लगाय ।
निस दिन तामैं जरत हैं, जरतहि जीवन जाय ॥

विप्रन छोड़यो होम तप, अरु छत्रिन तरवार।
वनिकनके पुत्रन तज्यौ, अपनो सद्व्यवहार॥
अपनो कछु उद्यम नहीं, तकत पराई आस।
अब या भारत भूमिमें, सबै बरन हैं दास॥
सबै कहैं तुम हीन हौ, हमहुं कहैं हम हीन।
धक्का देत दिनानको, मन मलीन तन छीन॥
कौन काज जन्मत मरत, पूछत जोरे हाथ?
कौन पाप यह गति भई, हमरी रघुकुलनाथ?

२—वसन्तोत्सव

आ आ प्यारी वसन्त सब ऋतुओंमें प्यारी।
तेरा शुभागमन सुन फूली केसर क्यारी॥
सरसों तुझको देख रही है आँख उठाये।
गेंदे ले ले फूल खड़े हैं सजे सजाये॥
आस कर रहे हैं टेसू तेरे दर्शनकी।
फूल फूल दिखलाते हैं गति अपने मनकी॥
बौराई सी ताक रही है आम की मौरी।
देख रही है तेरी बाट बहोरि बहोरी॥
पेड़ बुलाते हैं तुझको टहनियाँ हिलाके।
बड़े प्रेमसे टेर रहे हैं हाथ उठाके॥
मारग तकते बेरीके हुए सब फल पीले।
सहते सहते शीत हुए सब पत्ते ढीले॥
नीबू नारङ्गी हैं अपनी महक उठाये।
सब अनार हैं कलियोंकी दुरबीन लगाये॥
पत्तोंने गिर गिर तेरा पांवड़ा बिछाया।
झाड़ पोंछ वायूने उसको स्वच्छ बनाया॥

फुलसुँघनीकी टोली उड़ उड़ डाली डाली ।
झूम रही हैं मदमें तेरे हो मतवाली ॥
इस प्रकार है तेरे आनेकी तैयारी ।
आ आ प्यारी बसन्त सब ऋतुओंमें प्यारी ॥
एक समय वह भी था प्यारी जब तू आती ।
हर्ष हास्य आमोद मौज आनन्द बढ़ाती ॥

होते घर घर बन बन मङ्गलचार बधाई ।
राव चावसे होती थी तेरी पहुनाई ॥
ठौर ठौर पर गाये जाते गीत सुहाने ।
दूर दूर जाते तेरा तिहवार मनाने ॥

कुछ दिन पहिले सारे बन उद्यान सुधरते ।
सुन्दर सुन्दर कुञ्ज मनोहर ठाँव सँवरते ॥
लड़की लड़के दौड़ दौड़ उपवनमें जाते ।
अच्छे अच्छे फूल तोड़ते हार बनाते ॥
क्यारी क्यारीमें फिर जाते मालिन माली ।
चुग चुग सुन्दर फूल बनाते कितनी डाली ॥
ठाँव ठाँव पर बिछतीं सुन्दर फटिक शिलायें ।
आनेवाले बैठें छवि निरखें सुख पायें ॥
सखी देखने आतीं उनकी वह सुघराई ।
एक दूसरीको देती सानन्द बधाई ॥
सारी शोभा देख देखकर घरको फिरतीं ।
कहके अपनी बात मुदित सखियोंको करतीं ॥

कहती थीं प्रमुदित हो होके सब सुकुमारी ।
आ आ प्यारी बसन्त सब ऋतुओंमें प्यारी ॥
सब किसान मिलके अपने खेतोंमें जाकर ।
फूल तोड़ते सरसोंके आनन्द मनाकर ॥

बनमें होते लड़कोंके पाले औ दङ्गल ।
चढ़ते ढाकोंपर और फिरते जङ्गल जङ्गल ॥
कूद फाँदकर भाँति भाँतिकी लीला करते ।
महा मुदित हो जहाँ तहाँ स्वच्छन्द बिचरते ॥
कोसोंतक पृथ्वीपर रहती सरसों छाई ।
देती दृगकी पहुँच तलक पीतिमा दिखाई ॥
सुन्दर सुन्दर फूल वह उसके चित्त लुभाने ।
बीच बीचमें खेत गेहूँ जौके मनमाने ॥
वह बबूलकी छाया चितको हरनेवाली ।
वह पीले पीले फूलोंकी छटा निराली ॥

आसपास पालोंके वटवृक्षोंका झूमर ।
जिसके नीचे वह गायों भैंसोंका पोखर ॥
ग्वालबाल सब जिनके नीचे खेल मचाते ।
बूट चनेके लाते होले करते खाते ॥
पशुगण जिनके तले बैठके आनन्द करते ।
पानी पीते पगुराते स्वच्छन्द विचरते ॥

पास चनेके खेतोंमें बालक कुछ जाते ।
दौड़ दौड़के सुरुचि साग खाते घर लाते ॥
आपसमें सब करते जाते खिल्ली ठट्ठा ।
वहीं खोल कर खाते मक्खन रोटी मट्ठा ॥
बातें करते कभी बैठके बाँधे पाली ।
साथ साथ खेतोंकी करते थे रखवाली ॥

कहते हर्षित सभी देख फूली फुलवारी ।
आ आ प्यारी वसन्त सब ऋतुओंमें प्यारी ॥
हाय समयने एक साथ सब बात मिटाई ।
एक चिह्न भी उसका नहीं देता दिखलाई ॥

कटे पिटे मिट गये वह सब ढाकोंके जङ्गल ।
जिनमें करते थे पशुपक्षी नित प्रति मङ्गल ॥
धरतीके जीमें छाई ऐसी निठुराई ।
उपजीविका किसानोंकी सब भाँति घटाई ॥
रहा नहीं तृण न्यार कहीं कृषकोंके घरमें ।
पड़े ढोर उनके गोभक्षक कुलके कर में ॥
जिन सरसोंके पत्तोंको डङ्गर थे खाते ।
उनसे वह अपना जीवन है आज बिताते ॥
कहाँ गये वह गाँव मनोहर परम सुहाने ।
सबके प्यारे परम शान्तिदायक मनमाने ॥
कपट क्रूरता पाप और मदसे निर्म्मल ।
सीधे सादे लोग बसें जिनमें नहिं बल छल ॥
एक साथ बालिका और बालक जहँ मिलकर ।
खेला करते और घर जाते साँझ पड़े पर ॥
पाप भरे व्यवहार पाप मिश्रित चतुराई ।
जिनके सपनेमें भी पास कभी नहिं आई ॥
एक भावसे जाति छतीसों मिल कर रहतीं ।
एक दूसरेका दुख सुख मिलजुल कर सहतीं ॥
जहाँ न झूठा काम न झूठी मान बड़ाई ।
रहती जिनके एक मात्र आधार सचाई ॥
सदा बड़ोंकी दया जहाँ छोटोंके ऊपर ।
औ छोटोंके काम भक्तिपर उनकी निरभर ॥
मेल जहाँ सम्पत्ति प्रीति जिनका सच्चा धन ।
एकहि कुलकी भाँति सदा बसते प्रसन्न मन ॥
पड़ता उनमें जब कोई झगड़ा उलझेड़ा ।
आपसमें अपना कर लेते सब निबटेड़ा ॥

दिन दिन होती जिनकी सच्ची प्रीति सवाई।
एक चिह्न भी उसका नहीं देता दिखलाई॥
पतितपावनी पूजनीय यमुनाकी धारा।
सदा पापियोंका जो करती थी निस्तारा॥
अपनी ठौर आज तक वह बहती है निरमल।
बना हुआ है वैसा ही शीतल सुमिष्ट जल॥
विस्तृत रेती अबतक वैसी ही तटपर है।
आसपास वैसाही वृक्षोंका झूमर है॥
छिटकी हुई चाँदनी फैली है वृक्षोंपर।
चमर रहे हैं चारु रेणुकण दृष्टि दुःखहर॥
वही शब्द है अबतक पानीकी हलचलका।
बना हुआ है स्वभाव ज्योंका त्यों जलथलका॥
वोही फागुन मास और ऋतुराज वही है।
होली है और उसका सारा साज वही है॥
अहह देखने वाले इस अनुपम शोभाके।
कहाँ गये चल दिये किधर मुँह छिपा छिपा के॥
प्रकृति देवि! हा! है यह कैसा दृश्य भयानक।
हृदय देखके रह जाता है जिसको भवचक॥
क्या पृथ्वीसे उठ गई सारी मानवजाती।
क्यों नहिं आकर इस शोभाको अधिक बढ़ाती॥
किसने वह सब अगली पिछली बात मिटाई।
एक चिह्न भी उसका नहिं देता दिखलाई॥
सुन पड़ती नहिं कहीं आज वह ध्वनि सुखकारी।
आ आ प्यारी बसन्त सब ऋतुओंमें प्यारी॥

३—पिता

एहौ जगतपिताके प्रतिनिधि पिता पियारे ।
मोहि जन्म दै जगत दृस्य दरसावनहारे ॥
तव पदपंकजमें करौं हौं बारहिं बार प्रनाम ।
निज पवित्र गुनगानकी मोहिं दीजै बुद्धि ललाम ॥

यद्यपि यह सिर मेरो नहिं परसाद तिहारो ।
प्रेम नेम ते तदपि चहौं तव चरननि धारो ॥
गंगाजूको अर्घ सब, है गंगहिं जलसों देत ।
ऐसो बालचरित्र मम लखि रीझौ मया समेत ॥

बन्दौं निहछल नेह रावरे उरपुर केरो ।
लालन पालन भयो सबै विधि जासों मेरो ॥
उलटै पुलटै काम मम अरु टेढ़ी मेढ़ी चाल ।
निपट अटपटे ढंगहू नित,लखि लखि रहे निहाल ॥
कहौं कहाँ लग अहो आपनी निपट ढिठाई ।
तव पवित्र तन माहिं बार बहु लार बहाई ॥

सुद्ध स्वच्छ कपड़ान पर बहु बार कियो मल मूत ।
तबहुँ कबहुँ रिस नहिं करी मोहिं जानि पियारो पूत ॥
लाखन अवगुन किये तदपि मन रोष न आन्यो ।
हँसि हँसि दिये बिसारि अज्ञ बालक मोहिं जान्यो ॥
कोटि कष्ट सुख सों सहे जिहि बस अनगिनतिन हानि ।
कस न करौं तिहि प्रेमकों नित प्रनतजोरि जुग पानि ॥

बन्दौं तव मुख कमल मोहिं लखि नित्य विकासित ।
मो संग विद्या आछतहूँ तुतराई भासित ॥
लाल वत्स प्रिय पूत सुत नित लै लै मेरे नाम ।
सुधा सरिस रस बैनसों जो पूरित आठो याम ॥

षोडशवर्षीय बालक—अभिमन्यु की मुष्टिका में वज्र है,तब तक आपका चिंता करना व्यर्थ है:—

अविचल हैं जो धर्म्म पर, होगी उनकी जीत।
अन्यायी की लाश पर, कुत्ते गावें गीत॥

युधिष्ठिर—पुत्र अभिमन्यु, तुम समझे नहीं, मेरी चिंता दूसरा ही अर्थ है।

सहदेव—वह क्या ?

युधिष्ठिर – यह जो नित्य नित्य आर्य्य–जाति की लाशों से रणक्षेत्र पटता जारहा है, पिता के हाथ से पुत्र, पुत्र के हाथ से पिता कटता जारहा है, यह दृश्य अब इन आंखों से नहीं देखा जाता। यह सत्य है कि दुर्योधन बड़ा अन्यायी है, स्वार्थी है, परन्तु फिर भी हमारा............

सहदेव—महाराज, आपका यह बर्ताव, संग्राम के स्थान पर नहीं सुहाता है। यह दयाभाव, यह शांत–स्वभाव इस समय हमें कायर बनाता है :—

विपरीत समय का मीठापन, विष का सा फल दिखलाता है।
मीठे वचनों के कारण से, तोता पिंजड़े में आता है।
जो ज्यादा मीठा होता, है वह अपना नाश कराता है।
मीठे गन्ने को देखो तो, कोल्हू में पेला जाता है।

(नकुल का घबराये हुये आना)

नकुल – भ्राता ! भ्राता ! बड़ा भयानक समाचार है।

युधिष्ठिर – क्या अत्यचार है ? (कोलाहल सुनकर) कैसा हाहाकार है ?

नकुल – पाण्डव-सेना का चीत्कार है। आज भगवान् द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह निर्माण किया है, जिसको अर्जुन के अतिरिक्त हम लोग कोई तोड़ नहीं सकते। और अर्जुन, भगवान् वासुदेव के साथ संसप्तकों की ओर युद्ध करने गये हैं–वे उस स्थान को छोड़ नहीं सकते।

युधिष्ठिर – फिर क्या होगा ?

नकुल – जो भाग्य में लिखा होगा !

युधिष्ठिर – हा अर्जुन ! गाण्डीवधारी अर्जुन ! आज तुम्हारी अनुपस्थिति में पाण्डव सेना पर बड़ा अनर्थ होने वाला है, हमारा सब परिश्रम, हमारा सब प्रयत्न व्यर्थ होने वाला है। जाओ जाओ गदाधारी भीम ! जाओ, अपनी गदा चलाते हुऐ शत्रुओं की सेना की ओर प्रस्थान करो। जब तक तुम्हारे प्राण देह में रहें, देह में हाथ रहें, हाथों में गदा रहें, तब तक घोर घमसान करो, शत्रुओं के शिविरों को श्मशान करो, उनका रक्तपान करो–और जब तक जाओ, लड़ते लड़ते थक जाओ, तो आर्य्य वीरों के समान, आर्य्य-माता पर, अपने प्राणों का

बलिदान करो । नकुल, बढ़ो ? सहदेव, चलो ? अब जय पाना दुर्लभ है । पराजय का टीका लगवाने के पहले अपने मस्तकों पर अन्यायियों की टक्करों को झेलो । प्राणों पर खेलो—

न्याय हेतु संग्राम में, जो होता संहार ।
उस योद्धा के वास्ते, खुला स्वर्ग का द्वार ॥

सहदेव—आर्य्य, आप इतना क्यों अकुला रहे हैं ?

युधिष्ठिर—क्यों अकुला रहे हैं ? क्या तुम्हारे कान नहीं ? युवावस्था में इतना ज्ञान नहीं ? धन्वा तुम्हारे कन्धों में, बाण तुम्हारे निषङ्गों में, क्षत्रियों का पवित्र रुधिर तुम्हारे शरीरों में यह सब है, परन्तु द्रोणाचार्य के बनाये हुए चक्रव्यूह को तोड़ने के लिये जान नहीं ! जाओ, जाओ, यदि पाण्डु-पुत्र कहलाते हो, तो पाण्डु के नाम पर न्योछावर हो जाओ, नहीं तो माताजी की गोद मे जाकर सो जाओ ।

है कर्म वीर वह ही, सच्चा वसुन्धरा पर ।
कर्त्तव्य कर जो पालन, सोया वसुन्धरा पर ॥

अभिमन्यु—(स्वगत) आज मेरे पिता की अनुपस्थिति और 'चक्रव्यूह' की उपस्थिति के कारण, महाराज का स्वभाव गरमा गया है । समुद्र मे ज्वारभाटा आगया है ।

युधिष्ठिर—हा ! अर्जुन, तुम्हारे बिना कौन यह कष्ट निवारण करेगा ।



अभिमन्यु—पूज्य, आपका यह सन्ताप, आपका यह पश्चाताप, अब नहीं सुना और देखा जाता है। हमारे पवित्र रक्त में उबाल आता है। द्रोणाचार्य्य ने विचारा होगा "आज अर्जुन की अ पस्थिति में चक्रव्यूह रचायें और पाण्डवों को हरायें" परन्तु उनको यह विदित नहीं—

कायर कभी न होगा, जो क्षत्री का वंश है।
अर्जुन अगर नहीं है, तो अर्जुन का अंश है॥

युधिष्ठिर—हैं! अभिमन्यु-क्या कह रहे हो।

अभिमन्यु—यही, कि मैं यह कष्ट निवारण करूँगा। यदि मैं पाण्डु का रक्त हूं, यदि मैं अर्जुन का पुत्र हूं, यदि मैं आपका चरणरज हूं तो द्रोण के बनाये हुये 'चक्रव्यूह' को भेदन करूँगा।

"अर्जुन-सुत होकर मौन रहूं" यहलांछन मुझपरआताहै।
इसलिये व्यूह में लड़ने को, यह आपका बालक जाता है।

युधिष्ठिर—ठहरो, अभी ठहरो, पहले मेरा संशय मिटाओ मुझे यह बताओ कि तुम चक्रव्यूह तोड़नेकी क्रिया जानते हो ? वह विद्या जानते हो ?

अभिमन्यु—हाँ।

युधिष्ठिर—अर्जुन का यह महामंत्र तुम्हें किसने सिखायाहै ? तुम्हारे हाथ किस प्रकार आया है ?

अभिमन्यु—वह बड़ी पुरानी बात है-जब मैं गर्भ में था-तब एक दिन मेरी माता की तबियत घबराती थी- निद्रा नहीं आती थी -उस समय मेरे पिता उनका जी बहलाने लगे-उन्हें कहानियाँ सुनाने लगे, उसी सिलसिले में "चक्रव्यूह" तोड़ने की क्रिया भी समझाने लगे।

युधिष्ठिर—और तुम गर्भ ही में सुनने लगे!

अभिमन्यु—सुनने ही नहीं समझने भी लगा। क्षत्रिय का बालक क्षत्रियों की विद्या को, गर्भ ही में पढ़ने भी लगा।

युधिष्ठिर--सब सुन लिया? और गुन लिया?

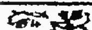
अभिमन्यु—नहीं, यही तो शोच रहा। उसको सुनते ही सुनते माता जी सोगईं और पिताजी ने सुनाना बन्द कर दिया। जहाँ तक उन्होंने कह पाया था वहीं तक, प्रवेश करने ही तक, वह सम्वाद है-जो मुझे अब तक याद है।

युधिष्ठिर--तो तुम अधूरे हो, कच्चे हो, इसलिए होन हार बच्चे, हम तुम्हें व्यूह-विकराल में नहीं जाने देंगे। उस कराल काल के गाल में नहीं जाने देंगे।

अभिमन्यु--नहीं, वह मेरी आदि विद्या है--आज उसको कार्य में लाऊँगा--अवश्य जाऊँगा।

युधिष्ठिर---ऐसा नहीं होगा

अभिमन्यु---अवश्य होगा।



युधिष्टिर—क्यों ?

अभिमन्यु—क्यों कि मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूं कि 'चक्रव्यूह' भेदन करूँगा। अब चाहे आकाश में आग लग जायें, पृथ्वी से तारे उग आयें, परन्तु मैं अपनी प्रतिज्ञा का-वीर-प्रतिज्ञा का पालन करूँगा और अवश्य करूँगा।

युधिष्टिर—यह सोलह वर्ष की अवस्था। और ऐसीभीषण प्रतिज्ञा ?

अभिमन्यु—सोलहवर्षकी अवस्था ? सोलह वर्षकी अवस्था वाले मर्यादापुरुषोत्तम रामने जब धनुष धाराथा, तो अनेकानेक अन्यायियों को संहारा था, पृथ्वी का भार उतारा था—

(सूर्य्य-वंशमें रामका, हुआ सूर्य्य सा काम।
अब भी घर घर रम रहा, दोअक्षरका राम॥
सोते हुए जगत् को जगाया था राम-ने।
जागे हुए को ज्ञान सिखाया था राम ने॥
जब मर रही थी जाति, जिलाया था रामने।
पृथ्वी को स्वर्गधाम, बनाया था रामने॥
वह तेज था उनका कि असुर व्यस्त होगये।
सूरज उगा तो तारे सभी अस्त होगये)॥

युधिष्टिर—यह सत्य है, परंतु तुम्हें तो केवल व्यूह में प्रवेश करना आता है, उसको तोड़ कर लौट आना नहीं सीखा है।



अभिमन्यु—व्यूह जब तोड़ डाला, तो लौट आना क्या आपत्तिजनक है ? परमात्मा रक्षक है और यह (तलवार निकालकर) तलवार सहायक है:—

यह वो पावक है जो रण में खलों को आहुती लेगी।
यह वो ज्वाला है उतनी ही बढ़ेगी, जितना घी लेगी॥
यह वो है शक्ति जाकर शत्रुओं की सेन कीलेगी।
यह वो है सिंहनी जो उन सबों का रक्त पीलेगी॥
जा यह है तो वहां पर पाण्डु का झण्डा खड़ा होगा।
नहीं तो-आर्य्य-माँ की गोद में बालक पड़ा होगा॥

भीम—(युधिष्ठिर से) राजकुमार की यही हठ है तो जाने दीजिये, युवावस्था की उमंग भरी शक्तियों द्वारा-शत्रुओं का रक्त बहाने दीजिये।

युधिष्ठिर—यही इच्छा है तो जाओ। सुभद्रा की आंखों के तारे! अर्जुन के प्राण प्यारे! युवराज हमारे! जाओ-युद्ध में अपना कौशल दिखाओ-शत्रुओं पर विजय पाओ।

गायन



सभासद्—

रणवीर जाओ जाओ, रणवीर जाओ जाओ।
बलवीर, दलवीर, कुलवीर, जाओ, जाओ॥



रण में विजय पाओ, हरषाओ, हुलसाओ।
शंका न कुछ लाओ, डंका बजा आओ ॥



(अभिमन्यु का जाना)

युधिष्ठिर—भीम, अभिमन्यु जब चलने लगा-उसी समय मेरा हृदय धड़कने लगा, और अब तो बायाँ नेत्र भी फड़कने लगा। मुझे तो इस अशकुन में कुछ अमङ्गल सूचित होता है।

भीम—राजकुमार वहां अकेला जारहा है यह अनुचित होता है। हमें भी आज्ञा दीजिये-जायें और चक्रव्यूह विदारते हुए, शत्रुओं को संहारते हुए, कुशल और विजय सहित राजकुमार को यहाँ ले आयें।

युधिष्ठिर—ठीक है ऐसा ही करो-हम भी चलते हैं, तुम सब भी चलो—

राजसिंहो, चलो, आगे बढ़ो, बढ़ना है तुम्हें।
शीश पर कौरवी सेनाओं के चढ़ना है तुम्हें ॥
अपने स्वत्वों के लिए, खूब झगड़ना है तुम्हें।
होके मदमत्त, समर-भूमि में लड़ना है तुम्हें ॥
धार तलवार की है प्यास बुझाने के लिए।

(तलवार निकालकर)

यही गङ्गा है सिपाही के नहाने के लिए ॥





स्थानयुद्ध-स्थल का मार्ग

(अभिमन्यु का प्रवेश)

अभिमन्यु—वीरता कहती है—"जाओ, जाओ, प्रतिज्ञा-पालन करने के लिए जाओ, शत्रुओं का मुखभञ्जन करने के लिए जाओ, चक्रव्यूह भेदन के लिए जाओ।" इधर प्रेम कहता है-"आओ, आओ, रण--भूमि से पहिले एक बार रङ्गभूमि में आओ, उस मुरझाई हुई माधवी लता को खिलाओ, प्राणप्यारी उत्तरा को गले लगाओ।"

क्या करूँ ? किसका कहा मानूँ ? प्रेम का ? नहीं नहीं ! मैं इस समय प्रेम से निठुराई करूँगा। दूर हो, पुरुषोंको नपुंसक बनानेवाले प्रेम ! दूर हो, वीरों को कायर बनानेवाले प्रेम ! दूर



हो-और आ, आ, राजसिंहों के गौरव, क्षत्रियों के साहस इस समय मैं तुमसे आलिङ्गन करूँगा—

प्रण ठाना संग्राम का, फिर कैसा विश्राम।
पीछे जो हटता नहीं, सिंह उसी का नाम ॥

(कुछ चलकर फिर ठहर जाता है)

हैं! हैं!! फिर धक्का लगा! हृदय पर घूंसा लगा! मैं जब वीरता की ओर बढ़ता हूँ, तो प्रेम मुझसे लड़ता है, मुझपर क्रोध करता है--कहता है:—

रण में वह ही जय पावेगा, जिसका ऊँचा आसन होगा।
संग्राम--गमन पीछे होगा, पहले प्रेमोपासन होगा॥

(कुछ सोचकर)

नीम में ठण्डक है तभी तो वह कड़वा है। पृथ्वी के हृदय में जल है-इसीलिये तो संसार का बोझ उठाने की उसमें शक्ति है। सिंह में मस्तानापन है-तभी तो वह वन का राजा है। इसी प्रकार जिनमें प्रेम है-वेही वीर हैं—

प्रेम ही चातुर्य्य का एक कूप है, प्रेम ही एक जगमगाती धूप है।
प्रेम ही संसार में भी सार है, प्रेम ही परमात्मा का रूप है॥

(फिर ठहर कर)



मैं विवश होगया। मेरे उठते हुए सङ्कल्प-बिरवे को कोई सींच रहा है, मुझे खींचरहा है। बस अब कुछ नहीं सुहाता है,सर चकराताहै। प्रेम अपने कुसुम-शायकसे निकले हुए बाणों-द्वारा मुझे बींधे लिये जाता हैं। वीरता! वीरता!! ज़रा ठहर, प्रेम जय पाता है। युद्ध-स्थल का जानेवाला युवा, पहले प्रेम-स्थल में जाता है।

❀ गायन ❀



देखो प्रेम का पन्थ निराला।
नैना थके प्रेम-रस पीवत, भरत न प्यास पियाला॥
क्षीर उठत है महावेग से, जब लागत है ज्वाला।
बैठ जात है वाही छिन, जब जल का छींटा डाला॥
देखो प्रेम का पन्थ निराला।
कठिन काष्ठ के भेदन में जो रहता है मतवाला।
कमल नाल कबहूं ना बींधत, वह हा भौंरा काला॥
देखो प्रेम का पन्थ निराला।
चल अभिमन्यु प्रेम-मन्दिर में, लिये प्रेम को माला।
प्रेम-देव जब रीझ जांयगे, तब होगा उजियाला॥

(प्रस्थान)





पांचवां सीन

स्थान--जनाने डेरे और उद्यान ।



गायन



सखियां--

फूल सुगन्धित, फूल फूलकर करें विकसित फुलवारी को ।
कलियन कलियन भौंरा गूंजत, चूमत डारी डारी को ॥
चटक चटककर खिली चांदनी, चोरतहै चित प्यारीको ।
उतरोहै यह तारामंडल आलीरी, देखो मोतिया क्यारीको॥



सखी नं० १—बहिन, कारण क्या है? आज कल हमारी महारानी उत्तरा में आलस्य बहुत रहता है।

सखी नं० २—कारण क्या होता, आलस्य का तो आज कल बड़ा प्रचार है। क्या स्त्री, क्या पुरुष, सब पर इस निगोड़े

का अधिकार है। फिर हमारी महारानी की क्या बात, वह तो बड़ी आदमिन है, वड़े आदमियों का तो यह शृंगार है। पान खिलाने को दासियां, नहलाने धुलाने को दासियां, रसोई बनाने को दासियां, वस्त्र पहिनाने को दासियां, सेज बिछाने को दासियां सब काम पर तो दासियों की भरमार है--फिर उन्हें किसी काम या काजसे क्या सरोकार है? दुर्भाग्य तो विचारे गरीब आदमियों का है-जिन पर सवेरा हुआ नहीं कि बुहारी का, चक्की का, चौके का, चूल्हे का, और क्या--सारी दुनियां के धन्धों का भूत सवार है।

सखी नं० १—यह शङ्का समाधान है या व्याख्यान है?

सखी नं० २—जो कुछ समझो, परन्तु सब सच्चा बखान है।

सखी नं० ३—औरों के लिये सच्चा होगा, परन्तु हमारी महारानी के लिये तो झूठे अलङ्कारों के समान है वह तो दासियों के रहते हुए भी अपने स्वामी की सेवा अपने हाथों से ही करती हैं और घर का काम काज भी स्वयं देखती हैं। मैंने तो उन्हें कभी खाली नहीं देखा--कभी लिखने लगीं, कभी पढ़ने लगीं, कभी कुछ सीने लगीं, कुछ न हुआ तो चित्र ही खेंचने लगीं--तात्पर्य्य यह कि--कुछ न कुछ किया ही करती हैं।

सखी नं० ४----जी नहीं, इस प्रकार का आलस्य तो हमारी महारानी मे किंचित् भी नहीं-वह तो दूसरा ही आलस्य है।



सखी नं० ५—हाँ गुप्त रहस्य है।

(गर्भवती होने का संकेत करती है)

सखी नं० १—यह बात मेरी तो समझ में नहीं आती है।

सखी नं० ५—न आये-मेरी तो समझ में आती है, उन्हें उठते बैठते अँगड़ाई आती है, देह लजाई जाती है—

पियराई छाई सखी, श्याम होत हैं अङ्ग।
रङ्ग प्रकट कर देत हैं, होनहार के ढङ्ग ॥

सखी नं० ३—चल निगोड़ी, तू बड़ी बतोड़ी होगई है।

सखी नं० ५—झूँठ थोड़े ही कहा है और जो तुम्हें विश्वास न आये तो (नं० ४ की ओर संकेत करके) इन से पूंछ लो ।

सखी नं० ४—(सामने देखकर) लो वह महारानी ही आरही हैं-अब उन्हा से न्याय चुकालो और संदेह मिटालो।

(उत्तरा का प्रवेश)

गायन

उत्तरा—

—❀❀❀—

हे हरि झाँझरी नवैया पार करो ।
सूझ परत, कछु न जुगत, तुमही खिवैया ॥
पाण्डव जय पावें, हरषावें, तेरेगुण गावें ।
जयके डंके बाजें, सुखसाजें, दुखभाजें ॥

सखी नं० ४—बलिहारीः—

है बाग, बाग बाग कि माली आया।
सब फूल, फूल फूलके कहते हैं-प्यारा आया॥

सखी नं० ५—नहीं यों कहो—

घटा को घटा के उभर आया चाँद।
गगन से धरणि पै उतर आया चाँद॥

सखी नं० २—यह कैसी पुरुषवाची उपमाएँ दे डालीं? ऐसे कहोः—

आते ही वाटिका में खिलाई है चाँदनी।
तारों को मन्द करने यह आई है चाँदनी॥

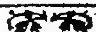
सखी नं० १—नहींः—

यह समझो-चेलियो में इस समय, गुरुआयनी आई।
हमें आलस्य सिखलाने कोई आलस्यनी आई॥

सखी नं० २—अच्छो याद दिलाई (उत्तरा से) महारानी जी, क्षमा करना-आज कल आपको उठते बैठते आलस्य आता है, शरीर टूटा जाता है, वदन अँगड़ाता है, मुखचन्द्र लजाता है, इसका कारण क्या है? समझ में नहीं आता है।

सखी नं० ३—और ऐसा भी क्या है--जो बताया भी नहीं जाता है।

सखी नं० ४—तुम समझीं नहीं बहिन, अब तो इन्हें बताने में भी आलस्य आता है।



सखी नं० ५—तो जाने दो-हम भी अब नहीं पूछेंगी। परन्तु इतना अवश्य कहदेंगी—हमारे लिए तो बधाई सुनाने का दिन आ रहा है। (उत्तरा की ओर संकेत करके) और आप के लिए--मिठाई खिलाने का दिन आ रहा है।

सखी नं० १—चल परे हट, वाचाल कहीं की (उत्तरा से) प्यारी, ज़रा इधर देखिए:—

कुसुम कुसुम पर इस समय रही सुगन्धी छाय।
तुम्हें निरख, वाटिका में, ऋतु वसंत गई आय॥

उत्तरा--आली, बस--अंत वसंत का है,
जब विरहिन के घर नाथ नहीं।
होली, हो--ली, बरसात भई,
बरसात भई, वर--साथ नहीं॥

गायन



(एरी) रिमझिम बरसत मेह, सखीरी मोहिं डर लागे।
नहीं आयो प्रीतम मोरे गेह, सखीरी मोहिं डर लागे॥
बादल बरसे, बिजुरी चमके, नाचत हैं बन-मोर रे।
पिया बिन, जिया अकुलाय तियाको, गर्जत जब घनघोर॥



पिया पिया मैं रट रहो, चातकिनी की भाँति ।
घन, बन जाओ चन्द्रमा, एक बूंद दो स्वाति ॥
मोरे नैना तरस रहे दोनों,बरस रहे दोनों,जियाघबरावेरे ।
मैं ठाड़ी कदमकी छैयाँ,निठुर भयो सैयाँ कछु ना सुहावेरे ॥
कोयल कू कू कर रही, लागत मोरे बान ।
पिया मिलन की आश में निकसत नाहीं प्रान ॥
सखी तुम जाओ, उन्हें ढूंढलाओ, झटपट आओ ।
पिया को संदेसवा पहुँचाय दीजो । रिम झिम० ॥

सखी नं२--प्यारी, हम वारी, ऐसी न अकुलाओ-प्यारे के वियोग में अपने हृदय को ऐसा दुखी न बनाओ । जिस प्रकार औषध का गुण रोग ही में है वैसे ही प्रेम का आनंद भी वियोग ही में है । सच्चे प्रेमी और रसिक कवि तो सम्मिलन से बढ़ कर वियोग में आनंद समझते हैं, वियोग की वेदना ही को प्रेम का असली स्वरूप कहते हैं ।

उत्तरा--यह सत्य है, परंतु मैं क्या करूँ ? बहुतेरा हृदय को मनाती हूँ, यह मानता ही नहीं-ध्यान दूसरी ओर जाना जानता ही नहीं । आज उनसे बिछुड़े हुए दो दिन हो गये हैं, यह दो दिन मुझे दो वर्ष के समान बीते हैं ।

गायन

—※—

मोहि पिया की डगरिया दिखादो सखी ॥
बाट तकत मैं तो हार गई।
बड़े भोर गये परसों रन में।
दो रोज़ भये मोहि दर्शन में ॥
नहीं नैन में नींद न कल मनको,
भई बैठे बिठाये बिरहन मैं।
पर मोरे लगा के उड़ा दो सखी,
मोहि पिया की डगरिया० ॥
बिन पानी के मीन जियेगी नहीं,
बिन प्यारे के प्यारी रहेगी नहीं।
जब लों मुखचन्द्र लखेगी नहीं,
तबलों यह चकोरि छकेगी नहीं ॥
मेरे चांद को कोई उगादो सखी,
मोहि पिया की डगरिया० ॥

(अभिमन्यु का आना)

—०—

अभिमन्यु---

चाँदको देखती है वह, जो चकोरिन होवे।
आग में वह जला करती है, जो विरहिन होवे॥

आज आता है यह आश्चर्य हमें वारम्वार।
चाँदनी कह रही है, चाँद का दर्शन होवे॥

उत्तरा—आये, आये, मेरी विरह-रात्रि में ही मेरे चन्द्रदेव आये। दाज के चन्द्रमा की नाईं दो दिन बीते, आज मैंने दर्शन पाये।

अभिमन्यु—देखना दोज के चन्द्रमा का ग्रहण का तो डर नहीं है, परन्तु कहीं दृष्टि न लग जाये।

उत्तरा—नाथ, आज कल आप नित्य मुझे दर्शन दिया करें संग्राम के दिनों में जल्दी जल्दी मेरी सुधि लिया करें।

अभिमन्यु—इतना अवकाश कहाँ? आजभी वरियायोसमय निकाल कर तुमसे मिलने आया हूं। अपनी वीर-रसकी फुलवारी को तुम्हारे प्रेम-जल से सींचने आया हूँ।

उत्तरा—अहोभाग्य!

रक्खे थीं रोके प्राण को यह दुख भरी आंखें।
दर्शन से कमलिनी की तरह अब खिलीं आँखें॥
देखा जो कटोरे की तरह मुख, उठीं आंखें।
होते प्रात, होगईं सूरजमुखी आँखें॥

अभिमन्यु—प्रिये, क्षमा करना-आज मैं बहुत नहीं ठहर सकता हूँ। आज मैं पाण्डव-सेना का सेनापति हुआ हूं और भगवान् द्रोणाचार्य्य के बनाये हुए चक्रव्यूह को तोड़ने जा रहाहूं।

[उत्तरा के आँसू देखकर]



हैं! यह क्या ? आंखों में आंसू कैसे ? क्या कमलिनी डबडबा आई ? या प्रातःकाल के सूर्य्यदेव के लिये अर्घ्य लाई--

पड़ रही है ओस क्यों, सूरजमुखी के फूल पर।
रे, सवेरे के समय ! लज्जित हो अपनी भूल पर॥

उत्तरा---हृदयेश्वर, प्राणवल्लभ, दासी का अपराध क्षमा करो, आज रण में न जाओ--

मेरी आंखों में अभी आया अचानक अन्धकार।
और अपने आप ही बहने लगी आंसू की धार॥
अब फड़कती आंख दांई और टूटा है यह हार।
मुंह को आता है कलेजा, हाय क्या है होनहार॥
यह अमंगल चिह्न हैं अशकुन है यह सब-प्राणनाथ।
आज रण के वास्ते, मत कीजिये प्रस्थान-नाथ॥

अभिमन्यु----प्रिये, यह आशङ्का न करो। व्यर्थ अमङ्गल की चिन्ता न करो। जिसके पिता महारथी अर्जुन, जिसके मामा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र, जिसके रक्षक महावीर भीम, उसके लिये अमङ्गल कैसा ? :—

प्रिये, उत्तरे, प्रियतमे, प्राणवल्लभे, प्रान।
समर क्षेत्र ही सर्वदा, क्षत्रिय का सुस्थान॥

उत्तरा—यह सत्य है, परन्तु मैं क्या करूँ, मेरा हृदय नहीं मानता।



अभिमन्यु—मनाओ।

उत्तरा—यह मेरे हाथ की बात नहीं।

अभिमन्यु—तो यह मेरे हाथ की बात नहीं कि युद्ध में न जाऊँ। पिताजी संसप्तकों की ओर हैं, व्यूह मेरे अतिरिक्त कोई तोड़ नहीं सकता। क्या मैं आप अपनी पराजय कराऊँ? आप अपने भाल पर कलङ्क का टीका लगाऊँ?

नहीं, यह हो नहीं सकता जो लड़ने को न जाऊँ मैं।
यहां तुम नारियों में बैठकर, नारी कहाऊँ मैं॥
अगर जीवन में अपने, आन अपनी यूं गँवाऊँ मैं।
तो जीकर किस तरह संसार को फिर मुँह दिखाऊँ मैं॥

सखी नं० २----ऐसा करिये न? आप अपना कर्त्तव्य भी न गँवाइये और हमारी महारानी का हृदय भी न दुखाइए।

अभिमन्यु---तो क्या करूँ--आप ही बताइए?

सखी नं०२----यह तलवार हमें लाइए, चक्रव्यूह किस तरह तोड़ा जाता है यह हमें समझाइए, हमें सिखलाइए। फिर आप हमारी महारानी का जी बहलाइए, हम युद्ध में जायेंगी और अपनी वीरता दिखायेंगी।

अभिमन्यु----ऊँह! घूंघट में रहनेवाली, यह भोली भाली मूर्तियां रण में धायेंगी?



सखी नं० २---क्यों ? इसमें आश्चर्य्य ही क्या है ? क्या हम अवलाओं के हाथ नहीं हैं ? हमारे शरीर में क्षत्राणियों का पवित्र रक्त नहीं है ? हमें भोलो भाली न कहनाः--

युद्ध मे भालों से खेलेंगी यह भोली, देखना ।
सिहनी की जव शिकार आये तो--वोली देखना ॥
चढ़गई जव रण पै अवलाओं की टोलो, देखना ।
चूड़ी वाले हाथ ने जव खड्ग तोली, देखना—
शत्रुओं के रक्त मे जव होगी होली, देखना ॥

अभिमन्यु—इन मह ँदी लगनेवाले हाथोंने भी कहीं रक्तका रंग जमाया है ? अवलाओं ने भी कहीं शस्त्र उठाया है ?

सखी नं० २---उठाया है । सव से पहले,आदि शक्ति भगवती दुर्गा जी ने ही रण में अपना खाँड़ा चमकाया है और हम अवलाओं का मान वढ़ाया हैः--

चण्ड, मुण्ड कां, रक्तवीज की, जो संहारन हारी है ।
शुम्भ, निशुम्भ और महिषासुरकीजो मारनवारी है ॥
वह ही काली, खप्परवाली जिसकी सिंह सवारी है ।
वह दुर्गा,वह चण्डी देवी,कौन है? वहभी नारी है ॥

अभिमन्यु--तुम्हारा यह वार्तालाप निरर्थक है ।

उत्तरा---यदि इनकी इच्छा व्यर्थ है--तो आप अपने साथ युद्ध में मुझे ले चलिए, यह तो उचित है ?

अभिमन्यु—यह भी अनुचित है। युद्ध में पुरुषों के साथ कहां स्त्रियां भी जाया करती हैं?

सखी नं० २—जाया करती हैं, आर्य्यावर्त्त का इतिहास देखिए। इन्द्र की सहायता के लिए, अयोध्या के राजा दशरथ जब युद्ध में गये थे, तब उनके साथ उनकी प्यारी रानी कैकेयी भी थी।

उत्तरा—ठीक है! ठीक है! रथ के पहिये की धुरी टूट गई थी, उस समय कील के स्थान में रानी कैकेयी की उँगली थी।

अभिमन्यु—यह सब सत्य है। परन्तु उत्तरे! तुम्हें हो क्या गया है? तुम वीर पुत्री, वीरबाला होकर क्यों डर रही हो? कायरों की सी बातें कर रही हो? अरे, तुम क्षत्राणी हो, क्षत्राणियों की सी चेष्टा करो। प्रेम-पूर्वक और उत्साह-सहित मुझे इस समय विदा करो।

उत्तरा—धर्म्म तो यही कहता है, परन्तु स्नेह नहीं मानता। वही हठ करा रहा है।

अभिमन्यु—तो ऐसे स्नेह को विसर्जन करो, जो अधर्म के मार्ग पर लिये जा रहा है। मैं आज पाण्डव-सभा में प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। क्या तुम्हारे स्नेह के कारण वह प्रतिज्ञा तोड़दूं? अपना धर्म्म छोड़दूं? बोलो उत्तरे! बोलो, यह तुम्हारी आज्ञा है?

उत्तरा—(कुछ ठहर कर) नहीं, कभी नहीं, कदापि नहीं, यदि

आप प्रतिज्ञा कर चुके हैं, तो कभी न तोड़िये। एक स्त्री क्या हज़ारों स्त्रियां विरह में वलिदान होजायँ तो भी धर्म्म, वीरों का धर्म्म, क्षत्रियों का धर्म्म, कभी न छोड़िये:—

सब से प्रथम यही तो है जो जाति-कर्म्म है।
इस जीव के चोले में, यही एक मर्म्म है॥
"शाखाओं में जाना", यह मनुष्यों का धर्म्म है।
संसार में जो सबसे बड़ा है, वो धर्म्म है॥
परलोक में भी काम जो आये, तो आये धर्म्म।
इस वास्ते मैं कहती हूं जाने न पाये धर्म्म॥

अभिमन्यु—ऐसा है तो मुझे विदा करो।

उत्तरा—हां, अब मैं उत्साह सहित और प्रसन्नता-पूर्वक आप को विदा करती हूं। जाओ, हृदयेश्वर जाओ प्राणेश्वर जाओ। रणकेसरी की तरह गरजते हुए रण पर जाओ। शत्रुओं को मारो, उनकी सेना को संहारो, उनके व्यूह को विदारो, सिधारो, सिधारो।

तुम आगे आगे जाओ, मैं पीछे पीछे आती हूं। पवित्र पुष्पों से गूँथी हुई एक माला लाती हूं। यदि युद्ध में तुम्हारे शत्रुओं ने पराजय पाई और तुमने जय पाई, तो वह माला तुम्हारे हृदय

पै चढ़ाकर, तुममे आलिङ्गन करूँगी। और यदि युद्ध के स्थान पर, लड़ाई के मैदान पर, शूरों की आन पर, क्षत्रियों की शान पर पाण्डवों के मान पर, आप बलिदान हुए, तो मैं भी वीर-पत्नियों की तरह, सती स्त्रियों की तरह, अपनी देहको विसर्जन करूँगी और स्वर्ग में आपका दर्शन करूँगीः—

होतीं हैं, वीर वंशजों की देवियां कैसी ।
महलों में वीर पुरुषों के, हैं रमणियां कैसी ॥
दिखलाऊँगी मैं विश्व को, आँखें हैं तो देखो ।
भारत में हुआ करती हैं, क्षत्राणियाँ कैसी ॥

अभिमन्यु—धन्य उत्तरे, तुम स्त्री नहीं हो, स्त्री-रत्न हो। अच्छा अब मैं जाता हूं, एक बार माता जी से भी मिलना है, उनको भी श्रद्धा के साथ प्रणाम करना हैः—

यही आर्य्य-सन्तान का है आमोद प्रमोद ।
सच्चे सुख की जगह है, 'माता' ही की गोद ॥

सखी नं० २—(सामने देखकर) लीजिये, वह यहीं आ रहीं हैंः—

चरण पड़ने को माता के, झुकी आंखें हमारी हैं ।
बढ़ो भक्तो, करो स्वागत, महारानी पधारी हैं ॥

(सुभद्रा का आगमन)

अभिमन्यु—माता प्रणाम ।

सुभद्रा—पुत्र प्रसन्न रहो। बेटा, मैंने सुना है, आज तुमने पाण्डव-सभा में प्रतिज्ञा की है! और बड़े महाराज ने युद्ध में जाने की तुम्हें आज्ञा दी है।

अभिमन्यु—हाँ माता :—

प्रण करके संग्राम में, जाता हूं मैं आज।
ऐसा आशिर्वाद दो, पूरन हो सब काज॥

सुभद्रा—

हमारा नेह तजकर, आर्य-माँ से नेह जोड़ोगे?
तनय, आचार्य-निर्म्मित आज 'चक्रव्यूह' तोड़ोगे?

अभिमन्यु—आपके आशीर्वाद से, इन चरणों के प्रताप से-
जन नौका जो, जननी का है, वह शङ्का कहीं न खाता है।
वैरी क्या, सन्मुख काल आये तो उस पर भी जय पाता है॥

सुभद्रा—ऐसा है तो विलम्ब क्या है? युद्ध भूमि का जानेवाला स्नेह-भूमि पर क्यों ठहरा है? बाणों पर चलने वाला नयन-बाणों का लक्ष्य क्यों बन रहा है? यह उत्तरा के प्रेमाश्रु तुम्हारे बेड़े को डुबा देंगे, कर्त्तव्य-पथ में तूफान उठा देंगे, इसलिए इन पिघलती हुई आँखों की ओर अपनी आँखें न उठाओ। यह समय क्या यहाँ खड़े रहने का है? जाओ, जितनी जल्दी जा सकते हो, रण में जाओ। उत्तरा से



स्नेह हो, तो रण में विजय प्राप्त करके इसे राजरानी बनाओ। मुझपर श्रद्धा रखते हो, तो मैं राजमाता के पद पर पहुंचूं, ऐसा पराक्रम दिखाओ :—

देखना, पाण्डवों का मान न जाने पाये ।
जान जाये, मगर यह आन न जाने पाये ॥
युद्ध-भूमी ही सदा, क्षत्रियों का गौरव है।
पुत्र यह ध्यान यह अभिमान, न जाने पाये ॥

अभिमन्यु—ऐसी आज्ञा है ?

सुभद्रा—बेटा, यह मैया की ममता है, जो अपने लालको जलती हुई ज्वाला में कूदते समय रोका चाहती है, परन्तु मैं, मैं, उस ममता को इस समय मार दूंगी, और युद्ध में जाते समय तुझे यह हार उपहार दूंगी।

(टीका काढ़ती है और हार पिन्हाती है)

जाओ बेटा, अब युद्ध-भूमि ही तुम्हारी-माता है, वह तुम्हारी सहायता करेंगी। यह तलवार ही तुम्हारी मैया है, यह तुम्हारी रक्षा करेगी। भूल जाओ हमारे स्नेह को, उत्तरा के प्यार को, राज के आरामों को, महलों के सुखों को । और याद रक्खो, बाण के लक्ष्यों को, तलवार के हाथों को, शत्रुओं के मस्तकों को,



अन्यायियों की खोपड़ियों को। देखना लाल, कुलको कलङ्क न लगाना। युद्ध से हार मानकर यहां न आना। हारा हुआ मुँह मुझे न दिखाना। अपनी माता की कोख न लजाना :—

अगर जय पाके आओ तो सुभद्राकी यह गोदी है।
नहीं तो पाण्डव-नन्दन, तुम्हारी मात पृथ्वी है॥

बेटा, आत्मा अमर है, उसको कोई मार नहीं सकता। वह अकाट्य है, उसको कोई काट नहीं सकता। हमारे इन्हीं स्वर्ण वाक्यों पर स्थित होजाओ। और जाओ, चक्रव्यूह तोड़कर संग्राम में सूर्य्य की तरह अपना प्रकाश फैलाओ :—

तेरी तलवार में बेटा सुदर्शन की सी शक्ती हो।
तेरे वाणों में अभिमन्यू त्रिशूलों की कराली हो॥
तेरे धन्वाको उस गाण्डीव से भी बढ़के पदवी हो।
तेरी वह युद्ध-भूमी शत्रुओं की मृत्यु-भूमी हो॥
रहे आकाश पै सूरज, तेरी रण-धीरताई का।
बजे ब्रह्माण्ड में डङ्का, तेरी इस वीरताई का॥

गायन



सुभद्रा—

वह सूरवीर रण में लड़ने जाते हैं।
जो मन में माया-मोह नहीं लाते हैं॥



सखियाँ—

यह रण-भूमी है चौसर लम्बी चौड़ी।
योद्धाओं का है क्रोध, वही है कौड़ी॥
ः · की गोटें, काली, पीली धौड़ी।
जो फिरतीहैं घर धर पै, दौड़ी दौड़ी॥

सुभद्रा—

जब रँग जाते हैं, तभी विजय पातेहैं।
जो मनमें माया-मोह नहीं लाते हैं॥

सखियाँ—

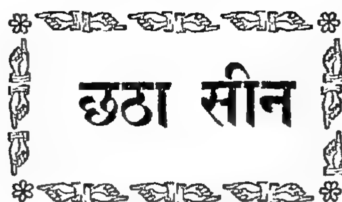
इस दुनिया में है वह सच्चा मरदाना।
जो धारण करता है नेकी का बाना॥
कर दिखलाया वह जो कुछ मनमेंठाना।
जाना,न भूलकर भी,अधर्मपर जाना॥

सुभद्रा—

कवि-वृन्द उन्हींकी गुणावली गातेहैं।
जो मनमें माया मोह-नहीं लाते हैं॥

(अभिमन्यु का जाना)





राजाबहादुर का गृह।



(राजा बहादुर का प्रवेश)

राजा—खुशामद सीखो, जहाँ तक सीख सको, खुशामद सीखो। दुनियाँ में मजा करना है तो खुशामद सीखो। खूब रुपया पैदा करके रईस बनना है तो खुशामद सीखो। खुशामद सीखने के लिए किसी मकतब में नहीं जाना होगा। यह सबक नीम शरीफों से सीखो, या हम जैसे राजा-बहादुरों से सीखो। नहीं तो मालदार मुलाजिमों से सीखो। वहाँ भी न मिले तो रण्डियों और नक्कालों से सीखो। कहीं न मिले तो ऐशपसन्द राजा महाराजाओं की सभा से सीखो, और उस सभा में बैठकर चापलूसी करनेवाले बुड्ढों से सीखो। राजाधिराज सुयोधन महाराज ने, जब द्रोणाचार्य्य को सेनापति बनाया तो हमें भी खुशामद की बदौलत "राजाबहादुर" के खिताब से सरफ़राज़



फरमाया। हमारे वाप दादा ने कभी चाकू हाथ में लेकर कलम का डङ्क तक न उड़ाया, और हमने आज "वहादुर" का, वह भी "राजावहादुर" का, खिताव पाया। तारीफ तो यही है। वर्ना हम वहादुर तो ऐसे हैं :—

बिजली जव कहीं चमकती है, तो हम कमरे में छुपते हैं।
विल्ली जव म्याऊँ करती है, तो अपने प्राण निकलते हैं॥
चूहे जव खट पट करते हैं, तो हम मुँह ढाँके रहते हैं।
यारो हम ऐसे नाजुक हैं, और लोग वहादुर कहते हैं॥

तारीफ़ तो यही है।

(खटपटसिंह नामी एक सिपाही का आना)

खटपट०—अजी राजा वहादुर साहव !

राजा—कौन, महाराज खटपटसिंह ? आओ, आओ, कहो अच्छे तो हो ? वाल वच्चे तो राजी हैं ? भोजन-ओजन तो कर चुके होगे ?

(जाना चाहता है)

खटपट०—(रोक कर) ठहरिए, कहां चले ?

राजा०—भाई, तुम हमेशा की तरह आज भी मेरे मकान में वेतकल्लुफी के साथ चले आये, इसलिए जरा मैं कुछ पर्दे का इन्तजाम... ... .



खटपट०—हैं ! पद का इन्तजाम ? क्या विवाह कर लिया है ?

राजा०—हां भाई, इस बुढ़ापेकी तरफ देखकर ऐसा किया है ?

खटपट०—यह तो बड़ा अच्छा हुआ।

राजा०—और तो सब ठीक हुआ है, पर भाई, स्त्री बड़ी स्वतन्त्र मिली है। पुत्री-पाठशाला से पढ़कर क्या निकली है, एक दम पर्दे के बाहर आगई है।

खटपट०—पर वहाँ तो ऐसी बात पढ़ाई नहीं जाती ?

राजा०—पढ़ाई नहीं जाती पर वहाँ की लड़कियां पढ़ जाती हैं। तारीफ तो यही है।

खटपट०—फिर इसमें हर्ज ही क्या है ? स्वतन्त्र रहना तो अच्छा है।

राजा०—अरे क्या खाक अच्छा है ! सुनो, बनाव हो तो पर्दे में, बिगाड़ हो तो पर्दे में, जियो पर्दे में, मरो पर्दे में, इस बूढ़े राजा बहादुर की यह मंशा है।

खटपट०—अच्छा यह मनोरंजन छोड़िए और लड़ाई में चलिये।

राजा०—हाँ, हाँ, आप आगे आगे चलिए, मैं भी आपके पीछे पीछे आता हूं।

खटपट०—तो यह कहो न, लड़ाई में चलने से जी चुराता हूं।

राजा०—नहीं भाई, लड़ाई में चलने से किसे इन्कार है ?

खटपट०—तो फिर क्या देर दार है ?

राजा०—कहीं मेरे हाथ से, जीवहत्या न हो जाय, यह विचार है।

खटपट०—जाओ जाओ, यह सब तुम्हारे बहाने हैं। वास्तव में तुम नाम के बहादुर हो और काम के कायर हो।।

राजा०—कायर कैसे ? उस रोज हमने लड़ाई में एक योद्धा के पांव काट डाले।

खटपट०—पांव काट डाले ? पाँव काटने की क्या जरूरत थी ? सर ही क्यों न काटा ?

राजा०—सर तो बेचारे का पहले ही से कटा हुआ था। सर सलामत होता तो पाँव ही क्यों काटने देता ?

खटपट०—(हँसकर) अच्छा, आज फिर अपनी बहादुरी दिखाइए।

राजा०—राधेश्याम, राधेश्याम।

खटपट०—हैं, आप हटते क्यों हैं ? आप तो बड़े बांके हैं, बड़े लड़ाके हैं, उस रोज आप फरमाते थे कि हमने संग्राम में सब से पीछे रहकर भी हजारों को मार डाला।

राजा०—हाँ, रहे सब से पीछे और मार डाले हजारों ! तारीफ़ तो यही है।



खटपट०—तो अब आइए।

राजा०—बस जाइये। लड़ाई में राजाबहादुर का क्या काम? वहां भीम आयेगा, अगर उसने कहीं गदा मारदी तो "राजा-बहादुरी" के खिताब का दिवाला निकल जायगा।

खटपट०—क्यों नाहक डरे जाते हो? आज कल भगवान् द्रोणाचार्य्य सेनापति हैं।

राजा०—अरे राम, राम, ब्राह्मण और सेनापति?

ब्राह्मण, सीधी जाति भला क्या लड़ना जाने।
जो कोई जोड़े हाथ उसे आशीस बखाने॥
वैरी भी यदि पास, किसी ब्राह्मण के आवे।
गुरू, गुरू, कहकर, चाहे सब कुछ लेजावे॥
ऐसी सीधी जाति, लड़ाई और लश्कर में।
रसगुल्ला भी कहीं दिया जाता है ज्वर में॥

खटपट०—अगर आप इस तरह लड़ाई से जी चुराया करेंगे तो राजाधिराज आपसे 'राजा बहादुरी' का ख़िताब वापिस ले लेंगे।

राजा०—ले लो, छीन लो, लूट लो, "राजा बहादुरी" का ख़िताब, कुछ बहादुरी के लिए थोड़े ही है?



खटपट०—तो काहे के लिए है ?

राजा०—बत्तियां जलाने के लिए है। सड़कें साफ कराने के लिए है। गाड़ी और इक्केवालों को डाट बताने के लिए है। खुशामद की कमान पर, जी हजूर के बान चलाने के लिए है।

खटपट०—तब तो हर शख्स खिताब ले सकता है ?

राजा०—हर शख्स कैसे ले सकता है ? एक और भी मामला है।

खटपट०—वह क्या ?

राजा०—राजाधिराज ने एक संस्था खोली, सब ने उसमें चन्दा दिया, हमने सबसे ज्यादा दिया।

खटपट०—तो तुम 'राजा बहादुर' क्यों, 'चन्दा बहादुर' हुए ?

राजा—हाँ, देवें चन्दा और बनें 'राजा बहादुर'। तारीफ तो यही है।

खटपट०—चलो नामा गँवाया सो गँवाया, नाम तो पाया।

राजा०—हाँ नाम भी पाया, और रुत्बा भी बढ़ाया। जब खिताब नहीं था तब सब खर्च मामूली होते थे, अब दुगने चौगने होगये हैं।

खटपट०—यह कैसे ?



राजा०—ऐसे कि तब कोई बात भी नहीं पूछता था और अब नाई, बारी, धोबी, कोली, मीरासी, चपरासी, गरज़ कि दुनियाँ भर के खल्लासी इनाम मांगने के लिए आते हैं।

खटपट०—आप इतना खर्च बढ़ाते हैं, इन को मना नही कर देते हैं?

राजा०—मना? मना कैसे कर देवें? मना करदें तो, "राजा बहादुर" की शान के खिलाफ़ हो जाय।

खटपट०—जब निर्धन हो जाओगे, तो कैसी करोगे?

राजा०—वह सब विचार कर लिया है। जब देखेंगे धनाभाव हो रहा है, तब एक कोठी खोल देंगे। यतीमों के, बेवाओं के, संस्थाओं के, सभाओं के रुपये जमा कर लेंगे, जब अच्छा धन का संग्रह हो जायगा, तभी दिवाला निकाल देंगे।

खटपट०—रुपया जमा करनेवाले कुछ न कहेंगे?

राजा०—कहेंगे क्या! कुछ दिनों गड़बड़ करेंगे। अन्त को "राजा०-बहादुर" के रोब में आकर झक मारेंगे और बैठ रहेंगे।

खटपट०—वाह वाह! यह तो अच्छा धन्धा है। पर अपने को इससे क्या, देर होती है, चलिए।



राजा०—बस अब आपभी राजा बहादुर के खिताब का लिहाज़ फ़रमाइए। जियादा सर न खपाइए, तशरीफ़ ले जाइए।

खटपट०—क्या आप वाक़ई नहीं चलना चाहते हैं ?

राजा०—वाक़ई नहीं, बिल्कुल नहीं, हरगिज नहीं, मुतलक़ नहीं। चले जाइए, वरना पाण्डवों से पहले, आप ही से हाथा पाई होगी। गेहूं पिसने के पहले (खटपट के चपत मारकर) घुन की सफ़ाई होगी।

खटपट०—यह क्या ?

राजा०—ऐसी न खाई होगी।

खटपट—(आस्तीन चढ़ाकर) बस, अब अब आप भी सँभल जाइए। बाली और सुग्रीव की लड़ाई होगी।

राजा—(हँसकर) अरे भाई! क्यों बात बढ़ाई। हमने तुम्हारे एक लगाई और अपने (चपतमारकर) एक, दो, तन, चार। बस अब तो होगई सफ़ाई ?

खटपट०—यह आदमी है या सौदाई।

(खटपटसिंह का जाना)

राजा—अहा हा हा हा हा, कैसा टाला, पत्थर के नीचे से किस सफ़ाई के साथ हाथ निकाला। बस अब वही' खुशामद,



की हाँडी, और 'जो हजूर' का मसाला। बस, 'राजा बहादुर' का बोल बाला।

गायन



खुशामद ही से आमद है, बड़ी इसलिए खुशामद है।
महाराज ने कहा एक दिन, 'बैंगन' बड़ा बुरा है।
हमने कहा तभी तो इसका "बेगुन" नाम पड़ा है।
खुशामद से सब कुछ रद है, बड़ी इसलिए खुशामद है॥
महाराज, कुछ देर में बोले, बैंगन तो अच्छा है।
हमने झट कहदिया तभी तो सर पर मुकुट धरा है।
खुशामद में इतना मद है, बड़ी इसलिए खुशामद है॥
स्वामी, दिन को रात कहें, तो हम तारे चमकादें।
स्वामी कहे रात को दिन तो हम सूरज दिखलादें।
खुशामद की भी कुछ हद है! बड़ी इसलिए खुशामद है॥
स्वामी कहे 'मद्य' कैसा है, कहें 'सुरा' सुखकर है।
स्वामी पूछे, 'हिंसा' जायज़? कहदें, 'जीव' अमर है।
बुरा है भला, भला बद है, बड़ी इसलिए खुशामद है॥



(राजा बहादुर का अपने मकान के एक हिस्से की तरफ़ जाना और दूसरे हिस्से की तरफ़ से उसकी स्त्री, सुन्दरी का आना)



सुन्दरी—मेरा पति "राजा बहादुर" की पदवी पाकर ऐसी शान में आगया है कि, किसी को कुछ समझता ही नहीं। क़र्ज बढ़ता जा रहा है, इसकी कुछ पर्वा ही नहीं। जब कहती हूं तो कहता है-"चाहे तुम और तुम्हारा घर चूल्हे में जाय, हमें चिन्ता नहीं! हमारा जेब ख़र्च बन्द नहीं हो सकता। अगर हम पान नहीं खायेंगे, तो उबकाई आयगी, मुलाजिम नहीं रक्खेंगे तो तकलीफ होजायेगी, लुच्चे लुंगाड़ों, में रुपया नहीं लुटायेंगे तो शान बिगड़ जायगी।"

(राजाबहादुर छिपकर सुनता है)

भाड़ में जाय ऐसी शान! "घर में नहीं दो दाने, और अम्मां चलीं भुनाने।"

राजा-(प्रकट होकर) तारीफ तो यही है—

तेरा इसमें दोष क्या, है यह बात प्रसिद्ध।
"घर का जोगी जोगिया, आन गाँव का सिद्ध"॥
लिखता मैं जारहा हूं, जो कुछ तू कह रही है।
तेरा जरा सा खाता मेरी बड़ी बही है॥
घर में है छाछ मुझ को, बाहर मुझे दही है।
ओ बेवकूफ़ औरत, "तारीफ तो यही है"॥



सुन्दरी-मैं बेवकूफ ही सही, मगर इतना जरूर कहूँगी कि तुम्हारे यह लच्छन अच्छे नहीं हैं।

राजा०—अच्छे नहीं हैं, तो मत देख। आँखें फोड़ ले।

अब तक तू बकती रही; अब मत कर तकरार।
"चाँदी देखे चेतना, मुख देखे व्यवहार"॥
आइन्दा अब न कहना, जो आज तक कही है।
तेरा पती न तुझसे, करता कभी गई है॥
यह भी है शान मेरी, मैंने तेरी सही है।
और अब भी सह रहा हूं, "तारीफ़ तो यही है"॥

सुन्दरी—देखो, तुम अगर मेरी मानोगे, तो खरे हीरे बन जाओगे, नहीं तो पत्थर ही रहोगे। तुम मेरी मानोगे, तो मैं तुम से स्नेह करूंगी। नहीं तो..............

राजा०—नहीं तो, नहीं तो क्या ?

यह सब तेरे हाथ है, करे बैर और प्रीत।
"मनके हारे, हार है मन के जीते जीत"॥
क्यों तू घटा सी बनकर माथे मेरे छही है ?
खपरैल बनके क्यों तू ऊपर मेरे ढही है ?
जूते की यह तली है, और सर पै चढ़ रही है ?
देखें जहानवाले "तारीफ़ तो यही है"॥



सुन्दरी—चूल्हे में जाय तुम्हारी तारीफ़ मैं तो तुम्हारे लच्छन देखते देखते राख हो चुकी हूँ।

राजा०—राख हो चुकी है, तो अब राँड होजा।
ले अब तेरे सामने, मैं तज रहा शरीर।
"निकल जायगा साँप तब,पीटा करो लकीर" ॥

(झूँठ मूठ मर जाना)

मैं मर रहा हूं, देखो, यह सामने खड़ी है।
फिर भी न रोकती है, यह निर्दयी बड़ी है॥

(उठकर)

मेरी, मरे बला अब, मुझको भी क्या पड़ी है।
यह भी भड़क थी मेरी,' तारीफ़ तो यही है' !

सुन्दरी—बैठो, यह अपना बहुरूपियापन किसी और को दिखाओ। जो तुम्हारी नक़लनवीसी को न जानती हो, उसे डराओ, धमकाओ। तुम्हें भांडपन सूझ रहा है और मेरा सब ज़ेवर बिक चुका है। कपड़े पर भी स्यापा हैं। कुछ इसकी भी फ़िक्र है ?

राजा०—अरी दीवानी, इस वक्त इसका क्या ज़िक्र है ?

सुन्दरी—ज़िक्र क्यों नहीं ? यूं ही बैठे बठे मक्खियाँ मारोगे या कुछ व्यापार करोगे ?



राजा०—व्यापार ? व्यापार तो आजकल लड़ाई की वजह से बन्द है। जब लड़ाई खत्म हो जायगी, तब देखा जायगा।

सुन्दरी—तो इस लड़ाई के खत्म होने में क्या देर दार है? आज का क्या समाचार है?

राजा०—आज हमने हज़ारों को मार गिराया, लाखों को मौत के घाट पहुँचाया, करोड़ों को श्मशान में सुलाया, अरबों खरबों को यमपुरी पहुँचाया।

सुन्दरी—इसका सुबूत ?

राजा०—सुबूत? सुबूत कुछ भी नहीं। 'तारीफ़ तो यही है'।

सुन्दरी—अच्छा इस समय घर में क्यों आये हो ?

राजा०—अपनी बहादुरी की तुम से दाद पाने के लिए।

सुन्दरी—या लड़ाई में से कायरों की तरह भाग कर मेरी गोद में छिपने के लिए ?

राजा०—कायर ! कायर ? तुमने यह कैसे समझ लिया कि मैं कायर हूं ! मैं तो एक बड़ा योद्धा हूं।

सुन्दरी—योद्धापन तो तुम्हरी जुबान से ही प्रकट होता है। जो कहता है वह कहीं करता है ?

राजा०—हूँ······फिर वही खून खौलाने वाला फिक़रा है।

सुन्दरी—हां हां फिर भी कहती हूँ कि, तुम कायर हो।



राजा०—तुम बड़ी बहादुर हो ?

सुन्दरी—बहादुर नहीं तो कैसे ही ?

राजा०—अच्छा तुम बहादुर हो तो आओ, मुझसे पञ्जा लड़ाओ (हाथ बढ़ाता है)

सुन्दरी—शर्माओ। औरतों से पञ्जा लड़ाने ही में मर्दों की बहादुरी है ?

राजा०—अरे बड़े बड़े पहलवानों ने स्त्रियों से हार मानी है। जङ्गी बहादुर तो जङ्ग में लड़ाई लड़ते हैं और 'राजाबहादुर' घर में लुगाई से झगड़ते हैं। 'तारीफ तो यही है'।

सुन्दरी—नहीं, तारीफ़ यह नहीं, तारीफ यह है–

(राजाबहादुर की तलवार छीन लेती है)

पुरुषों का काम आज से, अबलायें करेंगी।
तुम घर में रहो, नारियाँ अब, रण में लड़ेंगी॥

राजा०—(तलवार छीन कर) लाओ। कहीं नाजुक कलाई लचक न जाय। अच्छा अब तुम घर में जाओ, मैं लड़ाई में जाता हूँ। और देखना आज वह तलवार चलाई हो कि तलवार भी उड़ जाय। (कुछ दूर चल कर) कौन जाय, और कहाँ जायः—

रण में जायें तो मौत धरी, घर बैठें तो खाय लुगाई।
अब दोनों तरफ़ दुधारे हैं, उस ओर कुआँ इस ओर है खाई॥



सुन्दरी—(राजाबहादुर की पीठ पर हाथ मारकर) अजी तुम जाते हो या खड़े रहोगे ?

राजा०—जा तो रहा हूँ।

सुन्दरी—क्या खाक जा रहे हो ? मैं तो उस दिन समझूंगी तुम गये, जिस दिन किसी योद्धा के बाण से मर कर स्वर्ग को जाओगे।

राजा०—मैं स्वर्ग को चला जाऊँगा, तो तुझे क्या मिल जायगा ?

सुन्दरी—सब कुछ, महान् सुख, तुम जब मर जाओगे तो मैं तुम्हारे साथ सती होजाऊँगी।

राजा०—अरे, अगर सती होना है तो अभी होजा, मुझे मार के क्यों होती है ?

सुन्दरी—नियम यही है।

राजा०—क्या कहा ?

सुन्दरी—जब पुरुष मर जाता है, तो स्त्री सती होजाती है।

राजा०—यह पुराने ज़माने की बात है। अब ऐसा नियम नहीं। अब तो यह नियम है कि जब स्त्री मरजाय, तो पुरुष "सता" हो जाता है।

सुन्दरी—यह कैसे ?



राजा०—तू मर के देखले। तेरे मरते ही मैं चिता में जलूंगा, 'सता' होऊँगा।

सुन्दरी—हटो, इन मीठी और खुशामदी बातों को छोड़ कर बुर्दबारी सीखो।

राजा०—मैं तो बुर्दबारी ही की बातें करता हूं। परन्तु लोग मेरी बातों को सुन कर हँसते हैं।

सुन्दरी—अच्छा अब तुम चूड़ियाँ पहिन कर दुपट्टा ओढ़ कर घर में बैठो। मैं युद्ध में जाऊँगी। मगर एक बात है, मैं कौरवों की ओर से न लड़ूंगी। धर्मात्मा पाण्डवों का पक्ष लेकर युद्ध करूँगी।

राजा०—हैं! यह राजद्रोह! कोई सिपाही सुन लेगा, तो पकड़ कर ले जायगा।

सुन्दरी—जय उधर ही होगी जिधर श्रीकृष्ण हैं।

राजा०—अरे, हैं, हैं, यह किसका नाम लिया? श्रीकृष्ण तेरे कौन हैं? पति को छोड़कर किसका गुण गाने लगी! क्या वह तेरे पति हैं?

सुन्दरी—हां, हां, वह मेरे पति हैं, तुम्हारे पति हैं और जगत्पति हैं। देखो उनकी शान में तुमने कुछ कहा तो लड़ाई होजायगी।



राजा—चुपो।

सुन्दरी—हटो।

सुन्दरी—

गायन

गारी दूँगी लाखन मैं मोरे सैयाँ।
अब तो मैं मानूँ नाँहीं रार करूँगी॥
बर्छी सी मारी मोरे, बातन में।

राजा—

बावली करदी है, है! है! मेरी नारी उसने।
मेरे सर से मेरी पगड़ी ही उतारी उसने॥
आज तक फोड़ता व्रज में वह रहा गागरियाँ।
फोड़दी आज तो तक़दीर हमारी उसने॥

सुन्दरी—

रूठो तो रूठो राजा, मेरी बलाय से।
मेरो तो मन लागो मोहन में॥

(दोनों का झगड़ते हुए चले जाना)





" चक्रव्यूह "

[मुख्य द्वार पर जयद्रथ खड़ा हुआ है]

जयद्रथ—(स्वगत) मुझे भगवान् शङ्कर का वरदान है कि अर्जुन को छोड़ कर शेष चारों पाण्डवों को परास्त कर सकता हूं। आज अर्जुन बहुत दूर है। अब मुझे किसी का डर नहीं है। युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव आज तुमने जो सर उठाया तो समझ लेना कि सर नहीं है:—

वाण चलाऊँ जिधर उधर हो जाय सफ़ाई।
धनुष उठाऊँ जिधर उधर मच जाय दुहाई॥
उड़े व्योम पर धूल, न दे रवि-विम्ब दिखाई।
इस प्रकार मैं करूं आज, घनघोर लड़ाई॥
इसी जगह आजायें यदि, वह पाण्डव चारों।
तो मेरे वाणों पर नाचें, ताण्डव चारों॥

(अभिमन्यु का प्रवेश)



अभिमन्यु—भूल जा, भूल जा, अपने इस अभिमान को भूल जा, मृग के पीछे दौड़ने वाले शिकारी ! सिंह को देख, धनुप बाण को भूल जा।

जयद्रथ—जा, जा, दुधमुंहे बच्चे ! जा, मेरे क्रोध की तुर्शी से तेरा दूध न फट जाये:—

अभिमन्युः—

मेरे मुंह में वह दूध नहीं,
जो तुर्शी से बिलगा जाये ॥
डरता हूं तेरी अग्नी से,
कहीं और उबाल न आजाये ॥

जयद्रथ—उबाल ? अरे, जरा मुंह को सँभाल। मैं तो तुझे एक सँपोलिया समझ रहा था। तू तो काले की तरह फुङ्कारने लगा, बड़ी बड़ी बातें मारने लगा।

अभिमन्यु—बड़ों का अस्तित्व छोटों से ही है। प्रत्येक छोटी वस्तु आगे चलकर बढ़ती है, और बढ़ी हुई वस्तु अपने उच्च स्थान तक पहुँच कर फिर नीचे को गिरती है। इस लिए अपनी अधेड़ अवस्था को देख कर पतन की दशा ध्यान में ला, जियादा बातें न बना, बाज आ।



जयद्रथ—बाज़ आ ? एक चिड़िया का बच्चा, बाज़ के सामने चह चहाये और बाज, बाज़ आये ? बोल, क्या चाहता है ? लड़ाई लड़ कर शीश का बलिदान या प्राण दान ?

अभिमन्यु—प्राणदान ? चक्रव्यूह के दर्बान, इस प्रकार बोलते हुए तुझे लज्जा नहीं आती ? दुष्ट, कौरवों के पक्ष-पाती प्रतिघाती, सँभलः—

मैं तेरी आन तोड़ दूं, अभिमान तोड़ दूं।
तेरा यह धनुष तोड़ दूं, और बान तोड़ दूं॥
जिस व्यूह के मुख-द्वार का, तू नागराज है।
वह व्यूह और व्यूह की सब शान तोड़ दूं॥

जयद्रथ—यह अहङ्कार ? अच्छा, आजा राजकुमार।

(दोनों का बाण-युद्ध, फिर असि-युद्ध, फिर गदा-युद्ध अन्त में कुश्ती का होना-और अभिमन्यु का जयद्रथ को पृथ्वी पर पटक देना। जयद्रथ का मूर्छित होना)

अभिमन्यु—(स्वगत) अहङ्कारी मूर्छित होगया। पृथ्वी माता की गोद में सो गया, अब मारना महा पाप है। मूर्छित पड़े हुए योद्धा का शीश काटना वीरों के लिए पश्चात्ताप है। इस



कारण इसको यहीं इसी अवस्था में छोड़ना चाहिए और चल कर द्रोणाचार्य्य के बनाये हुए चक्रव्यूह को तोड़ना चाहिए।

दूर यह कांटा हुआ, खुटका निकल बिलकुल गया।
व्यूह है अब सामने, और मार्ग अपना खुल गया॥

(अभिमन्यु व्यूह में प्रवेश करता है और जयद्रथ मूर्च्छा से जागता है)

जयद्रथ—(स्वगत) हैं! मैं मूर्च्छित हो गया? एक नादान बालक मुझे मूर्च्छित करके व्यूह में चला गया? यदि वह चाहता, तो इस मूर्च्छित-अवस्था में मेरा सर काट लेता। परन्तु नहीं, आखिर अर्जुन का पुत्र है, पाण्डु का पवित्र रक्त है, आर्य्य-जाति का गौरव है। धन्य है उस कोख को जिसने ऐसा लाल जाया! धन्य है उस पिता को जिसने ऐसा पुत्र पाया! धन्य है उस देश को जहाँ ऐसा कर्म्म-वीर जन्म लेकर आया!

हा! मैं सिन्धुराज होकर, महान् वीर होकर, एक बालक से पराजित हुआ! पाषाण पानी में गलित हुआ!

हस्ती के दन्त उखाड़े जो, जो सिंह से रण में पोच न हो।
यह बालक-द्वारा मूर्च्छित हो, तो कैसे उसको सोच न हो॥

(थोड़ी देर बाद) परन्तु, क्या मैं उसे जीता छोड़ दूंगा? नहीं। वह महामूर्ख था, जो उसने मुझे छोड़ दिया। मैं उसको



नहीं छोड़ सकता। प्रथम तो वह व्यूह ही में मारा जायगा और यदि वहाँ से बच गया, तो मेरे बाणों से कब बचने पायगा ?—

कहाँ छिपके जायेगा, सब ओर भय है।
यहाँ भी प्रलय है, वहाँ भी प्रलय है॥
वह क्या है ? पिता पर भी उसके विजय है।
जयद्रथ के शुभ नाम में, पहले 'जय' है॥

अभी टूटे हुए स्थान को बनाये देता हूँ। अभिमन्यु आ गया सो आ गया, अब और कोई नहीं आ सकता। बोलो, श्री सुयोधन महाराज की जय।

(जयद्रथ एक ओर को चला जाता है
अभिमन्यु व्यूह तोड़ता हुआ दिखाई देता है)

अभिमन्यु—विजय, विजय, व्यूह के इस भाग पर विजय (सामने द्रोणाचार्य्य को देखकर) यह कौन आचार्य्य ! (द्रोण के चरणों में बाण मार कर) प्रणाम है।

द्रोणाचार्य्य—धन्य, प्रणाम करने के लिए पहले बाण का लक्ष्य मेरे चरणों पर करना यह अर्जुन जैसे धनुषधारी के पुत्र वीर अभिमन्यु का ही काम है।

अभिमन्यु—आचार्य्य, सँभल जाइए। अब दादा से नाती का संग्राम है।



द्रोणाचार्य्य—पुत्र अभिमन्यु ! मैं तुम्हें परामर्श देता हूं कि तुम व्यूह में से निकल जाओ, व्यर्थ प्राण न गँवाओ।

(स्वगत)—

बनाया व्यूह था, दुर्योधनादिक के चिढ़ाने पर।
किसी की क्रोध में बुद्धी, नहीं रहती ठिकाने पर॥
उठे थे पाण्डवों में से, किसी को हम मिटाने पर।
नहीं मालूम था, आजायगा बालक निशाने पर॥
प्रतिज्ञा और दया में, अब लड़ाई होने वाली है।
भलाई में न जाने क्या, बुराई होने वाली है॥

अभिमन्यु—दादा, दादा, आप क्या कह रहे हैं?

द्रोणाचार्य्य—यही कि तुम लौट जाओ।

अभिमन्यु-क्या लौट जाऊँ? अर्जुन-कुमार होकर उल्टा चला जाऊँ? नहीं। आचार्य्य नहीं, यदि तुम्हें मेरी अवस्था पर कुछ विचार हो, तो तुम्हीं मेरे आगे से हट जाओ। मेरे निर्दोषी धनुष को गुरुहत्या, ब्रह्महत्या, वृद्धहत्या का दोष न लगाओ। यह हाथ अन्यायी कौरवों के लिए हैं, आचार्य्य के लिए नहीं। अधर्म्मियों के लिए हैं, आर्य के लिए नहीं।

द्रोणाचार्य्य—देखो, मैं फिर कहता हूं, मान जाओ।

अभिमन्यु—मैं फिर कहता हूँ, मेरे आगे से हट जाओ। तुम मेरे पितृगुरु हो। तुम्हारा लक्ष्य करने के लिए मैं तैयार



नहीं। मेरे बाणों को तुम्हारे पवित्र रक्त के चाटने का अधिकार नहीं (कुछ ठहर कर) हैं तुम खड़े हो ! कुछ सोच रहे हो ! आचार्य्य, आचार्य्य, क्या चिन्ता कर रहे हो ?

द्रोणाचार्य्य--बेटा, मुझे अपनी चिन्ता नहीं, चिन्ता है तो तेरी, ममता है तो तेरी।

अभिमन्यु--हैं ! चिन्ता ! ममता ! मेरे लिए, किसको ? आपको ? एक शत्रु के पक्षपाती को ?

द्रोणाचार्य्य--पुत्र, मैं युद्ध में पाण्डवों का शत्रु हूं; परन्तु और सब समय दोनों का हित हूं।

अभिमन्यु—ऐसा है तो आप हमारी सेना का संहार क्यों कर रहे हैं ? कौरवों की ओर से क्यों लड़ रहे हैं ?

द्रोणाचार्य्य—केवल अपना धर्म समझ कर, वचन-बद्ध होकर।

अभिमन्यु-अच्छा, आज अर्जुन की अनुपस्थिति में आप ने चक्रव्यूह क्यों निर्म्माण किया है ? क्या आपने जान बूझकर यह अनर्थ और यह अपराध अपने पवित्र उद्देश में नहीं लिया है ? मुझे क्षमा करें। मैं आज प्रतिज्ञा कर चुका हूं कि मेरे द्वारा चक्रव्यूह भेदन होगा।

द्रोणाचार्य्य-तो मैं भी प्रण कर चुका हूं कि उस चक्रव्यूह में पाण्डवों के किसी वीर का मरण होगा।



अभिमन्यु--चिन्ता नहीं, कर्म्म-वीर के लिए मरने की पर्वा नहीं। बस, दादा गुरु, नहीं मानते तो सँभालो। यह भेंट अङ्गीकार करो। अपने शिष्य की सन्तान का यह पत्र-पुष्प स्वीकार करो।

(बाण मारता है)

द्रोणाचार्य्य--(स्वगत) मुझे आज क्या होगया ? मैं जब धनुष उठाता हूं तो हाथ फिसलते हैं। बाण प्रत्यञ्चा से बाहर नहीं निकलते हैं। और उधर उसके तीर बराबर तीखी मार कर रहे हैं, वार पर वार कर रहे हैं:—

हैं ! यह क्या है ? कान पै गाता कोई यह गीत है।
युद्ध यह जो हो रहा है, धर्म्म से विपरीत है॥

अभिमन्यु—
क्यों नहीं लड़ते, हृदय क्यों आपका भयभीत है ?

द्रोणाचार्य्य—
युद्ध बालक से करे, आचार्य्य, यह अनरीत है।
इसलिए इस युद्ध में, अभिमन्यु तेरी जीत है॥

(आचार्य का एक ओर को चला जाना)

अभिमन्यु—(व्यूह तोड़ते हुए) कहां है ? कहां है ? वह दुराचारी दुर्योधन कहां है ? हमारी बड़ी माता महारानी द्रौपदी की साड़ी उतारने वाला दुष्ट दुःशासन कहाँ है ?



आ पहुँचा है शीश पर, व्यूह फाड़ता सिंह।
मृगो! तुम्हारे कान पै, अब दहाड़ता सिंह॥

(दुःशासन का सम्मुख होना)

दुःशासन—नन्हे नादान! यह जरासी जान और इतनी लम्बी जुबान? जी में आता है, अभी तुझे पृथ्वी पर सुला दिया जाय, यमपुरी पहुँचा दिया जाय, परन्तु तेरी अवस्था को देख कर दया आती है। तुझ पर हाथ डालते हुए इन हाथों को लज्जा आती है।

अभिमन्यु—लज्जा? और उन हाथों को जो एक पतिव्रता सती नारी की साड़ी भरी सभा में उतारते हुए भी न लजाये थे! शर्म? और उन शर्मदार हाथों को शर्म जो अपनी भाभी के बाल खींचते हुए, उसे घसीटते हुए, राजसभा में लाये थे, और फिर भी नहीं शरमाये थे? उन्हीं बड़े बड़े घुंघराले केशों का बदला, आज तेरे इन काले काले बालों से लिया जायगा! पत्थर का जवाब पत्थर से दिया जायगा!

(दुःशासन को पछाड़ कर उसकी छाती पर बैठ कर)

बाल के बदले में यह, सोलह बरस का बाल है।
देख छाती पै तेरी, अब द्रौपदी का लाल है॥

बोल, अब बाल बाल तोड़ दूं? यह आँखें, जो द्रौपदी को दासी की दृष्टि से देखती थीं, फोड़ दूं? यह हाथ, जो अबला पर पड़े थे, मरोड़ दूं? (कुछ सोच कर) मगर नहीं, नहीं, याद



आया, तू मेरा भोजन नहीं है, महात्मा भीम का शिकार है। तेरी मृत्यु का, उन्हीं के हाथों को अधिकार है। उन्हों ने तेरे रक्त से द्रौपदी के बाल सींचने की आन की है। इस लिए तू उनकी प्रतिज्ञा-पूर्ति का सामान है। जा, दुष्ट जा, अपनी रानियों के आंसुओं में डूब के मर जा, मेरे बाणों की धारा में प्राण न गँवा।

(छोड़ देता है। दुःशासन परास्त होकर एक ओर को जाता है)

फँसा तो हूं अकेला मैं, मगर इसकी नहीं चिन्ता।
बहादुर लोग प्राणों की, कभी करते नहीं चिन्ता?

(दुर्योधन का सम्मुख होना)

दुर्योधन—अभिमन्यु, तुझे अपने प्राणों का लोभ नहीं?

अभिमन्यु—योद्धाओं के प्राण हमेशा बाण की नोक पर रहते हैं, उन्हें युद्ध करते समय किसी की माया और किसी का मोह नहीं। आ जाओ, चाचा साहब, आ जाओ। तुमने समझ रक्खा होगा आज अर्जुन बहुत दूर है। चक्रव्यूह रचायें और पाण्डवों पर विजय पायें। परन्तु तुम्हें यह खबर नहीं—

'आनन्द उसी के राग में है, जिसके सर में सच्ची धुन है।'
पाण्डव का सारा दल का दल, और बच्चा बच्चा, अर्जुन है॥



दुर्योधन—इतना अहंकार ?

अभिमन्यु—तुम्हारे कानों का पर्दा हिलाने के लिए।

दुयर्धोन—यह विचार ?

अभिमन्यु—तुम्हारी तलवारें म्यान से बाहर निकलवाने के लिए।

दुर्योधन—इन नन्हें नन्हें हाथों में यह लोहा और यह हथियार ?

अभिमन्यु—हाँ। अन्यायियों को यमपुरी पहुँचाने के लिए आज अकेला अभिमन्यु इस चक्रव्यूह के बन में दहाड़ रहा है। वनैले जीवों के समान तुम्हारे योद्धाओं को चुन चुन कर मार रहा है। और तुम लजाते नहीं ? शरमाते नहीं ? शोक है तुम्हारे इस ढीटपन पर ! धिक्कार है तुम्हारे इस कपट भरे रन पर !

जो जीना चाहते हो तो, न आओ नाग के मुंह में।
नहीं तो तुम भी भुन जाओगे, गिर कर आग के मुंह में॥

दुर्योधन—अब नहीं सहा जाता।

अभिमन्यु—तो आओ।

(दोनों का लड़ते हुए, अन्दर चले जाना)



अभिमन्यु—(रंग स्थल में आकर) भाग गया। मुरदार भाग गया। घाव खाकर, दाव बचाकर; शिकार भाग गया। अधर्म्मी, आचार्य्य की सेना की ओर चला गया, नहीं तो इसी समय, सारा भुगतान होजाता। कल्यान हो जाता। (सामने देखकर) अच्छा, पिता नहीं तो पुत्र ही को यमपुरी पहुँचाया जायगा। उसका बदला इससे चुकाया जायगा। खड़ा रह, दुर्यो-धन के लाल, खड़ा रह। शृगाल, खड़ा रह—

न्याय इस समय ही, हो जायगा, योद्धापन का।
रक्त, अर्जुन का प्रवल या प्रवल दुर्योधन का॥

(अभिमन्यु का दुर्योधन के पुत्र को मारने के लिए एक ओर को जाना दूसरी ओर से बहुत से राजाओं का आना)

राजा नं० १—क्यों क्या समाचार है ?

राजा नं० २—अब कौरव-सेना का सम्पूर्ण संहार है।

राजा नं० ३—क्योंकि समस्त कौरव-दल, अभिमन्यु के हाथों से लाचार है।

राजा नं० ४—मार है, पुकार है।

राजा नं० ५—धुन्धकार है, अन्धकार है।

राजा नं० ६—चीत्कार है, हाहाकार है।

राजा नं० ७—सुनो, सुनो, फिर उसी सिंह की दहाड़ है।

(अभिमन्यु का प्रवेश)



अभिमन्यु—

अबाबीलो, फँसे हो तुम भी अब, शिकरे के चुंगल में।
तुम्हें भी यमपुरी जाना हो, तो आजाओ दंगल में॥

(एक ही समय में अकेला अभिमन्यु
इन सबों को परास्त करता है)

पूर्ण हुआ। यह अनुष्ठान भी पूर्ण हुआ। व्यूह तोड़ा, कौरव-सेना का विध्वंस किया। सप्त अक्षौहिणी-दल को परास्त कर दिया। अब इस माया-जाल से सुलझने का प्रयत्न करना चाहिए। व्यूह के उस भाग पर भी विजय प्राप्त करके बाहर निकलना चाहिए। उधर ही चलना चाहिएः—

अगर रस्ता निकल आये, उधर ही से निकलने में।
तो, भय मुझको नहीं है, आज तलवारों पै चलने में॥

(अभिमन्यु का फिर एक ओर को जाना और
आचार्य्य, दुर्योधन, कर्णशल्य का घबराये हुए आना)

दुर्योधन—आचार्य्य, अभिमन्यु तो बड़ा अनर्थ कर रहा है। सारथी नहीं रहा, रथ नही रहा, शस्त्रों का समूह नहीं रहा, फिर भी एक धनुष और एक खड्ग पर हजारों मे लड़ रहा है।

कर्ण—सर्प की अपेक्षा, सर्प का बच्चा बड़ा भयङ्कर है।



द्रोणाचार्य्य—उसे बच्चा न कहो, वह अर्जुन से भी बढ़ कर है। उठती हुई आंधी में, उमड़ते हुए मेघ में, बढ़ती हुई ज्वाला में जितना वेग है उससे भी अधिक उस राजकुमार का तेज है। क्या तुमने रामायण में लव-कुश की कथा नहीं पढ़ी है? अर्जुन बली अवश्य है; परन्तु वह अब ढलते हुए दिन के समान है, और अभिमन्यु प्रातःकाल का अरुणोदय है। इसी लिए वह उससे बढ़ कर है।

कर्ण—इस समय वह किधर है?

शल्य—इधर, उधर, चारों ओर वह ही एक नाहर है।

(दुःशासन का प्रवेश)

दुःशासन—भाई साहब, इस समय मैं जो समाचार लाया हूँ वह बड़ा कष्टकर है।

दुर्योधन—क्या खबर है?

दुःशासन—कहते हुए देह हाँपती है, जिह्वा काँपती है, अभिमन्यु ने अभी अभी महाराज शल्य के कनिष्ठ भ्राता को...

शल्य—मेरे सुखदाता को (घबराना)

दुःशासन—हाँ, उसी योद्धा को संहारा। बुरे समय में बुरी जगह पर, बुरी तरह मारा।



शल्य—हाय ! मेरा प्यारा (गिरना चाहता है, कर्ण सँभालता है)

दुःशासन--(दुर्योधन से) और आपके पुत्र लक्ष्मण को भी मौत के घाट उतारा। देखिए वह पड़ा है बेचारा !

आज, अभिमन्यू के हाथों, सबका सत्यानाश है !
देखिए, वह आपके प्रिय-पुत्र की भी लाश है !

दुर्योधन—हैं, यह क्या हुआ ! मेरा नन्हा ! मेरा फूल सा बच्चा ! पृथ्वी पर ! अभिमन्यु ! अभिमन्यु !

अब तक तो मैं शान्त था, अब चढ़ गया जुनून।
अब तू जाता है कहां, करूँ खुन का खून ॥

(अश्वत्थामा का प्रवेश)

अश्वत्थामा—महाराज, महाराज—

दुर्योधन--भाई अश्वत्थामा, कहो, कहो, क्या संवाद है ?

अश्वत्थामा—इस समय सारी सेना में विषाद है। अभिमन्यु के हाथ से आज कोशलराज, बृहद्बल, मगधराज, नन्दन, श्वेतकेतु, अश्वकेतु चन्द्रकेतु, कुञ्जरकेतु, महामेघ, सुवर्चा, सूर्य्य-भानु, शत्रुञ्जय आदि अनेकों और अनगिनती राजा मारे जा चुके हैं।



दुःशासन--मैंने तो पहिले ही कहा था, हजारों योद्धा संहारे जा चुके हैं।

(शकुनि का प्रवेश)

शकुनि—दुःशासन ?

दुःशासन--मातुल शकुनि, क्या समाचार है ?

शकुनि—अन्धकार है। अभिमन्यु ने अभी अभी तुम्हारे पुत्र उलूक को भी यमलोक पहुँचाया। उस टिमटिमाते हुए दीपक को भी बुझाया।

दुःशासन—हाय, यह तुमने क्या सुनाया ?

(गिरना चाहता है शल्य सँभालता है)

कर्ण—क्षत्रियों की सन्तान, यह समय रोने रुलाने का नहीं है। वीरता दिखाने का है।

शल्य—और बदला चुकाने का है।

शकुनि--बेशक, हमें अब यही राय करना चाहिए।

दुर्योधन—अभिमन्यु को मारने का उपाय करना चाहिए।

दुःशासन--उपाय ? सब से उचित यही है कि हम सब सात वीर यहां उपस्थित हैं। चौदह हाथों से बच कर निकलना उसके लिए असम्भव है। इस लिए सब मिल कर उसे घेर घार लो और मार लो। इसी में अपना हित है:--



फँसी हो कीच में नौका, तो सब बल को लगाते हैं।
कि चौदह हाथ मिलकर एक छप्पर भी उठाते हैं॥

द्रोणाचार्य्य—परन्तु यह धर्म्म नहीं अधर्म्म है। एक सोलह वर्ष के बालक को सात वीर मिलकर एक समय में मारें, तो शर्म है।

दुर्योधन—शर्म्म ? इसमें क्या शर्म्म है ? शत्रु को जिस प्रकार हो सके मार डालें यह हमारा धर्म्म है। तुम हमारे सेनापति हो। सेनापति को धर्मोपदेश देने का अधिकार नहीं है। युद्ध की भूमि पर धर्म्म और अधर्म्म का विचार नहीं है।

द्रोणाचार्य्य—(स्वगत) सच है बाबा, जो खटकता था वह ही अब आगे आ रहा है। इन अधर्म्मियों का सङ्ग मुझे भी खोटे मार्ग पर लिये जा रहा है। परतन्त्रता की जंजीरों से जकड़ा हुआ, यह शरीर, अनर्थ करने के लिये लाचार किया जा रहा है। किसी ने ठीक कहा है:—

कुसंग उच्च को पैरों तले गिराता है।
कुसंग, स्वर्ग का जल, कीच में मिलाता है॥
कुसंग जीव को पशु तुल्य कर दिखाता है।
कुसंग देवता को भी असुर बनाता है॥
कुसंग वाला कहे धर्म्म, तो कहना धिक्कार।
और परतन्त्र का, संसार में रहना धिक्कार॥



दुःशासन—बस संभल जाइए। वह देखिए, अभिमन्यु इसी ओर आ रहा है।

दुर्योधन—हां, यही समय है, जिस प्रकार होसके घेरो, मारो, तुम्हारा अधिकार है।

द्रोणाचार्य्य—हा ! कैसा नीच विचार है !

दुर्योधन—अब क्या देर दार है ?

दुःशासन—तयार है, पक्षी के फाँसने के लिए हाथों का जाल तैयार है।

(अभिमन्यु का चक्रव्यूह तोड़ते हुए आना)

अभिमन्यु—विजय ! विजय !! यह दूसरी बार विजय है।

दुःशासन-नहीं, यह विजय नहीं, तेरा अन्तिम समय है।

अभिमन्यु – हारे हुए कायरो ! मेरे बाणों की मार खाते खाते तुम्हारी रण-लालसा अभी पूरी नहीं हुई ? जाओ, जाओ अपनी माताओं की गोदियों में जाकर सो जाओ, मेरे धन्वा के सामने न आओः—

अब फिर सम्मुख तुम आते हो, धिक्कार है इस मरदानी में।
यदि क्षत्रीपन की लाज हो तो, डूबो चुल्लू भर पानी में॥

दुःशासन--पानी ? अभी प्रकट हुआ जाता है कि दूध किधर है और पानी किधर है !



अभिमन्यु—और बेईमानी किधर है ? अरे, तुम बार बार पाण्डवों के पराक्रम से पराजित होकर मुँह छिपाते हो और बार बार बेशर्म्मी के साथ सर उठाते हो। यह वीरों का कर्म्म है ? निशाचरो, तुम कुरुकुल के प्रकाशवान सूर्य्य नहीं हो, स्याही वाले मयङ्क हो ! वीर नहीं हो, वीर-कलङ्क हो !

दुर्योधन—तुम बड़े सुपूत हो, जो अपने बड़ों को इस प्रकार गालियां सुनाते हो ! बार बार जुबान चलाते हो !

अभिमन्यु—जब बड़े अपनी बड़ाई पर न जायें, अपने हाथों ही अपना बड़प्पन गँवायें, तो इसमें छोटों का क्या दोष है ?

दुर्योधन—नहीं, हम आज भी तुम्हारे साहस पर प्रसन्न हैं, और हमें तुम्हारी वीरता का सन्तोष है।

अभिमन्यु—ऐसा है तो भतीजे की रग रग में भी चाचा की मुहब्बत का जोश है।

दुर्योधन—सच्चा सत्कार है ?

अभिमन्यु—अगर आपको बालक पर सच्चा प्यार है, तो बालक का शीश भी आपको प्रणाम करने के लिए तैयार है।

दुर्योधन—यही बात है ?

अभिमन्यु—यही।



दुर्योधन—तो अपने इस खड्ग को और इस धनुषबाण को फेंक और हमारी गोद में बैठ कर वैर को, पीड़ा को प्रेमाग्नि से सेक।

अभिमन्यु—तथास्तु। जा मेरी प्यारी तलवार, बहुत रक्त पीचुकी, अब आराम कर। (तलवार फेंक देता है) बाणों से भरे हुए निषंग, तू भी विश्राम कर। (तरकश उतारता है) धनुष, तू भी पयान कर (धनुष डाल देता है)

आज कौरव और पाण्डव में सन्धि हुई। वैर-वाटिका में प्रेम-पुष्पों की सुगन्धि हुई।

(मिलने को आगे बढ़ता है)

दुर्योधन—हां, लेना, पकड़ना, घेरना, जाने न पाये।

(सब मिल कर अभिमन्यु को पकड़ लेते हैं)

अभिमन्यु—अरे, तुम सब पर धिकार है!

दुर्योधन—ऊँह, हमारी जरासी युक्ति पर तूने यह विश्वास कर लिया कि बरसों की भभकती हुई आग ठंडी हो जायगी? कौरव पाण्डव में सन्धि हो जायगी? इस भोलेपन पर बलिहार है।

अभिमन्यु—अरे जो बहादुर होते हैं, वह भोले ही होते हैं। भोलापन तो शूरवीरों का शृंगार है।



(द्रोणाचार्य्य से) क्यों दादागुरु, तुम्हारे होते यह अत्याचार है?

यह वीर वीर-कलङ्क हैं गुरुदेव तुम बलवान-हो।
आचार्य्य हो, धर्म्मज्ञ हो, बूढ़े हो और सुजान हो॥
तुम जानके रण-नीति, करते कर्म्म आज अजान का।
बोलो गुरु, बोलो. यही क्या धर्म्म है बलवान का?

द्रोणाचार्य्य—

मै जानता हूँ, पुत्र तुझ पर घोर अत्याचार है।
पर क्या करूँ अपने वचन का आप मुझ पर भार है॥
जकड़ा खड़ा हूँ इस समय परतन्त्रता की डोर मे—
मेरे लिए मेरी प्रतिज्ञा आज कारागार है॥

दुर्योधन—अब हमारी दया पर तेरे जीवन और मरण का आधार है। बोल, सांप के बच्चे, नदी किनारे के विरवे, अब क्या चाहता है? मौत या प्राणों की भीख?

अभिमन्यु-भीख! और तुझ जैसे नर-पिशाच से? भीख मांगना भिखारियों का कार्य्य है। क्षत्रिय, सच्चे क्षत्रिय, ऐसी भ्रष्ट भीख कभी नहीं ले सकते हैं।

दुर्योधन-नहीं, तू जो मांगे वह अब भी हम तुझे दे सकते हैं।



अभिमन्यु—(कुछ ठहर कर) दे सकते हैं ?

दुर्योधन—हाँ, सकते हैं।

अभिमन्यु—तो वह उस तरफ पड़ी हुई मेरी तलवार मुझे देदो। यदि मैं सुभद्रा का लाल हूं, तो उस तलवार से तुम सब को मारता हुआ, तुम्हारी सेना को चीरता फाड़ता हुआ, तुम्हारे व्यूह को विदारता हुआ, पूर्ण विजय पाऊँगा, और निर्भय होकर अपनी सेना की ओर जाऊँगा।

द्रोणाचार्य्य—धन्य, मरते मरते भी यह दान मांगना वीर-अभिमन्यु ही की शान है। देखो, सच्चे बहादुर की यह आन बान है।

शकुनि—(दुर्योधन से) ऐसा न कीजिएगा। नहीं तो लाभ के स्थान में महा हानि है !

दुःशासन—तलवार उन हाथों में पहुँची और बस मैदान ही मैदान है !

दुर्योधन—नहीं, सुयोधन क्या इतना अज्ञान है।

अभिमन्यु—क्यों, दान देने वाले दानियो, अब क्या देर दार है ?

दुर्योधन—ऐसा कठिन दान देने के लिए सुयोधन लाचार है।



अभिमन्यु—तो थू है, धिक्कार है, सिंह के बच्चे को इस प्रकार धोखा देकर फाँसने वाले वधिको तुम पर हजार हजार फटकार है।

हे भगवान् त्रिलोकीनाथ, तुम साक्षी हो। हे आकाश पर विचरने वाले तारागणों, तुम देख रहे हो। अभिमन्यु अब तक धर्म्म पर ही लड़ा है और अब धर्म्म पर ही उसका देहावसान होता है। आर्य्य-जाति के गौरव पर लड़ने वाला यह आर्य्यपुत्र आर्य्यमाता पर ही बलिदान होता है।

उत्तरे, प्रियतमे, प्राणवल्लभे, प्राणाधिके, तुम कहाँ हो! देखो, तुम्हारा यह प्रेमपात्र, तुम्हारा यह यशस्वी चंद्र, दुष्ट राहु केतुओं के घेरे में आगया है, और अब, शरीररूपी आकाश से इसका प्रस्थान होता है। माता सुभद्रे, तुम्हारा यह जगमगाता हुआ दीप अब निर्वाण होता है। अभिमन्यु का पयान होता है।

हा! चाचा, पिता, मामा, लेना! लेना!! अगर तुम्हारे गाण्डीव धनुष मे बल हो, अगर महावीर भीम की गदा में जोर हो, अगर जनार्दन के सुदर्शन में शक्ति हो, तो इन अन्यायियों से मेरे खून का बदला लेना।



(दुर्योधनादिक से) कायरो, पापियो, माता का दूध लजाने वाले निर्लज्जो, क्षत्रियों के वंश को कलङ्कित करने वाले राक्षसो, इधर देखो--

मेरे सोने के लिए है पृथ्वी पर्य्यङ्क।
और तुम्हारे वास्ते, है यह "वीर कलङ्क"॥

हट जाओ, हट जाओ, (ज़ोर लगाता है) अब भी मैं तुम सब के लिए बहुत हूं ! मरते मरते भी अपनी मुष्टिका से दो चार को चूर्ण कर दूंगा। सम्पूर्ण कर दूंगा।

सब--(प्रहार करते हुए) बस मौन हो जा।

अभिमन्यु--ओ३म्, शान्ति...........

सब--(प्रहार करते हुए) सदा के लिए शान्त हो जा।

अभिमन्यु--शान्तिः शान्तिः।

सात वीर, इस प्रकार अभिमन्यु का वध करते हैं।
आकाश से विमानों पर बैठे हुए देवता, अभिमन्यु की लाश पर पुष्प बरसाते हुए दिखाई देते हैं। सब आश्चर्य्यान्वित होते हैं। धीरे धीरे यवनिका-पात होता है

ड्राप सीन।





पहला सीन

मार्ग ।

(संसप्तकों पर विजय प्राप्त करके, श्रीकृष्ण और अर्जुन का आगमन)

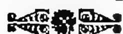
अर्जुन—जनार्दन, आपही की कृपा से आज संसप्तकों पर विजय पाई ।

श्रीकृष्ण—नहीं अर्जुन, यह सब तुम्हारे बाणों की है बड़ाई ।

अर्जुन—परन्तु यदुराई, कारण क्या है ? आज मेरी बांई भुजा, बाँयाँ नेत्र, हृदय का वाम भाग और समस्त वाम अङ्ग फड़क रहा है ।

श्रीकृष्ण—यह तो तुम्हारा स्वाभाविक गुण होगया है । तुम्हारे अङ्गों को तो बार बार फड़कने का महावरा पड़ गया है । नित्य नित्य ऐसा हो, तो समझ लो रोग लग गया है ।

अर्जुन—नहीं मधुसूदन, इस समय अचानक ऐसा हो रहा है । और मैं तो ध्यान नहीं देता, मेरे सामने बार बार श्वान रोते


हैं, बिलाव लड़ते हैं, उलूक बोलते हैं, उत्तम जीव धेनु आदि तो बांई ओर, और नीच गर्दभ आदि दांई ओर होकर निकलते हैं। प्रकृति का यह सुन्दर दृश्य मुझे इस समय नहीं सुहा रहा है। यह पथरीला मार्ग स्वयं मुझी को पत्थर बना रहा है। नदियों का निनाद आज मुझी को रुला रहा है। पृथ्वी की ओर जब देखता हूं, तो भयानक अवस्था सुझाई देती है। आकाश की ओर दृष्टि जाती है, तो धूरि उड़ती हुई दिखाई देती है।

कृष्ण—यह तो प्रकृति है। और अच्छी या बुरी कल्पना कर लेना यह मन की गति है।

अर्जुन—नहीं वासुदेव, एक और भी आश्चर्य्य पैदा करने वाली बात है। आज पाण्डव-शिविर से जयकार सुनाई नहीं देते। दुन्दुभियों की ध्वनि और भेरी-नाद के धुधुकार सुनाई नहीं देते। बन्दीजन बोलते नहीं। वीणा, मृदङ्ग, शङ्ख, घड़ियाल, घण्टे बजते नहीं। सायङ्काल होगया, अभी तक दीपक जले नहीं। अवश्य कुछ अनर्थ हुआ है। कई घंटे पहिले यह समाचार मिला था, कि 'आज दुर्योधन ने आचार्य्य द्वारा चक्रव्यूह निर्माण कराया है'। कहीं उसका यह प्रयत्न सफल तो नहीं हुआ है? और पाण्डवों का पक्ष, निर्बल तो नहीं हुआ है? विधाता, कोई अमंगल तो नहीं हुआ है?



श्रीकृष्ण—भाई, तुम्हारी यह कल्पना-गाथा सुनते सुनते हमारे तो कान ऊब गये। अब चलते हो या विचार-सागर में मन के साथ साथ तुम भी डूब गये।

अर्जुन—

चलता हूं, चलता नहीं, मेरे मन का खेद।
अशकुन यह खाली नहीं, है अवश्य कुछ भेद॥

श्रीकृष्ण—

चिन्ता करना है नहीं, चतुरों का कर्त्तव्य।
आप प्रकट हो जायगा, जो होगा होवव्य॥

गायन



भलाई, बुराई सोचो न भाई, तज के सब कचाई चले चलो गतियां तेरी जचत नांहीं, मत करो चपल-ताई॥ भलाई बुराई०॥ जगत की बतियां हैं, सपने की रतियां। लाभ और हानि को, समान मानते हैं ज्ञानी॥ चढ़ो अब, छोड़ के कदराई॥ भलाई बुराई०॥

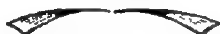
(दोनों का प्रस्थान)

—#—



दूसरा सीन

उत्तरा का शयन-मन्दिर ।



(उत्तरा, स्वप्न में सप्त महारथियों द्वारा अभिमन्यु का मारा जाना और विमान पर बैठकर उसका चन्द्रलोक जाना देखती है और चौंकती है)



उत्तरा—हैं ! मैं स्वप्न देख रही हूँ या जाग रही हूँ ? यह कौन थे, जो मेरे प्राणनाथ पर प्रहार कर रहे थे ? राक्षस ? नहीं नहीं, कौरव। क्या था ? तमाशा था ? अचम्भा था ? नहीं नहीं, पत्थर को पिघलाने वाला एक दृश्य था। अच्छा.......सब ने घेर लिया, फिर............फिर शस्त्र-प्रहार किया। फिर ? फिर क्या हुआ ? अचानक चाँदना हुआ और एक पवित्र तेज विमान पर विराजमान होकर चन्द्रलोक को जाने लगा। बस, समाप्त हुआ। यही था, यही था। हाय ! कैसा भयानक स्वप्न था। सर चकराया जाता है, कलेजा मुंह को आया जाता है:—



आज गये हठ-पूर्व्वक, रण में लड़ने नाथ।
लज्जावश मैं, युद्ध में, गई न उनके साथ॥

हाय! यह क्या? दक्षिणाङ्ग क्यों फड़का? माँग का सिंदूर क्यों पुछ गया? यह पलङ्ग मुझे क्यों डरा रहा है? मेरे नेत्रों के काजल का जल जलनिधि बन कर मुझे क्यों डुबा रहा है?

सहेलियो, दासियो, आओ, आओ, मेरे प्राण सङ्कट में हैं, मुझे छुड़ाओ, मुझे बचाओ, धाओ, धा·········ओ।

(मूर्च्छित होजाना, सखियों का आना)

सखी नं० १—हैं! हैं!! यह कैसा कलेजा फाड़ने वाला नाद है?

सखी नं० २—(उत्तरा की नब्ज़ देखकर) नाड़ी तो चल रही है, परन्तु मूर्च्छा है और उन्माद है।

सखी नं० ३—हाय, हाय, यह कैसा विषाद है! ठहरो, मैं इनके तलवे सहलाती हूं। (तलवे सहलाना)

सखी नं० १—अच्छा, मैं मूर्च्छा मिटाने वाली औषध लाती हूं। (गयी)



उत्तरा—(चौंक कर) ठहरो, विमान पर बैठकर चन्द्रलोक को जाने वाले देव, ज़रा ठहरो। मुझे भी अपने साथ लेते चलो। देखो एक बार इधर देखो। अपनी दासी उत्तरा को अपने मुखचन्द्र का दर्शन तो दे दो। अपनी अर्द्धाङ्गिनी को तो अपने साथ ले लो।

(सखी औषध लाती है)

सखी नं० १—महारानी, शान्त हो, धीर धरो, लो यह औषध सूंघो।

उत्तरा—(घबड़ा कर) तुम कौन हो, ? वह विमान पर बैठे हुए चन्द्रदेव किधर चले गये ? चलो, हटो, तुम सब नरक की पिशाचिनी हो, मुझे न छेड़ो। मैं इस समय उस विमान पर बैठकर चन्द्रलोक जाना चाहती हूं। मुझे जाने दो, मुझे जाने दो, मुझे.........जा......ने......

(फिर मूर्च्छित होना, सखी का औषध सुंघाना)

सखी नं० २—प्यारी, यह किसी भयानक स्वप्न का प्रमाद है, इसे छोड़ो और आँखें खोलो। हम सब आपकी सेवा करने वाली आपके सन्मुख खड़ी हैं। हमें देखो और हृदय को शान्ति दो।

उत्तरा—(कुछ होश में आकर) मैं कहाँ हूँ ?



सखी नं० १--अपने शयन-मन्दिर में । प्यारी, किसी भयानक स्वप्न के प्रमाद को छोड़कर, शान्ति प्राप्त करने के लिए उस महामाया, महाशक्ति, भगवती पार्वती का स्मरण करो।

सखी नं० ३-हां, सङ्कट के समय उस सङ्कट-मोचनी को ही मनन करो।

सखी नं०२--विपत्ति में धीरज धारण करो और उस बिपत्ति-विमोचनी का ही भजन करो।

उत्तरा-(होश में आकर)

माता, आप जगन्माता हैं, जान रही हैं घट घट की।
लाज आप ही के हाथों है आज हमारे घूंघट की।
हे जगदम्बे, नाव हमारी, बीच भँवर में है अटकी।
निपट अँधेरी,ग्राहन घेरी,सुधि बुधि बिसरी है तटकी॥
झिझरी हुई है नैया, मैया, पार लगैया तुम्हीं तो हो।
पतिव्रताओं की,इस जग में,लाज रखैया तुम्हीं तो हो॥

सखी नं० २-अच्छा प्यारी, अपना स्वप्न अब बताओ, अपनी घबराहट का कारण अब सुनाओ।

उत्तरा--आज प्रकृति के विरुद्ध मैं दिन ही में सोगई थी। क्या देखती हूं, उन्हें सात मनुष्य धमका रहे हैं, एक ही साथ सब उन पर बाण चला रहे हैं।



फिर देखा, आकाश से एक विमान आया और वह उस पर विराज कर मेरी ओर निहारते हुए चन्द्रलोक को जारहे हैं।

सखी नं० ३—स्वप्न तो अवश्य भयानक है ॥

सखी नं० १—और फिर अचानक है।

सखी नं० २--परन्तु उसकी चिन्ता करना और भी चिन्तादायक है। वह त्रिलोकीनाथ, सहायक है।

उत्तरा—हां अब वही रक्षक है।

गायन।

हरी, हरिए अब तो सन्ताप।
पापी, दीन, मलीन दुखी मन, जाने न पूजा जाप।
सुख में तुम्हें विसार देत है, दुख में करे विलाप॥
मिटें आपके गुण-गायन से, जन्म जन्म के पाप।
'राधेश्याम' दशा दीनों की, जान रहे सब आप॥



भगवन्! रक्षा करना। पाण्डवों पर, पाण्डवों के पुत्रों पर, पाण्डवों के पक्षपातियों पर, दया करना। न्याय पर लड़ने वाले न्याय-वीरों की सहायता करना:-



हे दीनबन्धु दीनों का आधार तुही है।
दुखियाओं का, अनाथों का, दातार तुही है॥
जो धर्म पै हैं उनका मददगार तुही है।
हारे हुए ग़रीब की तल्वार तुही है॥
मेरे भी हाथ उठ रहे हैं, तेरे दान पर।
आये न आंच, पाण्डवों की आन बान पर॥

सखी नं० २—प्यारी, हम वारी, वह न्यायकारी अवश्य तुम्हारी पुकार स्वीकार करेगा और अन्यायियों का संहार करेगाः—

सन्देह नहीं आपको वह देख रहा है।
दुष्टों के भी कलाप को, वह देख रहा है॥
पापी तो समझते हैं, हमें देखता है कौन।
पर पापियों के पाप को, वह देख रहा है॥

उत्तरा—हाय! लाज ने प्राणनाथ से ज्यादा बातें भी नहीं करने दीं। जिस समय वह युद्ध में जाने लगे मैं मुंह सिये रही। क्षत्राणी का धर्म्म समझ कर अपने हृदय की चिन्ता को हृदय ही में दमन किये रही। अपनी आंखों के आंसुओं को आंखों ही में पिये रही। परंतु न जाने भाग्य में क्या लिखा है? जब से यह भयानक स्वप्न देखा है कलेजा धड़क रहा है। बार बा॰



दक्षिणाङ्ग फड़क रहा है। जी चाहता है युद्ध में जाकर ही उनके दर्शन करूँ, परंतु लज्जा कहती है कि घर में ही सन्तोष से बैठी रहूं। हाय, क्या करूं?

मन है लोभी दरस का, तन को रोकत लाज।
काह करूं! कैसी करूं!! होनहार क्या आज॥

सखी नं०२—प्यारी, धीर धरो, तुम्हारी पीर देखकर हमारा शरीर भी थरथराता है। तुम्हारा रोना देखकर हमारा भी हृदय उमड़ आता है।

उत्तरा—सखी, इस समय मुझे कुछ नहीं सुहाता है। मैं रोना चाहती हूं और रोया नहीं जाता है। मैं बोलना चाहती हूँ और बोला नहीं जाता है। मैं अपने हृदयोच्छ्वास को रोका चाहती हूँ और रोका नहीं जाता है। और यह जो बार बार अपशकुन मुझे दिखाई देते हैं, इन्हें देखा नहीं जाता है:—

आज आली माथे की सुबेंदी गिरे बार बार,
मुखपेहू मोतिन की लरी, लरकत है।
पायल की कील हू निकर जात बार बार,
जब तब गांठ जूरे हू की, सरकत है॥
जान न परत सखी, जाने कहा होनहार,
हाय, उरोजन अंगिया हू, दरकत है।
तनी तरकत, कर चूड़ी करकत,
अङ्ग-सारी सरकत, आंख दांई फरकत है॥

(शालग्राम)



गायन

मैं तो पिया की दिवानी, मेरो दरद न जाने कोय ।
घायल की गति घायल जाने,जो कोई घायल होय ॥
शूली ऊपर सेज है तेरी, किस विधि पाऊं तोय ।
प्राण गये पर देह हो जैसी, तैसी जानो मोय ॥



सखी नं० २—बस रहने दो, अब बहुत ज्यादा सोच न करो। जो होनहार है वह होगा और जो होगा, वह कौरवों ही को होगा, पाण्डवों को कुछ न होगा। क्यों कि कौरव अधर्मी हैं और निर्दयी हैं। पाण्डव धर्मात्मा हैं, दयालु हैं। इसीलिए विजयी हैं।

धर्म अपना न जो गंवाता है, जय वही इस जगत् में पाता है।
रात क्यों हो,यहां पराजय की, धर्म का सूर्य्य जगमगाता है॥

उत्तरा—नहीं सखी, मैं अब लज्जा निगोड़ी को त्याग कर कहती हूं मुझे भी तुम वहीं ले चलो।

सखी नं० २—कहां ?

उत्तरा—जहां प्राणनाथ गये हैं।

सखी नं० २—क्या युद्ध में ?



उत्तरा—हां, इसी रणक्षेत्र में।

सखी नं० २—प्यारी क्या तुम सचमुच उन्मादिनी हो ?

उत्तरा—हां, मैं सचमुच उन्मादिनी होगई हूँ! विरहणी नहीं, वियोगनी नहीं, विपादिनी होगयी हूं।

सती वही जिसका रहे, साजन से अनुराग।
धन्य वही संसार में, जिसका अटल सुहाग॥

गायन



बिना पति सूना सब संसार।
पति ही व्रत है, पति ही तप है, पति ही है करतार।
पति ही से पत है इस तन की पति पत, राखनहार।
जबलों पति है,तब लों पत है,बिन पति विपत हज़ार!
जिसका नेह चरण में पति के, वही पतिव्रता नार॥
एक पतिव्रत रहे जगत् में, तो सब व्रत निःसार।
बिना पति-व्रत के नारी का जीवन है धिक्कार॥



(उत्तरा फिर अकुलाती है, सखियां संभालती हैं)



तीसरा सीन

पाण्डवों का डेरा

(सहदेव और भीम के साथ धर्मराज का प्रवेश)



युधिष्ठिर—भीम, अभिमन्यु अब तक विजय पाकर नहीं लौटा है। अकेला चक्रव्यूह में फँस गया है और दुराचारी जयद्रथ, भगवान शंकर के वरदान के कारण चक्रव्यूह में हमें जाने नहीं देता है। बार बार परास्त कर देता है। महान् अनर्थ हो रहा है। अब क्या करना चाहिए ?

भीम—फिर चलना चाहिए, एक बार फिर चल कर जयद्रथ से लड़ना चाहिए, अन्तिम प्रयत्न करना चाहिए, मारना या मरना चाहिए।



जो सच्चे लड़ने वाले हैं, सर देकर सर से लड़ते हैं।
हटते हैं नहीं हटाये से, जिस समय युद्ध पर अड़ते हैं॥

(नकुल का प्रवेश)

नकुल—महाराज, महाराज, वज्रपात होगया !

युधिष्ठिर—क्या आघात होगया ?

नकुल—हाय, कहा भी नहीं जाता और बिना कहे रहा भी नहीं जाता।

युधिष्ठिर—कहो, कहो, क्या वज्र टूट पड़ा है ? हमारा अभिमन्यु तो अच्छा है ?

नकुल—वह अब स्वर्ग की पवित्र आत्माओं में खेल रहा है।

युधिष्ठिर—हाय ! कानों तुम बहरे हो जाओ ! यह क्या सुनाई पड़ रहा है ! क्या सचमुच ग्रीष्मकाल के झपेटों ने हमारे उद्यान को उजाड़ डाला है ?

नकुल—हाँ, उस बालक ने सहस्त्रों योद्धाओं का विनाश किया। सात बार सप्तरथियों को परास्त किया। अन्त में सात मनुष्यों ने मिल कर और धोखा देकर उसे मार डाला है :



युधिष्ठिर—बस ! बस !! हृदय फट गया। अपने जीवन के दीपक का तेल भी निबट गया। हाय लाल, हाय बेटा, हाय अभिमन्यु, अब तुम स्वर्ग में हो ? तुम्हारी पञ्चतत्व की देह पञ्चतत्व में है और तुम्हारे यश की देह अब अमरत्व में है। बेटा, तुम सच्चे वीर पुत्र हुए। तुम्हारी खड्ग ने सहस्रों योद्धा मारे, तुम्हारे बाणों से सप्तरथी सप्तवार हारे, और अन्त में तुम वीर पुरुषों की तरह वीर-भूमि से स्वर्ग-भूमि को सिधारे।

तुम वीर हो और हम कायर हैं। तुम धन्य हो और हम घृणा के पात्र हैं। जिस समय लोग सुनेंगे, तुमने हमारे ही उत्साह दिलाने पर युद्ध मे गमन किया था, जिस समय लोग सुनेंगे तुमने हमारे ही भरोसे चक्रव्यूह विदारण किया था, उस समय सब कहेंगे—तुम्हारा चरित्र स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है। और जिस समय लोग सुनेंगे कि हम सब जयद्रथ से परास्त होकर तुम्हारी सहायता के लिए व्यूह में न जा सके, तुम्हें उस घोर विपत्ति से न बचा सके, उस समय सब कहेंगे—इनका कर्तव्य धिक्कारने योग्य है—

जिस के बल से कुरुकुल, और कुरु—दल थर्राया।
जिस को हमने, था अपना युवराज बनाया॥



हाय, अचानक, वही फूल अपना मुरझाया।
अभी खिला था कहां? चटकते ही कुम्हलाया॥
हाय, आज तू कहां है? तेरा प्यार कहां है?
पाण्डव-सेना! बता, तेरा शृंगार कहाँ है?

भीम--महाराज, शान्त हूजिये। अभिमन्यु के शोक की अग्नि इन आँसुओं से नहीं बुझेगी। इस को बुझाने के लिए शत्रुओं का रक्त चाहिये।

युधिष्ठिर--हाय, जब अर्जुन संसप्तकों को परास्त करके आयगा और अभिमन्यु को नहीं पायगा, उस समय वह घबड़ाई हुई आवाज़ से पूछेगा-'अभिमन्यु कहाँ है' तब मैं उसको क्या उत्तर दूंगा? वह पुत्र शोक में कलेजा चूर चूर कर देने वाले स्वर से 'अभिमन्यु अभिमन्यु' पुकारेगा, उस समय क्या कह कर उसके हृदय को शान्त करूँगा?

सुभद्रा, जब 'मेरा लाल कहाँ है', कहती हुई पछाड़ें खायगी, तब मैं कैसे देख सकूंगा?

उत्तरा, हाय विराट की पुत्री उत्तरा, जब विधवा-वेष में मेरे सामने आकर रुदन करेगी, तब मैं उसका दारुण संताप किस प्रकार सहन करूँगा?



हा, इस दोष का मैं ही प्रधान दोषी हूँ।

भीम—धर्मराज ?

युधिष्ठिर—मत कहो धर्मराज ! अब मैं धर्मराज नहीं हूँ, नीच हूं, नराधम हूं, नर-पिशाच हूं, नारकी हूँ, बालक की हत्या करने वाला अपराधी हूं, कलङ्की हूं। ऐसे राज्य पर, ऐसे राज्य के मुकुट पर, जो अपने पुत्रों का रक्त बहाकर प्राप्त किया जाय, धिक्कार है। जब युवराज ही नहीं तो राज्य से क्या सरोकार है ? बस, मैं अब इस भार को नहीं लूंगा। संसार में और रह कर भी क्या करूँगा ? बेटा, तुम सप्तरथियों द्वारा मरे हो, और मैं अपनी इस एक खड्ग द्वारा मरूँगा। हे स्वर्ग की पवित्र आत्माओ, तुम मेरे इस कलङ्की शरीर पर अब थूकना, और भीम, नकुल, सहदेव, तुम सब मेरी लाश को यहां से उठाकर अभिमन्यु की लाश के साथ एक ही चिता में फूंकना।

धन्वा चला, निषङ्ग चला, बाण भी चले।
जब प्राण का प्यारा चला, तो प्राण भी चले॥

(धनुष, बाण, तरकश फेंक कर आत्मघात करना चाहते हैं, भीम रोकता है)

भीम—ठहरिये। पहिले मेरी एक बात सुन लीजिये।

युधिष्ठिर—कहो।



भीम—धृतराष्ट्र के सौ पुत्र हैं ?

युधिष्ठिर—हैं।

भीम—उनमे एक दुर्योधन, दूसरा दुःशासन, शेष अट्ठानवे और हैं ?

युधिष्ठिर—हैं।

भीम—ये सब मिलकर सौ हुए ?

युधिष्ठिर—हुए।

भीम—इन सौ में से दुर्योधन और दुःशासन को निकाल दीजिये, क्योंकि मैंने द्रोपदी-चीर हरण के समय प्रतिज्ञा की है कि, दुर्योधन का रक्त पीऊँगा और दुःशासन के रक्त से द्रौपदी के बाल सींचूंगा।

युधिष्ठिर—अच्छा, निकाल दिया।

भीम—तो अब अट्ठानवे रहे ?

युधिष्ठिर—रहे।

भीम—बस, मैं आज आपके चरणों की सौगन्द खाकर, यह गदा छूकर, प्रतिज्ञा करता हूं कि अभिमन्यु के रक्त के बदले में इन अट्ठानवे धार्तराष्ट्रों का रक्त बहाऊँगा और अभिमन्यु की आत्मा को भेंट चढ़ाऊँगा।

दण्ड उसके रक्त का, बस पायँगे अट्ठानवे।
एक के बदले में मारे, जायँगे अट्ठानवे॥



युधिष्ठिर—फिर इससे क्या होगा? क्या अभिमन्यु जी जायगा?

भीम—नहीं, स्वर्ग में वह शान्ति पायगा। बस, अब कुछ नहीं सुहाता है। सर चकराता है। जब तक प्रतिज्ञा पूरी न हो भीम कहीं चैन पाता है? यह गदाधारी अब वहाँ जाता है।

युधिष्ठिर—भीम, कहाँ जाता है?

भीम—तुम पुत्र के शोक की अग्नि आँसुओं से बुझाओ और भीम रुधिर से बुझाता है।

(गया)

युधिष्ठिर—नकुल देख रहे हो! जाओ, भीम के पीछे पीछे जाओ। इसे समझा कर डेरे में ले जाओ।

(नकुल भी गया)

सहदेव—महाराज, मेरी तो यह प्रार्थना है आप भी डेरे चलिए, चलकर तनिक विश्राम लीजिए।

युधिष्ठिर—हा, जिसके हृदय ही नहीं है, उससे कहा जा रहा है हृदय थाम लीजिए!

मारग में आज अपने कांटे बिछे हुए हैं।
रग रग में आज अपनी आरे चुभे हुए हैं॥



(सामने देखकर) वह देखो, सामने देखो, अगर मेरी आँखें धोखा नहीं खा रही हैं तो देखो, अर्जुन आरहा है। सँभालो, मुझे चक्कर आ रहा है—

बिना पूछे लुटाया माल मैंने आज अर्जुन का।
भभकती आग में झोंका है मैंने लाल अर्जुन का॥

(युधिष्ठिर मूर्छित होना चाहते हैं। सहदेव रोकता है। श्रीकृष्णचन्द्र और अर्जुन आते हैं)

अर्जुन—सहदेव, सहदेव, महाराज की क्या दशा है ?

युधिष्ठिर—हा, अर्जुन तू मुझे मार डाल, अपनी खड्ग से मेरी जिह्वा काट डाल। मैंने आज तेरे पीछे बड़ा अपराध किया है। अपने ही हाथ से, अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार कर अपना विनाश किया है, अपना.........(फिर चिन्ताग्रस्त)

अर्जुन—महाराज, महाराज आज आपको क्या हो गया है ? ऐसा क्या सङ्कट आगया है ? भीम कहाँ है ? नकुल किधर गया है ? अभिमन्यु भी नहीं दिखाई देता है ? कारण क्या है ? सहदेव, सहदेव, बोलते नहीं, तुम्हारे मुख में भी ताला पड़ रहा है ?

युधिष्ठिर—बोलने का हमको अब अधिकार ही नहीं रहा है। हमने बड़ा अनर्थ किया है। तुम्हारे पीछे तुम्हारे प्राण को



सुभद्रा की उस इकलौती सन्तान को·········हाय, जुबान से निकलता भी नहीं·········मुख सूख गया, अभिमन्यु·········अभिमन्यु·········

अर्जुन—अभिमन्यु ! अभिमन्यु ? अभिमन्यु क्या मारा गया है।

सहदेव—हाँ, चक्रव्यूह तोड़ते समय कौरवों द्वारा संहारा गया है !

अर्जुन—उसने व्यूह तो तोड़ दिया ?

युधिष्ठिर—हां, व्यूह भी तोड़ा, सहस्रों योद्धाओं को भी पृथ्वी पर सुलाया, सप्त महारथियों को भी सात बार हराया। अन्त में दुष्ट कौरवों द्वारा धोखा खाया, और अपना प्राण······

अर्जुन—महाराज, जब उसने ऐसा पराक्रम दिखाया, तो उसका सोच ही क्या है ! उसने आपके और मेरे मस्तक को ऊँचा किया है। माता के दूध की लज्जा रक्खा है और अपना कर्त्तव्य-पालन किया है।

जो रण में लड़के मरते हैं सच्चे बस वही बहादुर हैं।
अभिमन्यू से लाखों बेटे इन चरणों पै न्योछावर हैं



श्रीकृष्ण—(स्वगत) आज हमारे दूर रहने पर यह बड़ा विषाद होगया है। अर्जुन इस समाचार को सुन रहा है और सहन कर रहा है। युधिष्ठिर को सान्त्वना देने के लिए अपने आँसुओं को आँखों ही में पी रहा है। यह आँसू अभी थोड़ी देर में उबलेंगे और मेरे रोकने पर भी कठिनता से रुकेंगे। देखिए क्या हो—

अभी से हो रहे हैं ढङ्ग क्या क्या।
विचार अपने,हुए हैं भङ्ग क्या क्या॥
हुई है मृत्यु यह, कुसमय में उसकी।
दिखायेगी न जाने, रङ्ग क्या क्या॥

युधिष्ठिर—अर्जुन, अब मुझे राज्य नहीं चाहिए। अपनी सन्तानों को और अपने भाइयों को नष्ट करके जो ऐश्वर्य चाहा जा रहा है, वह एश्वर्य नहीं चाहिए। तू जान और तेरा काम। मेरा तो संग्राम हो चुका। मैं तो संसार से उपराम होचुका। ज्वारी, राज्य का लोभी, बाल-हत्या का दोषी इत्यादि अनेक उपाधियों द्वारा बदनाम होचुका। और अब, इस जीवन का दौर भी (खञ्जर निकाल कर) तमाम हो चुका।

अर्जुन—(खञ्जर छीन कर) महाराज, क्या करते हैं? कौन कहता है आप ज्वारी हैं? आपको जो ज्वारी बतायें, वे



अत्याचारी हैं। राज्य के लोभी, बाल-हत्या के दोषी, आप नहीं, वे दुर्योधनादिक दुराचारी हैं। पुत्र का मरण शोचनीय नहीं, परन्तु भाई का और आप जैसे भाई का आत्मघात द्वारा विछोह होना असहनीय है:—

विश्व में धन मिल जाय बहुत, मिल जाय महापति की ठकुराई।
कोष मिले, व्यापार मिले, परिवार मिले, मिल जाय लुगाई॥
मित्र मिलें, और पुत्र मिलें, सेवक मिल जांय बड़े सुखदाई।
यह सब वस्तु, महान सुलभ, दुर्लभ है एक सहोदर भाई॥

सहदेव—निस्सन्देह, संसार में सभी कुछ मिल जाता है, परन्तु माँ-जाया भाई फिर हाथ नहीं आता है।

अर्जुन—इसीलिए तो मैं कहता हूँ। महाराज, यह सोच अब मिटाइए और भीम कहां हैं, यह बताइए?

युधिष्ठिर—वह भी इस दुःख से दुःखी है। और उसने अभिमन्यु की मृत्यु के बदले अट्ठानवे धार्तराष्ट्रों को मारने की प्रतिज्ञा की है। वह इस समय डेरे में व्यथित पड़ा हुआ है, और नकुल को मैंने उसकी सान्त्वना के लिए उसके पास छोड़ रक्खा है।



अर्जुन—अच्छा, यह जो हो रहा है अच्छा है (स्वगत) महाराज को शान्त करने के लिए अब तक मैंने अपने आँसुओं को रोका है, परन्तु हृदय अन्दर ही अन्दर पिघल चुका है। बड़ा जबर्दस्त घूंसा लगा है। युवा-पुरुष की मृत्यु का दुःख सब दुःखों से बड़ा है। हा, विधाता यह क्या है! हमारा भविष्य किस अन्धकार में छुपा है!

सहन करूँ अब किस तरह यह दारुण सन्ताप?
मर जाये बेटा तरुण, और न रोये बाप?

(युधिष्ठिर से) भाई साहब, पुत्र के मरने का मुझे ज्यों ज्यों शोक चढ़ रहा है, त्यों त्यों उन अन्यायियों पर क्रोध बढ़ रहा है।

श्रीकृष्ण—(स्वगत) भाव बदल रहा है, आंसू अब बाहर निकलने के लिए मार्ग टटोल रहा है, हाथ गाण्डीव को तोल रहा है, अभिमन्यु की मृत्यु का बदला अब अर्जुन के शिर पर बोल रहा है।

अर्जुन—(युधिष्ठिर से) कहिये, कहिये, किस दुराचारी ने यह दुराचार किया है? मेरे अभिमन्यु की मृत्यु का मुख्य कारण कौन हुआ है?



युधिष्ठिर—भाई, यह बताने में भी हमें लज्जा है। व्यूह के मुख्य द्वार पर जयद्रथ था। जब अभिमन्यु ने व्यूह में प्रवेश किया तब उस दुष्ट ने हमें रोक लिया। व्यूह में नहीं जाने दिया। भगवान् शङ्कर के प्रसाद से हम सब को परास्त किया।

अर्जुन—किसने? जयद्रथ ने?

युधिष्ठिर—हां, जयद्रथ ने। यदि जयद्रथ हमें न रोक लेता तो हम व्यूह में जाकर अभिमन्यु की अवश्य सहायता करते, यह निश्चय था। इस लिए उसकी मृत्यु का मुख्य कारण जयद्रथ ही हुआ।

अर्जुन—जयद्रथ?

युधिष्ठिर—हां, जयद्रथ।

अर्जुन—बस, मिल गया। तृषा का जल, स्वास्थ्य का पथ्य, यज्ञ की पूर्णाहुति का हव्य, इस गाण्डीव से निकलने वाले बाणों का लक्ष्य, मिल गया। (श्रीकृष्ण से) मधुसूदन तुम साक्षी हो। (ऊपर को देख कर) देवलोक, चन्द्रलोक, नागलोक, गन्धर्वलोक, किन्नरलोक, तुम सब गवाह हो। मैं इस समय वासुदेव के चरणों की सौगन्द खाकर, यह गाण्डीव उठाकर,


प्रतिज्ञा करता हूं कि, कल अवश्य उस दुराचारी जयद्रथ का शिर काटूंगा और अभिमन्यु की मृत्यु का बदला लूंगा।

श्रीकृष्ण—अर्जुन, अब मुझे भी कुछ कहना पड़ा।

अर्जुन—नहीं गोविन्द, इस समय इस प्रतिज्ञा के विरुद्ध तुम कुछ कहोगे तो मैं तुम्हारी भी नहीं सुनूँगा। मैं उसे मारूंगा और अवश्य मारूँगा। यदि नहीं मारूँ तो मातृ-हत्या, पितृ-हत्या, स्त्री-हत्या, पुत्र-हत्या, गुरु-हत्या, अथिति-हत्या, देव-हत्या, ब्रह्म-हत्या इन सब हत्याओं का मुझे पाप हो, और मर कर भी मेरी आत्मा को शान्ति न प्राप्त हो।

श्रीकृष्ण—सखे, जरा सोच समझ कर प्रतिज्ञा को मुख से निकालो।

अर्जुन—सब सोच चुका, गोपाल! इस समय तुम मेरे उत्साह मे विघ्न न डालो। मैं उस दुष्टात्मा को मारूंगा और फिर भी कहता हूँ अवश्य मारूँगा। चाहे सारा संसार उसकी सहायता को आजाय, चाहे सूर्य्य और चन्द्रमण्डल पृथ्वी पर उतर आय, चाहे समुद्र की लहरों का वेग आकाश पर पहुँच जाय, चाहे पृथ्वी डगमगाय, चाहे भगवान् शङ्कर का कैलाश



पर्वत टकराय, चाहे कौरवों का सारा दल बादल बन कर मेरे शीप पर छाय, परन्तु मैं उसे मारूंगा और सूर्य्यास्त के पहिले पहिले मारूँगा।

श्रीकृष्ण—और जो नहीं मारा ?

अर्जुन—तो सूर्य्यास्त होने के उपरान्त जीते जी चिता में भस्म हो जाऊँगा ! यह दूसरी प्रतिज्ञा है। और कुछ सुनने की इच्छा है ? बस, अब संसार में जयद्रथ नहीं होगा या अर्जुन की सदैव के वास्ते विदा है—

यही क्षत्रिय प्रतिज्ञा है, जो मिथ्या हो नहीं सकती।
जयद्रथ, अब कहीं पर, तेरी रक्षा हो नहीं सकती ॥

(अर्जुन क्रोध के आवेग में गाण्डीव पर बाण
चढ़ाता है। सब आश्चर्य्य से देखते हैं।
अगला पर्दा धीरे धीरे
गिरता है)





चौथा सीन

श्रीकृष्णचन्द्र का डेरा।



(श्रीकृष्णचन्द्र के सचिव दारुक का प्रवेश)

दारुक—

गायन



ज़माना रंग बदलता है।
रोज़ सुबह को दिन चढ़ता है शाम को ढलता है ॥
आज हुआ है जहां में कोई, शाहों का भी शाह।
कल को वह ही, कौड़ी कौड़ी को हो रहा तबाह ॥
बिगड़ कर कोई सँभलता है, ज़माना रंग बदलता है।
बड़े बड़े हो गये यहां पर, राजा रंक फ़क़ीर ॥
ख़ाली हाथों आये थे सब, ख़ाली गये अख़ीर।
वक्त टाले नहीं टलता है, ज़माना रंग बदलता है ॥



कितने ही पृथ्वी-पति बनकर, हो कर मालामाल।
अन्त समय में हाथ झाड़ते, गये काल के गाल॥
यहां वश किसका चलता है, ज़माना रंग बदलता है।
अच्छा और बुरा जैसा हो, रह जाता है नाम॥
इसी लिए दुनिया में नेकी कर लो "राधेश्याम"।
नहीं तो वक्त निकलता है! ज़माना रंग बदलता है॥



जयद्रथ के मारने की प्रतिज्ञा तो अर्जुन ने की है। और उस की चिन्ता जनार्दन को हो रही है। भक्तवत्सल भगवान् की यही लीला तो भक्तों को मुदित करती है और सन्तों को गद्‌गद् करती है।

इधर जब द्रौपदी रोती है, तो साड़ी बढ़ाते हैं।
उधर गज ने पुकारा है, तो नंगे पांव धाते हैं॥
कभी ब्रजधाम बहता है, तो गोवर्द्धन उठाते हैं।
कभी मैदान में आकर, महाभारत कराते हैं॥
नहीं वह देख सकते हैं कभी तकलीफ़ निज-जन की।
न कोई जान सकता है, अगम लीला जनार्दन की॥

(श्रीकृष्णचन्द्र का प्रवेश)



श्रीकृष्ण—दारुक, ज़रा योगमाया जी को बुला लाओ।

दारुक—जो आज्ञा।

(जाता है)

श्रीकृष्ण—(स्वगत) जैसा वेश बनाया जायगा, उसी के अनुसार लीला दिखानी होगी। भक्त ने जब प्रतिज्ञा करली है तो उसकी प्रतिज्ञा पूरी करानी होगी। यह सत्य है कि दुर्योधन कुटिल नीति में बड़ा समझदार है, वह जयद्रथ को सात पर्दों में छुपाने के लिए तैयार है। और जयद्रथ भी साधारण नहीं, बड़ा बलवान् है। फिर उसे भगवान् शङ्कर का वरदान है। उसको मारना साधारण नहीं बड़ा दुस्तर कार्य्य है। परन्तु क्या किया जाय, भक्त की प्रतिज्ञा के कारण, भक्त की जीवन रक्षा के कारण, यह शरीर लाचार है। और जिस प्रकार अपने जन की जय हो, अपना सेवक निर्भय हो, वही कार्य्य स्वीकार है—

कार्य्य तो क्या है, अगर, यह देह भी दरकार हो।
तो भी भक्तों के लिए, मुझको नहीं इनकार हो॥

(योगमाया का आना)

योगमाया—भगवान्, प्रणाम।

श्रीकृष्ण—आओ।

योगमाया—क्या आज्ञा है?



श्रीकृष्ण—अर्जुन की प्रतिज्ञा है कि कल सूर्य्यास्त से पहिले वह जयद्रथ को मारेगा। यदि ऐसा नहीं हुआ तो दिन मुंदते ही चिता में शरीर को भस्म कर देगा। अब क्या उपाय करना चाहिए ?

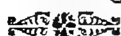
योगमाया—भक्त की जिस प्रकार बात बनी रहे, वही व्यवसाय करना चाहिए।

श्रीकृष्ण—हाँ, वही राय करनी चाहिए। देखो, कल सूर्य्य पर माया का बादल आच्छादित हो, और कुछ दिन रहते हुए ही सूर्य्य का अस्त हो जाना विदित हो। क्योंकि यह मानी हुई बात है कि जब तक दिन रहेगा जयद्रथ छुपा रहेगा। न लड़ेगा न अर्जुन की आँखों के आगे पड़ेगा। क्यों ठीक है न ?

योगमाया—ठीक है।

श्रीकृष्ण—और जब माया का सायङ्काल हो जायगा, उस समय अर्जुन अपनी पहिली प्रतिज्ञा नष्ट समझ कर दूसरी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए चिता बनायेगा। उस समय जयद्रथ अर्जुन को चिढ़ाने के लिए वहां अवश्य आयेगा।

योगमाया—क्योंकि वह समझेगा अर्जुन अब मुझे मारने का अधिकारी नहीं, अपने शरीर को भस्म कर देने का अधिकारी है।



श्रीकृष्ण—ठीक। यही तो हमने विचारा है। अच्छा, जब जयद्रथ आय और अर्जुन को चिढ़ाय, उसी समय हमारे संकेत पर माया का बादल फट जाय और सूर्य्य प्रकट हो जाय। बसः—

सभी उस मूर्ती के सामने, वह मूर्ती होगी।
तभी अर्जुन के हाथों से, प्रतिज्ञा-पूर्ती होगी॥

योगमाया—धन्य!

इस प्रकार हो जायगा, भक्त का भी उद्धार।
और उतर भी जायगा, पृथ्वी का कुछ भार॥

श्रीकृष्ण—अच्छा, अब विलम्ब वृथा है। जाओ, जो हमने समझाया है, उसे काम में लाओ।

योगमाया—जो आज्ञा।

(जाना चाहती है)

श्रीकृष्ण—और सुनो (योगमाया ठहर जाती है) एक बात तो हम कहना ही भूल गये!

योगमाया—वह क्या?

श्रीकृष्ण—जयद्रथ-जिस बाण से मारा जायगा, वह बाण भगवान् शङ्कर के पास है। उसको लाने के लिए, अर्जुन के साथ हमें कैलाश जाना होगा, यह काम सब से पहिला और खास है।



योगमाया—तो आप इस काम में देर न कीजिए। जब तक आप कैलाश से यहां न आजायेंगे तब तक समस्त संसार पर मेरी माया का प्रभाव रहेगा। सबकी आंखों में निद्रा भरी रहेगी। दिन नहीं निकलेगा, रात्रि ही रहेगी। जब आप वह बाण लेकर आजायेंगे, तभी उदयाचल से भगवान् भास्कर भी उदय हो जायेंगे।

श्रीकृष्ण—ठीक है। बस अब कुछ कहना नहीं बाकी है।

योगमाया—तो दासी जाती है—

गायन



अहो, गिरिधर नटवर प्यारे, जय जय जसुधा के दुलारे!
यह सकल विश्व है, सहारे तुम्हारे॥
भक्त-जनों के पालनवारे, दुष्ट-खलों के मारनवारे!
कैसे वरणूं? तेरी अपार शक्ती, प्यारे! अहो०॥

(भगवान् को परिक्रमा और प्रणाम करने के पश्चात् योगमाया का प्रस्थान)



श्रीकृष्ण—(स्वगत) अब यह काम है कि अर्जुन को यहाँ बुलवाया जाय और कैलाश पर चलने का कार्य-क्रम बनाया जाय। (प्रकट) दारुक।

दारुक—(प्रवेश करके) भगवन्

श्रीकृष्ण—जाओ, अगर ला सको तो अर्जुन को भी यहाँ बुला लाओ। (सामने देखकर) परन्तु ठहरो, किञ्चित् ठहरो, मैं देखता हूँ वह अर्जुन ही आ रहा है। वह ही आ रहा है। परन्तु उसकी यह कैसी दशा है?

(दारुक चला जाता है। अर्जुन पुत्र-शोक और प्रतिज्ञा के जोश में पागलों की भाँति आता है)

अर्जुन—कहाँ है! कहाँ है! मेरा रत्न, मेरा कमल, मेरा प्राण, मेरा हृदय, कहाँ है। शान्त हो बेटा, शान्त हो, जिसमें तेरी आत्मा को शान्ति होगी मैं वही करूँगा। ऋणी हूं, मैं तेरा ऋणी हूं, तेरी आत्मा का ऋणी हूं, तेरी कर्त्तव्यपरता का ऋणी हूं। जब तक यह ऋण नहीं चुका दूंगा शयन नहीं करूँगा, भोजन नहीं करूँगा, दूसरे वस्त्र धारण नहीं करूँगा। तुझे जब प्रसन्न करलूंगा, तेरी आत्मा को जब शान्त करलूंगा, तब और कुछ कार्य्य करूँगा।



वह है,तेरी शान्ति का अनुष्ठान वह है। पत्थर पर मारकर हीरे के टुकड़े टुकड़े कर देने वाला हाथ–वह है। पुष्प की पखुरी पखुरी झुलसा कर उसको जला देने वाला ग्रीष्मकाल वह है। वीर अभिमन्यु से अर्जुन को सदैव के लिए पृथक् कर देने वाला दुष्ट जयद्रथ वह है।

नीच! खूनी! पापी! हत्यारे! कुलाङ्गार! ठहर जा, कहाँ जाता है! मेरी प्रतिज्ञा तेरे लिये यम-पाश है। मेरे हाथ तेरे लिए यमदूत हैं। मेरे वाण तेरे लिये यम-लोक हैः—

जो तू वैताल है तो, मन्त्र के वल से मैं कीलूंगा।
अगर तू सिन्धु है तो मैं, अगस्त होकर के लीलूंगा॥
तेरी मैं खाल खींचूंगा, तेरे मैं वाल छीलूंगा।
जो मैं अर्जुन,हूं तो, वाणों से तेरा खून पीलूंगा॥
पुकारी वाल-हत्या वैठ कर अव तेरे प्राणों में।
खिची है काल की विकराल सूरत, मेरे वाणों में॥

श्रीकृष्ण—अर्जुन! अर्जुन!

अर्जुन–कौन मेरा नाम ले लेकर मुझे पुकार रहा है? मेरे कान जयद्रथ को छोड़कर और किसी की आवाज़ अव नहीं सुनना चाहते। मेरे नेत्र जयद्रथ के अतिरिक्त आज और किसी को देखना नहीं चाहते। मेरी देह जयद्रथ के सिवाय



और किसी से इस समय स्पर्श करना नहीं चाहती। मेरी ज़ुवान जयद्रथ को त्याग कर और किसी से अब बोलना नहीं चाहती। पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, दांयें, बांयें, ऊपर, नीचे मेरी आंखें एक ही मूर्ति को देख रही हैं। और वह मूर्ति उसी हत्यारे की मूर्ति है, जिसने मेरे रक्त को, मेरे अंश को, मेरे कृत्य को, मेरे एकमात्र वीर पुत्र का भक्षण किया है। अरे राक्षस, अरे निशाचर, सावधान होः—

नहीं आँधी है यह, आकाश पर यह धूरि चढ़ती है।
रुधिर की हड्डियों की मेघ से धारा बरसती है॥
गिरो, नीचे को अङ्गारो, यहीं हत्या वो रहती है।
पहाड़ो ! चूर होजाओ, वो देखो, भूमि डिगती है॥
यही है वो, यही है वो, इसी ने उसको मारा है।
उठा लो, नारकी कीड़ो ! यही भोजन तुम्हारा है॥

श्रीकृष्ण—अर्जुन ! सावधान हो।

अर्जुन—(कुछ होश में आकर) फिर वही ध्वनि ! फिर कोई कह रहा है, 'सावधान हो, !' सावधान हूं। अपनी प्रतिज्ञा पर सावधान हूं। अपने पुत्र की हत्या का बदला लेने की इच्छा पर सावधान हूं। अपने वाण और अपने धन्वा पर सावधान हूं। जयद्रथ ! जयद्रथ ! तू भी सँभल जा, मैं अपनी प्रत्यञ्चा पर सावधान हूंः—



हनूं सूर्यास्त के पहले यही उन्माद सर में है।
जयद्रथ ! ओ जयद्रथ ! बस तुही मेरी नजर में है॥

श्रीकृष्ण—जयद्रथ को सूर्यास्त के पहले मारने की प्रतिज्ञा करने वाले, इधर देख।

अर्जुन–(अब भगवान् श्रीकृष्णचंद्र को देखता है) देख रहा हूं। गोपाल खड़े हैं। गोपाल बोल रहे हैं। परन्तु यह ध्वनि उस प्रकार मेरे कर्णदेश मे आती है, जिस प्रकार किसी स्वप्न देखने वाले के कान में जाग्रत अवस्था वाले की आवाज आती है। मधुसूदन, तुम्हें वह परीक्षा का दिन याद है, जब आचार्य्य ने हम सब शिष्यों को एक चिड़िया के मस्तक पर बाण का लक्ष्य करने के लिए कहा था ? उस समय बाण चलाने के पहले सब ने देखा था चिड़िया को और मैंने देखा था केवल चिड़िया के मस्तक को। उसी प्रकार आज मेरी दृष्टि के आगे समस्त कौरव-दल में एक जयद्रथ है। जयद्रथ भी नहीं, जयद्रथ का माथ है।

श्रीकृष्ण—तो फिर उसका कुछ प्रयत्न भी सोचा है ?

अर्जुन—वह सब तुम्हारे हाथ है। जब यदुनाथ का साथ है, तो अवश्य अर्जुन का बाण और जयद्रथ का माथ है–

यही बात बस सर्व सिद्ध है, इसी पै अर्जुन भी निर्भय है।
जिधर धर्म्म है, उधर कृष्ण हैं, जिधर कृष्ण हैं, उधर विजय है॥



श्रीकृष्ण—(स्वगत) अब आया राह पर। (प्रकट) अच्छा तो हमारी बात मानोगे ?

अर्जुन—अवश्य।

श्रीकृष्ण—तो चलो हमारे साथ।

अर्जुन—कहाँ ?

श्रीकृष्ण—कैलाश।

अर्जुन—कारण ?

श्रीकृष्ण—कारण रास्ते में समझायेंगे। बस अब विलम्ब करो, चले ही चलो।

अर्जुन—क्या रथ पर ?

श्रीकृष्ण—नहीं। हमारे गरुड़ वाहन पर।

(स्मरण करते ही गरुड़ प्रकट होता है भगवान् अर्जुन सहित गरुड़ासीन होते हैं)

(स्वगत)–हो जिस में अर्थ भक्तों का, वही स्वारथ हमारा है।
(प्रकट)–तुम्हारा ही गरुड़ है और, गरुड़ध्वज तुम्हारा है॥

(प्रस्थान)

—०—





कैलास

(योगिनी आदि)

गायन

हर हर हर, हम गाती हैं।
खून जगत का पीती हैं हम, मांस नरों का खाती हैं।
चामुण्डा, योगिनी, भैरवी, कप्पाली कहलाती हैं॥
हैं हम महाप्रलय की देवी, सब जग को खा जाती हैं।
खींच खींच वीरों की लोथें, खप्पर भर भर लाती हैं॥
नाथ हमारे भूतनाथ हैं, उनको भोग लगाती हैं।
मुण्डों की मालायें बनायें, खोपड़ियों की खड़तालें॥



तब हम नाच कर गायें, "जय बमभोला की" ।

कहो सब 'जय बमभोला की' कहो सब जय बमभोला की ॥

हर हर हर, हम गाती हैं ।

(प्रस्थान)

(भगवान् श्रीकृष्णचंद्र और अर्जुन का प्रवेश)

अर्जुन-कैलास पर तो आगये, अब शङ्कर के दर्शन किस प्रकार होंगे ?

श्रीकृष्ण—प्रेम की बड़ी महिमा है । भक्त लोग जब सच्चे प्रेम से उन्हें टेरेंगे तो वे भक्तों को परमानन्द देने वाले, कैलास पर रहने वाले, भोले भाले, आप ही प्रकट होंगे । गाओ, गाओ, कोई अच्छी सी स्तुति प्रेम-पूर्वक गाओ ।

गायन

श्रीकृष्णार्जुन--

प्रफुल्लनीलपङ्कजप्रपञ्चकालिमप्रभा—

वलम्बिकण्ठकन्दलीरुचिप्रबद्धकन्धरम् ।

स्मरच्छिदं पुरच्छिदं भवच्छिदं मखच्छिदम्,

गजच्छिदान्धकच्छिदं तमन्तकच्छिदं भजे ॥



अखर्वसर्वमंगला कलाकदम्बमञ्जरी,
रसप्रवाहमाधुरी विजृम्भणामधुव्रतम्।
स्मरान्तकं पुरान्तकं भवान्तकं मखान्तकम्,
गजान्तकान्धकान्तकं तमन्तकान्तकं भजे॥



श्रीकृष्ण—

प्रभुं प्राणनाथं विभुं विश्वनाथं जगन्नाथनाथं सदानन्दभाजम्।
भवद्भव्यभूतेश्वरं भूतनाथं शिवं शङ्करं शम्भुमीशानमीडे॥
शरच्चन्द्रगात्रं गुणानंदपात्रं त्रिनेत्रं पवित्रं धनेशस्य मित्रम्।
अपर्णाकलत्रं चरित्रं विचित्रं शिवं शङ्करं शम्भुमीशानमीडे॥

(भगवान् शंकर का प्रकट होना)

शङ्कर—अहोभाग्य, आज यह पथरीला कैलाश गोलोक से भी सुन्दर है। आज यह हिमालय का मानसरोवर क्षीरसागर से मनोहर है। आज इस योगी की कुटिया राज-महल से भी बढ़कर है। यह स्थान धन्य है, जहाँ आज त्रिलोकीनाथ आये। आज इन नेत्रों ने नर-नारायण के दर्शन एक साथ पाये।

जिनका अवलोकन वाल-चरित,
हम भिक्षुक बन कर नन्द के धाये।

जिन गोपीनाथ के दर्शन को,
हम गोपी हो नाचें और गायें ॥
वह ही ब्रजराज कृपा करके।
यहाँ आप ही आप चले आये ॥
यह रूप है या कोई सागर है,
जो तैरत तैरत नैन थकाये ?

श्रीकृष्ण—धन्य !

जिनकी गोदी हम खेल किये, जो विश्व को खेल खिलाते हैं।
जो नाथ हैं गोपीनाथ के भी, गोपेश्वरनाथ कहाते हैं ॥
वे आज हमें-ऐसा कह कर-लज्जित किस लिए बनाते हैं।
यह शब्द हैं ? या हैं महावाक्य, जो भक्त का मान बढ़ाते हैं ॥

शङ्कर-केशव, तुम जो कहो वह सब तुम्हें शोभा देता है। जिसके भृकुटि-विलास में विश्व निर्म्माण और लय होता है, जो संसार रूपी नाट्यशाला में पर्दों के भीतर छिपा हुआ अपना खेल करता है, जो कर्त्ता है और अकर्त्ता भी है, उस की लीला को कौन जान सकता है ? कहो यह मानव-लीला कब तक संवरण करोगे ? और अपने गोलोक वासियों को कब दर्शन दोगे ? वह समय कब होगा जब मैं तुम्हें तुम्हारे मुख्यरूप में अष्टप्रहर देखूंगा और 'हरि, हरि' कह कर तुम्हारे आगे नृत्य करूँगा ?



श्रीकृष्ण—आज आप अज्ञान होकर यह क्या कह रहे हैं? आप तो क्षण क्षण की बात पहचानते हैं। भूत,' भविष्य, वर्त्तमान तीनों काल की गति जानते हैं। महाभारत के युद्ध समाप्त होने पर न यह शरीर रहेगा न यादव। न कौरव रहेंगे न पाण्डव। 'भारत' के जगमगाते हुए सूर्य्य का प्रकाश घट जायगा। युग पलट जायगा।

शङ्कर—हरि, हरि, इतना कार्य्य करने के लिए तो अभी बहुत समय चाहिए। अच्छा तब तक इसी "मुरलीमनोहर" के वेष में ही रहो। मुझे आपका यह रूप भी बड़ा प्यारा मालूम होता है—

मेरे हृदय से पूछो, अपने मुकुट की शोभा।
मुरली की, पीत पट की, और इस लकुट की शोभा॥

श्रीकृष्ण—धन्य, धन्य।

शङ्कर—

ब्रज के माखन चोर हो, मेरे हो चित्त-चोर।
इन नयनन में देखिये, उन नयनन की कोर॥

अर्जुन—(स्वगत) यह क्या बातें हो रही हैं! जिनका शब्द तो मेरे कानों में आता है, परन्तु अर्थ नहीं समझ में आता है।



शङ्कर—कहिए, आज अचानक पधारने का और अपने सखा अर्जुन को भी साथ लाने का कारण क्या है ? इस दूर देशस्थ मौनी शुभचिन्तक के लिए क्या आज्ञा है ?

अर्जुन—(स्वगत) अब तो कुछ कुछ समझ में आरहा है।

श्रीकृष्ण—कौरव-पाण्डवों में युद्ध हो रहा है। आज कौरवों ने अन्याय पूर्वक अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु को मारा है। जिसके शोक में कल सूर्य्यास्त के पहिले जयद्रथ का शीश काटने का प्रण आपके सेवक अर्जुन ने करडाला है। इस कारण जयद्रथ को मार कर यह अपनी प्रतिज्ञा का पालन करे, ऐसा इसे वरदान दीजिए और जयद्रथ जिस बाण से मारा जा सकता है, वह बाण प्रयोग-संहार-मन्त्र सहित प्रदान कीजिए।

शङ्कर—हरि, हरि, यह कौनसा बड़ा कार्य्य है ? मैंने तो अर्जुन को प्रथम ही समझा दिया था। यदि यह स्मरण करता तो मेरा पाशुपत इसके पास वहीं पहुँचता। इस तनकसी बात पर इसे भी और आपको भी यहाँ तक आना पड़ा। व्यर्थ कष्ट उठाना पड़ा।

श्रीकृष्ण—इसमें कष्ट ही क्या है ? यह तो हमें बड़ा शुभ अवसर मिला है, जो इस बहाने आपका दर्शन हुआ है।

शङ्कर—नहीं, यह मेरा भाग्योदय हुआ है, जो इस हेतु आपका आगमन हुआ है। जिस व्रजराज का अष्टप्रहर हृदय



में निवास रहता था आज उससे साक्षात् मिलन हुआ है। (अर्जुन से) अच्छा अर्जुन, वासुदेव के कृपापात्र अर्जुन, हमारे स्नेहपात्र अर्जुन, आगे आओ। मन-सयोग पूर्वक मौर्वी आकर्षण करो। पादस्थान प्रभृति अवलोकन करो। धन्वा धारण करो और हमारे मुख से निकला हुआ मन्त्र ग्रहण करो।

(अर्जुन वह सब क्रियायें करता है)

पात्र ठीक है। पाशुपत आओ। (बाण का प्रकट होना, शंकर का अर्जुन से कहना:) लो, आशीर्वाद के साथ इसे मस्तक पर चढ़ाओ और युद्ध मे जाकर जयद्रथ पर जय पाओ। (बाण देना) परन्तु देखना, जयद्रथ का मस्तक कट कर पृथ्वी पर न गिरने पाये, कटने के साथ ही उड़ जाये. ऐसा लक्ष्य करना (श्रीकृष्ण से) द्वारकानाथ, तुम वृद्धक्षत्र वाली बात याद रखना।

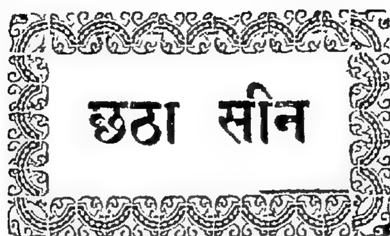
श्रीकृष्ण--याद है--

शङ्कर--तो बस, अर्जुन तेरी जय हो, यह हमारा आशीर्वाद है।

कहाँ है हार उस जन की, सखा जिसका दयामय हो।
इसी से हम यह कहते हैं, धनञ्जय तू भी निर्भय हो॥
तेरी युक्ती तेरी शक्ती, तेरी पदवी भी अतिशय हो।
जनार्दन के सुजन अर्जुन, तेरी इस युद्ध में जय हो॥

(अर्जुन प्रणाम करता है, शंकर शीश पर हाथ रखते हैं, अगला पर्दा गिरता है)





छठा सीन

गल्प ।

जङ्गल का पर्दा ।

(सुन्दरी का सिपाही के वेष में प्रवेश)



सुन्दरी—मेरे बहादुर बालम रोज़ अपनी बहादुरी बखाना करते हैं, दूनकी हाँका करते हैं। मैं जानती हूं कि वह गरजने वाले बादल हैं, बरसने वाले नहीं। फिर भी आज मैंने उनकी परीक्षा की ठानी है। और कुछ नहीं तो ठठोली ही सही, दिल्लगी ही सही।

इसी लिये मैंने आज सिपाही का वेष बनाया है। या यूं कहिये झूठी बहादुरी की डींग मारने वाले मरदुओं को लज्जित करने के लिए इन चूड़ी वाले हाथों ने आज शस्त्र उठाया है।



(सामने देख कर) अहा ! सामने से वही आरहे हैं। अब ज़रा छिपकर इनकी लीला देखना चाहिए तब प्रकट होना चाहिए।

(सुन्दरी का एक ओर को छुप जाना
और राजाबहादुर का अपनी
शेख़ी बघारते हुए आना)

राजा०—(तलवार लिए हुए) यह मारा, वह मारा, इसे मारा, उसे मारा, कब मारा ? कहाँ मारा ? किसे मारा ? तारीफ़ तो यही है।

दुनियाँ में कई तरह के बहादुर होते हैं। एक वह हैं जो हथियार से लड़ते हैं, दूसरे वह हैं जो क़लम से लड़ते हैं, तीसरे वह हैं जो ज़ुबान से लड़ते हैं। कोई हम से पूछे इन में कौन सा बहादुर बढ़िया है, तो हम यही कहेंगे-ज़ुबान से लड़ने वाला सब से बढ़िया है। उस से कम क़लम वाला है और हथियार वाला तो सब से घटिया है। तलवार का ज़ख्मी किसी औषधालय में जाकर अच्छा हो सकता है, परन्तु बात के मारे हुए का कहीं इलाज नहीं। इसी लिए बातों वाला बहादुर बढ़िया कहाता है। यह बातों ही की तो बर्कत है कि हम, जिनके बाप नोंन तेल बेचा करते थे-एक दम 'राजाबहादुर' होगये। और अभी न जाने क्या क्या होंगे।



यह हमारा मुख नहीं है, तरकश है। शब्द नहीं है, बाण है। खुशामद की कमान पर जिस समय हम 'हुजूर' 'सरकार' 'माई-बाप''अन्न-दाता' आदि बाणों का प्रयोग करते हैं, तो बड़े बड़े तीरन्दाज़ नीचे पड़ जाते हैं--

पत्थर को मोम करने का, यह ही मसाला है।
यूं कह दिया 'सरकार का, बस बोलबाला है'॥
कैसा यह मन्त्र जोरो ग़ज़ब का निकाला है।
कह के 'हुजूर'! कर दिया, गड़बड़ घुटाला है॥

सुन्दरी—(अन्तरिक्ष) बोल श्रीधर्मराज की जय।

राजा०—(घबराकर) हैं! यह कौन धर्मराज की जय बोल रहा है? शायद कोई पाण्डव दल का सिपाही है। बस अब राजाबहादुर की तबाही है! (कांपता है)

सुन्दरी—(अन्तरिक्ष में) बोल श्रीधर्मराज की जय।

राजा०—(बहुत घबराकर) अरे बाप रे! यह तो सर पर ही आपहुँचा। अब क्या करना चाहिए? इस समय अपनी दूसरी धुर्पद अलापना चाहिए, गीदड़ भवकी दिखाना चाहिए। (ज़ोर से) अरे यह कौन नीच, निर्लज्ज, दुराचारी, पापी, सन्निपात की बीमारी वाले की तरह चिल्ला रहा है? यूं नहीं कहता कि राजाधिराज सुयोधन महाराज की जय?



सुन्दरी—[प्रकट होकर) अब सारा संसार एक स्वर से धर्म्मराज की जय बोल रहा है। अधर्मी दुर्योधन की जय जिस की वाणी में है, उसके लिए यह बाण की नोक है।

(डराती है)

राजा०—ओ भाई! ओ भाई। जरा अपनी इस वाणगङ्गा का मुख उधर ही रख और यह बता कि तेरा इरादा क्या है?

सुन्दरी—इरादा? अधर्मियों को मार कर धर्म्म का राज्य स्थापन करना और धर्म्मराज की जय बोलना। बोल, वैरी के पक्षपाती! न्याय के घाती! धर्म्मराज की जय बोल। नहीं तो (फिर डराकर) शर चढ़ा और सर उड़ा।

राजा०—अरे रे रे, ठहर तो सही। तुझे अपने एक बाण पर ही इतना गर्व है! तू यह नहीं जानता, हमारे शस्त्रागार में कितने शस्त्र हैं?

सुन्दरी—कितने शस्त्र हैं?

राजा०—अनेकों।

सुन्दरी—जैसे-

राजा०—

तोमर, मुग्दर, परशा, फाँसा, बर्छी, बिछुआ, तीर, गंडासा।
छुरियां, चक्र, त्रिशूल, कटार, खाँड़ा, बल्लम और तलवार॥



सुन्दरी—बस इतने ही ?

राजा०—वाह ! इतने ही कैसे—

धींगामुश्ती लट्ठमलट्ठा, ऐंचातानी, कुश्तमकुश्ता।
सब शस्त्रों का जो सरदार, उसका नाम है 'जी सरकार' ?

सुन्दरी—'जी सरकार' ? इस शस्त्र का नाम तो हमने आज ही सुना।

राजा०—सुनते कैसे ? यह कुछ मामूली सिपाहियों के लिए थोड़े ही है। यह तो "राजा बहादुर" को ही शोभा देता है।

सुन्दरी—अच्छा, जब इतने शास्त्र तुम्हारे पास हैं, तो उन से तुम इस महा संग्राम में काम क्यों नहीं लेते ?

राजा०—यह संग्राम, इतना बड़ा संग्राम नहीं है जो हम अपने शस्त्रागार के सस्त्रों को तकलीफ़ दें।

सुन्दरी—अरे पाखण्डी, अब हमने जान लिया तू बातें मारना ही जानता है, लड़ना नहीं जानता।

राजा०—नहीं जानता तो मत लड़ो। तुम से लड़ता ही कौन है !

सुन्दरी—अरे, यह क्या कहा ?

राजा०—ठीक कहा। तुमने हमारा अपमान किया, हमें पाखण्डी बता दिया। अब हम तुम से क्या लड़ें !



सुन्दरी—तो इससे क्या हुआ, अपमान का बदला लेना तो जरूरी है।

राजा०—मगर कोई बराबर वाला हो तब न ? तुम जैसे मामूली सिपाही से क्या लड़ें। जाओ, हम तुम को छोड़े देते हैं।

सुन्दरी—तुम चाहे मत लड़ो पर हम तो तुम से लड़ेंगे।

राजा०—जबर्दस्ती ? बिना हमारी मर्जी !

सुन्दरी-मर्जी ? मर्जी वर्जी कैसी ? मर्जी नामर्जी का जिक्र प्रेम के मन्दिर में हुआ करता है, युद्ध की भूमि में नहीं।

राजा०—तो राजा बहादुर की मर्जी दोनों जगह चलती है।

सुन्दरी-अच्छा (बाण धनुष पर चढ़ाकर), अब संभल जाओ।

राजा०—यहां इच्छा है तो (आस्तीन चढ़ाकर) आजाओ। (कुछ ठहर कर) लेकिन एक शर्त है।

सुन्दरी—वह क्या ?

राजा०—देखो, तुम युद्ध में मारे गये तब तो हमें कुछ कहना ही नहीं है, परन्तु हम मारे जायँ तो हमारी लाश उठवाना मत, गड़वाना मत, जलवाना मत।

सुन्दरी—क्यों ?



राजा०—यूं कि जब हम मर जायँगे तो हमारी स्त्री सती होने के लिए आयगी, उस वक्त हम उसे गले लगायँगे।

सुन्दरी—मर जाने के बाद !

राजा०—तारीफ़ तो यही है। हम मर जांयगे, शरीर थोड़े ही मर जायगा !

सुन्दरी—(स्वगत) ओ हो, यह तो वेदान्त भी जानता है। (प्रकट) अजी सूबेदार साहब, यह आपने वेदान्त कहाँ से सीखा है ?

राजा०—यह तो हमारा पुश्तैनी खजाना है। आज कल जो बड़े बड़े वेदान्ती नजर आते हैं, यह सब हमारे ही ख़ज़ाने के चोर कहलाते हैं।

सुन्दरी—अच्छा तो वेदान्ती महाशय, हम आपसे कुछ प्रश्न करेंगे।

राजा०—करिये।

सुन्दरी—यह संसार किसमें है ?

राजा०—हम में।

सुन्दरी—जीव कौन है ?

राजा०—हम।

सुन्दरी—ब्रह्म कौन है ?



राजा०—हम।

सुन्दरी—सब तुम्हीं तुम हो ?

राजा०—हां, हमीं हम हैं। "एक ब्रह्म द्वितीयो नास्ति" यही तो सब से ऊँचा वेदान्त है।

सुन्दरी—अच्छा, वेदान्ती महाशय, जब तुम्हीं तुम हो तो बोल किससे रहे हो ?

राजा०—किसी से भी नहीं।

सुन्दरी—अच्छा तो लो (बाण मारना चाहती है)

राजा०—यह क्या कर रहे हो ?

सुन्दरी—बाण मार रहे हैं।

राजा०—किस के ?

सुन्दरी—किसी के भी नहीं।

राजा०—अरे वाह, मार तो रहे हो हमारे और कहते हो-किसी के भी नहीं।

सुन्दरी—तुम भी तो बोल रहे हो हमसे और कहते हो किसी से भी नहीं।

राजा०—ऊँह, हाथी के खाने के दांत और होते हैं दिखाने के और



सुन्दरी—तब तू सच्चा वेदान्ती नहीं है। वेदान्त जैसे जटिल विषय को कलंकित करने वाला है। काले अक्षर को भैंस की बराबर समझने वाले बकवादी, तू इस विद्या के महत्त्व को क्या जान सकता है? इस आनन्द का खज़ाञ्ची वह है, जो ब्रह्मवेत्ता हो, संस्कृत जानता हो।

राजा०—तुमने यह कैसे जान लिया कि हम संस्कृत नहीं पढ़े हैं?

सुन्दरी—तुम्हारी बातों से।

राजा०—तो हम अभी अपनी शास्त्रीय बातें तुमसे बोले ही कहाँ हैं?

सुन्दरी—बोलते तो तब, जब जानते।

राजा०—अच्छा सुनो, जैसे भक्तों की प्रार्थना पर भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं, वैसे ही हम तुम से प्रसन्न होकर अब अपनी वेद-वाणी तुम्हें सुनाते हैं।

सुन्दरी—सुनाओ।

राजा०—

अग्निमकुण्डम्, पृथ्वीदानम्, गड्वम्, शड्वम्, मशम् भशा।
एकम्, दोकम्, तिसपर सर्वम्, करमम्, धरमम्, सफम् सफा॥



सुन्दरी—यह संस्कृत है ?

राजा०—संस्कृत नहीं तो क्या है ?

सुन्दरी—अच्छा इसका अर्थ तो बोलो।

राजा०—अर्थ ? अर्थ कुछ भी नहीं, तारीफ तो यही है।

सुन्दरी—अच्छा, अब हमने यह भी जान लिया कि जिस प्रकार तुम बहादुरी के नाम को लज्जित करने वाले हो, उसी प्रकार देव-वाणी को भी कलंङ्कित करने वाले हो। (थाप से डराकर) अच्छा ठहर आओ।

राजा०-(स्वगत) अब गीदड़ भबकी के स्तोत्र की इति श्री हो गई। लिहाजा अब अपने पुश्तैनी मन्त्र को याद करना चाहिए। ऐ मेरे बाप दादा की मीठी बोली, ऐ मेरे उस्ताद की सिखाई हुई 'जी हुजूर' वाली तालीम, ऐ मुझे सिपाही से राजा-बहादुर बनाने वाली खुशामद, अब तूही मेरी मदद कर। (प्रकट) अजी रणवीरसिंह साहब, भगवान् आप को जीता रक्खे, मर्तबा दिन दूना रात चौगुना हो, दूधों नहाओ, पूतों फलो, अटल भण्डार रहे, बोल वाले हों, मैं तो आपसे हंस रहा था। वाक़ई आप अपने जमाने के यकता हैं और आप क्या, आपके वालिद बुजुर्गवार भी-अहा हा हा, बस अपना जवाब नहीं रखते थे। क्यों न हो, आप का यह खानदानी जर्फ है।



सुन्दरी—नहीं, नहीं, यह सब.........

राजा०—वही तो वही तो साहब, आपकी दिलावरी के डंके जिमी से लेकर सातवें आस्मान तक बज रहे हैं। आफ़रीं! सद आफ़रीं !!

सुन्दरी—(हँस कर) अच्छा जाओ, अब हम तुम्हें छोड़े देते हैं।

राजा०—(स्वगत) वह मारा। तारीफ़ तो यही है।

सुन्दरी—लेकिन एक बात है। इस शर्त पर छोड़ते हैं कि तुम आज से दुर्योधन का पक्ष छोड़ कर धर्मराज की ओर आ जाओ और धर्मराज की जय सुनाओ!

गायन



बोलो श्रीकृष्णचन्द्र की जय, बोलो श्रीधर्म्मराज की जय।
कौरव सारे हठधर्मी हैं उनका होवे क्षय।
धर्म्मवान् पाण्डव हैं तब, क्यों करें किसी का भय॥
बोलो श्रीकृष्णचन्द्र की जय, बोलो श्रीधर्म्मराज की जय।
कौरवकुल का नाश होयगा, इसमें नहीं संशय।
धर्मराज हैं धर्म्मनिष्ठ, जय पायेंगे निश्चय॥





राजा०-" जय " उनकी भी " जय " और आपकी भी " जय " ।

सुन्दरी—अच्छा, अब मैं तुम्हारे साथ नहीं लड़ूंगा। लेकिन एक बात है, तुम्हारी मेरी जोड़ी ठीक है, इसलिये साथ नहीं छोड़ूंगा।

राजा०—अजी सरकार, मैं ग़रीब आदमी, आपकी जानो माल को दुआ देने वाला मेरा आपका कैसा साथ ?

सुन्दरी—तुम ग़रीब आदमी हो इसका प्रमाण ?

राजा०-प्रमाण ? प्रमाण कुछ भी नहीं, तारीफ तो यही है।

सुन्दरी—जब तुम प्रमाण नहीं देते तो मैं आपका साथ नहीं छोड़ूंगा।

राजा०—नहीं हुजूर, नहीं सरकार, मैं तो आपके पावों की ख़ाक हूँ, मुझे बख्शिए।

(पैर छूना चाहता है)

सुन्दरी-नहीं, मेरे प्यारे, मेरे पैरों में न गिरिए। पैरों में गिरने के पहले एक बार मेरी ओर देखिये।

(सुन्दरी सिपाही से सुन्दरी बन जाती है। ' राजा बहादुर ' लज्जित होकर भागता है। पीछे पीछे सुन्दरी भी जाती है)







श्मशान के समान रणस्थल

(अभिमन्यु की लाश पड़ी है, सुभद्रा आती है)



सुभद्रा—आआ, मेरे होनहार बच्चे! मेरे सुकुमार बच्चे! मेरी गोद में आ जा। मेरे लाड़ले, मैं तुझे अपनी छाया में रक्खूंगी। अपने प्रेमाश्रुओं से न्हिलाऊंगी। अपने नेत्रों के सामने नये नये खेल खिलाऊंगी। अपने हृदय के मन्दिर में लोरियां दे देकर सुलाऊंगी।

तेरी माँ बिलख रही है, सूरत इसे दिखा जा।
गोदी उमड़ रही है, ऐ मेरे लाल आ जा॥

(श्रीकृष्णचंद्र का प्रवेश)

श्रीकृष्ण—सुभद्रे!



सुभद्रा—भैया, बताओ, मेरा वह प्राणप्यारा, मेरा वह नयनों का तारा, राजदुलारा, अभिमन्यु कहाँ है ? मेरी पवित्र आशाओं का पुष्प, मेरे अंधेरे घर का जगमगाता हुआ दीपक, मेरी बूढ़ी आत्मा का अलौकिक भविष्य, मेरा पाला पोषा हुआ एक मात्र बालक कहाँ है ? पाण्डवों का युवराज कहाँ है ? तुम्हारा स्नेह-पात्र कहाँ है ? मेरी गोदी का लाल कहाँ है ? अभिमन्यु कहाँ है ?

उसे मिलना नहीं था क्या, ठिकाना कोई पृथ्वी पर ।
जो उसने घर बनाया आज, जाकर स्वर्ग-भूमी पर ॥

श्रीकृष्ण—सुभद्रा, तेरा इस प्रकार विलाप करना वृथा है। जिसने संसार में जन्म धारण किया है, वह एक दिन अवश्य मरता है। सभी की यह दशा है। कालचक्र ही ऐसा है। फिर अभिमन्यु की मृत्यु को मृत्यु नहीं कहना चाहिए, उसने तो नवजीवन संचार किया है । वह सच्चा कर्म्मवीर हुआ है। तेरी कोख धन्य है, जिसने ऐसा लाल जाया। उत्तरा का जीवन सफल है, जिसने ऐसा पति पाया।

पञ्चतत्त्व का शरीर न किसी का रहा है न रहेगा। परंतु कर्म्मयोगी का "यश" सदैव सूर्य्य की तरह जगमगाता रहता है । अभिमन्यु भी ऐसा ही हुआ है। उसका यश,


जब तक संसार है, जब तक आर्य्य-जाति है, जब तक गायकों की वाणी है, जब तक कवियों की लेखनी है, अचल रहेगा। यही तुम्हारा धन है, यही उत्तरा का सच्चा सुहाग है, जो अटल रहेगा—

कर्त्तव्य करके वीर जो, बलिहार हुए हैं।
वे अपनी जाति के लिए, शृंगार हुए हैं॥
खोया अधर्म्म, धर्म्म की रक्षा जिन्होंने की।
सच पूछिए तो बस, वही अवतार हुए हैं॥

सुभद्रा—हाय, जब वह ऐसा था तभी तो उसकी याद मेरे हृदय से नहीं जाती है। जिस समय वह भोली भोली सूरत याद आती है, रुलाई आती है। हा अभिमन्यु, वीर अभिमन्यु-

सवेरे तक यहां थे अब, कहाँ हो मेरे अभिमन्यु।
हमारा नेह तज कर अब; वहाँ हो मेरे अभिमन्यु?

श्रीकृष्ण-फिर वही उन्माद, फिर वही विषाद। अरी रोना तो उसकी मृत्यु का है, जो पृथ्वी के लिए भार हो। और जो पृथ्वी के भार को मिटाने के पवित्र कार्य्य में बलिहार हो, उसके लिए रोना उसका धन्यवाद नहीं, तिरस्कार है—

सच तो यह है उस योद्धा ने, योगी का कर्म्म दिखाया है।
क्षत्रिय के यहाँ जन्म लेकर, सब जग को धर्म्म सिखाया है॥



सुभद्रा—रहने दो घनश्याम, अपना यह उपदेश इस समय रहने दो—

करुणानिधान, करुणा, करुणा-भरे से पूछो।
ज्वाला वियोग की तुम, छाती जरे से पूछो॥
क्या मूल्य है बने का, बिगड़े समय से पूछो।
बेटे का प्यार उसकी, मां के हृदय से पूछो॥

श्रीकृष्ण—वैसे नहीं तो ऐसे सही। सुभद्रा, तू तो ज्ञानवती है। दस इन्द्रिय पञ्चतत्त्व से बने हुए जिस मनुष्य-शरीर को तूने अभिमन्यु समझा है, वह तो अब भी पृथ्वी पर पड़ा है। फिर बता, तेरा लाल तुझसे कहाँ पृथक् हुआ है? और जो शरीर में काम करने वाली चैतन्य सत्ता को, उस 'जीवात्मा' को, तूने अभिमन्यु समझा है, तो वह अजन्मा है। उसको किसी ने नहीं देखा है। अब बता तेरा अभिमन्यु कहाँ मरा है?

जो था उसको देखा किसने? जो देखा है वह अब भी है।
अब कहाँ मरा अभिमन्यु और यह विषय वेदना किसकी है॥

सुभद्रा—यह विचार वेदान्त-वादियों का है। संसार से विरक्त होने वाले वैरागियों का है।

श्रीकृष्ण—वेदान्तियों और वैरागियों का क्या इसमें झगड़ा गड़ रहा है? जो शास्त्र का प्रमाण है, जो युक्ति से सिद्ध होने वाला ज्ञान है, वह पद तत्त्वदर्शियों का है।



सुभद्रा—नहीं, निर्मोहियों का है।

श्रीकृष्ण—या योगियों का है। सुभद्रा, तू सचमुच आज बाउली होगई है।

सुभद्रा—हाँ, मैं सचमुच आज बाउली होगई हूँ। बाउली को अपने पास खड़ी न रहने दीजिए। बाउली से बात न कीजिए। अभिमन्यु ! अभिमन्यु ! तेरी माँ, तेरे न होने के कारण आज बाउली होगई है। फिर भी तुझे दया नहीं आती; तू ऐसा निर्दयी है।

आँसू न आज थमते, आकर इन्हें सुखा जा।
तेरे प्यार के मैं वारी, मेरे प्यारे लाल आ जा॥

श्रीकृष्ण—(स्वगत) यह इस प्रकार ठीक न होगी। इस समय दूसरी युक्ति से इसे समझाना चाहिए। किसी प्रकार इसकी भटकती हुई ज्वाला को दबाना चाहिए (प्रकट) सुभद्रा, तुझे याद है ? जिस समय तेरा अभिमन्यु रण में जा रहा था, तूने कहा था बलिदान हो जाना, परन्तु युद्ध से हार मान कर यहां न आना। क्यों ? उस समय तो तूने ऐसा उत्साह दिखाया, अब यह हाहाकार मचाया ? बहन, कृष्ण की बहन होकर तुझ में यह अज्ञान क्यों आया ? कहां वह अखण्ड वैराग्य और कहां यह प्रचण्ड माया ?



सुभद्रा—भाई, समझदार होकर भी यह रहस्य तुम्हारी समझ में नहीं आया ? यह क्षत्राणी का धर्म था, जिसने युद्ध मे जाते समय पुत्र को उत्साह दिलाया और यह माता का स्नेह है जिसने बेटे के वियोग में बाउली बनाकर रुलाया:—

क्षत्राणि का यह धर्म्म था, भेजा उसे रन में ।
अनुराग यह माता का है, रुकता नहीं तन में ॥
यह ठीक है क्या रक्खा है, परिवार में धन में ।
पर बंध रहे हैं जब तलक, हम जन्म मरण में ॥
सुख दुख हमें जगत् के, सताते ही रहेंगे ।
जो देह है तो देह के, नाते भी रहेंगे ॥

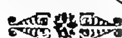
श्रीकृष्ण—देह के नाते तो रहेंगे, परंतु तुम उन्हें आत्मा में क्यों आरोपण करती हो ? शरीर का सुख दुःख शरीर को दो, आत्मा को क्यों देती हो ?

सुभद्रा—आत्मा शरीर का नेता है, शरीर के सुख दुःख का भाग वह प्रत्येक समय स्वयं ही ले लेता है—

इसी तत्त्व पर हृदय से निकल रही है हाय ।
बछड़े से बिछुड़ी हुई, रोवे जैसे गाय ॥

श्रीकृष्ण—फिर यह हाय कब तक जायगी ?

सुभद्रा—जब जाने की घड़ी आयगी—



यूं ही रोते रोते उबल जायगी,
तो गर्मी हृदय की निकल जायगी।
दशा आज तो है न कल को रहेगी,
सँभलते सँभलते सँभल जायगी॥

मेरी तो यह दशा है, परन्तु उस हतभागिनी उत्तरा को देखो। वह देखो, विधवा-वेष में, सती होने के लिये व इसी ओर आ रही है। मुझे तो मूर्च्छा आरही है।

(श्रीकृष्ण का सुभद्रा को सँभालना
उत्तरा का विधवा वेष में आना)

उत्तरा—(स्वगत)

हाय दई मैं लुट गई, फूट गया यह भाग।
चिता मेरी अब सेज है, अग्नी मेरा सुहाग॥

सुभद्रा—हाय! अपनी पुत्र-वधू को विधवा वेष में देखने के पहले नेत्रो तुम अंधे हो जाओ। सुकुमारी उत्तरा का कलेजा फाड़ने वाला विलाप सुनने के पहले कानों तुम बहरे हो जाओ!

श्रीकृष्ण—बहन, शान्त हो, ऐसी न अकुलाओ।

उत्तरा—(स्वगत)।

मैं हूं वही जिसकी पड़ी भांवर तुम्हारे साथ में।
मैं हूँ वही नाथा था जिसको नाथ, नथ की नाथ में॥



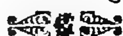
अब सम्पदा तो सब गई, मैं रह गई हूं शेष में।
स्वामी तुम्हारी उत्तरा, रोती है विधवा-वेष में॥

सुभद्र--हा! पृथ्वी तू फट क्यों नहीं जाती! आकाश तू हम अभागियों पर टूट क्यों नहीं पड़ता!

श्रीकृष्ण-फिर वही विलकता, सुभद्रा! सुभद्रा! (सँभालना)

उत्तरा--(अभिमन्यु की लाश देखकर, स्वगत) हाय दई! यह कैसी दुर्दशा होगई! जिस सिंह की गर्जना को सुनकर शृगाल रूपी कौरवों के छक्के छूट जाते थे, शत्रुओं के पित्ते पानी पानी हो जाते थे, आज वही धूरि-धूसरित हो रहा है, सदैव के लिए सो रहा है। आज यह भुजायें, शत्रुओं के दल को दलने मलने वाली यह भुजायें, टूटे हुए वृक्ष की शाखा के समान पृथ्वी पर पड़ी हैं, शत शत बाणों से विधी हैं। खञ्जन-गञ्जन नेत्र मृत्यु का अञ्जन लगा कर निरंजन की सेवा में लीन हैं। जहां रणकङ्कड़ था वहाँ रक्त है, जहां उबटन था वहां घाव है, सारे शृङ्गार तेरह तीन हैं—

जिनकी धनु टङ्कोर श्रवण कर, उड़ती रिपु की लाली।
जिनकी हांक से पर्वत कांपे थर थर पृथ्वी हाली॥
उनकी आज कराल काल ने, कठिन कुगति कर डाली।
हाय! उड़ गये प्राण पखेरू पड़ा पींजरा खाली॥



श्रीकृष्ण—उत्तरे !

उत्तरा—(सचेत होकर) कौन ? मामा ? (लज्जा करती है)

श्रीकृष्ण—पुत्री, लज्जा निवारण करो और हम जो कहते हैं उसे सुनो।

उत्तरा—लज्जा ? लज्जा तो स्त्रियों का भूषण है। (कुछ सोच कर) परन्तु मैं अब यह भूषण किसके लिये धारण करूं ? मेरा तो शृङ्गार लुट चुका है, फिर आपकी आज्ञा है, तो लो (लज्जा निवारण करना) जल के सूखने पर सरोवर की मछलियां अपनी देह को छोड़ देती हैं, कमलनियां कुम्हला कर नष्ट हो रहती हैं, परन्तु नाथ के बिछुड़ने पर यह प्राण इतनी देर तक क्यों ठहरे ? स्वामी, एक स्त्री को ही अपनी स्त्री समझने वाले स्वामी, तुम अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करके अब स्वर्ग की देवियों के पास क्यो चले गये ? ठहरो, मैं तुम्हारी प्रतिज्ञा रखने के लिये, अपना पतिव्रत-धर्म पालन करने के लिये, वहीं आ रही हूँ—

युगल जोड़ी तुम्हारी और, मेरी इस तरह होगी।
जहां पतिदेव तुम होगे, वहीं पत्नी भी यह होगी ॥

श्रीकृष्ण—उत्तरा, क्यों वृथा विलाप करती है ? इस प्रकार रोने चिल्लाने से कहीं आपत्ति टलती है ? ससार में कितने आये और चले गये, कितने चले जा रहे हैं, कितने चले जांयगे।



यह शरीर भी जो आज वर्तमान है; किसी दिन नहीं रहने पायगे—

देहली तक पत्नी का नाता, पौली तक है माता।
मरघट तक सब घर के जाते, हंस अकेला जाता॥
औरों की तो चर्चा ही क्या, औरों की क्या गाथा।
साथ न जाता है शरीर भी, जिससे पूरा नाता॥

उत्तरा—मामा! बताओ, बताओ, तुम्हारे होते मैं विधवा हो गई यह तुम्हारी कैसी लीला है?

सुभद्रा—(स्वगत) उत्तरा सुशीला है। जब से यह ब्याही आई है तब से सदा इसने अपना मुंह कीला है। परन्तु आज जो इसके मुख से यह वचन निकले हैं, उसका कारण यही है कि इस समय इसके शीष पर विशाल, शोक का टीला है। जिसके कारण इसका विवेक, बल, पराक्रम, सब ढीला है।

उत्तरा—मामा, बताते नहीं? तुम्हारे रहते पाण्डव—वृक्ष के उस मधुर फल को, उन अधर्मियों ने अपनी अत्याचार की छुरी से क्यों कर छीला है?

श्रीकृष्ण—बेटी, मैं इस विषय में निर्दोष हूँ। मैं तो संसप्तकों की ओर था। और मैं होता तो भी क्या होता? जो होतव्य है वही होता है। विधाता के विधान में कौन परिवर्तन कर सकता है?



उत्तरा—मुझे इन अन्ध विश्वास की बातों में न भुलाओ। अब मैं तुम्हें जान गई। सती का वेष धारण करते ही यह विधवा तुम्हारे योगेश्वर स्वरूप को पहचान गई। इसलिए ठीक ठीक बताओ।

श्रीकृष्ण—अच्छा, तो सुनो, आगे आओ। जिसे तुमने अभिमन्यु समझ रक्खा था वह चन्द्र का पुत्र वर्चा था। एक शाप के कारण मर्त्यलोक मे उसका जन्म हुआ। अब अपने शाप की अवधि समाप्त करके फिर चंद्रलोक को चला गया।

उत्तरा—तो मैं भी उसी लोक को जाऊँगी। मामा, मुझे आज्ञा दो। वह मेरा पति था, मैं उसके वियोग में सती होकर सूक्ष्म शरीर से चंद्रलोक ही में उससे मिल जाऊँगी—

जब नाथ ही नहीं रहे, तो प्राण कहां हैं?
होली की तरह फूंक दो उनको जो यहां हैं!
जलती हुई चिता के, लपेटों से लिपट कर—
पहुँचेगी सती भी वहीं पतिदेव जहां हैं!!

श्रीकृष्ण—नहीं, यह हम को स्वीकार नहीं है।

उत्तरा—तो क्या मुझ हतभागिनी को इतना भी अधिकार नहीं है? एक अज्ञान पक्षी भी अपने जोड़े से जब बिछुड़ जाता है तो झुर झुर के मर जाता है। फिर मैं तो मनुष्य हूँ। किस प्रकार यह दुःख सहूंगी? नहीं मामा, मैं मरूंगी और अवश्य मरूंगी—



मस्तक है वह किस काम का, जिस में विकार हो।
किस काम की वह आंख, जहां अंधकार हो॥
जीना भी उसका एक जगत में बवाल है।
जीते ही जी मुर्दे की तरह, जिसका हाल है॥

श्रीकृष्ण—कुछ भी हो। तुम्हारे लिए सती होने की आवश्यकता नहीं है।

उत्तरा—कारण?

श्रीकृष्ण—बात लज्जा की है परन्तु कहनी ही पड़ी। तुम गर्भवती हो और गर्भवती के लिए सती होने की आज्ञा नहीं है।

उत्तरा—हाय, तो यह गर्भ ही मेरे रास्ते का कांटा हुआ है? मैं जिस धर्म्म-पर चलने वाली हूं उस में पहाड़ की तरह खड़ा है? मामा, मैंने आज तक तुम से कुछ नहीं मांगा है। आज विधवा होकर, रण्डापे का आंचल पसार कर, मैं तुमसे इतनी भीख मांगती हूँ कि तुम मेरे इस गर्भ को खण्डन करो। अपनी योगमाया द्वारा इस भार का विसर्जन करो।

श्रीकृष्ण—पुत्री, इस बुरी भावना को हृदय ही में दमन करो। यह विषय बहुत बढ़ाना उचित नहीं है। परंतु बिन कहे बनती भी नहीं। सुनो, तुम्हारे गर्भ में एक बालक है और वह बालक



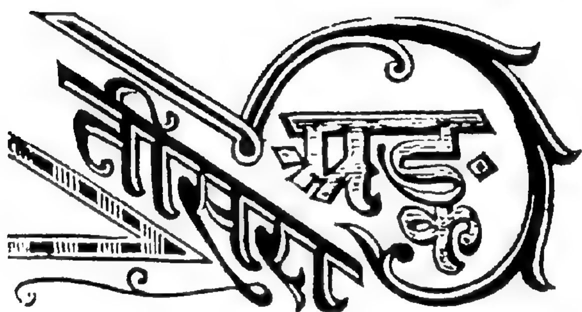
बड़ा भाग्यशाली है। यह युद्ध समाप्त होने के उपरांत वह हस्तिनापुर के सिंहासन की शोभा बढ़ायगा। परीक्षित के नाम से भारत का चक्रवर्ती राजा कहायगा।

सुभद्रा—हैं, यह कैसा आश्चर्यजनक सम्वाद है?

श्रीकृष्ण—आश्चर्यजनक सम्वाद नहीं बहिन, पुत्र अभिमन्यु का शोक मिटाने के लिये परमात्मा की ओर से यह आनन्ददायक प्रसाद है। और सुनो, पाण्डव ही अपने हाथ से उसे राजमुकुट पहनायेंगे। यह हमारा आशीर्वाद है।

(इधर भगवान् श्रीकृष्ण यह आशीर्वाद देते हैं, उधर सीन बदलता है। स्वर्ग में अभिमन्यु दिखाई देता है और इशारे में उत्तरा से कहता है—"तुम दुनियां में जियो, अपने लिए नहीं तो मेरे बच्चे के लिए जियो"। इसी आनंद में यवनिका गिराई जाती है।)







तीसरा अंक



कौरव-शिविर ।

(जयद्रथ का घबराये हुए आना)

जयद्रथ—पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, आज किसी में इतनी शक्ति नहीं है जो मुझे अपने आंचल में छिपाये। सप्तद्वीप, नव-खण्ड, चौदह लोक में कहीं इतना स्थान नहीं है,जहां यह अभागा जयद्रथ फल पाये। मृत्यु, और वह भी अकाल मृत्यु, अपना डरावना मुख फैलाये हुए मुझे भक्षण करने के लिए दौड़ी आ रही है और मेरे सारे शरीर में अग्नि लगा रही है।

अर्जुन ने मुझे मारने की प्रतिज्ञा की है और उसमें प्रतिज्ञा पूरी करने की शक्ति भी है। यही चिन्ता इस समय मुझे जला रही है। ओह! वह मृत्यु की घड़ी, वह अन्तिम अवस्था, जब याद आती है, तो सारे शरीर में बिजली सी तड़प जाती है—

अन्त जयद्रथ आया तेरा, दुर्दिन जाय पाप ने घेरा।
जगत है तेरे लिए अँधेरा अब परलोक है तेरा डेरा॥



अर्जुन के बाण से मरने की अपेक्षा आत्मघात द्वारा मरना विशेष उचित है। बस, अब अपने पापों का यही प्रायश्चित है। इसी में अपना हित है—

(कटार निकाल कर)

अब काल मेरा होगी, यही विष भरी कटार।
पहुँचायगी यही मुझे, इस पार से उस पार ॥
आंखों में आ रहा है, घना घोर अन्धकार।
बस काट दे गला मेरा, ओ मृत्यु के हथियार ॥
संसार विदा बस तुझे अंतिम प्रणाम है।
अब सिंधुराज के लिए, यम-लोक धाम है ॥

(आत्मघात करना चाहता है, दुर्योधन आकर रोक लेता है, दुर्योधन के साथ द्रोणाचार्य और दुःशासन भी हैं)

दुर्योधन—(कटार छीन कर) शान्त जयद्रथ, शान्त। हम जानते हैं कि आज तुम्हारे हृदय को अतीव सन्ताप है, परंतु आत्मघात द्वारा शरीर त्यागना तो महापाप है। तुम्हारा यह उन्माद देख कर आज हमें बड़ा पश्चात्ताप है।

जयद्रथ—तुम्हें और पश्चात्ताप है ? पश्चात्ताप तो उस अभागे के हृदय से पूछो जिसको रात्रि में-राज्य का भोग भोगते समय-प्रातःकाल शूली पर चढ़ाये जाने की आज्ञा हो। सारे भोग


उसको उसी समय से विष्टावत् दिखाई देते हैं। प्रकृति के सुंदर सुन्दर दृश्य उसे खाजाने के लिए दौड़ते हैं। ज्यों ज्यों रात्रि घटती जाती है, उसकी वेदना भी प्रातःकाल सूर्य के समान बढ़ती जाती हैः—

यह वह रण है कि रणवीरों को भी इसमें पराजय है।
ज़रा उसकी दशा देखो कि जिसको काल का भय है॥

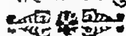
(जयद्रथ ने देखा मानों उसके सामने अर्जुन खड़ा है)

दुर्योधन—आचार्य्य, देख रहे हो? आज इसे कितना भयानक उन्माद है?

जयद्रथ—अर्जुन, मैं निर्दोष हूँ, मुझे न मार। मैंने तेरे अभिमन्यु को नहीं मारा है। उस बालक को अन्याय पूर्वक मैंने नहीं संहारा है। छोड़ दे, ओ धर्म के देवता, मुझे छोड़ दे, मैं तेरी गाय हूं, मुख में तृण धारण करके तुझ से प्राण-भिक्षा मांगता हूं। क्षमा मांगता हूंः—

अरे ओ स्वर्ग वाले मैं खड़ा हूँ तेरी रक्षा में।
पुकार और इतना कहदे, यह नहीं था मेरी हत्या में॥

आचार्य्य—जयद्रथ, यह कैसा सिड़ीपन है, यहां अर्जुन कहां है? आंखें खोलकर देख! तेरे सम्मुख इस समय आचार्य्य हैं, दुर्योधन हैं और दुःशासन हैं।



जयद्रथ—(आचार्य से) तुम आचार्य्य हो ? मेरी रक्षा करो। वह देखो, गाण्डीव से निकला हुआ बाण मेरी ओर को आ रहा है। वह सुनो, कोई देवदत्त शङ्ख बजा रहा है। यह कौन लाल लाल आँखें निकाल कर मुझे डरा रहा है ? अर्जुन आ रहा है, अर्जुन आ रहा है, अर्जुन आ.............(मूर्च्छित)

दुर्योधन—आचार्य्य, जयद्रथ का जीवन अब तुम्हारे हाथ है:—

प्रतिज्ञा कीजिए, अपने किये का, फल भरे अर्जुन।
रहे जीता जयद्रथ और, बदले में मरे अर्जुन॥

आचार्य्य—अभी इस प्रतिज्ञा का समय नहीं है।

दुर्योधन—क्यों ? क्या इस लिए कि अर्जुन आपका प्रिय शिष्य है ?

आचार्य्य—नहीं, वरन् इस लिए कि वह धर्म्म से युद्ध करने वाला एक वीर पुरुष है।

दुर्योधन—धर्म्म तो उसका उसी दिन देख लिया था जब उसने शिखण्डी की ओट में पितामह को मारा था !

आचार्य्य—उसमें अर्जुन का दोष नहीं, पितामह की आज्ञा ही से ऐसा हुआ था।

दुर्योधन—तो क्या पितामह ने यह अधर्म किया था ?



आचार्य्य—नहीं उनका वचन था कि वह युद्ध तुम्हारी ओर से किया करेंगे और परामर्श पाण्डवों को दिया करेंगे। उसी वचन के अनुसार यह कर्म्म था।

दुर्योधन—नहीं, यह अर्जुन ही का अधर्म्म था। वह अधर्म्मी है। बराबर अधर्म्म करता जाता है। तिस पर भाग्य का कैसा पूरा है कि आप सरीखे महात्माओं के मन पर भी चढ़ता जाता है।

आचार्य्य—अधर्म्मी? कौन? अर्जुन? कभी नहीं। (गर्मा कर) अधर्म्मी वह है जो भीमसेन को भोजन में विष खिलाता है; अधर्म्मी वह है जो लाक्षागृह में पाण्डवों को भस्म कराने का चक्र रचाता है, अधर्म्मी वह है जो कपट के पासों से अपने भाइयों का सर्वस्व हरण कर उन्हें बनवास दिलाता है, अधर्मी वह है जो एक सती नारी की साड़ी भरी सभा में खिचवाता है और अधर्म्मी वह है जो एक बालक का सात मनुष्यों द्वारा वध कराता है:—

उसी अन्याय का बदला, अगर अर्जुन चुकायेगा।
तो इस में दोष क्या है! क्यों अधर्म्मी वह कहायेगा?
मसल है, थूकना आकाश का; मुंह पर ही आयेगा।
यूंही जैसा करेगा जो, वह फल वैसा ही पायेगा॥
मैं उस बालक का बदला लूं, यह लय. अर्जुन के सर में है।
जयद्रथ क्या तुम्हारी नाव भी, अब तो भँवर में है॥



दुःशासन—भाई साहब, देखिए फिर वही बात आती है। जब हमारा सेनापति ही उनका पक्षपाती है तभी तो हमारी सेना बार बार हार जाती है।

आचार्य्य—तुम्हारा सेनापति उनका पक्षपाती नहीं धर्म का साथी है।

दुर्योधन—जब अभिमन्यु को मारा था तब तुम भी तो थे, उस समय तुम्हारा धर्म कहां चला गया था ?

आचार्य्य—हा ! तुम अधर्मियों के कुसङ्ग में मेरा धर्म भी उस समय अधर्म का रूप बन गया। वह ही एक धब्बा है जो मेरी उज्ज्वल कीर्त्ति की चादर में बुरी तरह लग गया है। वही एक कांटा है जो मेरी नस नस में शत शूल होकर खटक रहा है:—

कर्त्तव्य-भ्रष्ट हो गया, उस पाप से आचार्य्य।
होता है नित्य क्षीण, उसी ताप से आचार्य्य॥
तप नष्ट आप कर चुका है, आप से आचार्य्य।
डरता है अब तो उत्तरा के शाप से आचार्य्य॥
हे दैव, न देर लगा अब तो, चाहे हित हो या अनहित हो।
उस बालक के वध में था मैं, इसका मुझ से प्रायश्चित हो॥

दुर्योधन—उसका प्रायश्चित यही है कि उस कुंवर कन्हैया के पैर पकड़ो और उसकी ओट लेकर अर्जुन से क्षमा प्रार्थना करो।

आचार्य्य—बस, चुप रहो।



पासों का खेल है नहीं यह, है यह तपोधन।
ब्राह्मण कभी करेगा नहीं, धर्म्म उल्लंघन॥
पछता रहा हूँ आप मैं, यह हो रहा साधन।
बेशक क्षमा करेंगे मुझे, देवकी-नन्दन॥
तन कौरवों की ओर था, यह दोष है मुझे।
मन पाण्डवों का है यही, संतोष है मुझे॥

दुर्योधन—अच्छा अब यह दोष, संतोष हटाइये और जयद्रथ को बचाने का, अर्जुन को मिटाने, का पराक्रम दिखाइए।

आचार्य्य—सारे कार्य्य करने का मैं ही ठेकेदार हूं।

दुर्योधन—

कर दो क्षमा गुरुदेव! जो कुछ होचुका सो हो चुका।
अब तुम जयद्रथ को बचाओ, और बदला लो चुका॥

दुःशासन—मन न सही, आप के तन पर तो हमारा अधिकार है। उसी के अनुसार आप को हम पर कृपा करने में क्या सोच विचार है:—

गुरुदेव हमारे तुम हो, हम तुम से न कहें तो किससे कहें।
पकड़े लेते हैं पांव को हम, तुम से न कहें तो किससे कहें॥

आचार्य्य—जयद्रथ, जयद्रथ, बोल क्या चाहता है?

जयद्रथ—(कुछ सचेत होकर) अपने पापों का प्रायश्चित्त।

आचार्य्य—वह तो अर्जुन के वाण में है।



जयद्रथ—और वह बाण मेरे पांचों प्राण में हैं। मुझे अपनी मृत्यु की जितनी चिन्ता है, उससे ज्यादा यह दुःख है कि अपनी इन आँखों से सुयोधन का अकण्टक राज्य नहीं देख सकूंगा। इनके चक्रवर्ती होने के पहिले मैं चल दूंगा।

दुर्योधन—अगर मैं मैं हूं, तो कदापि तुम पर आंच न आने दूंगा।

दुःशासन—सायङ्काल तक की बात है। उस समय तक अर्जुन से जयद्रथ का साक्षात् न हो तो कोई उत्पात न हो। सूर्य्यास्त होते ही अर्जुन आप भस्म हो जायगा। जिसे हम मारना चाहते हैं, वह स्वयं मर जायगा।

दुर्योधन—आचार्य्य, अब तुम शीघ्र प्रकट हो। तुम्हीं इस नाट्यशाला के मुख्य नट हो। तुम्हीं चक्र-व्यूह बनाने वाले सर्वोपरि सुभट हो और तुम्हीं हमारे दूरदर्शी केवट हो।

तुम हमारे हो, हम तुम्हारे हैं।
जन जनार्दन ही के सहारे हैं॥

आचार्य्य—अच्छा, जहाँ तक होगा अपने शरीर से तुम्हारी सहायता करूँगा। जयद्रथ, उठ। अभी शकट-व्यूह बना कर उसमें तुझे छिपा कर तेरी रक्षा करूँगा।

जयद्रथ—(जाते जाते)

जब समय आगया चलने का तो, कब टाले टल सकता है।
जब जीवन-दीप बुताय गया तो, फिर कैसे चल सकता है॥

(सब का प्रस्थान)



दूसरा सीन

रणस्थल में जाने का मार्ग



(रथ पर श्रीकृष्णार्जुन का प्रवेश)



अर्जुन—भगवान्, रथ रोको। कौरव-सेना पर लक्ष्य करने के लिए यही स्थान उचित है। इसी स्थान से बाण-वर्षा करने में हमारा हित है:—

देखेंगे आज खेलता है, रण में चाल कौन ?
ठहरेगा युद्ध-भूमि में माई का लाल कौन!

(सामने से दूसरे रथ पर द्रोणाचार्य्य का प्रवेश)

आचार्य्य—अर्जुन, ठहर। गुरु का ऋण चुकाये बिना आगे न बढ़ने पायगा।



अर्जुन—हां, अर्जुन पहले गुरु का ही ऋण चुकायेगा, उसके पश्चात् सब को पाठ पढ़ायेगा—

आशीर्वाद प्रेम से, चेले को दीजिए ।
और लीजिए गुरु-दक्षिणा गुरुदेव लीजिए ॥

(पहला बाण आचार्य्य के पैरों में मारकर कई बाणों से आचार्य्य का रथ छिन्न भिन्न कर देता है)

आचार्य्य—(टूटे हुए रथ से कूदकर)

हम नष्ट हुए रथ टूट गया,
कर में कोई शस्त्र रहा ही नहीं ।
अर्जुन एक बाण चला फिर भी,
आचार्य्य का ऋण तो चुका ही नहीं॥

अर्जुन—(अपने रथ से कूद कर)—

रथ टूट गया आपका, पैदल हुए हैं आप ।
प्रभुताई यह प्रभू की है, और आपका प्रताप॥
अब मैं जो रथासीन हूँ तो होगा मुझे पाप ।
इस वास्ते पैदल ही, करूंगा गुरू का जाप ॥
हैं आप शस्त्र-हीन तो, यह खड्ग लीजिए ।
गुरुदेव द्वन्द्व-युद्ध आज, मुझसे कीजिए ॥

(आचार्य्य और अर्जुन का खड्ग द्वारा लड़ना, रथ से उतर कर भगवान् श्रीकृष्ण का रोकना)



श्रीकृष्ण—अर्जुन, आज आचार्य्य से युद्ध करने का तूने प्रतिज्ञा नहीं की है। तेरा लक्ष्य तो इस समय दूसरा ही है। इन से लड़ते लड़ते तो संध्या हो जायगी। फिर तेरी प्रतिज्ञा-पूर्ति किस प्रकार होगी?

(दुर्योधन का प्रवेश)

दुर्योधन—अब प्रतिज्ञा-पूर्ति को भूल जाओ। तुम्हारी दुर्गति होगी।

अर्जुन—अरे, जब तक, (श्रीकृष्ण की ओर संकेत करके) यह मूर्ति अर्जुन के साथ है, जब तक इस गाण्डीव धन्वा पर धनञ्जय का हाथ है, तब तक तू क्या, सारे संसार की शक्तियाँ आकर टकरायें, तब भी प्रतिज्ञा-पूर्ति होगी और अवश्य होगी।

दुर्योधन—(चिढ़ कर) होगी!

अर्जुन—हां, होगी—

पता, निर्वाण हो जायेगा, सन्ध्या तक जयद्रथ का।
इन्हीं बाणों से काटा जायगा, मस्तक जयद्रथ का॥



दुर्योधन—अरे तुम ! तुम आज जयद्रथ की छाया तक नहीं पा सकते हो। आज शकट-व्यूह उसका शस्त्र है, और यह जो प्रलय के बादल की तरह कौरव-दल उमड़ रहा है, यह उसका अस्त्र है।

अर्जुन—तो इस बादल को उड़ाने के लिए मेरा बाण आज पवन होगा। शकट-व्यूह को नष्ट करने के लिए वज्र होगा। शत्रु को मिटाने के लिए काल होगा। (श्रीकृष्ण से) जनार्दन, चलो, अपना शंख बजाओ। रथ बढ़ाओ और मुझे इस व्यूह के मध्यभाग में पहुँचाओ।

(रथ में बैठ कर शीघ्रता से प्रस्थान)

दुर्योधन—आचार्य्य, तुम भी धाओ। जयद्रथ को बचाओः—

अक्षौहिणी दल कहीं नष्ट न हो,
और कौरवों का कहीं धीर न छूटे।
जिस पींजरे में वह पखेरू फँसा,
उस पींजरे की कहीं तीली न टूटे॥

(दोनों गये और सीन बदला)





तीसरा सीन

रणस्थल का एक भाग।



(भीम धार्तराष्ट्रों को मारता हुआ आता है)

भीम—

हां, समय कहता है जल्दी से मैं प्रण-पालन करूं ।
जिसमें हो सङ्कल्प पूरा, बस वही साधन करूं ॥
रक्त से पृथ्वी को रँग कर, लाल का अर्चन करूँ ।
पुत्र अभिमन्यू तरे जिससे वही तर्पन करूँ ॥
जब तलक बदला न हो, कब तब तलक आता है चैन ।
कौरवो, ठहरो तुम्हारे, शिर पे आया भीमसैन ॥

(कितने ही धार्तराष्ट्रों को मारता है, उनकी लाशों पर बैठकर खून उलीचता है)



वीर रस में आगयी है, आज थोड़ी शांती।

(लाशों की ओर संकेत करके) यह मेरा संकल्प है–

(रक्त का तर्पण करके) और यह है, उसकी शांती।

(युधिष्ठिर का प्रवेश)

युधिष्ठिर—भीम, यह कैसा नर-पिशाच का सा कर्म्म है ?

भीम–पुत्र पिता के लिए तर्पण करता है। पर आज समय बदल गया है। पिता पुत्र के लिए तर्पण कर रहा है—

वे पड़े हैं देख लो, इस गदा के मारे हुए।
वे सिसकते हैं उधर, संग्राम में हारे हुए॥
टूटते हैं जैसे तारे, त्यूं ही यह तारे हुए।
भीम की भीषण भुजाओं के, हैं सँहारे हुए॥
भाई साहब भीम के, संकल्प का पालन है आज।
देखिए रणभूमि में, इस समय उद्यापन है आज॥

(फिर रक्त उलीचता है। युधिष्ठिर उसका यह अमानुषीय कर्म्म देखकर आंखें मूंद लेते हैं)



चौथा सीन

राजा बहादुर का मकान

(राजा बहादुर की स्त्री सुन्दरी का प्रवेश)

सुन्दरी—मेरे स्वामी भी बड़े विचित्र हैं। जब से कि सिपाही के वेश में मैंने उन्हें लज्जित किया है तब से मुंह फुंलाये ही रहते हैं। जब मिजाज पूछती हूँ तो कहते हैं—जब तक अपमान का बदला न होगा, गुस्सा कम न होगा। हाय दई, उनका यह गुस्सा तो दुर्वासा के शाप से, इन्द्र के वज्र से, शङ्कर के तीसरे नेत्र से भी दो गोली ऊपर को चढ़ गया है। भगवान् ही जाने उन्होंने बदला लेने का क्या विचार किया है।

(सुन्दरी की सखी चम्पा का आना)

चम्पा—अरी सखी, सखी, जरा इधर तो आना।

सुन्दरी—क्यों क्या है!

चम्पा—वह देख वह सामने…………



सुन्दरी—सामने ?........सामने तो मेरे स्वामी हैं।

चम्पा—और वह दूसरे कौन हैं ? उन्हें भी देखा ?

सुंदरी—वह तो कोई जोगी हैं।

चम्पा—ऊं-हूँ (सर हिलाती है)

सुंदरी—तो कोई वैरागी बाबा.........

चम्पा—ऊं-हूं (सर हिलती है)

सुंदरी—फिर कौन हैं ? कोई सन्यासी होंगे।

चम्पा—ऊं-हूं (सर हिलाती है)

सुंदरी—यह भी नहीं तो कोई बड़े महात्मा........

चम्पा—ऊं-हूं (सर हिलाती है)

सुंदरी—(चम्पा की पीठ पर हाथ मार कर) अरी ऊं-हूँ की चाची, साधु नहीं तो यह कौन हैं ?

चम्पा—सखी ! तुम भी बड़ी भोली हो। साधु का वेप तो आज कल चोग़े की तरह है। जैसे चोग़े से शरीर छिप जाता है, वैसे ही इस वेप मे सारी दुनिया का ऐब दब जाता है। खूनी खून करके जब लापता होते हैं, तो यह वेप उनकी बड़ी रक्षा करता है। राजा के खुफ़िया कर्म्मचारी जब कोई बड़ा काम निकालना चाहते हैं, तो उनकी भी यह वेप बड़ी सहायता करता है। जिनके शरीर को मेहनत करके रुपया पैदा करने में मौत आती



है उन्हें भी बनी बनाई रोटियाँ खिलाने के लिए यह वेष उन पर बड़ी दया करता है। फिर, धर्म्म की इस में ऐसी अच्छी ओट है कि चाहे कितना ही खोट करने वाला हो, बस धेले के गेरू में कपड़े रँगे और बन गये स्वामी जी महाराज! भोली हिन्दू जाति कहने लगी-बाबाजी, दण्डवत्! महाराज, नमोनारायण।

क्या करूं। मेरा तो वश नहीं चलता। नहीं तो महाराज से कहकर इन नक़ली फ़क़ीरों को—जो मुल्क के लिए बड़ा बोझ हो रहे हैं—लड़ाई में भिजवा देती!

सुन्दरी—ले, तू ने तो व्याख्यान दे डाला।

चम्पा—व्याख्यान? यह एक ऐसा विषय है कि इस पर जितना कहा जाय थोड़ा है। सुन्दरी, इन बगुला भगतों को देख कर मेरा तो भेजा गरमा जाता है। इन पाखण्डियों ने सच्चे साधुओं को, हिन्दूधर्म्म को, भारतवर्ष को, बड़ा भ्रष्ट कर रक्खा है—

भगवान करे इस भारत में, फिर गौतम सा ऋषि पैदा हो।
फिर विश्वामित्र, वशिष्ठ, कपिल, जाबालि कणाद की चर्चा हो॥
जब सच्चा धर्म्म उदय होवे, सच्चे वचनों की वर्षा हो।
तब भारत सच्चा भारत हो, घर घर भारत का डंका हो॥



सुन्दरी—बस रहने दे, बहुत हो लिया। असल मतलब से बहुत दूर चली गई। अच्छा सखी, मैं हारी और तू जीती। अब तू ही बता कि यह साधु नहीं तो कौन है?

चम्पा—(हंसकर) मेरी भोली सखी, अभी अभी मैं तुम्हारे पास आरही थी। देखती क्या हूं तुम्हारे स्वामी और मेरे पड़ोसी करमचंद कुछ कानाफूसी कर रहे थे। तुमने जो सिपाही के वेष में अपने स्वामी को शरमिंदा किया था, उसका बदला लेने की तर्कीब सोच रहे थे।

सुंदरी—तो यह कहो-नमक की पुतली समुन्दर की थाह लेने आयी है।

चम्पा—हां!

सुंदरी—अब मैं समझी, साधु के वेष में यह अपने पड़ोसी करमचंद दास हैं।

चम्पा—वही जी वही, जो सारे मुहल्ले की सफ़ाई के ठेकेदार हैं—

जालिये गंठकटे, मक्कार जमाने वाले।
यही हैं स्वर्ग के दल्लाल कहाने वाले॥
हो न विश्वास तो आगे ज़रा बढ़ के देखो।
संत जी बन गये झाड़ उठाने वाले॥

(करमचंद का साधु-वेष में आना)



करमचन्द—नारायण, नारायण।

सुन्दरी—बाबाजी दण्डवत्।

चम्पा—साधुजी, प्रणाम।

करमचन्द—कल्याण हो बच्चा, कल्याण।

सुन्दरी—कहिए महाराज, कैसे पधारे ?

करमचन्द—पुत्री क्या बताऊँ ! समय बहुत बुरा आगया है। सुन कर तुम बहुत रोओगी।

सुन्दरी—महाराज, बतलाइए तो सही, क्या मेरे पति राजा बहादुर को और भी कोई बड़ा खिताब मिला है ?

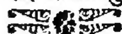
करमचन्द—नहीं।

सुन्दरी—तो क्या मेरे स्वामी ने लड़ाई से भाग कर किसी विधवा-स्त्री से विवाह किया है ?

करमचन्द—नहीं।

सुन्दरी—यह भी नहीं, वह भी नहीं, तो क्या मेरी के काँटा निकला है ? मेरी बिल्ली ने दूध पाना छोड़ दिया है ? मेरी गाय का बछड़ा भाग गया है ?

करमचन्द—नहीं, इस से भी अधिक दुःख की बात है। लड़ाई में तुम्हारे स्वामी राजा बहादुर का स्वर्गवास हुआ है।



सुन्दरी—वाह महाराज, मैं तो घबरा गई कि, मेरी मैना के कांटा निकला, बिल्ली ने दूध पीना छोड़ दिया, गाय का बछड़ा भाग गया।

करमचन्द—तो क्या तुम्हारे नजदीक तुम्हारे पति का मर जाना साधारण बात है ?

सुन्दरी—और नहीं तो क्या ! मरना तो एक दिन सभी को है। फिर उनके मरने की क्या चिन्ता ? आज न मरते तो कल मरजाते ! बुड्ढे फूंस तो थे ही।

राजा०–(अन्तरिक्ष से निकल कर स्वगत) देखो भाई, बुड्ढे की लुगाई क्या कह रही है ?

करमचन्द—तो माई, अब तुम क्या करोगी ? अब तो तुम राँड होगई हो !

ठेके: चम्पा—यह मुझ से पूछो। वह मरने वाला, इन्हें राँड ना गया है, तो यह उस मरने वाले को रंडुआ बनायेगी।

करमचन्द–छी ! यह भी कोई बुद्धिमानी की बात है ?

चम्पा–इसमें बुद्धिमानी नहीं तो ऐसे सही. उस बेवकूफ के मर जाने की वजह से अब यह किसी अक्लमन्द शौहर से विवाह कर लेंगी।